

भूमिका

यो विद्याश्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं सम् विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥

“ब्रह्म पुराण” का यह कथन पुराणों के प्रति प्राचीन काल के विद्वानों की भावना का दिग्दर्शन कराता है। इस लेखक के मतानुसार यद्यपि ‘वेद’ भारतीय धर्म के मूलाधार है, पर केवल उन्हीं के पठन पाठन से मनुष्य धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह कहता है कि “मनुष्य चाहे चारो वेदों का उपनिषदों सहित अध्ययन कर ले, पर यदि पुराणों की जानकारी नहीं है, तो उसे “विद्वान्” नहीं कहा जायगा। “हम जानते हैं कि हिन्दू-समाज के ही अनेक व्यक्ति और एकाग्र नवीन सम्प्रदाय वाले इस कथन से असन्तुष्ट होंगे कि पुराणों की तुलना वेदों से की जा रही है, पर हमारी सम्मति में जो कुछ ग्रन्थाण्ड पुराणवार” ने कहा है वह ठीक ही है। यह सत्य है कि वेदों का महत्त्व बहुत अधिक है और आध्यात्म विद्या की दृष्टि से उपनिषद् उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं, पर यह समस्त एकांगी है। भारतीय मनीषियों ने धार्मिक ज्ञान के तीन विभाग किये हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। वेद और उपनिषदों को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना गया है, पर दोष दो विभागों का वर्णन विस्तार के साथ पुराणों में ही पाया जाता है।

जो व्यक्ति भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का व्यापक परिचय और व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहता है उसको पुराणों का अध्ययन करना अनिवार्य है। यद्यपि पुराणों में प्राचीन काल के महापुरुषों, राजवंशों और प्रसिद्ध शासकों का वर्णन बड़ा बे रूप में ही किया गया है तो भी उनसे विभिन्न कालों की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का कुछ आभास तो प्राप्त होता ही है। इस प्रकार के वर्णनों का आधार

पर ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन व्यक्ति उन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आदर्शों का वास्तव में कितनी हद तक पालन कर पाते थे। इस समस्या पर विचार विमल करते हुये एक विद्वान् ने कहा है—

भारतीय गवेषणा के श्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदों में सब प्रकार की गवेषणाओं का सूक्ष्म रूप है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में आधिदैविक और अधिभूत गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती हैं। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं की इतिहास और कथानकों के माध्यम से आवृत्ति तथा बुद्धि गम्य साहित्य के रूप में श्री व्यास जी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल शास्त्राभिप्रेत आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महती भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान-गाथा में वेदाध्य को प्राप्त करने में मनुष्यता स्त्री निधि की प्राप्ति बताई गई है। “इतिहास पुराणान्मा वेद समुपवृ ह्येत” के अनुसार महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणों को समझने से वेदाध्य की निधि प्राप्त हो सकती है।

‘बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन के तमा निष्ठादि शास्त्रों के जानने के वेदाध्य का यथार्थ ज्ञान असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने “उत्तरमीमांसा ब्रह्मसूत्र” में वेद प्रतिपाद्य अध्यात्म निष्ठा द्वारा त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञान निष्ठा की प्राप्ति बतलाया है, और इस ज्ञान निष्ठा का परिपाक पुराण पाठ द्वारा कहा है। इतिहास, पुराणों के कथानक ही प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक ग्रहण करा सकते हैं। “मनुवेद” में कहा गया है—“ईशावास्य-मिदमसर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्। तेन त्वक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य सिद्धनम्।” मनुष्यता के विकास का पूरा पूरा मर्यादित दृष्ट मन्त्र में व्यक्त गया है, पर केवल मात्र पाठ और उसके अर्थ का ज्ञान लेते से ही जीवन में सर्व भावना का अंगुष्ठा संचार होना कठिन है। अतः पुराणों में

घणित सत्यनिष्ठा, त्यागनिष्ठा, अद्रोह-निष्ठा के "प्रतिपादक हरिश्चन्द्र" "शत्रु"
 "व्यवन" आदि वे कथानकों का मनन करते हुये जीवन में सत्य एवं
 कष्टनाश का संचार तत्काल होने लगता है। अतः "सत्यवद धर्मचर"
 जैसे सूत्र रूप वेद वाक्यों का भावार्थ समझाने का प्रयास वेदव्यास जी ने
 पुराण ग्रन्थों में किया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि सामान्य जनसमुदाय में धार्मिक तत्वों की
 जानकारी तथा उनका प्रसार होने के लिये कथा-ग्रन्थों का पठन-पाठन
 आवश्यक और उपयोगी है। मध्यकाल में एक प्रकार से वैधों का लोप
 हो ही गया था और उनके जानने वाले उँगलियों पर गिनने लायक रह
 गये थे, फिर भी महाभारत, रामायण और विविध पुराणों की कथाओं
 और उनके आधार पर लिखे गये धार्मिक आख्यानो की पुस्तकों ने जनता
 की धर्मनिष्ठा को स्थिर रखा। यद्यपि उस समय वेदों का दर्शन होना
 भी कठिन हो गया था, तथापि पुराणों में उनकी चर्चा सुनकर ही लोग
 उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहे। पुराणों में सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में
 महाराज हरिश्चन्द्र का उपाख्यान, पतिव्रत की निष्ठा के लिये सुकन्या और
 सावित्री का उपाख्यान, पितृभक्ति के लिये भीष्म पितामह का उपाख्यान
 पढ़ सुन कर लोग धर्म-मार्ग की भावना को ग्रहण करते रहते थे।
 रामायण की कथा सुनकर लोग अनुभव करते थे कि किस प्रकार राम ने
 पिता के वचनों की रक्षा के लिये राज्य-त्याग कर दिया, अन्याय और
 दुराचार का अन्त करने के लिये रावण जैसे महाबली सम्राट् से सशर्प
 किया, जनमत का आदर करने के लिये अपनी परम प्रिय पत्नी का त्याग
 कर दिया। इन कथाओं का प्रभाव अन जीवन पर बहुत अधिक पड़ता
 था और बहुसंख्यक लोग ऐसे महामानवों के चरित्र को आदर्श मानकर
 उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

हम इससे भी इन्कार नहीं करते कि वर्तमान समय में पुराणों का
 जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह "मूल रूप" से बहुत बड़ा हुआ और
 भिन्न भी है। पुराणों में ही जगह-जगह यह कथन आता है कि आरम्भ

में 'वेद' एक था और "पुराण" भी एक ही था । साथ ही यह भी कहा गया है—

पुराण सर्वं शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।

अनन्तरश्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(मत्स्यपुराण ५३ १)

"अर्थात्" सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने पुराण कथन किया और तदनन्तर उनके मुखों से वेद बहिर्गत हुये ।"

इस तथ्य को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि पौराणिक कथा-नकों में उपमा, अलङ्कार और दृष्टान्त आदि का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है, जिससे मामान्य बुद्धि के श्रोता उन्हें रुचि पूर्वक सुन सकें और धर्म के सूक्ष्म तत्वों का सार उन कथाओं में से ग्रहण कर सकें । इसलिये उपर्युक्त श्लोक में वर्णित "पुराण" और "वेद" कौन से थे जो "चतुर्मुख ब्रह्मा" द्वारा प्रकट किये गये इस बाद विवाद को उठाना हम तत्काल भी आवश्यक नहीं समझते । इस तरह के पचड़े में पड़ना तो हम उन्हीं 'खड्ग मडन प्रिय' सज्जनों के लिये छोड़ देते हैं जिन्हें 'आम खाने से नहीं बरन् पेड़ गिनने' से ही प्रयोजन होता है । हम तो इसका आशय इतना ही मानते हैं कि वेद और पुराणों का आदिश्रोत एक ही है । वही से प्रकट एक धारा ने "सिद्धान्त" का रूप ग्रहण किया और दूसरी ने 'कथा' का । ये दोनों ही आवश्यक हैं । बिना सिद्धान्त के "कथा" का कोई महत्त्व नहीं और बिना कथा के "सिद्धान्त" का हृदयगम होना संभव नहीं । वर्तमान समय में भी विद्यालयों में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक सिद्धान्त अनेक 'उदाहरण' (एग्जाम्पल) देकर ही बताया और समझाया जाता है ।

हम 'पुराणों' को ऐसे ही ग्रन्थों के रूप में ग्रहण करते हैं जिनमें भारतीय धर्म के सभी सिद्धान्त अनेक प्रकार के 'उदाहरण' देकर समझाये गये हैं । इनमें "सत्य" "अर्थ सत्य" और "काल्पानिक" सभी तरह के उदाहरण हो सकते हैं । पर जिस प्रकार "धीज गणित" में

एक संख्या की कल्पना के द्वारा ही बड़े से बड़े जटिल प्रश्नों का सही उत्तर जान लिया जाता है, वही बात अधिकांश में "पुराणों" की है। यद्यपि उनमें मनोरंजक पद्याएँ भरी पड़ी हैं, पर उनका उद्देश्य श्रोताओं को धार्मिक नियमों पर सुदृढ़ रखना ही है। हम यह भी समझते हैं कि मूल लेखकों ने "पुराणों" को जिस रूप में रचा था उसमें आगे उत्पन्न होने वाले "कथा-व्यास" नये-नये उदाहरण और भी जोड़ते चले गये। इतना ही नहीं नवीन लेखकों ने अठारह पुराणों के छत्तीस, फिर चौवन और अन्त में यहूतर तक बना दिये ! और सो क्या गुजरात में निवाम करने वाले एक "पहलवान-वंश" का वर्णन करने के लिये "मत्स्य-पुराण" भी तैयार कर दिया गया।

पर इसका भावम दत्तना ही है कि उनके लेखकों ने "पुराण" शब्द को "कथा वाचक" मान कर अपनी रचनाओं का यथा नामकरण कर दिया है। फिर उन्होंने बड़े पुराणों की यह "शैली" भी ग्रहण कर ली कि प्रत्येक रचना पर अलग-अलग लेखकों का नाम न देपर सबको "मूल लेखक" व्यासजी के ही नाम से प्रचलित कर दिया। अब छाण्डोग्यों की वृद्धि होकर पुस्तकों की याद आ जाने से हमको सबसे पहले प्रत्येक पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की खोज करने की आवश्यकता पड़ती है, पर पहले जमाने में जब छाण्डोग्यों की "ऑटोमेटिक मशीनें" तो दूर रहीं, लिखने का वागज भी एक दुर्लभ वस्तु माना जाता था, पुस्तकों लिख कर नाम और धन कमाने का निपार किसी के दिमाग में नहीं आता था। विशेषतः धार्मिक लेखक तो अपनी रचनाएँ परोपकार और पुण्य की भावना से ही प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार की प्रथा आरम्भ हो जाने में कुछ दोग और धम भी उत्पन्न हो गये पर तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनको शम्भ माना जा सकता है। जब पचास वर्ष पहले हमारे सामने अंगरेज शासकों की पराजिती प्रदर्शन करने और सामों मार्गनिष्ठ चमू छोड़ दिये जाने पर भी "मातार" व्यक्तियों की संख्या तो में से सात ही थी तो पुराने समय में जब कि शासक

उपयोग अधिकांश में राजा और अमीर लोग ही करते थे, पढ़ने-लिखने वाले व्यक्तियों की संख्या दो चार सौ में केवल एक हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं, ऐसे समय में जिन सज्जनों ने धार्मिक विचारों को लिखने और फैलाने में जो परिश्रम किया उसे गनीमत ही समझना चाहिये ।

इतने विवेचन से पाठक यह अनुमान करने में समर्थ हो सकते हैं कि भारतीय धार्मिक साहित्य में पुराणों का क्या स्थान है ? उन्हें न तो धर्म का "मूलाधार" अथवा "अन्तिम निर्णायक" माना जा सकता है और न सचचा "अनुपयोगी" या "त्याज्य" कहना उचित है । यह दोनों ही प्रकार की सम्मतियाँ "अतिवादी" अथवा "कट्टर" श्रेणी के सज्जनों को ही हो सकती हैं । हम पुराणों की भुटिया को जानते हुये भी उनके महत्व से इनकार नहीं करते । गुण दोष किसमें नहीं होते । केवल "गुणों" का दावा करने वाले "कल्पना राज्य" में भले ही विचरण करों हो, प्रत्यक्ष सत्तार में तो उनका अस्तित्व झूठने पर भी नहीं मिलता । इसी दृष्टि से समन्वयवादी प्रवृत्ति के सत्पुरुष पुराणों को भी अपयोगी मान लेते हैं ।

हमने इसी दृष्टिकोण से अपनी यह "पुराण-सीरीज" तैयार की है । कितनी ही बातें ऐसी हैं जो "पुराणों के पंच सत्संगों" की प्रति के लिये सब पुराणों में एक प्रकार से ही वर्णन कर दी गई है । कुछ बार्दे साम्प्रदायिक महत्ता सिद्ध करने के लिये किसी विशेष पुराण में बहुत अधिक भाषा में वर्णन की गई है । कुछ बातें लेखक की रुचि या जानकारी का परिचय देने के रूपान्तर से विस्तारपूर्वक शामिल की गई हैं । कुछ उपाख्यान विशेष प्रभावशाली और लोकप्रिय समझ कर एक दूसरे से उद्धृत कर लिये गये हैं । इन कारणों से अधिकांश पुराणों का बल्लेवर बहुत बड़ गया है । इसका परिणाम यह हुआ कि बीसत दर्जे के पठकों द्वारा पुराणों का पढ़न पाठन प्रायः समाप्त ही हो गया । यदि किसी ने साहस करके पुराणों को प्रकाशित भी किया तो वे बीसियों वर्ष तक ज्यों के त्यों पड़े रह गये और धीरे धीरे साहित्य-क्षेत्र से तोप होने लग गये । आज

स्थिति ऐसी आ गई है कि कितने ही मूल पुराणों का प्राप्त कर सकना भी बड़ा कठिन हो गया है। उदाहरण के लिये अठारह पुराणों की 'नामावली' में इस "ब्रह्म पुराण" का नम्बर सबसे पहला है, पर कहीं भी प्राप्त न हो सकने के कारण इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका। अब सब पुराणों के छप चुकने पर अन्त में यह प्राप्त हो सका है।

इस स्थिति को देखकर ही हमने पुराणों के "जनोपयोगी" (पोपुलर) संस्करण निकालने का निश्चय किया। इनमें से सब पुराणों में बार-बार आने वाले वर्णनों, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ा-चढ़ाकर किये गये वर्णनों, एक दूसरे से उद्धृत किये हुये उपाख्यानो, लेखकों की विशेष रचि के आधार बहुत विस्तार से यणन की गई कला, विद्या सम्बन्धी बातों और किसी विशेष स्वार्थपूर्ण या अभिसन्धि की दृष्टि से शामिल किये गये अनुचित और हानिकारक वर्णनों को पृथक् करके हमने प्रत्येक पुराण के उपयोगी अंशों को संकलित किया है। इनमें पाठकों को प्रामाणिक मूल पाठ के सहित उसका निष्पक्ष भाव से किया गया भावार्थ मिल जाता है। इससे उनकी ज्ञान वृद्धि होकर पुराणों की समस्त उपयोगी सामग्री की जानकारी हो जाती है। इससे सामान्य जनता में पुराणों के प्रति आकर्षण पर्याप्त मात्रा में बढ़ा है और वे उनको रचि-पूर्वक पढ़ने लगे हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रेमियों की दृष्टि में हमारी यह सेवा महत्वपूर्ण प्रतीत हुई जिसका अनुमान हमारे पास ऐसे प्रेमियों के आये हुये पत्रों से किया जा सकता है।

"ब्रह्मपुराण" की महत्ता—

विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत अनेक अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी पुराणों की जो सूचियाँ दी गई हैं, उनमें थोड़ा बहुत भेद देखने में आता है, किन्तु सभी लेखकों ने प्रथम स्थान "ब्रह्मपुराण" को ही दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह समस्त विश्व 'ब्रह्म' से ही उद्भूत है, इसलिये सर्व प्रथम उसी का कीर्तन किया जाना उचित है। पर इसमें निराकार ब्रह्म पंचा कहीं नहीं पाई जाती, अरम्भ से अन्त तक "ब्रह्म" के साकार

रूपों की ही चर्चा है। सबसे पहले सूर्योपासना का विषय आया है और वास्तव में इस जगत् के प्रत्यक्ष वर्त्ती-धर्त्ता "सूर्य मारायण" ही हैं। पुरुरोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) की चर्चा बड़े विस्तार से की गई है, और इसे पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से तीर्थों का वर्णन है, पर वह प्रायः पाँच सात पृष्ठों में ही पूरा होता चला गया है। शिव-पार्वती का विवाह और कृष्ण-चरित्र पर्याप्त विस्तार से वर्णित हैं। कस के अत्याचारों से लेकर द्वारिका गमन तथा बाणासुर वध तक की समस्त कथाओं जो भागवत आदि में वर्णित हैं "ब्रह्मपुराण" में भी पूर्ण रीति से दी गई हैं। बाराह, नृसिंह, वामन आदि अन्य अवतारों के चरित्र भी उसमें स्वान-स्थान पर अच्छे रूप में दिये गये हैं। इन समस्त कथाओं के सुपरिचित होने तथा अन्य पुराणों में अधिक विस्तार से वर्णित होने के कारण हमने उनको संक्षिप्त रूप में ही दिया है।

सूर्य माहात्म्य और सूर्यपूजा—

'ब्रह्म पुराण' की विषय सूची पर दृष्टिपात करने में विदित होता है कि सूर्य भगवान् का माहात्म्य, उनकी पूजा-उपासना की विधि, और उनके द्वारा महान् पुण्य-फल की प्राप्ति का वर्णन इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। "सूर्यदेव" का प्रमुख मंदिर उड़ीसा प्रान्त के "कोणादित्य" (अथवा "कोणाक") नामक स्थान में अवस्थित है, उसका परिचय भी इस पुराण में बड़ी भक्ति प्रवणता से दिया गया है। अन्य पुराणों में जैसी विस्तृत और सामोपाग उपोपासना विधि विष्णु और शिव की दी गई है वैसी ही इस पुराण के आरम्भ में "सूर्य भगवान्" की सन्निवशित है। "कोणाक" के प्रसिद्ध मन्दिर का परिचय देते हुये पुराणकार ने लिखा है।

"भारतवर्ष में दक्षिण सागर में संस्थित "ओड्र देश" (उड़ीसा) है जो स्वर्ग और भोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है। वह सब गुणों से भर्लटृत और पुण्य शीतो का देश है। उस देश में उत्तम ब्राह्मण तपस्या

और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और सदा ही वन्दना करने योग्य तथा पूज्य हैं । उसी प्रदेश में “कोणादित्य” नाम से प्रसिद्ध भगवान् सूर्य देव का मन्दिर अवस्थित है जिसमें भुवन-भास्कर का दर्शन करने मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । भगवान् रविदेव का यह पुण्य-क्षेत्र डेढ़ योजन विस्तार वाला है जो भाग और मोक्ष दोनों का प्रदानकर्त्ता है । वहाँ पर सहस्रांशु-देव स्वयं विराजमान रहते हैं, जिनका शुभ नाम “कोणादित्य” प्रसिद्ध है । माघ शुक्ल रासमी के दिन सूर्य-भगवान् की उपासना का विशेष पर्व होता है । उस दिन “कोणादित्य” की यात्रा करके मकरालय में स्नान करे और विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे । रात्रि के अन्त में समाहित होकर सागर में विधिपूर्वक स्नान करके देव, ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिये ।

— “इसके पश्चात् महीन धुले हुये वस्त्र धारण करके आचमन करे और भक्ति पूर्वक समुद्र तट पर उपनिष्ट हो जाय । उस सूर्योदय काल में पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्थित होना चाहिये और रक्त-चन्दन को घिस कर उससे एक अष्ट दल पद्म चित्रित करना चाहिये । तत्पश्चात् एक लाल पात्र अथवा अर्क-पत्रों से बने दोने में तिल, अक्षत रक्त चन्दन से युक्त जल, रक्त पुष्प और दर्भ रख कर सूर्य भगवान् की पूजा करे । उदय आदि अंगों से वरुणवास तथा अंग-वास करके परम धृष्टा के साथ भगवान् भास्कर का ध्यान करे फिर उस रक्त चन्दन से निर्मित अष्टदल पद्म में अन्तरिक्ष में स्थित सूर्यदेव का आवाहन करके विधि पूर्वक पूजा करे । पूजा समाप्त हो जाने पर फिर ध्यान मग्न होकर भास्कर देव का ध्यान करे कि पिंगल वर्ण के नेत्र वाले, दो भुजाओं से युक्त रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से युक्त रवि देव सब सुलक्षणों से समन्वित हैं और समस्त आभरणों से सुशोभित हैं । वे सुन्दर रूप वाले, वरदान प्रदान करने वाले, परम शान्त रूप से स्थित और प्रभा-मण्डल से मण्डित हैं । सिन्दूर के समान सपन वर्ण के

उदय वालीन सूर्य-देव का दर्शन करे। फिर उस पूजा पात्र को मस्तक पर रख कर, जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर चित्त को एकाग्र करे और मौन रह कर भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य दे। भगवान् सूर्य भक्ति-भाव से युक्त मनुष्य का ही अर्घ्य ग्रहण करते हैं, वह दीक्षित हैं या अदीक्षित इसका ध्यान नहीं रखते।”

लेखक ने उपरोक्त वर्णन में कोई नई बात नहीं कही है। जो पूजा-विधान अन्ध प्रमुख देवताओं का है वही सूर्य का भी बतला दिया है। केवल ध्यान करने में सूर्य की विशेषताओं के अनुसार उनके स्वरूप और वर्ण का वर्णन थोड़ा पृथक् है। इस पूजा और उपासना का फल भी व्यो का व्यो कहा गया है। यथा—

“भगवान् आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाता है, धन के अभिलाषी को धन की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी विद्या के प्राप्त करने में सफल होता है और पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुत्रवान् बन जाता है। जिस जिस कामना को रख कर सूर्य भगवान् को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुण्य उसी-उसी कामना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् सूर्यदेव के मन्दिर में जाकर पुष्प द्वारा देवार्चन करके मौन रहते हुये तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिये। फिर दण्डवत् प्रणाम करके “जय” शब्दों की ध्वनि के साथ स्तवन करे। इस प्रकार सहस्रांशु देव का, जो इस जगत के पति हैं, पूजन करने से मनुष्य को दश अश्वमेधों का फल प्राप्त होता है।”

सूर्य की सर्वोपरि महिमा—

“आदित्य-माहात्म्य” की इति श्री यही नहीं हो गई है। जिज्ञासुओं ने फिर प्रश्न किया कि “गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी-इनमें से जो मोक्ष चाहता है, वह किस देव की उपासना करे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड में देवों का भी देव कौन है ? और पितृगणों का भी पिता कौन होता है ? हम सब से बड़े देव को जानने के अभिलाषी हूँ।”

इस प्रश्न का समाधान करते हुये ब्रह्मा बाबा ने कहा—“हे द्विजोत्तमो ! ये भगवान् भास्कर ही समस्त जगत् को अन्धकार से रहित कर दिया करते हैं । इनसे बड़ा कोई भी देव नहीं है । अर्थात् यह सूर्य ही परात्पर देव हैं । यह देव आदि और अन्त से रहित है और यह शाश्वत और अव्यय पुरुष हैं । अपनी किरणों से अत्यन्त तेजोमय रूप धारण करके यह तीनों लोकों को तपाया करते हैं । ये सर्व देवमय और तपन करने वाले में सर्व श्रेष्ठ हैं । ये ही इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ और सर्व साक्षी हैं । ये सब भूतों को लय और पुनः सृजन करते रहते हैं । ये ही प्रकार देते हैं, अपनी उष्णता द्वारा शीत से रक्षा करते हैं और अपनी किरणों द्वारा वर्षा किया करते हैं । यही धाता है, यही विधाता है, यही समस्त भूतों के आदि हैं और समस्त भूतों पर कृपा करके उनका पालन करने वाले हैं, इनका कभी क्षय नहीं होता, इनका मण्डल चिरस्थायी ही बना रहता है । यही पितृगणों के पिता तथा देवों के भी देव हैं । जब सृष्टि का अवसर होता है तो सम्पूर्ण जगत् आदित्य से ही प्रसूत होता है और जब प्रलय होनी है तो समस्त विश्व उन्हीं में लीन हो जाता है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण तो शब्द से ही कहे जाते हैं, वास्तव में तो यह सूर्य ही परम देव हैं जिनकी एक मात्र भक्ति की जानी चाहिये ॥”

सूर्य के स्वरूप का जो यह विवेचन धार्मिक भावना से और वैसी ही भाषा में किया गया है पूर्णतः सत्य और प्रमाण सिद्ध है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध में यही कहा है । उनके मतानुसार हमारी पृथ्वी और इसके समीप के बुध, मंगल, शुक्र, बृहस्पति, शनि आदि समस्त ग्रह और चन्द्रमा आदि उपग्रह सूर्य के ही भाग हैं जो एक-एक परके सूर्य में से निकले हैं और अन्त में एक समय ऐसा आवेगा जब ये पुनः उसी में लीन हो जायेंगे, यही सूर्य, अक्षरशः सृष्टि और प्रलय की ही मानी गई है । इसी प्रकार वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि संसार के समस्त वनस्पति और प्राणी सूर्य के प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्वरूपों और

रङ्गों के दिखाई पड़ते हैं। जब सूर्य की शक्ति उनमें से निकल जाती है, उनके देह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ताप से दग्ध हो जाते हैं तो सब कोपले या उसके भी पश्चात् भस्म के रूप में परिणित हो जाते हैं, जो कि समस्त भौतिक पदार्थों का मूल रूप है। इस प्रकार नेत्रों से दिखाई पड़ने वाला यह प्रत्यक्ष जगत असंदिग्ध रूप से सूर्य से ही प्राकृर्भूत होता है और उसी में लीन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सूर्य को सबका "आदि कारण" या "आदि देव" कहा जाय तो कोई गलती नहीं है।

उत्कल प्रदेश की महिमा —

यद्यपि वर्तमान समय में उत्कल (उड़ीसा) का प्रदेश अनेक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है और उससे अनेक हुए बंगाल प्रान्त में अधिकांश उड़िया लोगों को 'कुली' या मजदूर ही कहा जाता है, पर यह स्थिति सर्वत्र से नहीं बसी आई है। अब से दो ढाई हजार वर्ष पहले यह भू-भाग "कलिङ्ग" के नाम से प्रसिद्ध था और भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण भू-भाग माना जाता था। मगध के जगत प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने कलिङ्ग को जीतने के लिये अत्यन्त घोर संग्राम किया था। वहाँ का शासक महाराज खारवेल (जिसको गई इतिहासकारों ने जैन धर्मावलम्बी कहा है) उस युद्ध में अत्यन्त वीरता से लड़ा था। इतिहास से विदित होता है कि इस अवसर पर इतनी अधिक सख्या में सेना का विनाश हुआ कि उसे देख कर अशोक का हादित भाव बदल गया। यद्यपि उसने एक लाख से भी अधिक सैनिकों का वध हो जाने पर कलिङ्ग को विजय कर लिया, पर उसके पश्चात् उसने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर ली और बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर आजन्म अहिंसा और जीव दया का प्रचार करता रहा। पर उस युद्ध के फल से उत्कल की शक्ति और वैभव कई शताब्दियों के लिये नष्ट हो गया और वह हीनावस्था में पहुँच गया।

हम नहीं कह सकते कि "बृहत् पुराण" के लेखक ने किस जमाने के "उड़ीसा-प्रदेश" का वर्णन किया है, पर इस ग्रंथ में "कीणाक" के

मन्दिर के साथ ही वहा के अन्य समस्त तीर्थों और विशेष रूप से पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़े विस्तार से वर्णन किया है । जिस प्रकार शैव-पुराणों में कहा गया है कि वाराणसी क्षेत्र से बढ़ कर ससार में कोई "पुण्य स्थान" नहीं है और वैष्णव पुराणों में जिस प्रकार वृन्दावन की महिमा सर्वोपरि बतलाई है, उसी प्रकार मक्ष्मी जी के प्रश्न करने पर भगवान विष्णु ने कहा है ।

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फला ।

आस्ते तीर्थंवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः ॥

न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वं पातकैः ॥

इस प्रकार पुराणकार ने इस क्षेत्र को सब प्रकार से सुख देने वाला, सुविधापूर्ण, सुन्दर और उत्तम फलों से युक्त कहा है । यहाँ पर स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान स्थल तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है । उसका कीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । "जगन्नाथ जी" की महिमा राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग में अब भी बहुत अधिक मानी जाती है और प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति यहाँ से उसकी यात्रा करने जाते हैं । पर हमन इन यात्रियों को "सुन्दरता" अथवा "फल फूलों" की प्रशंसा करते नहीं सुना, वरन् वे एक भजन गाते हुये यही कहा करते हैं—“झारखण्ड में आय विराजे वृन्दावन के स्वामी ।” कुछ भी हो सूर्योपासना और महाराज इन्द्रद्युम्न, द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्थापना का सविस्तार वर्णन ब्रह्मपुराण की विशेषता अवश्य है जो अन्य पुराणों में (स्कन्द महापुराण को छोड़कर) देखने में नहीं आती ।

शिव पार्वती विवाह—

‘ब्रह्म पुराण’ में अनेक कथायें अन्य पुराणों से भिन्न प्रकार में लिखी गई हैं । शिव पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि पहले शिवजी विष्णु रूप बनाकर स्वयं पार्वती जी के पास गये और

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक् पृथक् ।
यावन्न तीर्थं राजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजा ॥

मागर स्नान की विधि में “नारायण” का जो वर्णन किया गया है, वह भी सागर की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कहा है—

“सागर के समीप जाकर सर्वे प्रथम आचमन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करे। तत्पश्चात् शरीर और हाथों में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिये। उसका मन्त्र है—
“ॐ नमो नारायणाय”। इस मन्त्र की ही समस्त मनीषीगण प्रशंसा किया करते हैं। जब यह मन्त्र प्राप्त हो गया तब अन्य बहुत से मन को विभ्रम में डालने वाले मन्त्रों की क्या आवश्यकता है। “ॐ नमो नारायणाय” यह मन्त्र सब मनोरथों की पूर्ति करने वाला है। ‘नर’ के पुत्र होने से ही जल का नाम “नारा” प्रसिद्ध हुआ है। वही ‘नारा’ नामक जल भगवान् का “अपने” (निवास-स्थल) होने से इनका नाम “नारायण” कहा गया। समस्त पुराण भगवान् नारायण का ही पारायण और प्रतिपादन करने वाले हैं। सब द्विजगण भी नारायण के स्मरण में ही तत्पर रहते हैं। सब यज्ञ भी नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं। समस्त शास्त्रोक्त धर्म क्रियाएँ भी नारायण के उद्देश्य से ही की जाती हैं। यह समस्त पृथ्वी भी नारायण में पारायण होती है। इस विश्व के समस्त पदार्थ नारायण के ही विभिन्न स्वरूप होते हैं। उनके अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं है। जल में, स्थल में, पाताल में स्वर्ग लोक में, अम्बर में, पर्वत में भगवान् नारायण ही स्थित हैं। आप अर्थात् जल ही भगवान् विष्णु का आयतन (निवास स्थल) है इसलिये जलनिधि (समुद्र) में स्नान करते समय नारायण का स्मरण करना अनिवार्य है।”

पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में भक्त्य चाराह नरसिंह आदि समस्त अवतारों के स्थान भी वही पर बतलाये हैं। सबके मन्दिर वहाँ पर बने हैं जिनकी पूजा-उपासना महान् फलों को देने वाली कही गई है। इन

वाली है। पाँचो भूतों में जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। उसमें जो तीर्थभूत जल है वह सब से प्रमुख माना गया है। सब तीर्थ जलों में भागीरथी का जल श्रेष्ठ कहा गया है, और उससे भी गौतमी का जल परम श्रेष्ठ है। यह गौतमी बिबजी बी जटाओं सहित ही लाई गई है। इससे बढ़कर शुभ तथा समस्त मनोरथों का पूरा करने वाला तीर्थ स्वर्ग में तथा भूतल में कहीं भी नहीं है।”

पौराणिक साहित्य वर्णन की यह विशेषता है कि जिसकी प्रशंसा की जाती है उसी को उस अवसर पर सर्वोपरि बना दिया जाता है। गंगा के वर्णन में स्थान-स्थान पर ऐसी ही प्रशंसा की गई है। एक अन्य पुराण में सर्व श्रेष्ठ तीर्थ सरिता और तीर्थ का स्थान नर्मदा को दिया गया है।

“ब्रह्मपुराण” का तीर्थ वर्णन—

“ब्रह्म पुराण” के तीर्थ वर्णन में भी कुछ विशेषता है। इसमें जिन कपोत तीर्थ, पद्माक्ष तीर्थ, क्षुद्रा तीर्थ, चक्र तीर्थ, गणिका सगम, अहिल्या सगम, श्वेत तीर्थ, वृद्धा-सगम तीर्थ, शृणु प्रमोचन तीर्थ, सरस्वती सगम तीर्थ, रैवती सगम तीर्थ, राम तीर्थ, पुत्र तीर्थ, यक्षिणी सगम तीर्थ, बाणी सगम तीर्थ, कपिला सगम तीर्थ, खड्ग तीर्थ, आनन्द तीर्थ, निम्न भेद तीर्थ, आदि का नामोल्लेख है वे किसी अन्य पुराण में नहीं मिलते। फिर दूसरी विशेषता यह भी है कि इन तीर्थों में से अधिकांश ‘गौतमी’ से सम्बन्ध रखते हैं। इन कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले अधिकांश व्यक्तियों का उद्धार “गौतमी” द्वारा ही हुआ। इन कथाओं में से कितनी में विलुप्त नई बातों का पता लगता है।

“वृद्धा सगम तीर्थ” से एक बड़ी विचित्र कथा कही गई है कि एक गौतम वंशीय ब्राह्मण, जो भाग्यवश विद्या, धन तथा सोन्दर्य, सभी गुणों से वंचित रह गया था, भ्रमण करता हुआ एक दिन किसी पहाड़ की गफा में जा पहुँचा। उसे वहाँ एक बहुत बृद्धा स्त्री दिखाई पड़ी।

वृद्धा ने ब्राह्मण से आग्रह किया कि तुम मेरे गुरु बन जाओ । ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं सब प्रकार से गूणहीन हूँ तुम्हारा गुरु कैसे बन सकता हूँ ? वृद्धा ने घतलाया कि मैं क्षत्रिय राजा और मन्धर्व कन्या से उत्पन्न हुई हूँ । मेरी माता चलते समय मुझ से कह गई थी कि तेरी इस गुफा में जो पुरुष सबसे पहले प्रविष्ट हो वही तेरा पति होगा । पर सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी यहाँ कोई पुरुष नहीं आया । आज सबसे पहले पुरुष तुम्हीं इसमें प्रविष्ट हुये हो, इसलिये मैंने तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव किया । फिर वृद्धा ने अग्नि देव से प्रायना करके गौतम ब्राह्मण को विद्वान् और स्वरूपवान भी करा दिया । सब वे दोनों उसी गुफा में पति-पत्नी के रूप में निवास करने लगे । किसी समय सप्त ऋषिगण उनकी गुफा के निकट होकर निकले और गौतम ब्राह्मण ने उनकी भली प्रकार अभ्यर्चना की । वे ऋषिगण इस युवक तथा वृद्धा की जोड़ी को देख कर विस्मित हुये और इसका कारण पूछा । गौतम ने पूरा विस्तार कह सुनाया । अगस्त्य ऋषि ने उस पर दण्डार्द्र होकर गौतमी में स्नान करने की सम्मति दी । गौतमी की कृपा से वृद्धा नव-यौवना हो गई और फिर वे पति-पत्नी बहुत काल तक सुख पूर्वक निवास करते रहे ।

दूसरी कथा “सरमा” नामक भुतिया की है जो स्वर्गलोक में देव-साओं की गौओं की रखवाली करती थी । एक बार वहाँ कुछ दैत्य आये और सरमा को धूस (रिशवत) के रूप में कुछ धन लेकर मायों का हरण करके ले गये । जब इस घटना की जाँच पड़ताल की जाने लगी तो सरमा ने कहा कि दैत्यगण मुझे बाँध नर जबर्दस्ती गावों की लेकर चले गये । पर देवगुरु बृहस्पति ने ध्यान द्वारा सारी घटना को जान लिया और सरमा से दोष की बात इन्द्र को बतला दी । इन्द्र ने भुतिया को सात भारी और साथ दिया कि तू मनुष्य लोको में जाकर जन्म ले । सरमा पृथ्वी पर भुतिया के रूप में इधर-उधर फिरती हुई कई सहस्र वर्षों की लगी । यह देख कर उसने दो पुत्रों ने जो यमराज के

समर्थन करने वाला भणिकुण्डल वैश्य यद्यपि अपने दुष्ट मित्र द्वारा बहुत सताया गया और ठगा गया, पर अन्त में उसके सब कष्ट दूर हो गये और वह एक प्रसिद्ध तथा बैभव-शाली व्यक्ति बन गया ।

जैसा हम कह चुके हैं कि “ब्रह्म पुराण” में वर्णित सभी तीर्थ एक प्रकार से नये ढङ्ग के हैं और उनका मुख्य उद्देश्य गीतमी- गङ्गा के महत्व का प्रतिपादन करना है । इस प्रकार की कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य अथवा वास्तविक घटनाओं को छूटना अनावश्यक है । उन्हें धर्म काया या कहानी मानना ही ठीक है और जितना सदुपदेश उनसे प्राप्त हो सके उतना करना चाहिये ।

कलियुग वर्णन

अन्य पुराणों की तरह इस पुराण में भी कलियुग का वर्णन काफी विस्तार से दिया गया है और वर्तमान दशा से उसका मिलान करके उसे हम बहुत कुछ ठीक भी कह सकते हैं । ऐसे वर्णनों में पयोतिप शास्त्र द्वारा प्राप्त भविष्य-ज्ञान की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती । वह समय के चिह्नों को समझ सकने वाली मानव-बुद्धि से ही जाना जा सकता है जिन बातों के बीज आज समाज और व्यक्तियों में मौजूद हैं वे आगे चलकर पीढ़े और वृक्ष के रूप में प्रत्यक्ष होंगे ही, यह तथ्य स्वाभाविक और प्रकृति के अनुरूप ही है । इसी के आधार पर बुद्धिमान व्यक्ति बिसने ही आगामी परिवर्तनों का अनुमान सही तौर पर कर लेते हैं । कलियुगी आचार विचारों की चर्चा करते हुये पुराणकार का कथन है—

“कलियुग में वर्षाधिप- धर्म तथा आचार-विचार की प्रवृत्ति मनुष्यों में नहीं रहती । यह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के अनुरूप वैदिक आचरणों में भी थोड़ा नहीं रहते । कलियुग में विवाह की राजधर्म क्रिया न मान कर उसका मुख्य उद्देश्य विलासता ही प्रामाण्य जाता है । शिष्यगण गुरु की आज्ञा और अनुशासन में नहीं रहते । उस समय अग्निहोत्रादि

क्रियाओं को भी नियम से करना स्व जाता है। वश की श्रेष्ठता नष्ट होकर किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति जो शक्तिशाली होता है, वही सर्वोपरि बन जाता है। सभी वर्णों के व्यक्ति कयोपजीवी बन जाते हैं। कलियुग के व्यक्ति चाहे जिससे किसी प्रकार दीक्षा लेकर ही दीक्षित बन जाते हैं। प्रत्येक क्रिया को प्रायश्चित्त के योग्य मान लिया जाता है। कलियुग में जो कुछ कही भी लिखा या कहा गया होता है उसी को 'शास्त्र' मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और चाहे जो व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी आश्रम का अनुयायी बन जाता है।"

'कलियुग में लोग उनवास और पर्व आदि मनाते हैं तथा धन व्यय भी करते हैं, पर यह सब काय शास्त्र विधि के बजाय अपनी रुचि के अनुसार ही किये जाते हैं। बहुत थोड़े धन से लोगो को धन मव हो जाता है और स्त्रियाँ प्रायः रूप का मद करती देखी जाती हैं चाहे केश प्रसाधन के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य साधन न हो। वे अपने पतियों को भी धन के आधार पर ही मायता देती हैं। इसी प्रकार जो अधिक धन दे सके वही दूसरों का स्वामी बन जाता है। इस समय में जो भी धन प्राप्त होगा वह भोगों में ही व्यय किया जायेगा और अयाय से द्रव्योपाजन में किसी को तनिक भी सकोच न होगा। किसी निजी सम्बन्धी अथवा निज के प्रायत्ता करने पर भी कोई अपनी स्थाय हानि करके सहायता को प्रस्तुत न होगा। सब मनुष्य सदैव अपनी स्वायत्त सिद्धि की दृष्टि से उद्योग करेंगे। गौओं की मायता भी अधिक दूध देने की दृष्टि से होगी न कि धार्मिक विचार से। वर्षा का क्रम बिगड़ जाने से प्रजा सदैव अकाल से भयभीत रहा करेगी। लोग आलस्य और श्रम से बचने के कारण सदा ही अकाल का कष्ट भोगते रहेगे। उस समय लोग बिना स्नान नित्य ही भोजन करेंगे और अग्निहोत्र, अतिथि पूजन, पिण्डादक आदि धर्मनियुक्तानों की तरफ किसी का ध्यान नहीं रहेगा।"

इसी प्रकार चारों वर्ण आश्रम तथा स्त्रियों का वर्णन करते हुये बताया गया है कि उस समय सभी विषयों में लोग धन शास्त्रों के

नियमों की परवाह न करके स्वेच्छा व्यवहार करने वाले बन जायेंगे। यद्यपि वर्तमान समय में हम इस प्रकार के व्यवहार को उत्पत्ति का चिन्ह मानते हैं और उसे विचार स्वातंत्र्य का नाम देते हैं पर समाज-कल्याण की दृष्टि से यह प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन काल के सब नियम उपयोगी अथवा सब कालों में लाभकारी हैं। अग्निहोत्र पिण्डोदक और अतिथि पूजा के जो नियम शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं वे समाज-संगठन और आर्थिक-व्यवस्था में अनावश्यक भी हो सकते हैं पर समाज में अनुशासन और मर्यादा-पालन की प्रवृत्ति सदैव उचित और आवश्यक है। समस्त समाज के हित-अनहित के कार्यों में मनमाना व्यवहार किसी काल में उचित नहीं कहा जा सकता। यही दोष वर्तमान समय में विशेष बढ़ गया है और इसी से सर्वत्र एक हलचल फैली हुई है। इस समय मनुष्यों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना हो गया है चाहे उसके कारण अन्य व्यक्तियों अथवा समस्त समाज की कितनी भी हानि क्यों न होती हो। हम इसी स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्ति को वास्तविक कलियुगी भावना कहते हैं और पुराणकार के वर्णन से भी यही ध्वनि निकलती है। इस कलियुगी-भावना को दूर करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है।

योगाभ्यास की वास्तविकता —

योग, साधु, वेदान्त, जैसे ज्ञानमार्गीय विद्वानों का सक्षिप्त वर्णन अनेक पुराणों में पाया जाता है और अधिकांश विद्वान् इन्हीं की मुक्ति का हेतु स्वीकार करते हैं। यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य किसी न किसी देव की भक्ति और उपासना का निरूपण और उसी के द्वारा सब कामनाओं की सिद्धि प्रतिपादन करना है, फिर भी पुराण-कारों ने 'ज्ञान मार्ग' के महत्त्व को स्वीकार किया है। "भगवद्गीता" में कृष्ण भगवान् ने कहा कि जो व्यक्ति मेरा भक्त बनकर अपने सब कर्मों को मुझे समर्पित कर देता है वह मुझे सब से अधिक प्रिय है। पर इसके साथ उन्होंने यह भी बतसाया है कि "इस संसार में ज्ञान से बढ़कर पवित्र अन्य कोई

तथ्य या शक्ति नहीं है ।” इसलिये “ब्रह्मपुराणकार” ने भी अति संक्षेप में योग का वर्णन किया है और हमें स्वीकार करना पड़ता है कि उनका विवेचन अन्य कितने ही पुराणों से उच्च कोटि का है । जहाँ अन्य लेखकों ने प्रायः आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अष्टांगी का पचड़ा ही सुनाया है “ब्रह्मपुराण” में योग का मूल मन की एकग्रता बतलाया है, जैसा की “पातञ्जल योग-दर्शन” का भी अभिमत है । उसने लिखा है—

“जिस योगाभ्यासी का मन बधीभूत हो जाता है और वह उस मन को परमात्मा में भली प्रकार मलान कर देता है और विषयो से बचे रहने का सदैव पूर्ण प्रयत्न करता रहता है, वही योग की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है । जिस समय वित्त विषयो से छूटकर परब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय समाधि बहुत सहज ही में लग जाती है । जब योगी का मन किसी कर्म में आसक्त नहीं रहता तभी वह आनन्द प्राप्त करके निर्वणि-पद का अधिकारी बन जाता है । योग बल से योगी आभ्यासि क्षेत्र के तीनों दर्जों से भी ऊपर उठकर उस तुर्यावस्था को पा जाता है, जिसमें परमात्मा का साक्षिभ्य निश्चित हो जाता । जो योगी सभी दृष्टाओं से रहित होकर स सार के प्रत्येक पदार्थ में अनिरय-भावना रखता है । साथ ही सब से शुद्ध प्रेम की भावना की रपाग नहीं करता, वह जन्म, जरा, मृत्यु से अवश्य छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें स शय नहीं । अन्य कोई मार्ग छुटकारा पाने का नहीं है । योग मार्ग वाले को भूलकर भी इन्द्रियो का सेवन नहीं करना चाहिये और वैराग्य धारण करके ही रहना चाहिये । यदि कोई वेबल पचासन लगाकर और नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करते रह कर योग में पूर्णता पान को आशा करे, तो वह उसकी भूल है । इन्द्रियो और मन के स योग को मिटा देना या नियन्त्रण में रखना ही योग का सच्चा स्वरूप है ।”

साध्य-योग से आत्मा की एकता—

आगे चल कर साध्य-योग के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग दर्शन करते हुये कहा है—

“समस्त प्राणियो मे जब एक ही परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म-तत्त्व की दृष्टि से किसी में कुछ अन्तर नहीं है तो हमको सब प्राणियो मे अपनी आत्मा ही देखनी चाहिये । जब ऐसा सत्ता दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य स्वयं ही “ब्रह्म” के समान हो जाता है । यह जितना ही अधिक आत्मा की जानता है उनना ही पराई आत्मा में भी अपनी आत्मा को देखने लगता है । इस प्रकार की भावना निरन्तर बनी रहने से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है । जिस तरह पक्षियों की गति अन्तरिक्ष में होती है और मत्स्यो की जल में हुआ करती है वसी प्रकार उपर्युक्त ज्ञानवेत्ताओ की गति ऐसी सूक्ष्म होनी है जो एका-एक बिलसाई नहीं पड़ती । आत्मा के द्वारा आत्मा को यह काल प्रसता और पचन करता रहता है पर उस काल के विषय में सभी सांसारिक व्यक्ति अनभिज्ञ रहा करते हैं । ये सभी लोको उस काल के भीतर ही रहा करते है, उससे बाहर कुछ भी नहीं है ।”

उपर्युक्त आत्म-भावना किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका विवेचन करते हुये पुराणकार ने कहा है कि “आत्मा की सर्व व्यापकता का ज्ञान मनुष्य के अपने प्रशान्त, दमनशील और आत्म प्रेमी स्वभाव द्वारा प्राप्त हो सकता है । इस सम्बन्ध में विद्वानो ने पाँच दोष ऐसे बतलाये हैं कि जिनका भूलोच्छेदन करने से आत्मज्ञान प्रसूट हो सकता है । ये दोष हैं— काम, क्रोध, लोभ, भय और स्पृह । योगी दोष को धर्म के द्वारा जीतता है, काम को सक्लरो को वञ्चित करने से बचाया जाता है, सत्त्व के अभ्यास से क्रिडा का उच्छेद किया जाता है । प्रेम से शिश्न और उदर की रक्षा करनी चाहिये । श्रोत्र तथा चक्षु की मग के द्वारा और वाणी की कर्म के द्वारा सुरक्षा करे । प्रमाद का त्याग कर देने से भय भी जाता रहता है और सत्पत्न्यो की सेवा करने से दम्भ दूर हो सकता है ।”

‘ज्ञान योग की प्रशंसा—

अभ्यास-योग और साध्य योग का वर्णन करते लेखक ने ज्ञान-योग का परिचय दिया है इसके लिये उन्होंने मनुष्यो की प्रवृत्ति को मुख्यतः

दो भागों में बाँटा है—कर्म और विद्या। कर्म से मनुष्य सुख और दुःख प्राप्त करता है और विद्या द्वारा संसार-सागर को पार करके मुक्ति का अधिकारी बनता है। इन कर्ममय तथा विद्या से परिपूर्ण दो प्रकार के व्यक्तियों में बड़ा अन्तर होता है। 'सूक्ष्म क्त्वा से युक्त होकर भद्रमा के समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है वह वस्त्र में चक्र के तन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु चतलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य का जीवात्मा सत्, रज, तम के गुण वाला होता है, अग्न्य दृष्टि से उसे परमात्मा के गुण वाला कहा जाता है। साधारण रूप में जीव का गुण चेष्टा करना होता है और उन अवस्था में वह 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है। इसमें ऊपर ज्ञान की दृष्टि से वह 'क्षेत्रविद्' कहा जाता है और मातृ भुवनो की जानकारी रखने वाला होता है। जिस प्रकार योग्य सारथी उत्तम श्रेणी के अश्वों को स्ववश में रखते हुए रथ को इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही सुयोग्य मन भी इन्द्रियों का संचालन करता है। इन्द्रियों से ऊपर अर्थ (विषय) होते हैं, उनसे ऊपर मन होता है, मन से ऊपर बुद्धि और उससे भी ऊपर महान् आत्मा होता है। "महत्" से ऊपर "अव्यक्त" और उससे भी ऊपर "अमृत" अर्थात् आदि-अनन्त, अविनाशी होना है। इस अमृत पद को प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम और सर्वोच्च लक्ष्य होता है।"

इस प्रकार ज्ञान योग का उपासक समस्त विश्व के गूढ़ तत्त्व को करतलगत करके भी उसे प्रकट नहीं करता। जैसा भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है साधारण मनुष्यों में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से वह बाह्य दृष्टि से समाज के सामान्य नियमानुसार चलता रहता है। फिर भी अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों में उसकी परम सूक्ष्म बुद्धि अनुभव द्वारा जानी जा सकती है। वह आत्मज्ञान से अधिष्ठित होकर बुद्धि, मन, और विषयों सहित इन्द्रियों को संचालित करता है और उनको पूर्णतः स्ववश रखता है। "इस प्रकार विद्या-मार्ग वाला साधक ससार में

रहता हुआ भी परम पद में स्थित होकर "अमृत" स्थान को प्राप्त करता है। इसके विपरीत कर्म-मार्ग वाला मनुष्य सासारिक कार्यों और उप-सधियों को ही मुख्य उद्देश्य मान कर जीवन का संचालन करता है, इस लिये वह मृत्यु को प्राप्त होता है और आवगमन चक्र में पड़ा सुख-दुःख भोगता रहता है।'

इस प्रकार पुराणकार ने कर्म-योग, साध्य-योग और ज्ञान-योग के मार्गों का परिचय दिया है, जिनको एक से बढ़ कर एक सम्पन्न लेना चाहिये। इनमें "ज्ञान-योग" सर्व श्रेष्ठ कहा गया है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य गेरुआ वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर सासारिक कार्यों को छोड़ कर संन्यासी अथवा अवधूत बन जाय, और स्वयं उपार्जन न करके दूसरों से भिक्षा माग कर या दान ग्रहण करके पेट भरने लगे। ऐसा व्यक्ति तो सब से निम्न श्रेणी का और सबसे अधिक "अज्ञानी" होता है। अथवा उसे ढोंगी या पाखण्डी कहा जा सकता है, क्योंकि वह स्वयं परिश्रम और उत्तरदायित्व से बच कर दूसरों के परिश्रम के फल को अपहरण करना और चैन का जीवन व्यतीत करना चाहता है। हमें वेद से कहना पड़ता है कि आजकल हमारे देश के अधिकांश "ज्ञान मार्गी" कहलाने वाले "सत" "महात्मा" "महन्त" "स्वामी" "साधु" आदि इसी श्रेणी में आते हैं। वे अपने स्वार्थपरता और ठग विद्या को ढकने के लिये "ज्ञानी" होने का दाव तो करते हैं, पर भीतर से न तो उनका हृदय शुद्ध होता है और न वे स्वयं "अमृत" पद को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट होते हैं। वे तो अन्य मनुष्यों को भुलावे में डालकर सासारिक चीजों का उपभोग करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे दूसरों को आत्म-ज्ञान का उपदेश क्या देंगे जब स्वयं उनका ही आचरण और उद्देश्य उल्टे विपरीत होता है।

इसलिये "अमृतत्व" के अधिभागी व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम और सच्चा मार्ग यही है जिते अग्रवान् कृष्ण ने "दश" में बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। अपने जीवन निर्वाह के लिये क-

कभी त्याग न करो और कभी किसी अन्य के आश्रित बन कर न रहो । ज्ञान की ऊँची से ऊँची स्थिति तक पहुँच कर भी उसके आधार पर कोई ऐसा व्यवहार न करो जिससे सामान्य जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न हो और वे अपने उचित कर्तव्यों को त्याग कर अनुचित मार्ग को ग्रहण करने लगें । इसलिये सच्चा “ज्ञानी” अथवा ‘विद्या मार्ग’ का पथिक वही कहा जा सकता है जो सांसारिक दृष्टि से आदर्श जीवन व्यतीत करता हुआ समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उच्च उदाहरण उपस्थित करता है और हर तरह से उन्हें नीचे स्तर से ऊँचे स्तर पर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता है । और इन सब व्यवहारों को करते हुये भी वह सांसारिक मोह, लोभ, माया आदि में तनिक भी लिप्त नहीं होता और अपना आन्तरिक सत्य सदा आत्मा और परमात्मा में ही रखता है ।

“ब्रह्मपुराण” के रचयिता ने भी अन्त में यही निष्कर्ष निकाला है । उसका कथन यह है कि “जिस प्रकार जल में संचरण करने वाला पक्षी जल में लिप्त नहीं हुआ करता वैसे ही आत्मजयी योगी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहना हुआ भी उराके दोषों में कभी लिप्त नहीं होता । ऐसा योगमुक्त मनुष्य चाहे प्रकट में विषयो और वैभव में रहता जान ५३ पर वह उनसे सदा अलिप्त ही रहता है । (जैसा उदाहरण महाराज विदेह जनक का बतलाया जाता है) । इस प्रकार आत्मा “त्रिगुणों” को जानता है और उनको उत्पन्न भी करता है, पर “त्रिगुण” आत्मा को नहीं जानते और न ज्ञानी की आत्मा को वशीभूत कर सक्ते में समर्थ हो सकते हैं । ’

हमने इस जनोपयोगी संस्करण में यही प्रयत्न किया है कि सभी श्रेणी के व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें । आशा है कि पुराण-पाठकों के लिए यह सब प्रकार से कल्याणकारी सिद्ध होगा और वे धर्ममार्ग में निरन्तर प्रगति करते हुए अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे ।

ब्रह्मपुराण

प्रथम खण्ड

विषय सूची

पृ० सं०

धर्मिपारण्य वर्णन	३३
स्वयम्भुवमनु वंश वर्णन	४३
देवदानवोत्पत्ति वर्णन	५३
सूर्यवंश वर्णन	७२
सूर्यवंश वर्णन (२)	८६
सोमोत्पत्ति वर्णन	१०४
सोमवंश वर्णन	११०
सोमवंश मे आयुवंश वर्णन	१२०
ययातिचरित्र वर्णन	१२६
पुरुवंश वर्णन	१३८
पुरुवंश कौटुंबिक वर्णन	१७०
कृष्णवंश वर्णन	१७६
सत्राजित उपाख्यान वर्णन	१८८
स्यमन्तक उपाख्यान वर्णन	१९७
भूमिवंशः स्वरादिलोक वर्णन	२०४
ध्रुवसंस्थिति निरूपण	२११
७ धर्मतीर्थमहात्म्य वर्णन	२१६
स्वयम्भुवहादि संवाद वर्णन	२२७
भारतवर्ष वर्णन	२३३

नानापक्षिगणाकीर्णं नानामृगगणैर्युते ।

नानाजलाशयं पुण्यं दीर्घिकाद्यैरलकृते ॥७॥

प्रथमाध्याय के आदि में नैमिषारण्य का वर्णन है—सर्व प्रथम नमस्कारात्मक भगवाचरण किया जाता है—भगवान् नारायण की सेवा मत्तया नरों में उत्तम नर की और देवी सरस्वती के चरणों में प्रणाम करके इसके अनन्तर 'अय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए । जिनसे प्रपञ्च के द्वारा रचना किया हुआ यह सम्पूर्ण माया जगत् समुत्पन्न हुआ करता है, जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व स्थित रहा करता है और अस्त के समय में पुनः वरुण-अनुकम्प में गमन किया करता है, जिस प्रपञ्च से रहित विशुद्ध स्वरूप वाले भगवान् का ध्यान करके मुनिगण अटल मौन पद को प्राप्त किया करते हैं मैं उन्हीं नित्य-विभु-निश्चल और अमल पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् की वन्दना करता हूँ ॥१॥ जिसका बुध पुरुष समाधि के समय में अन्तरिक्ष में तुल्य शुद्ध स्वरूप का ध्यान किया करते हैं जो नित्य और आनन्द मय है, जिसका स्वरूप परम प्रसन्न, अमल है और सबका ईश्वर एवं निर्गुण है जो व्यक्त और अव्यक्त से भी परे है एवं प्रपञ्च से रहित तथा ध्यान के ही द्वारा जानने के योग्य है और विभु (व्यापक) है चन्दो इस ससार के विनाश के हेतु तथा जरा से रहित और मुक्ति के प्रदान करने वाले भगवान् श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥ नैमिषारण्य परम पुण्यमय सुमनोहर एवं पावनतम स्थान है जो अनेक मुनिगणों से घिरा हुआ और विविध भाति के पुष्पों से शोभायमान है ॥३॥ जिस नैमिषारण्य में सरल कणिकार-पनस-प्रपञ्जादिर-आम्र-शमुन-रूपित्य-वट और देवदास के वृक्षों से शोभित है तथा अश्वत्थ-पारिजात-चन्दन-अमरु पाटल कुकुल तप्तपर्ण पुन्नाग-नागवेशर-शाल ताल तमाल-नारियल और अजुन के वृक्षों से एवं अन्य चम्पक आदि बहुत प्रकार के वृक्षों से परम शोभा सम्पन्न है ॥४॥ उस नैमिषारण्य में विविध भाति के पक्षियों का समूह निवास किया करता है और अनेक तरह के वन्य पशुओं का समुदाय वही विचरण किया करता है जिनसे उस

विपिन की अत्यधिक शोभा होती है। उसमें बहुत-से जलाशय हैं और पुष्पमय वीर्य का आदि से वह परम विभूषित रहा करता है ॥७॥

आह्वणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः ।

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥८॥

सम्पन्नैर्गोकुलैश्च सर्वत्र समलंकृते ।

यवगोधूमचणकं कर्मापमुदगतिलेखुभिः ॥९॥

चीनकाद्यैस्तथा मेघ्यैः शस्यैश्चान्यैश्च शोभिते ।

तत्र दीप्ते हुतावहे हूयमाने महामखे ॥१०॥

यजतां नैमिषेयाणां तत्रे द्वादशवापिके ।

आजगमुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः ॥११॥

तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजांचक्रुर्ग्रन्थोचिताम् ।

तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च ॥१२॥

तत्राजगाम सूतस्तुमतिर्मास्लोमहर्षणः ।

त वृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजांचक्रुर्ग्रन्थोचिताः ॥१३॥

सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने ।

कथांचक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः ॥१४॥

कथान्ते व्यासशिष्य ते पप्रच्छुः सशर्म मुदा ।

ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्ये सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५॥

उप नैमिषारण्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जातियाँ भी तपश्चर्या के लिये निवास किया करते हैं। वहाँ पर सभी आश्रमों में स्थित रहने वाले मनुष्य रहते हैं ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ और सन्यासी लोग अपना-अपना अनुष्ठान किया करते हैं वह विपिन सुसम्पन्न गायों के कुलों से परम अलंकृत रहता है। उस अरण्य में सभी प्रकार के घासों की उत्पत्ति होती है-यव-गोधूम-चना-उद-भूग-तिल-ईल और चीमक आदि एवं परम पवित्र शस्यों एवं घान्यों की उपज होने के कारण उस नैमिषारण्य की अनुपम शोभा होती है। उस घन में अग्नि के प्रदीप्त होने पर जब मद्गमय में आहुतियाँ दी जाया करती हैं तो वहाँ की अद्भुत शोभा हुआ करती है। एक बार वहाँ पर गारुड वर्ष

वाद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।

इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदांगपारगम् । वग ॥२८॥

सर्वं शास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम् ।

शुद्धं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥ २९ ॥

महा महर्षि श्रीलोचनद्वर्पणजी ने कहा—जो बिकारों से रहित है—परम शुद्ध स्वरूप वाले हैं—नित्य एवं परमात्मा हैं और जो सदा ही एक ही रूप वाले हैं तथा सबको जीत लेने के लीन स्वाभाव वाले हैं उन भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२९॥ द्विरण्य गर्भ—श्रीहरि और भगवान् शंकर के लिये तथा वामुदय तार और सत्तार की उत्पत्ति-परिपालन एवं जगत् के व्यवसान के कर्मों के करने वाले प्रभु हैं उनके लिये शतशः प्रणाम हैं ॥२९॥ जो एक ही होते हुए भी अनेकों स्वरूप धारण करने वाले हैं तथा स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले हैं उनके लिये नमस्कार है । जो अव्यक्ता व्यक्त रूप वाले तथा संसार में द्वारम्बार वाले जन्म मरण के आवगमन रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाने के हेतु हैं उन भगवान् श्रीविष्णुदेव के लिये नमस्कार है ॥२९॥ इस जगत् की सृष्टि स्थिति और विनाश करने वाले हैं और स्वयं जो अजर एवं अमर हैं तथा मूलभूत हैं उन परमात्मा भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२९॥ जो सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत हैं अर्थात् यह पूर्ण विश्व जिसके आश्रय को प्राप्त कर टिक हुआ है और जो सूक्ष्मों में भी परम सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं जिनमें समस्त भूत स्थित रहा करते हैं उन भगवान् पुरुषोत्तम अच्युत को प्रमाण करता है ॥२९॥ जो प्रभु ज्ञान के ही स्वरूप वाले हैं और परमार्थ रूप से अत्यन्त निर्मल हैं वही अर्थ स्वरूप से स्थित रहते हैं—ऐसी आग्नि से दणन उमका हुआ करता है ॥२९॥ जो इस विश्व की स्थिति में विष्णु तथा प्रसिष्णु हैं तथा जो स्वर्ग में प्रभु हैं । जो सर्वज्ञ हैं—जगत् के जो ईश हैं जो अजन्मा है—अदाय है और अव्यय स्वरूप वाले हैं ॥२९॥ उन सब के आदि में स्थित रहने वाले-परम सूक्ष्म विश्व के स्वामी को और ब्रह्मा आदि को प्रणिपात करके उसके अन्तर समस्त शास्त्रों के अर्थ के उत्त्व के पूर्ण ज्ञात-इतिहास

और पुराणों के अच्छे ज्ञान रखने वाले-समस्त वेदों और वेदों के छे अङ्ग शास्त्री के पारगामी विद्वान् प्रभु पराशर मुनि के पुत्र अपने श्रीगुरुदेव वेदव्यास जी के चरणों में प्रणाम करके जो वेदों का सम्मिलित पुराण है उस ग्रन्थपुराण का मैं वर्णन करूँगा । तात्पर्य यह है-कि यह पुराण वेदानुसूत है ॥२८-२९॥

१ कथयामि यथापूर्वं दशार्चमुनिसित्तमं ।

पृष्ठः प्रोवाच भगवान् जयानिः पितामहः ॥३०॥

शृणुष्व सम्प्रवक्ष्यामि कथापापप्रणाशिनीम् ।

कथ्यमाना मया चित्रां बह्वर्था श्रुतिविस्तराम् ॥३१॥

यस्त्विदमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीष्टलक्षः ।

स्ववशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥

अव्यक्तं कारणं यत्तन्निवृत्त्य सदसदात्मकम् ।

प्रधानं पुरुषस्तस्माद्विष्णुमे विश्वमीश्वरः ॥३३॥

तं बुध्यस्व मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणमभितौजसम् ।

स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४॥

अहंकारस्तु महत्तस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे ।

भूततभेदाच्च भूतेभ्य इति सर्गाः सनातनः ॥३५॥

ब्रह्म आदि परम श्रेष्ठ मुनियों ने अजयोनि पितामह भगवान् से पूछा था उस समय जो भी उन्होंने वर्णन किया था यही तथा पूर्व में जब आप लोगों के समक्ष में वर्णन करता हूँ ॥३०॥ अब आप लोग सब परम तमाहित मन वाले होकर श्रवण कीजिए मैं वर्णन करूँगा । यह कथा सभी प्रकार के पाप-तापों का विनाश कर देने वाली है और मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा अतीव अद्भुत-बहुत विशेष अर्थ से भरी हुई और श्रुति के विस्तार से समन्वित है ॥३१॥ जो पुरुष इस कथा को नित्य ही धारण किया करता है अथवा बारम्बार इस का श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके स्वर्ग लोक में निवास करने की प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥३२॥ जो सत् और असत् स्वरूप वाता-नित्य कारण अव्यक्त है वह प्रधान है परम पुरुष प्रभु जो सर्वेश्वर ॥ उसी से हम विश्व का निर्माण उन्होंने किया था

॥३६॥ हे परम धैर्य मुनिगणो ! अपरिमित भोज से मुक्त-नारायण परायण उसी ब्रह्म को समस्त भूतों का सृजन करने वाला समझो ॥३४॥ उस प्रधान अव्यक्त से यह तत्त्व और महत् है अदृष्टकार और अहंकार से सब भूत और उन भूतों से भूतों के भेद-इन सबको इन उक्त क्रम से उत्पन्न किया था—यही सर्वदा से बने आने वाला सदातन सर्ग होता है ॥३५॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रजं यथाश्रति ।

कीर्त्यमानं शृणुष्व वः सर्वेषां कीर्त्तविद्वन्तम् ॥३६॥

कीर्त्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यवर्द्धनम् ।

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिंसुसुर्विविधाः प्रजाः ॥३७॥

अप एव ससंज्ञादौ तासु धीव्यंमयासृजत् ।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूतवः ॥३८॥

अयन तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ।

हिरण्यवर्णमभवत्तदन्तमुदकेऽशयम् ॥३९॥

तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति न श्रुतम् ।

हिरण्यवर्णो भगवानुसित्वा परिवत्सरम् ॥४०॥

तदन्तमकरोद्वर्द्धं दिवं भुवमयापि च ।

तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।

तप्त काल मनो वाच कामं क्रोधमथो रतिम् ॥४२॥

इस सर्ग का विस्तार ब्रह्म अवयवों से होता है उसकी भी जैसा मैंने श्रवण किया है और जैसी भी मेरी प्रजा है 'उसी के अनुसार मेरे द्वारा कीर्त्तित किया जा रहा है । 'इस का श्रवण करिए । यह श्रवण करना आप सबकी कीर्ति की वृद्धि करने वाला है ॥३६॥ जिसकी कीर्ति सदा स्थित रहा करती है ऐसे उन सबके चरित का कीर्त्तन करना भी महान् पुण्य का वर्धन करने वाला ही होता है । रचना करके प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होमये थे । ॥३७॥ सबके आदि में जल की ही सृष्टि की थी और उन्होंने सबों में धीरे का सृजन किया था ।

ये जल 'नार'-इस नाम से कहे गये हैं और ये जल नर की सन्तति हैं । ये ही जल सबसे पूर्व उस परम पुरुष नर के निवास का स्थल था और इसी कारण से उनका नाम नारायण हो गया है । उनके अन्दर जल में शयन करने वाले हिरण्य वर्ण हुए थे ॥३८-३९॥ वही पर' स्वयं ब्रह्मा जी ने जन्म ग्रहण किया था जिनको स्वयम्भू-यह नाम से हम लोगों ने सुना था जाना है यह स्वयं ही समुत्पन्न हुए थे अतएव स्वयम्भू नाम अवश्य है । हिरण्य वर्ण भगवान् कितने ही वर्षों तक वही पर निवास करते रहे थे ॥४०॥ इसके अन्त में दो प्रकार की रचना की थी । एक तो दिव लोक बनाया और भूलोक बनाया था । इन दोनों लोको के मध्य में प्रभु ने आकाश की रचना की थी ॥४१॥ यह पृथ्वी जल से पारिस्पृक्षित हो रही थी अर्थात् सूखी हुई थी । सभी दशों दिशाओं की निर्मित किया था । वहीं पर फिर बाल-मन-बाणी काम-क्रोध और रति का सृजन किया था ॥४२॥

ससर्जं सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीत् ।

मरीचिमथ्यङ्गिरसी पुलस्त्यं पुलहं कतुम् ॥४३॥

वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान् ।

सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥

नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ।

ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोपात्मसम्भवम् ॥४५॥

सनत्कुमारं च विभुं पूव्वपामपि पूव्वजम् ।

सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥४६॥

स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ।

तेषां सप्त महावंशः दिव्या देवगणान्विताः ॥४७॥

क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ।

विद्युतोऽश्निमेपाश्च रोहितेन्द्रधनूँपि च ॥ ४८॥

वयांसि च ससर्जो पञ्चन्यश्च ससर्ज ह ।

ऋचो यजूँपि सामानि निम्ममे यज्ञसिद्धये ॥ ४९॥

प्रजापतियों की सृष्टि करने की इच्छा वाले प्रभु ने तद्रूपा ही सृष्टि का सृजन किया था । मरीचि-अत्रि-अङ्गिरा-पुनस्त्य पुनह-ऋतु और धमिष्ठ की महान् तेज वाले परमेष्ठी ने इन सात मानस पुत्रों का सृजन किया था । ये सातों ब्रह्माजी के मन से ही समुत्पन्न हुए ये भूतएव मानस पुत्र कहे जाते हैं । ये सात ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं-ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे ॥४३-४४॥ ये सातों ब्रह्माजी से जन्म ग्रहण करने वाले हैं और साक्षात् नारायण के ही स्वरूप वाले हैं । इसके अनन्तर पहिले ब्रह्माजी ने रोष के स्वरूप से जन्म लेने वाले भगवान् रुद्रदेव का सृजन किया था । ॥४५॥ पूर्व में होने वाले में भी सब से पूर्वं में समुत्पन्न प्राप्त करने वाले विभ्र सनत्कुमार को सृष्टि की थी । हे द्विजगण । इन्हीं सातों में यह सम्पूर्ण प्रजा और एतद् गण उत्पन्न हुए थे ॥४६॥ तेज को संक्षिप्त करके सनत्कुमार और स्कन्द स्थित हुए थे । उनके ही दिव्य देवगणों ॥ समन्वित सप्त महान् षष्ठ हुए थे । ॥४७॥ ये महावश सब क्रियाओं वाले प्रजाओं ने युक्त और महर्षियों से समलङ्कृत हुये थे । फिर विद्युत्-वज्र-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पञ्जीगण और पर्जन्य इन सबका आदि काल में सृजन किया था । इसके उपरांत यज्ञ कर्मों को सुमम्पादित करके सिद्धि प्राप्त करने के लिये ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं का सृजन तथा निर्माण किया था ॥४८-४९॥

साधयानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्जगु ।

उच्चावचानि भूतानि भावेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०॥

आपर्वस्य प्रजासग सृजतो हि प्रजापते ।

सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥

द्विधाकृत्वात्मनो देहवर्द्धनं पुरुषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्या तु सोऽसृजद्विविधा प्रजा ॥५२॥

दिवश्च पृथिवी चैव महिम्न व्याप्य तिष्ठति ।

विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ॥५३॥

पुरुषं तं मनुं विद्यात्तस्य मन्वन्तरं स्मृतम् ।

द्वितीयं मानसस्येनन्मनोरन्तरमुच्यते । ५४॥

स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषा प्रभुः ।

नारायणविसर्गस्थ प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥५५॥

आयुष्मान् कीर्त्तिमान् तूष्णप्रज्ञायाश्च भवेश्वरः ।

आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां चाप्नुयाद्गतिम् ॥५६॥

इसके अनन्तर साध्य देवों को जन्म दिया था जो इस प्रकार से
नित्य हो जाती थी कि अनुगाम िया करते थे । उन महाजी के अंगों
से उच्चावच अर्थात् ऊँचे-नीचे झूतो ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥
आपर्व प्रजाओं के सृजन करने वाले प्रजापति की ये सब सृष्टि हुई प्रजा
थी किन्तु जब देखा कि वह प्रजा बढ़ती हुई नहीं है तो प्रजा की । पुष्कल
वृद्धि का ध्यान हुआ था ॥५१॥ अयोनिज प्रजा से विशेष वृद्धि होती
हुई न देख कर अवयोति से जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा के लिये
महाजी ने अपने शरीर के दो भाग निमित्त किये थे आधे शरीर के
भाग से थे पुरुष हुए थे और आधे वायाग से नारी का स्वरूप निमित्त
किया था । उसी नारी में फिर उन्होंने विविध भक्ति की प्रजा वी
सृष्टि की थी जो दिव लोक और पृथ्वी में व्याप्त होकर महिमा से सम-
वस्थित है । भगवान् विष्णु ने विराट् का सृजन किया था और उस
विराट् ने पुरुष का सृजन किया था ॥५२-५३॥ उस पुरुष की मनु
समझलो । उसका मन्वन्तर भी कहा गया है । मानस का यह द्वितीय
मन्वन्तर कहा जाता है ॥५४॥ उस प्रभु पुरुष वैराज ने प्रजा के सर्ग
का सृजन िया था । उस नारायण विसर्ग की समस्त प्रजा भी अयो-
निज ही थी । इस आदि सर्ग का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य आयुष्मान्-
कीर्त्तिमान् और पूर्ण प्रज्ञायान् हो जाया करता है तथा अपनी अभीष्ट
गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥५५-५६॥

२—स्वयम्भुव मनु वंश वर्णन

स सृष्टा तु प्रजास्त्वेवमापवो वं प्रजापतिः ।

लेभे वं पुरुषः पत्नी पतरूपामयोनिजाम् ॥१॥

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।
 धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥२॥
 सा तु वर्षायुत तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
 भर्तार दीप्ततपसः पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥
 सा वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुष्यपते ।
 सत्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥
 धैराजात् पुरुषाद्वीरः शतरूपा व्यजायत ।
 प्रियव्रतोत्तानपादो वीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥
 काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
 काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सत्राट कुक्षिविराट् प्रभुः ॥६॥
 उत्तानपाद जग्राह पुत्रमग्निं प्रजापतिः ।
 उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥७॥

श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—उन आपव प्रजापति ने इस प्रकार
 से प्रजाओं का सृजन किया था । उस पुरुष ने अर्थात् स्वायम्भू मनु ने
 जोकि प्रजापति के दक्षिणार्ध अंग से समुत्पन्न हुआ था अयोनिजा
 शतरूपा पत्नी को प्राप्त किया था ॥१॥ आपव की महिमा से ने दिव
 को आवृत करके ही स्थित थे । हे श्रेष्ठ मुनियो ! धर्म ये ही शतरूपा
 समुत्पन्न हुई थी ॥२॥ उस शतरूपा ने दश हजार वर्ष वर्षभ्यं तपस्वर्या
 की थी और परम दुश्चर तप किया था इस तप के प्रभाव से ही उस
 शतरूपा ने प्रदीप्त तप वाले पुरुष स्वायम्भू मनु को अर्धना भर्मा प्राप्त
 किया था ॥३॥ हे विप्रो ! वही स्वायम्भुव पुरुष मनु कहा जाता है
 उस स्वायम्भुव मनु का कार्य काल इरुहत्तर युगो की ओक्यियां होती
 हैं जो एक मन्वन्तर कहा जाया करता है ॥४॥ यही ॥ योनिज सृष्टि
 या समारम्भ होता है जो पुरुष के साथ नारी सम्भोग का सुख प्राप्त
 करती हुई गम धारण किया करती है और अपनी योनि द्वार से प्रसव
 काल समुपस्थित होने पर सन्तान को जन्म ग्रहण कराया करती है ।
 मनु ने द्वारा उत्पन्न होने ही से मनुष्य कहलाये जाते हैं । उस शतरूपा
 धारी ने वैराज पुरुष के साथ सहवास करके उसके बीज से वीर को

उत्पन्न किया था । उस बीर की पत्नी काम्या थी उस काम्या ने बीर
बीर के साथ सपवास करके उसके वीर्य से प्रिय व्रत और उत्तानपाद
को उत्पन्न किया था ॥५॥ यह काम्या प्रजापति कर्दम की परम श्रेष्ठ
पुत्री थी । इस काम्या से सम्राट्-कुक्षि बिराट् और प्रभु से चारपुत्र
समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ प्रजापति अग्नि ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण का
लिया था । उस उत्तानपाद के साथ सग कर उसकी वीर्य से सुन्द-
श्रीणी तट वाली परम विधूत सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसूत किया
था ॥७॥

धर्मस्य कन्या सुश्रीणी सूनृता नाम विश्रुता ।

उत्पन्ना वाजिमेघेन ध्रुवस्य जननी शुभा । ८

ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च आयुष्मन्त वसु तथा ।

उत्तानपादोऽजनयत् सूनताया प्रजापतिः ॥९

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः ।

तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् समुहदयशः ॥१०

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसम प्रभुः ।

अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणा प्रजापतिः ॥११

तस्याभिमानमृद्धिश्च महिमान निरीक्ष्य च ।

देवासुराणामाचार्यः इलोक प्रागुशना जगौ ॥१२

अहोऽयं तपसो वीर्यमहौ श्रुतमहोऽद्भुतम् ।

यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुव सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३

तस्माच्छ्लष्टि च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्याजयत ।

श्लिष्टे राघत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रनक्तमपान् ॥१४

सूनृता नाम ॥ विष्णुत सुन्दर श्रीणी वाली कन्या धर्म की पुत्री

थी । यह परम भक्त ध्रुव की माता जो अनीब-शुभ थी वाजिमेघ

यज्ञ के द्वारा समुत्पन्न हुई थी ॥८॥ प्रजापति राजा उत्तानपाद ने अपनी

प्रिय पत्नी सूनृता के कार्य से ध्रुव-कीर्त्तिमान्-प्रायुष्मान् और वसु नामों

वाले पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥९॥ हे द्विजवरो ! महान् भाग

वाले ध्रुव ने पाँच वर्षों को कुमार अवस्था हो वे समुहान् यज्ञ की

इच्छा रखते हुए तीन सहस्रा दिव्य यर्षों तक परम दुश्चर तप किया था ॥१०॥ प्रभु ब्रह्माजी ने उसको परम प्रसन्न होकर अपने ही समान स्थान प्रदान किया था जो बहुत ही भ्रमल स्थान था । प्रजापति ने सप्तपियों के समक्ष में वह स्थान प्रदान किया था ॥११॥ उस कुमार ध्रुव के स्वामिमान-महिमा और समृद्धि को देख कर देवासुरों के आचार्यवर उशना (शुक्राचार्य) ने इस श्लोक का गान किया था ॥१२॥
 गो हो । इस कुमार के तप का वीर्य और श्रुत कितना अद्भुत है जिस ध्रुव को अपन आगे स्थित करके सप्तपिगण विराजमान रहते हैं ॥१३॥ उस ध्रुव से शम्भु ने शिलष्टि और भगव को उत्पन्न किया था । उस शिलष्टि के साथ सहवास करके उसके वीर्य से सुच्छाया नामक उसकी प्रिय पत्नी ने कल्मष राहत पाँच पुत्रों को प्रसूत किया था ॥१४॥

रिपु रिपुञ्जय वीर वृकलं वृकतेजसम् ।

रिपोराघत्त वृहती चक्षुष सव्वंतेजसम् ॥१५

अजीजनत् पुष्करिण्या वैरण्या चाक्षुष मनुम् ।

प्रजापतेरात्मजाया वीरगस्य महात्मन ॥१६

मनोरजायन्त दश नडवलाया महोजस ।

कन्याया मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापते ॥१७

कुत्स पुंशतद्युम्नस्तपस्यो सत्यवाक्वि ।

अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८

अभिमन्युश्च दशमो नडवलाया महोजस ।

पुरोरजनयत् पुत्रान् पडाग्नेयी महाप्रभान् ॥१९

अङ्ग सुमनस ह्याति क्रतुमङ्गिरस गयम् ।

अङ्गात् सुनोथापत्य वे वेनमेक व्यजायत ॥२०

अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् ।

प्रज्ञार्थमृषयो यस्य समन्युदक्षिण करम् ॥२१

उन पाँचों पुत्र के शुभ नाम ये थे—रिपु रिपुञ्जय वीर-वृकल और वृकतेजा । वृहती ने सब तेजस चक्षुष को रिपु से छारण किया था

॥१५॥ महान् अरमा वाले प्रजापति वीरण की आत्मजा मे जो पुष्करिणी बैरिणी थी उसमे चाधुप मनु को समुत्पन्न किया था ॥१६॥ हे मुनि शादूँसो ! प्रजा पति वैराज को कन्या नंवल मे मनु से महान भोजवाले दस पुत्रो की समुत्पत्ति हुई थी ॥१७॥ उनके नाम थे हैं—कूतून-पुरु-सतयु-मन-तपस्वी-सत्यवाक्-कवि-मतिष्ठुत्-अतिरात्र और सुद्युम्न ये ती हैं ॥१८॥ अभिमन्यु दशय पुत्र था । ये तह्वला में महान् भोज वाले हुए थे । पुरु के वीर्य से आग्नेयी ने महती प्रमावाले छे पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ उन छे पुत्रो के नाम ये हैं—अग-सुमनस-उपाति-अटु-अगिरा-गम । अग के वीर्य से सुनीया नाम वाली भार्या ने एक ही सन्तति उत्पन्न की थी जिसका नाम वेन था ॥२०॥ वेन बहुत ही अय नारी था जिसके बुरे अपचार से ऋषियो का बहुत भारी प्रकोप हो गया था । प्रजा के लिये ऋषिगणो ने जिसके दक्षिण कर का मन्थन किया था ॥२१॥

वेनस्य मथिते पाणी स धभूव महान्तृपः ।

॥ दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेव वै मुदिताः प्रजाः ॥२२

करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।

स धन्वी कवची जातो जलज्ज्वलनसन्निभः ॥२३

पृथुर्वन्यस्तथा चेमा ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ।

राजसूयाभिपिक्तानामाद्यः सा वसुधाधिपः ॥२४

तस्माच्चैव समुत्पन्नो निपुणो सूतमागधो ।

तेनैवं गौर्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५

प्रजाना वृत्तिकामेन देवैः सपिण्णः सह ।

पितृभिर्दानैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६

सर्पैः पुण्यजतैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ।

तेषु तेषु च च ण्येषु दुह्यमाना वसुधरा ॥२७

प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् ।

पृथोस्तु पुत्री धर्म्मज्ञी जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनी ॥२८

राजा येन के हाथ का मग्न्यन करने पर एक महान् नृप उत्पन्न हुआ था । उसको देखकर समस्त मुनिगणों ने कहा था—यह महान् तेज वाला राजा अपनी सब प्रजा को परम प्रसन्न करेगा और संसार में बहुत ही अधिक यश की प्राप्ति भी करेगा । वह अनुपकारी तथा कबच पहिने हुए उत्पन्न हुआ था और प्रदीप्त अग्नि के समान ही तेजस्वी था ॥२२-२३॥ यह क्षत्रियों में सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाला पृथुर्व-य नामधारी था और उसने इस भूमि की पूर्णतया रक्षा की थी । राज-सूय नामक यज्ञ के द्वारा जो अग्निपितृ राजा हुए हैं उनमें यह सबसे प्रथम वसुधा का स्वामी हुआ था ॥२४॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! उसी नृप से परम निपुण सुत तथा मातङ्ग उत्पन्न हुए थे । उसी राजा ने इस प्रकार से इस भूमि क्षपिणी गौ को दोहन किया था जिसमें सभी प्रकार के उत्सव समुत्पन्न होने लगे थे ॥२५॥ अपनी समस्त प्रजाजनों की वृत्ति की कामना वाले उस नृप ने देवगण-ऋषियों का समुदाय-पितृगण दानव-गन्धर्व-मत्तराजों के समूह-सर्प पुण्ड्रजल वीर्य-और पर्वतों के साथ उग-उग पात्रों में यह वसुधारी दुह्यमाण की थी अर्थात् भूमि का दोहन किया था ॥२६-२७॥ इस भूमि ने यथोचित क्षीरकण्ड प्रदान किया था उनके द्वारा प्राणों की धारण न करते हुए ही दिया था । राजा पृथु के धर्म व पूर्ण ज्ञाता थे और अन्तर्धियाती समुद्ररत्न हुए थे ॥२८॥

शिखण्डिनो हविर्धनिमस्तर्धानाद् व्याजायत ।

हविर्धानात् पङ्कान्नेयी धिपणाजनयत् सुतान् ॥२९॥

प्राचीनवर्हिपशुक गय कृष्ण व्रजाजिनी ।

प्राचीनवर्हिभंगवान्महानासीत्प्रजापतिः ॥३०॥

हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन सबद्धिता. प्रजा. ।

प्राचीनाग्रा॥ कुशास्तस्य पृथिव्या द्विजसत्तमा. ।

प्राचीनवर्हिभगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥३१॥

समुद्रतनयाया तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।

महत्तस्तपस. पारे सवर्णाया प्रजापतिः ॥३२॥

सवर्णाद्यत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिणः ।

सर्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान् ॥३३॥

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ।

दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशया ॥३४॥

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेत सु महीरुहाः ।

अरक्ष्यमाणामावब्रुवंभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥

अन्तर्धान के बीर्य से शिखण्डिनी ने हविर्धान को जन्म दिया था ।
आग्नेयी धिपगा नाम धारिणी पत्नी ने हविर्धान के साथ सहवास करके
उसके बीर्य से छी सुतो को प्रसव दिया था ॥३६॥ उन छी पुत्रो के
नाम ये हैं—प्राचीन बर्हि-शुक गय-कृष्ण-वज्र और अजिन । भगवान्
प्राचीन बर्हि महान् प्रजापति हुए थे ॥३७॥ हे मुनि ब्रह्मण्य । जिसने
हविर्धान से अपनी प्रजाजनो को भली भाँति धर्षित किया था । हे
द्विज ब्रह्मण्य । उसके पृथिवी में पृथ्वीतल पर चरण करने वाली प्राची-
नाय कुशा हुए थे ॥३८॥ प्राचीन बर्हि भगवान् समुद्र की तमया में
धारा को ग्रहण करने वाले प्रभु हुए थे । महान् तप से सवर्णा में प्रजा
पति हुए ॥३९॥ सामुद्री सवर्णा ने दश प्राचीन बर्हि धारण किये थे ।
उन सबके प्राचेतस नाम थे और वे सब धनुर्वेद के पारगामी विद्वान् थे
॥४०॥ अपृथग् धर्म के चरण करने वाले उन्होंने महान् तपश्चर्या की
थी । दश हजार वर्ष पर्यन्त उन्होंने समुद्र के जल में ही शयन किया
था ॥४१॥ प्रचेताओं के तप करने पर महीरुह अरक्ष्यमाण पृथिवी से
थीले—प्रजाक्षय होगया था ॥४२॥

नाशकभावनो वातु वृत्त खमभवद्द्रुम ।

दश वर्षसहस्राणि न शेकुद्वेष्टितु प्रजा ॥४३॥

तदुप्रश्रुत्य तपसा युक्ता सर्व्वं प्रचेतसः ।

मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यदा ॥४४॥

उन्मूलानथ वृक्षास्तु कृत्वा वायुरशीपयत् ।

तानग्निरदददूधोर एवमासी दद्रुमक्षय ॥४५॥

क्रमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टं पुं शशिपु ।
 उपगम्याश्रवोदेतांस्तदा सोमः प्रजापतीन् ॥३८॥
 कोऽयं यच्छा राजानः सर्वे प्राचीनवर्हिपः ।
 वृक्षशृङ्गा कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमात्मी ॥३९॥
 रत्नभूता च कश्यप वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
 भविष्य जानता नात घृता गर्भेण वै मया ॥४०॥
 मारिषा नाम नाम्नेषा वृक्षाणामिति निर्मिता ।
 भार्या वोऽस्तु महाभागा सोमवक्षविबद्धिनी ॥४१॥

वायु बहुत नहीं कर सका था और आकाश द्रुमों से समावृत हो गया था । दश हजार वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥३६॥ यह श्रवण करके भय से मुक्त सब प्रचेतम बहुत क्रोधित होगये थे और मुक्तों से उन्होंने वायु की और अग्नि की सृष्टि की थी ॥३७॥ वायु ने सम्स्त वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया था और धार जल ने उनको दग्ध कर दिया था । इस प्रकार से द्रुमों का क्षय हो गया था ॥३८॥ इसके इस क्रम से क्षय का ज्ञान प्राप्त करके जबकि कुछ पोंडे से ही शाखी वपति वृक्ष शेष रह गये थे उस समय में सोम ने वहाँ उपस्थित होकर इन प्रजापतिों से कहा था—आप सभी प्राचीन वहाँ राजा सींगे ! कोप को शांत करो । इस पृथिवी को वृक्षों से शून्य कर दिया है अब अग्नि और वायु का धमन करो ॥३९॥ यह वर वर्णिनी वृक्षों की रत्न भूषण कन्या है । हे तात ! भविष्य का ज्ञान रखने वाले मैंने गर्भ के द्वारा इसकी धारण विधाया ॥४०॥ नाम से यह मारिषा है और यह वृक्षों की है—इसीलिये निर्मित की थी । यह महान् भाग वाली प्रेमवश का विवर्धन करने वाली आपकी भार्या होगी ॥४१॥

युष्माक तेजसोऽद्धेन मम चाद्धेन तेजसः ।

अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४२॥

स इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तजोमयेन च ।

अग्निनाग्निसमो भूय प्रजाः सवर्द्धयिष्यति ॥४३॥

ततः सोमस्य वचनाज्जिग्रहृस्ते प्रचेतसः ।
 सहृत्य कोषं वृक्षेभ्यः पत्नी घर्म्मण मारिषाम् ॥४५॥
 दशभ्यस्त प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
 दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्याश्वेन गो द्विजाः ॥४६॥
 अचराश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
 स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥
 वदो दश स घर्म्मयि कश्यपाय त्रयोदश ।
 शिष्टाः सोमाय राज्ञे च नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८॥
 तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः ।
 गन्धर्व्वान्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥
 ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसम्भवाः ।
 सङ्कल्पादर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेया प्रोच्यते प्रजाः ॥५०॥

आपके आधे तेज से और मेरे आधे तेज से इसमें दक्ष नाम धारी एक प्रजापति की उत्पत्ति होगी ॥४३॥ वह प्रायः दश हुई इसको आपके तेजोमय अग्नि से अग्नि के ही समान पुनः प्रजाओं का सम्बर्धन करेगा ॥४४॥ इसके अनन्तर सोम के वचन से उन्होंने प्रचेताओं ने इसकी स्वीकार कर लिया था । कोष की हटाकर जो कि वृक्षों पर था मारिषा पत्नी की घर्म्म विधि के साथ ग्रहण किया था ॥४५॥ उन दश प्रचेताओं से उस मारिषा ने वह महान् तेजस्वी हे द्विजगण । सोम के अंश से प्रजापति दक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥४६॥ उस दक्ष ने चर और अचर, द्विपद और चतुष्पद इन सबका सृजन करके फिर पीछे मन से उसने स्त्रियों की सृष्टि की थी ॥४७॥ उन सृजन की हुई कन्याओं में से दश तो उस प्रभु ने घर्म्म गो समर्पित की थी—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की और नक्षत्र नाम वाली कन्याओं को सोम के लिये प्रदान किया था ॥४८॥ उन्हीं कन्याओं के गर्भों से समस्त देवता-खग-गोर्-नाग-दैत्य-दानव-गन्धर्व्व-अप्सरारें और अन्य सब जातियाँ उत्पन्न हुए थे ॥४९॥ हे विप्रेन्द्रो ! तभी से आरम्भ करके ये सम्पूर्ण प्रजा मैथुन के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाली हुई थी । इससे पूर्व्वकाल में तो केवल

मानसिक सकल्प से—दर्शन मात्र से—स्पर्श कर लेने भर से प्रजा पूर्ववर्ती की हुई थी और वह सब अयोनिज थी ॥५०॥

देवाना दानवानाश्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।

सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥

अङ्गुष्ठाद्ब्रह्माणो जज्ञे दक्ष किल शुभव्रतः ।

वामाङ्गुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥

कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लभे महातपाः ।

एतन्न संशयस्तून् व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि ।

दीहिष्वश्र्वं च सोमस्य कथं इवश्रुरता गतः ॥५३॥

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु भोद्विजा ।

ऋशयोऽनं न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जना ॥५४॥

युगे युगे भयन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपाः ।

पुनश्चैव निरुह्यन्ते विद्यास्तत्र न मुह्यति ॥५५॥

ज्यैष्ठ्ये कानिष्ठ्यमप्येषापूर्व्वनासीद्विजोत्तमाः ।

तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥

इमा विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।

प्रजावानामुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महोयते ॥५७॥

शीतलादि मुनियो ने कहा—हे सूतजी ! देवी का-दानवों का-गन्धर्व-उरग और राक्षसों का जन्म जिस प्रकार से और जिनसे हुआ—यह तो हमने श्रवण कर लिया और महात्मा दक्ष की उत्पत्ति भी सुन ली है कि यह दक्ष प्रजापति जो परम शुभ व्रत वाला था ब्रह्माजी के अङ्गुष्ठ से समुत्पन्न हुआ था और प्रजापति दक्ष की पत्नी उग्री के बगिये अङ्गुष्ठ से समुत्पन्न हुई थी ॥५१ ५२॥ किन्तु यहाँ पर यह सन्देह होता है कि यह महा तपस्वी प्राचेत सत्त्व को पुन कैसे प्राप्त हो गया था । हे सूतजी ! हमारे हृदय में यह बड़ा संशय हो रहा है । अब आप इसका स्पष्टीकरण करते हुए व्याख्या करने की कृपा कीजिए । यह महानुभाव तो सोम का धेवन था फिर यह ब्रह्मर कै ? वन गया

था ? ॥५३॥ श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! प्राणियो मे उत्पत्ति और निरोध नित्य ही हुआ करता है । जो महापुरुष विद्वान् हैं तथा जो ऋषिगण हैं वे इस विषय मे मोह को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि उनको ज्ञान होता है और जो ज्ञानी है वह कभी मोह को प्राप्त नहीं करता है मोह तो अज्ञान से ही होता है ॥५४॥ युग-युग मे ये दक्ष आदि सृष्ट पुनः पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं और फिर-फिर इनका निरोध भी हुआ करता है । जो विद्वान् है वे उन विषय मे मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्व मे इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता नहीं थी केवल तब ही बड़ा होता था और उसका प्रभाव छोटे-बड़े होने का कारण था ॥५६॥ जो मनुष्य इस चर और अचर से युक्त दक्ष प्रजापति की विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह प्रजा बाला और आयु मे उत्तम होकर अन्न मे स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५७॥

३—देवादानवोत्पत्ति वर्णन

देवाना दानवाना च गन्धर्व्योरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥
प्रजाः सृजति ध्यादिष्टः पूर्व्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजाः ॥२॥
मानसान्येव भूतानि पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः ।
ऋषीन् देवान्सगन्धर्व्वान्सुरान्यक्षराक्षसान् ॥३॥
यदास्य मानसी त्रिप्रा न व्यवहंत च प्रजाः ।
तदा सञ्चिन्त्य घर्म्मर्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥४॥
स मेथुनेन घर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमावहत् पत्नी वीरस्य प्रजापतेः ॥५॥
सुता मुतपसा युक्ता महती लोकधारिणीम् ।
अथ पुनसहस्राणि वैरण्या पञ्च वीर्यवान् ॥६॥

असिक्न्या जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ।

तास्तु दृष्ट्वा महाभागान्सचिवद्धंयिषून् प्रजाः ॥७॥

मुनिगणों ने कहा—हे लोमहर्षणजी ! अब आप कृपा करके देवों की—दानवों की और गन्धर्व, उरग तथा राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करिये ॥७॥ भगवान् लोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विज-गणों ! सबसे पूर्व मैं स्वयम्भू ने दस प्रजा पति को विशेष रूप से आज्ञा प्रदान की और वह ही प्रजा का सृजन करता है । उसने जिस प्रकार से भूतो का सृजन किया उनका मैं वर्णन करता हूँ आप लोग श्रवण करो ॥८॥ सबसे प्रथम तो ऋभु ने मानसी सृष्टि की रचना की और समस्त भूतों की—ऋग्यो को—देवों को—गन्धर्वों को—असुरों को—यक्षों को और राक्षसों को बनाया अर्थात् इन सबका सृजन मन से ही किया ॥९॥ किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह मानसी सृष्टि जो हुई उससे प्रजा में कोई वृद्धि न हुई उस समय में धर्मात्मा प्रजापति ने सोच-विचार करके प्रजा की वृद्धि के लिये उसने विविध प्रकार की प्रजा को सृष्टि की इच्छा रखते हुए गंधुन के द्वारा रचना करने की बात सोची और वीरज प्रजापति की असिक्नी नाम वाली पत्नी हुई ॥१०-११॥ वह सुता सुन्दर रूप से समन्वित महती और लोकों को धारण करने वाली थी । बल वीर्य वाले प्रजापति दक्ष ने उस असिक्नी के गर्भ से जो वीरिणी भी पाँच सहस्र पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया । देवपि श्रीनारदजी ने उन प्रजाओं के सर्वधन करने की इच्छा वाले महाभागों को देखा ॥१२-१३॥

देवपि, प्रियसवादा नारद, प्राब्रवीदिदम् ।

नाशाय वचनं तेषां शापार्थं वात्मनस्तथा ॥१४॥

य कश्यप सुतवर परमेष्ठी व्यजो जनत् ।

दक्षस्थ वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनि, ॥१५॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारद परमेष्ठिन, ।

असिक्न्यामथ वैरण्या भूयो देवविसत्तम ॥१६॥

त भूयो जनयामास पितेव मुनिपुद्गवम् ।

तेन दक्षस्य वै पुत्र, ह्यथा दत्ति विश्रुताः ॥१७॥

निर्ममं दध नाशिताः सर्वे विघ्निता च न संशयः ।

तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामिनां विक्रमः ॥१२॥

ब्रह्मर्षिन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ।

ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३॥

कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।

ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ।

म तस्यां नारदो जज्ञे भूयाः शापमयादृतिः ॥१४॥

परम प्रिय मन्त्राद वाते देवर्षि नारदश्री ने उनको देखकर यह वचन कहा । उनका यह वचन नाश के लिये तथा अपने आपके शाप के लिये था ॥१२॥ दक्ष की बुद्धिता में दक्ष के शाप के भय से परमेश्वरी कश्यप मुनि ने जिस पुत्र को समुत्पन्न किया था ॥१३॥ वह पूर्व में परमेश्वरी के नारद समुत्पन्न हुआ । फिर वैष्णवी यक्षिणी ने परम श्रेष्ठ देवर्षि हुआ ॥१४॥ पिता के ही समान पुत्रः उस मुनिपौ में श्रेष्ठ की जन्म ग्रहण कराया गया । हमी कारण दक्ष के पुत्र 'हयैश्वर'—इस नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१५॥ विघ्नाता ने निर्ममन करके सबका नाश कर दिया था—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस समय अपरिमित बल विक्रम शाली दक्ष उसके विनाश करने के लिए उत्तत हो गया ॥१६॥ ब्रह्मर्षियों को भागे करके परमेश्वरी के द्वारा याचना की गयी । इसके अनन्तर, परमेश्वरी ने दक्ष की अभिसन्धि की थी ॥१७॥ मेरे लिये नारद कन्या में तेरा पुत्र होवेगा, यह अभिसन्धि थी । इससे अनन्तर दक्ष ने प्रिय कन्या को परमेश्वरी के लिए अर्पित कर दिया । उस ऋषि ने पुनः शाप के भय से उसमें नारद हीकर जन्म लिया था ॥१८॥

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।

प्रजापतेः सूतवय्यं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१९॥

दक्षस्य पुत्रा हयैश्वरा विवर्द्धयिष्वः प्रजाः ।

समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥२०॥

बालिशा वत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।

प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥२१॥

अन्तरुद्धवर्ममघश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।
 ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥१८॥
 अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।
 ह्यंश्वेष्वथ नष्टेषु वक्षः प्राचेतस पुनः ॥१९॥
 वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
 विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाभ्यास्तथा प्रजाः ॥२०॥
 पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः ।
 अन्योभ्यमूचुस्ते सर्व्वं सम्यगाह महानृपिः ॥२१॥

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का क्यों नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तारिबक रूप से श्रवण करना चाहते हैं । आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के जो पुत्र ह्यंश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् धीर्य वाले समागत हुए थे । उनसे श्री नारदजी ने कहा था । श्री नारदजी बोले—बड़े वेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते ही कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसारमज प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ भ-दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें । वे उनके वचन का श्रवण करके सभी निशाओं की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र को प्राप्त करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं । इस तरह ह्यंश्वों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा वे सब सबनाशकर प्रजाओं के वधन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर में पूर्व्वोक्त वचन कहा था कि महान् ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणा पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र सशयः ।

ज्ञात्वा प्रमाणं पृच्छन्नाश्च मूढमसक्या महे प्रजा ॥२२॥

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतो दिशम् ।
 अशापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥
 तदा प्रभृति वै आसा आतुरन्वेपणे द्विजाः ।
 प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तप्त कार्म्यं विपश्चिता ॥२४॥
 तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षा प्रजापतिः ।
 पट्टि ततोऽसृजत् कन्या चरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ५
 तास्तदा प्रतिजग्राह भार्गवार्थं कश्यपः प्रभुः ।
 सोमो घर्मन्श्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६॥
 दशौ स दश घर्मण्य कश्यपाय त्रयोदश ।
 सप्तविंशतिः सोमाय षतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७॥
 द्वेचैव बहुपुत्राय द्वेचैवाङ्गिरसे तथा ।
 द्वेकृशाश्रवाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८॥

अपने भाइयो के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाता चाहिए—
 इसमें कुछ भी सशय नहीं है । पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त
 करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ ये सब भी उसी मार्ग से सभी
 दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई तरिताओं
 के समान आज तक भी यापित नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगण !
 सब से लेकर भाई भाई के अन्वेपण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है
 अतः वह कार्य विद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजापति
 दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए जान कर फिर उस चरिणी के गर्भ से
 साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥
 उस समय मे प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये
 ग्रहण किया था । हे विप्रो ! सोम ने, घर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने
 ग्रहण की थीं ॥२६॥ उन कन्याओं में से दश तो घर्म की दी थीं और
 तेरह कश्यप श्रुति को समर्पित की थी—पचाईस सोम को दी और चार
 अरिष्टनेमि को प्रदान की थी । दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अंगिरा
 श्रुति को दी थी । दो कृशाश्रव को दी थी जो परम विद्वान् थे । अब
 उन सबके नामों का श्रवण करिए ॥२७-२८॥

अन्तरुद्धवर्मघश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥१८॥

अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।

हृयंश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९॥

वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।

विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्चास्तथा प्रजाः ॥२०॥

पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः ।

अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वं सम्यगाह महानृपिः ॥२१॥

शीतकावि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का धर्म नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तात्त्विक रूप में अवगण करना चाहते हैं । आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री लोमहर्षेण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के जो पुत्र हृयंश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् धीर्य वाले समागत हुए थे । उनसे श्री नारदजी ने कहा था । श्री नारदजी बोले—बड़े छेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसारम्ब प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ अन्दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें । वे उनके वचन का ध्वजण करके सभी ऋषियों की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र की प्राप्ति करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं । इस तरह हृयंश्वों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में एक सहस्र पुत्रों की उत्पत्ति किया था तथा वे सब सबनाशक प्रजाओं के वर्धन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर में पूर्वोक्त वचन कहा था कि महान् ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र सशयः ।

ज्ञात्वा प्रमाणं पृच्छयाश्च सूदमं सद्यः मह्ये प्रजाः ॥२२॥

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
 अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥
 तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेपणे द्विजाः ।
 प्रयातो नश्यति क्षिप्रं सघ्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४॥
 सांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षा प्रजावतिः ।
 पष्टि ततोऽसृजत् कन्या वरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ५
 तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यायै कश्यपः प्रभुः ।
 सोमो घर्ममश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६॥
 ददौ स दश घर्ममाय कश्यपाय त्रयोदश ।
 सप्तविंशतिः सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७॥
 द्वेचैव बहुपुत्राय द्वेचैवाङ्गिरसे तथा ।
 द्वेकुशाश्रवाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८॥

अपने भाइयों के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिए—
 इसमें कुछ भी सशय नहीं है । पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त
 करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ वे सब भी उसी मार्ग से सभी
 दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई सरिताओं
 के समान आज तक भी वापिस नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगणों !
 सब से लेकर भाई भाई के अन्वेपण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है
 अतः वह कार्य्य बिद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजावति
 दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए ज्ञान पर फिर उस वरिणी के गर्भ से
 साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥
 उस समय में प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये
 ग्रहण किया था । हे विप्रों ! सोम ने, घर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने
 ग्रहण की थी ॥२६॥ उन कन्याओं में से दश तो घर्म की दो थीं और
 तेरह कश्यप अङ्गिर को अर्पित की थीं—उत्तर्दिष्ठ सोम की दो और चार
 अरिष्टनेमि को प्रदान की थीं । दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अङ्गिरा
 श्रुप का दो थीं । दो कुशाश्रव की दो थीं जो परम विद्वान् थे । सब
 उन गवदे सार्यों का व्यवस्था करिए ॥२७-२८॥

अरुन्धती वसुर्गामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।

सङ्कल्पा च मूहूर्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२६॥

धम्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत ।

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥२७॥

मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः सुताः ।

भानोस्तु भानवः पुत्रा मूहूर्तास्तु मूहूर्तजा ॥२८॥

लम्बायाश्च व घोषोऽय नागवीथी च यामिजा ।

पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्या व्यजायत ॥२९॥

सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।

नागवीथ्याश्च यामिन्या नृपलश्च व्यजायत ॥३०॥

परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ ।

सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः ॥३१॥

ये त्वन्मे ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिषपुरोगमाः ।

वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विन्तरम् ॥३२॥

हे द्विजगणो ! अरुन्धती-वसु यामी लम्बा-भानु-मरुत्वती-सङ्कल्पा-साध्या और विश्वा तथा मूहूर्ता—ये दश धर्म की पत्नियों के नाम थे । अब उनके गर्भों से जो सन्तति समुत्पन्न हुई उनका भी ज्ञान प्राप्त कर लो । जो विश्वेदेवा हैं वे विश्वा धर्म की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । साध्या नाम वाली पत्नी ने साध्यों को जन्म दिया था ॥२६-३०॥ मरुत्वती के गर्भ से मरुत्वान् उत्पन्न हुए तथा वसु से वसुगण प्रसूत हुए थे । भानु के भानुगण सुत हुए और मूहूर्ता ने मूहूर्तजों को जन्म दिया था ॥३१॥ लम्बा ने घोष को उत्पन्न किया और नागवीथी ने यामिजों को जन्म दिया था । पृथिवी का विषय सब अरुन्धती ने समुत्पन्न हुआ था ॥३२॥ सङ्कल्पा के गर्भ से विश्वात्मा सङ्कल्प ने जन्म ग्रहण किया था । नागवीथी और यामिनी ने नृपल समुत्पन्न हुआ था ॥३३॥ दूसरी जो सोम की पत्नियाँ थीं जिनको कि प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने सोम की समर्पित किया था वे सब नक्षत्रों के नाम वाली थीं जोकि ज्योतिष शास्त्र में वर्णित की गयी हैं ॥३४॥ जो परम ह्यति वाले

ज्योतिष शास्त्र के पुरोगम हैं वे देव जाठ वसुगण हैं और इसी नाम से प्रसिद्ध हैं । अब मैं उन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ ॥३५॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥

आपस्य पुत्रो वंतण्डः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालोलोकप्रकालनः ॥३७॥

सोमस्य भगवान् वचर्चा वचर्चस्वी येन जायते ।

धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८॥

मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ।

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ।

अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पन्थावनिलस्य च ॥३९॥

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तन्वेभ्रिया वृतः ।

तस्य शाखो विशाखश्च नंगमेयश्च पृष्ठजः ॥४०॥

अपत्यं कृतिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।

प्रत्यूषस्य विदुः पुष्टमृषि नाम्नाय देवलम् ॥४१॥

द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तो मनीषिणौ ।

वृहस्पतेस्तु भगिनी वरखी ब्रह्मावादिनी ॥४२॥

आप-ध्रुव-सोम-धव-अनिल-अनल-प्रत्यूष और प्रभास ये सब वसु नाम से कहे गये हैं ॥३६॥ आप का पुत्र वंतण्ड, श्रम, शान्त तथा मुनि ये । ध्रुव का पुत्र भगवान् काल है जो लोक का प्रकालन करने वाला है ॥३७॥ सोम का भगवान् वचर्चा या जिमसे वचर्चस्वी उत्पन्न होता है । धव का आत्मज द्रविण-तथा हुतहव्य रहा था ॥३८॥ मनोहरा का पुत्र शिशिर-प्राण तथा रमण ये । अनिल की भार्या शिवा थी । उसका पुत्र मनोजव हुआ था । और दूसरा अविज्ञातगति था । इस तरह से अनल के दो पुत्र हुए थे ॥३९॥ अग्निपुत्र कुमार शर को तन्वेभ्यो ने वरण किया । उसके शाख-विशाख और नंगमेय पृष्ठज हुए थे ॥४०॥ कृतिक-बार्यों की मन्त्रति कार्तिकेय इस नाम से विद्युत् रहा गया है । प्रत्यूष

का पुत्र देवत ऋषि के नाम वाला था ॥४१॥ देवत के भी क्षमावान् मनीषी हुए थे । बृहस्पति की भविनी ब्रह्मवादिनी वररक्षी थी ॥४२॥

योगसिद्धा जगत् कत्स्नमसक्ता विचचार ह ।

प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३॥

विश्वकर्मा महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापति ।

कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च बाह्वि किं ॥४४॥

भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्ता शिल्पवता वर ।

य सर्वेषां विमानानि दैवतानां चकार ह ॥४५॥

मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन ।

सुरभी कश्यपाद्बुद्धानेकादश विनिर्ममे ॥४६॥

महादेवप्रसादेन तपसा भायिता सती ।

अर्जकपादहिर्युध्यस्त्वष्टा रुद्रश्च बाह्विमान् ॥४७॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित ।

वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥

मृगयाश्च शश्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा ।

एकादशैते विद्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥

सम्पूण जगत् मे असक्त योगसिद्धा विचरण किया करती थी । वसु-
गण मे जो आठवाँ वसु प्रभास था , उसकी वह भार्या थी ॥४१॥
वसुगणो मे जो अष्टम वसु प्रभास था उसकी वह भार्या थी जिसके गम
से महान् भाग वाला विश्वकर्मा प्रजापति समुत्पन्न हुआ । वह विश्व-
कर्मा सहस्रों प्रकार के शिल्पों की रचना वाले थे और देव गणों के
पादों कि अर्पात् भयनादि निर्माण कराने वाले थे ॥४४॥ विश्वकर्मा
सहस्रों प्रकार के भूषणों के निर्माण करने वाले तथा शिल्प के ज्ञाताओं
में परम श्रेष्ठ थे । जिसने सब देवों के लिये विमानों की रचना की थी
॥४५॥ जिस महान् आत्मा के रखने वाले के शिल्प के द्वारा मनुष्य
उपजीवित रहा करते हैं । सुरभी ने कश्यप ऋषि से एकादश रुद्रों की
रचना की ॥४६॥ महादेवजी के प्रसाद से तप के द्वारा वह सती होगई
थी । एकादश रुद्रों के नाम बताये जाते हैं—अर्जकपाद अहिर्युध्यस्त्वष्टा

वीर्यवान् रुद्र-हृ-बहुरूप-व्यम्बक-अपराजित-वृषाकपि, शम्भु, कर्दो-रैवत
मृगव्याध शबं कपाली हे द्विजोत्तमो ! ये एकावश रुद्र त्रिभुवन के
ईश्वर विख्यात हुए हैं ॥४७-४८॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणामभिनीजसाम् ।

पुराणे मुनिशादूर्ध्वं ला यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥५०॥

दारान्भृण्ण्डवं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।

अदितिदितिदंनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥

सुरभिचिन्ता चैव ताम्रा कोद्यवशा इला ।

कद्रुमुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥

पूर्व्वमन्वतरे श्रेष्ठादादशासन् सुरोत्तमाः ।

तुपिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्व्वस्वतेऽन्तरे ॥५३॥

उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।

हितार्थं सर्व्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४॥

आगच्छत द्रुतं देवा अदिति सम्प्रविश्य वं ।

मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नःश्रेयो भविष्यति ॥५५॥

एवमुक्ता तु ते सर्व्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।

मारीचात् कश्यपाज्जाजास्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६॥

हे मुनिशार्दूलो ! इन प्रकार से अमित ओज वाले रुद्रों के शत
समाख्यात किये गये हैं अर्थात् बताया गये हैं । जिसकी पुगण में चर्चा
है और जिनके द्वारा यह समस्त चराचर व्याप्त हो रहा है ॥५०॥ हे
विप्रेन्द्रो ! अब प्रजापति कश्यप की पत्नियों के विषय में आठ लोग
व्यवण करिए । उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा,
खसा, सुरभि, चिन्ता, ताम्रा, कोद्यवशा, इला, कद्रु और मुनि ये इतनी
कश्यप मुनि की दाराएँ थीं । हे विश्वो ! उन सब पत्नियों में जो सन्तानें
हुई थीं उनको भी जान लो ॥५१-५२॥ पूर्व्व मन्वन्तर में परम श्रेष्ठ
दादश सुरोत्तम थे । वैवस्वत मन्वन्तर में वे परस्पर में 'तुपिता'—इस
नाम से कहा करते थे ॥५३॥ चाक्षुष मनु के अन्तर में जब यह उप-
स्थित हुआ तो अति यशस्य उन्हें जाते थे । सनस्त लोको के दिन सम्पा-

दन करने के लिये सब देवगण पश्चिम में समागत होकर बहुत शीघ्र ही अदिति के समीप आगये थे और अदिति में प्रवेश कर गये थे और—
 उन्होंने कहा था—हम मन्वन्तर में प्रसूत होये उससे हमारा भोग होगा ॥५४-५५॥ इस प्रकार से कहे गये थे सब चाक्षुष मनु के अन्तर में मारीच कश्यप के तीर्थ से दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥५६॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञात पुनरेव हि ।

अयमा चैव घाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७॥

विश्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।

अथो भगवन्नातितजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासस्ते तुपिताः सुराः ।

वक्त्रस्वतेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः ।

सप्तविंशति ताः प्रोक्ता सोमवन्धो महावताः ।

तासामपत्यान्यभवन् दध्यान्वमिततेजसः ॥५९॥

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह योदश ।

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६०॥

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वम् ऋचो ब्रह्मपिसङ्ख्याः ।

कृशाश्वस्य च देवर्षेदशप्रहरणा स्मृताः ॥६१॥

एते युगसहस्रांते जायन्ते पुनरेव हि ।

सर्वे देवगणाश्चान्न त्र्यम्बकस्तु कामजाः ॥६२॥

तेषामपि च श्री विष्णो निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।

यथा सूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥६३॥

सप्त विष्णु-इन्द्र-पुनः समुत्पन्न हुए थे । अयमा-घाता-त्वष्टा-पूषा-विश्वान् सविता-मित्रवरुण-अश-वस और अतितेजा ये द्वादश आदित्य कहे गये हैं ॥५७- ८॥ ये चाक्षुष के अन्तर में पण्डिते तुपितासुर थे । वेवस्वत मन्वन्तर में ये द्वादश आदित्य कहे गये हैं । सोम की पत्नियाँ सत्ताईस महान् व्रत वाली कही गयी हैं । उनही सत्तान् अमित तेज वाली परम दीप्ता हुई थीं ॥५९॥ अरिष्टनेमि की पत्नियों की सन्तति

सोलह हुई थी । बहुपुत्र विद्वान् के चार विद्युन् कही गयी हैं ॥६०॥
 चाक्षुषमनु के अन्तर में पूर्वञ्चत्वाएँ ब्रह्मणियो के द्वारा सस्कृत थी ।
 वैवर्षि कुशाश्व की दैव प्रहरण नाम से कही गयी हैं ॥६१॥ ये सब
 एक सहस्र युगों के अन्त में पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं समस्त देवगण
 कामज यहाँ पर तैंगीस हैं ॥६२॥ हे विप्रो ! उनकी भी निरोधोत्पत्ति
 कही जाती है । जिस तरह से गगन में सूर्यदेव का यहाँ पर उदय और
 अस्त होना ही हुआ करते हैं ॥६३॥

एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ।

दिश्याः पुत्रद्वय जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुताम् ॥६४॥

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ।

सिंहिकाचाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहा ॥६५॥

सैहिकेया इति ख्याता तस्याः पुत्रा महाबलाः ।

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रविनीजसः ॥६६॥

ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।

सह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्घ्रादपुत्रो हृदस्तथा ॥६७॥

हृदस्य पुत्री द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च ।

विरोचनस्तु प्रह्लादिवलिजज्ञे विरोचनात् ॥६८॥

बलेः पुत्रसत त्वामीद्वारण्येष्वं तपोधनाः ।

घृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चन्द्रमाश्चन्द्रनापनः ॥६९॥

कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ।

वाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०॥

इसी प्रकार से देवों के निकाय अर्थात् समुदाय गुण-गुण में उत्पन्न
 हुआ करते हैं । दिति के गर्भ से कश्यप महर्षि के वीर्य से दो पुत्र हुए
 थे—ऐसा ही हमने सुना है ॥६४॥ एक का नाम हिरण्यकशिपु या और
 दूसरा महान् बल वीर्य वाला हिरण्याक्ष था । एक सिंहिका नाम वाली
 कन्या थी जो विप्रचित्ति का परिग्रह थी ॥६५॥ उनके महान् बल वाले
 पुत्र “सैहिकेय”—इन नाम से प्रसिद्ध हुए थे । हिरण्यकशिपु के प्रथित
 गोज बाने चार पुत्र हुए थे ॥६६॥ ह्लाद-अनुह्लाद और वीर्यवान् प्रह्लाद

या चीया पुत्र संह दया ह्याद का पुत्र ह्यदृष्टमा या ॥६७॥ हृद
के दो महान् वीर पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनके नाम शिव और काल थे
वो थे । प्राह्लादि विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचन से बलि ने जन्म
ग्रहण किया था ॥६८॥ राजा बलि के एक सौ पुत्रों ने जन्म लिया था ।
हे तपोधनो ! उन मंत्र में बाण मन्त्रसे बड़ा पुत्र था । अन्य पुत्रों के नाम
भी धृतराष्ट्र सूर्य-चन्द्रमा-चन्द्रनाभ-कुम्भनाभ-गवर्द्धमाद्य और कुलि
इत्यादि थे । उन सब में बाण अत्यन्त बलवान् और ज्येष्ठ था जो कि
मगवान् पशुपति का अत्यन्त प्रिय भक्त था ॥६९-७०॥

पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापति प्रभुम् ।
पार्श्वतो विहारण्यामि इत्येव याचितो वरः ॥७१
हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः ।
उज्जरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२
महानामश्च विमान्तः कालनाभस्तथैव च ।
अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमाः ॥७३
तपस्विनो महावीर्या प्राधान्येन ब्रवीमि तान् ।
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा ह्यशिरा विभुः ॥७४
अयोमुखः शम्बरश्च करिलो वामनस्तथा ।
भारीचिर्मघवाणश्चैव इत्वलः खसृमस्तथा ॥७५
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतहृदो ।
इन्द्रजित्सर्वजिह्वश्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७
स्वर्भानुवृषपर्वश्च विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ।
सर्व एत दनोः पुत्रा कस्यपादमिजजिरे ॥७८

पहिले कल्प में बाण ने उमापति प्रभु को प्रसन्न करके पार्श्व भाग
में विहार करूँगा-यह वरदान माँगा था ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र भी
महान् बलवान् और परम विद्वान् थे । उज्जर-शकुनि-भूत सन्तापन
महानाभ विमान्त और कालनाभ आदि इनके परम तीव्र पराक्रम वाले

एक सौ पुत्र हुए थे । ये बड़े तपस्वी महान, वीर्य वाले थे । उनमें जो विशेष प्रधान थे उनके नाम इस समय में मैं बतलाता हूँ । द्विमूर्धा-शंकु-कर्ण, हयशिरा, विभ्रु, त्रयोमुख, शम्बर, करिल, वामन, मारीचि, मघवान् इत्यल, क्षत्रुम ये तथा विश्वोमण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वप्तरनाभ, एकचक्र, महाबाहु महाबल, तारक वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ये सब दनु के ही पुत्र थे जो महर्षि कश्यपजी के वीर्य से दनु के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥७२-७८॥

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।

एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्य द्विजोत्तमाः ॥७३॥

प्रसंख्यातुं बहूस्वाञ्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।

स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोमस्तु शची सुता ॥७४॥

उपदानवी हयशिराः शमिष्ठा वार्षपर्व्वशी ।

पुलोमा कालिका चैव वंशानरमुते उभे ।

बह्वपत्ये मृहापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥७५॥

तयोः पुत्रसहस्राणि पष्टिर्दानवनन्दनाः ।

चतुर्वंशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ।

मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥७६॥

पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ।

अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥७७॥

पितामहप्रसादेन ये हताः सग्यसाचिना ।

ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वितिदारुणाः ॥७८॥

विप्रचित्ति जिनमें परम प्रमुख था ऐसे थे सब दानव महान बलवान् थे । हे द्विजोत्तमो ! इनके पुत्रों और पौत्रों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि उनकी संख्या नहीं की जा सकती है क्योंकि इतने ज्यादा थे तथा अनन्त थे कि गणना हो ही नहीं सकती है । स्वर्भानु, की कन्या प्रभा नाम वाली थी और शची पुलोमा की पुत्री थी ॥७३-८०॥ उपदानवी हयशिरा, शमिष्ठा, वार्षपर्व्वशी और पुलोमा कालिका ये दोनों

वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं । बहुत सतति वाली और महान् सन्तान वाली मारीचि का परिग्रह था ॥८१॥ इन दोनों में महान् तपस्या से युक्त मारीचि ने साठ हजार दानव मन्दन पुत्र और चौदह सौ अथ द्विरण्यपुर वासी लोगों को जन्मग्रहण कराया था ॥८२॥ वे द्विरण्यपुर के निवास करने वाले पौलोम कालकेय और महान् बज्रवान् दानव जी देवों के द्वारा भी बध करने के योग्य नहीं थे उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ पितामह व प्रसाद से ही ये ऐसे हुए थे किन्तु वे मन्थपात्री के द्वारा हन हुए थे । इसके अनन्तर महान् वीरवाले अत्यन्त दारुण दूसरे दानव भी हुए थे ॥८४॥

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्ते सुतास्तथा ।

दैत्यदानवसयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमा ॥८५॥

सिंहिकेया इति रमातास्तयोदश महाबलाः ।

वशा शल्यश्च वलिनी नलश्चैव तथा वल ॥८६॥

वातापिर्नमुचिश्चैव इत्यल खसृमस्तथा ।

अम्बिको नरकश्चैव कालनाभस्मथैव च ॥८७॥

सरमाणस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्यवान् ॥८८॥

मुकश्चैव तुहुण्डश्च हृदपुत्रौ बभूवतु ।

मारीच सुन्वपुत्रश्च प्रस्तुताया व्यजामत ॥८९॥

एते वै दानवा अष्टा दनोर्वैश्विर्वर्द्धनाः ।

तेषां पुत्राश्च पीत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः ॥९०॥

सह्यादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचा कुले ।

समुत्पन्ना सुमहता तपसा भावितात्मनः ॥९१॥

ये सब दानव विप्रचित्ति के मुक्त सिंहिका से उत्पन्न हुए थे और दैत्यों तथा दानवों के संयोग से ये सब बहुत ही तीव्र पराक्रम वाले हुए थे ॥८५॥ ये तेरह महान् बल वाले सिंहिकेय इस नाम से विख्यात हुए थे । बज्रवान् वशा और शल्य नल तथा बल वातापि, नमुचि इत्यल खसृम अम्बिक, नरक, कालनाभ, सामाण और वीर्यवान् स्वरकल्पयुक्त और तुहुण्ड दोनों हृद के पुत्र थे । मारीच और सुदपुत्र प्रस्तुता में समुत्पन्न हुए थे

॥८६-८८॥ ये परम श्रेष्ठ और दनु के वंश का वर्धन करने वाले हुए थे । उनके पुत्र पोत्र संरुद्धों तथा सहस्रों ही हुए थे ॥८९॥ संह्लाद दैत्य के कुल में निवात कबच सुमहान् तप से भावित आश्रय वाले समुत्पन्न हुए थे ॥९०॥

तिर्यः कोटयः सुतास्तेषामनिवत्यां निवासिनः ।

अवध्यास्तेऽपि देवानामज्जुनेन निपातिताः ।

पट्सुताः सुमहाभागास्तान्नायाः परिकीर्तिताः ॥९१॥

क्रीञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ।

क्रीञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९२॥

श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि ।

शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९३॥

अश्वानुष्टान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ।

विनतायास्तु द्वौ पुत्री विष्ण्वातो गरुडाक्ष्णौ ॥९४॥

गरुडः पतता श्रेष्ठो दाहणः स्वेन कम्मंणा ।

सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितीजसाम् ॥९५॥

अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महारमनाम् ।

काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितीजसः ॥९६॥

सुपर्णवशागा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः ।

येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥९७॥

इसके तीस करोड़ पुत्र थे जो अनिवृत्ति में निवास करने वाले थे । वे सभी देवी के द्वारा अवधय थे तथा अजुने ने उनको मार गिराया था । छ पुत्र महान् पाप वाले तान्ना के बताये गये हैं ॥९२॥ श्येनीने श्येनों को, भासी ने भासों को, गृध्र्यपि ने गृध्रों को, शुचि ने जल में रहने वालों को तथा द्विजोत्तमों । सुग्रीवी ने पक्षिगणों को उत्पन्न किया था तथा अश्वों का- उष्ट्रों को और गर्दभों को जन्म दिया था । यह तान्ना वंश वर्णन किया गया है । विनता नाम वाली कश्यप मुनि की पत्नी के दो पुत्र हुए थे । एक का नाम गरुड था और दूसरा अक्षण था ॥९३-९४॥ गरुड पक्षियों में परम श्रेष्ठ था तथा महान् दाहण अपने कर्म से

या । सुरसा नाम की भार्या से अपरिमित ओज वाले सर्पों के एक सहस्र पुत्र हुए थे ॥६६॥ हे विप्रगणो ! अनेक शिर वाले महात्मा खचरों के अमित ओज वाले एक सहस्र महान् बलवान् काद्रवेय हुए थे ॥६७॥ अनेक मस्तकी वाले सुपर्ण वरुण नाम उत्पन्न हुए थे अनेक निर-नर शेष वासुकि और तक्षक ये तीनों प्रमुख थे ॥६८॥

ऐरावती महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ।

एलापन्नश्च शङ्खश्च कर्कोटकघनञ्जयौ ॥६९॥

महानीलमहाकणौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ।

कुहर पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥

शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ।

नहुषः शङ्खरोमाञ्च मनिरित्येवमादयः ॥१०१॥

तेषां पुत्राश्च पीशाश्च शलशोऽप्य सहस्रशः ।

चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२॥

गण क्रोधवश विप्रास्तस्य सर्वे च दष्टिणः ।

स्थलजा पक्षिणोऽजाश्च धराया प्रसवा स्मृता ॥१०३॥

गास्तु च जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा । *

इरा वृक्षलता बल्लीस्तु नजातीश्च सर्वशः ॥१०४॥

खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।

अरिष्टा तु महासिद्धा गन्धर्वानमितोजसः ॥१०५॥

ऐरावत-महापद्म दोनों कम्बल और अश्वतर एलापन्न-शङ्ख कर्कोटक घनञ्जय महानील महाकर्ण-धृतराष्ट्र-बलाहक-कुहर पुष्पदंष्ट्र दुर्मुख सुमुख शङ्ख शङ्खपाल कपिल-वामन-नहुष-शङ्ख रोमा और मनि इत्यादि उनक पुत्र तथा पीशा संकडों एवं सहस्रों ही थे । इन अनिल (वायु) के अणन करने वाली के जो बहुत ही क्रूर हैं पीदह सहस्र भेद प्रभेद हैं ॥६६-१०२॥ हे विप्रो ! उसका गण क्रोध के वशीभूत था और उसके समस्त दूहा वाले हुए हैं । स्थल में उत्पन्न पक्षी और अज के सब धरा की सम्पत्ति कही गयी है ॥१०३॥ गायों की सुरभि महिषियों का जन्म दिया था । इरा वृक्ष लता, बल्ली और सब तनु जातीयों को उत्पन्न

किया था ॥१०४॥ खसा नाम वाली कश्यपजी की पत्नी ने यक्षों और राक्षसों को जन्म ग्रहण कराया था तथा मुनि ने अप्सराओं को समुत्पन्न किया था । अरिष्टा महासिद्धा थी । उसने अमित अोज वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥१०५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्याणुजङ्गमाः ।

येषां पुत्राश्च पौत्राश्च क्षतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥

एष मन्वन्तरे विप्राः सगंः स्वारोचिषे स्मृतः ।

वैवश्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्षतो ॥१०७॥

जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासग इहोक्ष्यते ।

पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥

पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ।

ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।

कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तथा ॥११०॥

वरेण छन्दयामास सा च वक्रं वरं तदा ।

पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितोजसम् ॥१११॥

स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः ।

दत्त्वा च वरमत्युग्रो भारीचः समभाषत ॥११२॥

इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै धारदा क्षतम् ।

यदि धारयसे शीघ्रतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥

तथेत्यभिहितो भर्ता तथा देव्या महातपाः ।

धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥

ये सब कश्यप मुनि के दायाद थे जो भी स्याणु और जगम क्षत-
साये गये हैं । जिनके पुत्र और पौत्र सैरुहों तथा सहस्रों की संख्या वाले
हए हैं ॥१०६॥ हे विप्रो ! यह सर्व अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्वारो-
चिष मन्वन्तर में बतार्द गयी है । अति महान्- वैवस्वत मन्वन्तर में
वारुण क्षतु के वितत होने पर ब्राह्मणों को देने वाले ब्रह्मर्षी का जो प्रजा
का गृहण हुआ था वह अब यहाँ पर बतलाया जाता है ॥१०७॥ जहाँ

पर पूर्व में सात मानस ब्रह्मपियों के उत्पन्न होने पर स्वयं ही पितामह ने उनकी अपना पुत्र मान लिया था । इसके पश्चात् हे द्विजगणो ! देशों और दानवों का विरोध उत्पन्न होगया था ॥१०८-१०९॥ जिसके पुत्र पृथ्वी में नष्ट हो गये थे ऐसी उस दिति ने कश्यप जी की सन्तुष्टि अर्थात् प्रसन्न किया था । उन प्रसन्न आत्मा वाले कश्यप जी की उस दिति ने मली भाति आराधना की थी ॥११०॥ अब कश्यपजी ने उसे वरदान माँगने की आज्ञा दी तो उस समय में उसने कश्यप जी ने यही वरदान माँगा था कि मुझे इन्द्र के वध करने के लिये शक्ति शाली एवं अपरिमित अोज वाला पुत्र प्रदान कीजिए ॥१११॥ वह महामु तपस्वी कश्यप महर्षिसे जब ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने उसकी वही वरदान दे दिया था । अत्यन्त उग्र मारीच ने वरदान देकर उससे यह कहा था ॥११२॥ इन्द्र के मारने वाला पुत्र तो होगा किन्तु उसकी यदि तू सो वर्ष तक गर्भ में परम शीघ्र व्रत में परायण होकर धारण कर लेगो । सो वर्ष पर्यन्त पुरा व्रत रखना होगा ॥११३॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उस देवी दिति ने ऐसा ही करूँगी—यह कहकर अपने स्वामी कश्यप जी की सन्तुष्टि कर दिया था । फिर महा तपस्वी से उस देवी ने परम शुचि होकर गर्भधारण कर लिया था ॥११४॥

ततोऽभ्युपागमद्विषां गर्भमाधाय कश्यपः ।

रौघयन् यं गणं श्रेष्ठं देवनाममितीजसम् ॥११५॥

तैजः सहस्रं दुर्घर्षं भवध्यममरं रपि ।

जगाम पृथ्व्यायैव तपसे संशितव्रता ॥११६॥

तस्याश्र्वान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः ।

जाते वर्षं शते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७॥

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः क्षयनमाविशत् ।

निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सा ॥११८॥

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं म्यकुन्तयत् ।

स पाटघ्नमभानो गर्भोऽथ वज्रेण प्रकरोद ह ॥११९॥

इसके अनन्तर कश्यप मुनि आप स्वयं दिति में गर्भ धारण कराकर वहा से चले गये थे और देवी का जो परम श्रेष्ठ गण था जिसका ओज प्रमित था उसका रोधन करने वाला तथा देवी के द्वारा भी अवध्य अपना दुष्पर्व तेज उसमें डालकर थे चले गये थे । फिर व्रतघारिणी ! दिति भी तर्प के लिये पर्वत पर चली गयी थी ॥११५-११६॥ इन्द्र उस दिति के उदर में गमन करने की इच्छा वासा हो गया था । एक सीमा व्यं जब व्रत का चल रहा था उस समय में इन्द्र ने उस तपोव्रत में अन्तर देखा था कि अपने देवी को न छोकर ही बिना शीघ्र किये दिति अपनी शय्या पर शयन करने की चली गयी थी और निद्रा लेने लग गयी थी । उनी व्रत के विरुद्ध होने के समय में इन्द्र देव ने उस दिति की कुक्षि में प्रवेश किया था ॥११७-११८॥ वज्रपाणि इन्द्र ने दिति के गर्भ को वज्र से काटकर मात टुकड़े कर दिये थे । वज्र के द्वारा जब गर्भ के टुकड़े किये गये थे उस समय में वह गर्भ उदन करने लगा था ॥११९॥

मा रोदीदिति त शक्रः पुनः पुनरथाद्रवीत् ।

सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुपितः पुनः ॥१२०॥

एकैक सप्तधा शक्रः वज्रेणैवारिकर्षितः ।

मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमा ॥१२१॥

यथोक्त वै मघन्नता तथैव मरुतोऽभवन् ।

देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२॥

तेषामेव प्रवृत्ताना भूताना द्विजसत्तमाः ।

रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितीजसाम् ॥१२३॥

निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।

क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्व्वारिणो भो द्विजाः ॥१२४॥

स हरिः पुरुषो वीरः कुष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।

पर्जन्यस्तपनोऽमन्तस्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥१२५॥

भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमा ।

नावृत्तिभयमस्तीह परलो रुभय कुतः ॥१२६॥

उस समय में इन्द्र ने बारम्बार उस गर्मस्य बालक से कहा था—
 'तू रदन मत करे' । वह गर्म सात टुकड़ों में जब होगया था तो इन्द्र
 ने फिर उसके एक-एक टुकड़े के भी सात-सात खण्ड कर दिये थे क्योंकि
 इन्द्रदेव तो शत्रु क कर्षण करने के लिये ही उदर में प्रविष्ट हुए थे ।
 हे द्विजधेष्ठो ! वे सब मरुद्गण नाम वाले देव हुए थे ॥१२०-१०१॥
 मधवाद् ने जैसा भी कहा था वैसे ही मदन हुए थे । ये उनवास देवगण
 इन्द्र के सहायक ही हुए थे ॥१२२॥ हे द्विजधेष्ठो ! अपरिमित अन्न
 वाले देवों के जो समस्त भूतों में प्रवृत्त हैं उन्हीं गण धेष्ठों को वे देव
 रोचित किया करते हैं । इन्द्रदेव ने प्रजापतियों को उनके निकायो में
 उनको दे दिया था । हे द्विजी ! उनकी कृप से पृथु पूर्व राज्य प्रदान
 कर दिये थे । वह हरि वीर पुरुष है तथा कृष्ण अपन शील और प्रजाओं
 का स्वामी है । वही पार्जन्य है—तपन है—और अनन्त है तथा उसी का
 यह सम्पूर्ण जगत् है ॥१२३-१२४॥ हे द्विजधेष्ठो ! इन प्रकार से इन
 भूतों में सृजन को जो जानता है और अभी प्रकार से ज्ञान रखता है
 उसको पुनर्जन्म ग्रहण करने का भव तो होता ही नहीं है फिर परलोक
 का भय भी कैसे होसकता है ॥१२६॥

४—सूर्यवश वर्णन (१)

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।
 इक्ष्वाकुश्च नागागो घृष्ट शर्यातिरेव च ॥१॥
 नरिष्यन्तश्च पष्टो वै प्राशू रिष्टश्च सप्तमः ।
 करूपश्च पृषद्यश्च नवैत मुनिसत्तमाः ॥२॥
 अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुर्निष्ठ प्रजापतिः ।
 मित्रावरुणयोर्विप्रा. पूष्वमेव महामतिः ॥३॥
 अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः ।
 तस्या च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमाः ॥४॥

मित्रावरुणयोरंशो मनुराहुतिमावहत् ।
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५॥
दिव्यसहनना चैव इजा जज्ञ इति श्रुतिः ।
त मिलेत्येव होवाच मनुदंष्ट्र धरस्तदा ॥६॥
अनुगच्छस्व मां भद्रं तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्मंयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥७॥

श्री जीमहर्षि जी ने कहा—वैवस्वत मनु के सन्हीं के समान परम श्रेष्ठ भी पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु-नाभाग-घृष्ट-शर्मति-नरिष्यन्त और छट्वा प्राशु-सातवीं रिष्ट-कश्यप-वृषभ मे भी पुत्र थे ॥१-२॥ पुत्र की कामना वाले प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था हे विप्रो ! उस महती मति वाले मनु ने पहिले ही मित्रावरुणों की इष्टि की थी जब तक इसके बहुत से पुत्र समुत्पन्न नहीं हुए थे । हे द्विज-श्रेष्ठो ! उस वर्तमान इष्टि में अर्थात् यज्ञ में मनु ने मित्रावरुणों के अंश में आहुति दी थी । उसमें परम दिव्य वस्त्रों के धारण करने वाली तम्रा दिव्य आभरणों से विभूषित और दिव्य सहनन वाली इजा समुत्पन्न हुई थी—ऐसी श्रुति है । उस अवस्था में ऋद्धदारी मनु ने उस इजा से यह कहा था ॥३-६॥ हे भद्र ! मेरे पीछे आतामन करो । उस समय मैं उस मनु से इजा ने जोकि धर्म से युक्त और पुत्र की कामना करने वाला प्रजापति था, यह कहा था ॥७॥

मित्रावरुणयोरंशो जातास्मि वदन्तीवर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्महतां कुरु ॥८॥
सेवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरित्ता ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वक्त्रमब्रवीत् ॥९॥
अंशोऽस्मि युवयोर्योता देवौ किं करवाणि वासु ।
मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०॥
तो तथावादिनीं साध्वीमितां धर्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभातुचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वंश्यता गताः ।

प्राशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥२६॥

नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दन्तधरो यमः ।

शर्यातिमिथुन स्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥२७॥

पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।

आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाश्रुतिः ॥२८॥

हे-उत्तम द्विजगण ! धर्मराज सुच मन्त्री की प्रतिष्ठा यह थी कि महान् यश वाले मे प्राप्त करके वह सम्पूर्ण राज्य पुरुरवा की दे दिया था ॥२२॥ हे मूनि श्रेष्ठो ! वह मानवैय स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षणों से युक्त था । स्त्री के लक्षणों से उसका नाम इला-यही था और वह सुदुम्ना-इस नाम से भी विद्युत हुआ था ॥२३॥ नरिष्यन्त शक पुत्र थे और राजा नामाग का पुत्र राजाओं से परम श्रेष्ठ अम्बरीष हुआ था ॥२४॥ घृष्ट का पुत्र धामिक क्षत्रिय था जो रण के बहुत अधिक वर्ष वाला था । कर्ण के कारण रण दुर्भेद क्षत्रिय हुए थे ॥२५॥ नामाग घृष्ट के पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी वैश्य भाव को प्राप्त हो गये थे । प्राशु का एक ही पुत्र था जो प्रजापति-इस नाम से कहा गया है ॥२६॥ नरिष्यन्त का दायाद (पुत्र) राजा दन्तधरयम था । शर्याति राजा के एक पुत्र और पुत्री का जोड़ा था । पुत्र का नाम आनर्त्त प्रसिद्ध था और सुकन्या नाम वाली पुत्री थी जो च्यवन ऋषि की पत्नी हुई थी । आनर्त्त के पुत्र का नाम रैव हुआ था जो महनी श्रुति से सम्पन्न था ॥२७-२८॥

आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थलो ।

रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धाम्मिकः । २९

ज्येष्ठ पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलोम् ।

स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वः ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३०॥

मृहर्त्तभूतं देवस्य तस्थो बहुयुगं द्विजा ।

आजगाम स चंवाय स्वा पुरी यादवैर्वृताम् ॥३१॥

कृतां द्वारवतीं नाम वदुद्वारां मनोरमाम् ।

भोजवृष्ण्यन्धकेगुप्तां वसुदेवपुरोगमे ॥३२॥

तस्मै न रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं द्विजोत्तमाः ।

कन्यां तां वलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम् ॥३३॥

इत्था जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।

रेमे रामोऽपि घर्ममात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३४॥

आनर्त्त का विषय (देश) और इसकी पुरी कुशस्थली थी । रैव का पुत्र रैवत या ककुप्ती परम धार्मिक एवं उसका ज्येष्ठ पुत्र था । वह कुशस्थली के राज्य को वाकर अपनी कन्या के सहित गान्धर्व नगर को सुनकर ब्रह्माजी के समीप पहुँच गया । वह वहाँ परदेव की सन्निधि में एक मुहूर्त मात्र ही ठहरा था किन्तु बहुत से युग व्यतीत होगये थे । वहाँ से जब फिर वदु वापिस आया तो उसने अपनी पुरी को यादवों से घिरी हुई देखा था जो द्वारवती नाम से प्रसिद्ध हुई थी । उसमें बहुत से द्वार थे और बहुत ही सुन्दर थी । भोज और वृत्ति तथा अन्धक जाति वाले यादव क्षत्रियों के द्वारा वह सुरक्षित थी जिनमें वसुदेव प्रमुख थे ॥२६-२८॥ हे द्विजोत्तमो ! वहाँ पर ही रैवत ने यथा तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके उसमें सुभद्रा नाम वाली रेवती कन्या को वलदेवजी को दे दिया था और अपनी कन्या का अर्पण कर के फिर वह मेरु पर्वत पर चला गया था और तप में संस्थित हो गया था । बन्धुरामजी भी परम घर्ममात्मा थे और उस रेवती नाम वाली अपनी पत्नी के साथ परम सुखी होकर रपण किया करते थे ॥३३-३४॥

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।

न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुदमिनम् ॥३५॥

मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातिः सन्ततिः कथम् ।

स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

न जराऽक्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः ।

ऋतुचक्रं प्रमवति ब्रह्मलोके सदानघाः ।

ककुदमिनः स्वर्लोके तु रैवतस्य गतस्य ह ॥३७॥

हृता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली ।
 तस्य भ्रातृशत त्वासीद्वाम्भिकस्य महात्मनः । ३८
 तद्वदध्यमान रक्षोभिर्दिशः प्राकामदच्युताः ।
 विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
 अश्ववायस्तु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः ।
 तेषां ह्येते मुनिधेयाः शर्षाता इति विश्रुताः ॥४०॥
 क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वीसु विश्रुताः ।
 सर्व्वंशः सर्व्वंगहन प्रविष्टास्ते महोजसः ॥४१॥
 नाभागरिष्टपुत्री द्वौ वंश्यो ब्राह्मणना गतौ ।
 करुणस्य तु कारूपाः क्षत्रिया मुदुदुर्मन्दाः ॥४२॥

मुनिगण = कहा—हे महामते ! बहुत से युगों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी उस रेवती को तथा उस ककुभो रेवत को छुड़ाया कैसे नहीं हुआ था ॥३९॥ जब वह स्वयं मेघ पर्वत पर सर करने चला गया था तो उस शर्षाति राजा की सन्तति आज तक भी इस पृथिवी पर कैसे स्थित हुई थी—इस को हम सब लोग ठीक २ सुनना चाहते हैं ॥३६॥ श्री लीमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! ब्रह्म लोक का प्रभाव ही ऐसा भद्दा होता है कि वहा पर न तो वृद्धावस्था होती है और न भूल तथा ध्यास ही सताया करती है । श्रुतियों का भी वहा यह कुछ प्रभाव नहीं होता है । ब्रह्म लोक में तो सब सर्व्वदा अनघ ही रहा करते हैं । जब ककुभो रेवत स्वर्लोक में चला गया था तो हे विप्रगण ! उसकी जो कुशस्थली पुरी थी उसकी पुण्य जन राक्षसों ने हरण कर लिया था । उस महात्मा परम धार्मिक रेवत के ली भाई ये राक्षसों के द्वारा वे बध्यमान होकर इधर-उधर अन्य दिशाओं में भाग गये थे । हे विप्रेन्द्रो ! भागे हुए उन ली भाइयों का वंश बहुत बड़ा था जो जहा-तहा पर स्थित हो गया था हे मुनिगणो ! उनमें के ये शर्षात नाम से प्रतिष्ठित लोग हैं ॥३७-४०॥ ये क्षत्रिय युगों से सुसम्पन्न हैं और सभी ओर से सभी वर्गों में ये भद्दा जोर वाले प्रविष्ट हो गये थे ॥४१॥

नामागारिष्ठ के दो पुत्र जो वैश्य थे ब्राह्मणता को प्राप्त होगये थे ।
कश्यप के काश्यप दक्षिण थे जो युद्ध में बहुत ही दुर्गन्ध थे ॥४२॥

पृथ्वी हिंसयित्वा तु गुरोर्गा द्विजसत्तमाः ।

शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवते परिकीर्त्तिताः ॥४३॥

धैवस्थतस्य तनया मुनेर्वर्च मुनिसत्तमाः ।

ध्रुवतस्तु मनोविप्रा इक्ष्वाकु रमवत् सुतः ॥४४॥

तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिर्दक्षिणाम् ।

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोद्यताम् ॥४५॥

प्राप्तः परमघर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ।

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥४६॥

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः ।

चत्वारिंशददशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥४७॥

वशातिप्रमुखाश्चान्ते रक्षितारो द्विजोत्तमाः ।

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिवा अष्टकामामथादिभ्यत् ॥४८॥

मांसमानय भ्रातृर्धर्मं भृगुान् हत्वा महाबलः ।

भ्रातृकर्मणि चोद्दिष्टे अकृते भ्रातृकर्मणि ॥४९॥

हे द्विज श्रेष्ठो ! पृथ्वी ने अपने ही गुरुदेव की गाय की हिंसा की थी अतएव वह शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था । इस प्रकार से ये भी पुत्रों का वर्णन किया गया है ॥४३॥ हे मुनिसत्तमो ! वैवस्वत मनु के ये पुत्र हुए हैं । हे विप्रमण ! ध्रुवत मनु का इक्ष्वाकु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उग इक्ष्वाकु राजा के बहुत दक्षिणा वाले एक सौ पुत्र हुये थे । उन सब में विकुक्षि नाम वाला पुत्र सब में ज्येष्ठ था । वह विकुक्षित्व होने के कारण अयोध्या को प्राप्त होगया था ॥४५॥ यह बहुत ही अधिक धर्म का जाता था और वही अयोध्या का पति प्रभु हुआ था । उग राजा के पाँच सौ पुत्र हुए थे जिन में शकुनि प्रमुख था । ये सब उत्तरापथ के रक्षा करने वाले महान् बलवान् हुए थे । इनमें से अष्टावन दक्षिण दिशा में रक्षा करने वाले थे । हे त्रिभोक्तमो ! वरु जिनमें प्रमुख थे और अग्न भी रक्षा करने वाले हुए थे । अष्टमा के समय में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि

थी यह आदेश दिया था कि आठ के लिये मांस लाओ । उस महान् बलवान् ने आठ कर्म के उद्दिष्ट होने पर मृगों का हनन करके शश का भक्षण करके वह शश को खाने वाला शिकार करने को चला गया था और आठ का कर्म पूर्ण नहीं हुआ था ॥४६-४८॥

भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगया गतः ।

इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ॥५०॥

इक्ष्वाकी सस्थिने विप्रा. शशादस्तु नृपोऽभवत् ।

शशादस्य तु दायाद. ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ॥५१॥

अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चाननस. स्मृतः ।

विष्टराश्वः पृथो. पुत्रस्तस्मादाद्रंस्त्वजायत ॥५२॥

आद्रं स्य युवनाश्वस्तु आवस्तस्तप्सुनो द्विजाः ।

जज्ञं आवस्तको राजा आवस्ती येन निम्मिता ॥५३॥

आवस्तस्य तु दायादो वृहदश्वो महीपतिः ।

कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ॥५४॥

य. स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागत ॥५५॥

महर्षि वसिष्ठ के वचन से राजा इक्ष्वाकु ने अपना परित्याग कर दिया था ॥५०॥ इक्ष्वाकु के सस्थिज रहने पर ही हे विपणन ! शशाद राजा होगया था । उस शशाद का पुत्र महान् बल शीर्य वाला ककुत्स्थ हुआ था ॥५१॥ इस ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ था और अनेना का पुत्र पृथु कहा गया है । उस पृथु के पुत्र का नाम विष्टराश्व था और फिर उस विष्टराश्व से आद्रं समुत्पन्न हुआ ॥५२॥ आद्रं का पुत्र युवनाश्व समुत्पन्न हुआ । हे द्विजगण ! इस युवनाश्व के पुत्र का नाम आव था । वही आवस्तक राजा हुआ जिसने आवस्ती पुरी का निर्माण किया ॥५३॥ इस आवस्त का दायाद राजा वृहदश्व हुआ । वृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व नाम वाला परम धार्मिक राजा हुआ । यह वही राजा था जिसने धुन्धु का वध किया था और धुन्धुमारत्व को प्राप्त हो गया । ॥५४-५५॥

धुन्धोच्येधं महाप्राज्ञ श्रौतुमिच्छाम तत्त्वतः ।
 यद्वधात्कुवलादवोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः ॥५६॥
 कुवलादवस्य पुत्राणां शतमुत्तमघन्विनाम् ।
 सत्त्वे विद्यासु निष्णाता वनवन्तो दुरासदाः ॥५७॥
 बभूवुर्धर्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
 कुवलाश्वं पिता राज्ये वृहददवो न्ययोजयत् ॥५८॥
 पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ।
 तमुत्तङ्कोऽथ विप्रायः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥
 भवता रक्षणं कार्यं तच्च कर्तुं त्वमर्हसि ।
 निरुद्विग्नस्तपश्चतुः न हि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
 सप्तशतसन्निधौ जं तप्तेषु सप्तशतसु ।
 समुद्रो बालुकापूर्णं उद्दालक इति स्मृतः ॥६१॥
 देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।
 अन्तर्भूमिगतस्तप्त बालुकास्तर्हितो महान् ॥६२॥
 राक्षसस्य मघोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः ।
 शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय धारणम् ॥६३॥

मुनयः न ब्रूयात्—हे महान् प्रजापाल ! हम लोग सब हम पुत्र
 के वध की तारिफ कर रहे हैं क्योंकि ठीक-ठीक पक्ष करने चाहते हैं
 जिससे वध कर देने पर यह कुवलाश्व भी पुत्रों मारने की प्राप्त होगया
 था ॥५६॥ श्री लोगहंपुत्रों ने ब्रूयात्—जब कुवलाश्व के एक ती पुत्र
 थे जो उत्तम अनुप धारी थे, ये सभी समस्त विद्याओं में परम कुशल थे—
 महान् बलशाली थे और शत्रुओं के द्वारा पुत्रमरद भी थे क्योंकि ऐसे थे
 कि शत्रु इनकी जीतने में असमर्थ हो जाते थे ॥५७॥ ये सभी यज्ञ
 करने वाले—अधिक दक्षिणा देने वाले तथा अत्यधिक धार्मिक थे ।
 वृहदश्व, पिता ने कुवलाश्व की राज्यासन पर नियोजन कर दिया था
 ॥५८॥ अपने पुत्र की सम्पूर्ण राज्य भी शौच कर फिर वह राजा वन में
 तपस्व्य करने के लिये जाता गया था । जब वह राजा वन की जा
 रहा था उस समय में उत्तङ्क नाम धारी विप्रों के गपन करने वाले

उसको दारित किया था ॥५६॥ उत्तंक ने कहा—हे राजन् ! आपको अपने राज्य की रक्षा का कर्म करना चाहिए क्योंकि आप रक्षा करने के योग्य हैं । मैं उद्वेग से रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥५७॥ मेरे मामय के समीप मैं तप महद्यन्त्रियों में बालु का पूर्ण समुद्र है जो उद्दालक कहा गया है ॥५८॥ यह देवों के द्वारा भी अवध्य है अर्थात् इसको देवगण भी नहीं मार सकते हैं । यह महान् काया वाला और महान् बलशाली है । वहाँ पर यह भूमि के अन्तर्गत रहता है तथा बालुकाओं में छिपा रहा करता है ॥५९॥ यह मधु नामक राक्षस का पुत्र है और इस महान् असुर का नाम धुम्धु है । परम वारण तप में समास्थित होकर लोको के विनाश करने के लिये ही शयन किया करता है ॥६०॥

सर्वत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वास विमुष्णति ।

यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६१॥

तस्य निःश्वासवातेन रज उद्भयते महत् ।

आदित्यपयमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥६२॥

सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं मभुममतिदारुणम् ।

तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६३॥

त मारय महाकार्यं लोकना हितकाम्यया ।

लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते स्वया ॥६४॥

त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ।

विष्णुना च वरो दत्तो महा पूव्वयुगे नृप ॥६५॥

यस्त महासुर रौद्रं हनिष्यति महाबलम् ।

तस्य त्व वरदानेन तेजश्चाख्यापयिष्यसि ॥६६॥

न हि धु-धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन, शक्यते ।

निर्दग्धु पृथिवीहालं चिर युगशतरपि ॥६७॥

अपि च सुमहत्तमं देवैरपि दुरासदम् ।

स एवमुक्तो राजपिरुतद्भवेन महात्मना ।

कुवलाश्वं सुत प्रादात्तस्मै धुन्धनिवहणे ॥६८॥

वह सम्बत्सर के पर्यन्त में अपना निश्वास छोड़ता है जिस समय में यह निश्वास छोड़ता है उस समय में हे नराधिप ! यह सम्पूर्ण भूमि जनायमान होजाती थी ॥६४॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत अधिक रज उड़ा करती है और वह रज सूर्य के मार्ग की रोककर एक सप्ताह तक भूमि का कम्पन कर दिया करता है ॥६५॥ वह मधु विष्णुलिङ्गों से युक्त तथा अंगारों वाला परम दानव है । हे तात ! इसके कारण से उस अपने आश्रम में मैं स्थिर नहीं रह सकता हूँ ॥६६॥ अतएव सभी लोगों के हित की कामना से आप उसकी मारिए जो कि महान् शरीर वाला दानव राक्षस है । आपके द्वारा उसके मारे जाने पर सभी लोक आज सस्य हो जायेंगे ॥६७॥ हे राजन् ! आप ही एक ऐसे हैं जो उसके मार देने की शक्ति रखते हैं । हे नृप ! पूर्व युग में भगवान् विष्णु ने मुझे वरदान दिया था । जो उस महान् बलवान् और रौद्र महामुर को मार डालेगा उसके वरदान से तुम तेज को आशयावित्त करोगे ॥६८-६९॥ हे पृथ्वीपाल ! धुन्धु बल महान् तेज वाला है और किसी भी अल्प तेज वाले के द्वारा चिरकाल तक और सैकड़ों युगों में भी निर्वाध नहीं किया जा सकता है ॥७०॥ उसका बल धीरे बहुत ही अधिक है जिसको देवगण भी नहीं सहन कर सकते हैं । अतएव महात्मा के द्वारा वह राजपि इस प्रकार से कहा गया था । उस धुन्धु के निर्वर्ण करने के कार्य में उसने अपने पुत्र कुवसायन को उसके सुपुत्र कर दिया था ॥७१॥

भगवन्पस्नशस्त्रोऽहमय तू तनयो मम ।

भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥७२॥

स तं व्यादिश्य तनयं राजपिधुन्धुमारणे ।

जगाम पर्वतायैव नृपतिः संक्षिप्तव्रतः ॥७३॥

कुवसायवस्तु पुत्राणां शतेन सह भी द्विजाः ।

प्रामादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबहणे ॥७४॥

तमाविशतदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः ।

उत्तङ्कस्य नियोगाद् लोकानां हितवाम्भया ॥७५॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धयं दिवि शब्दो महानभूत् ।
 एष श्रीमानवध्योऽथ धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
 दिव्यगन्धैश्च माल्यैश्च तं देवाः समवाकिरन् ।
 देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमा ॥७७॥

बृहदश्व ने कहा—हे भगवन् ! मैं तो शस्त्रों का त्याग कर देने वाला होगया हूँ । हे द्विजर्षेष्ठ ! यह मेरा पुत्र धुन्धु के मार देने वाला होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री सोमहर्षणजी ने कहा—वह राजा अपने पुत्र को उस धुन्धु के मारने के कार्य के लिये आज्ञा देकर स्वयं तो समिष्ठ-प्रत नृपति पर्वत को ही चला गया था ॥७२-७३॥ हे द्विजगणों ! वह कुबलाश्व अपने सौ पुत्रों के सहित उत्तंक को साथ में लेकर उस धुन्धु दैत्य के मारने के लिये वहीं से रवाना होगया था ॥७४॥ उस समय में प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंक के नियोग से लोको के हित की कामना से तेज के द्वारा उसमें आविष्ट होगये थे ॥७५॥ उस दुर्द्धय के प्रयाण करने पर दिवसीक में महान् शब्द हुआ था कि आज यह श्रीमान् धुन्धुमार अवध्य होगा ॥७६॥ देवगण न इन्द्रगन्ध और माल्यो से उस पर दृष्टि की थी । हे द्विजवत्समी ! देव दुन्दुभियाँ उस समय में बजने लग गयी थीं ॥७७॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह बीर्मवान् ।
 समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८॥
 तस्य पुत्नैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हिन्स्तदा ।
 धुन्धुरामदितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ ८॥
 मुखजेनाग्निना क्रोधात्सोऽकानुदूर्त्तयश्चिव ।
 वारि सुस्ताव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥८०॥
 सोमस्य मुनिशादुर्दुला वरोम्मिकलिलो महान् ।
 तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरुन्नु रक्षसा ॥८१॥
 ततः स राजा धुतिमान् राक्षसं त महाबलम् ।
 आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः ॥८२॥

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ।

योगी योगेन बल्लिञ्च क्षमयामास वारिणा ॥८३॥

निहत्य त महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।

उत्ताङ्कं दर्शयामास कृतकर्म नराधिपः ॥८४॥

वह श्रेष्ठ धीर्यवान् अपने पुत्रों के साथ वहाँ पर जाकर विजय प्राप्त करे । उस अव्यय बालुका-तर समुद्र को खनन किया था ॥७८॥ उसके पुत्रों ने जब समुद्र का खनन किया तो उन्होंने उस समय में बालुका में छिपे हुए उसको प्राप्त किया था । वह धुन्धु पश्चिम दिशा में आवृत्त होकर वहाँ पर स्थित प्राप्त होगया था ॥७९॥ उसने क्रोध से मुख में उदात्त अग्नि के द्वारा लोगों को उद्धृति करते हुए बड़े वेग से उदय काल में समुद्र के समान जल कर स्रवण किया था ॥८०॥ हे मुनि शाङ्खली ! सीम के उदय में श्रेष्ठ कर्मियों से कलिल और महान् वह होगया था उस राक्षस ने तीन कम उसके सौ पुत्रों को दण्ड कर दिया था ॥८१॥ इसके अनन्तर उस धुन्धु के विनाश करने वाले राजा ने जो बहुत धृतिमान् था उस महान् बलशाली राक्षस को प्राप्त किया था क्योंकि वह नृप भी महान् तेजस्वी था ॥८२॥ उसके वारिमय वेग को पान करके उस नराधिप ने जो योगी था, योग के द्वारा जल से उसकी फौज हुई अग्नि को शान्त कर दिया ॥८३॥ कृतकर्म नराधिप ने अपने बल से उस उदक राक्षस को जो महान् शरीर वाला था मारकर उस उत्ताङ्क को दिखा दिया था ॥८४॥

उत्ताङ्कस्य वरं प्रादात्तास्मै राज्ञे महात्मने ।

ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५॥

धर्मं रतिश्च सनतं स्वर्गं वास तथाक्षयम् ।

पुत्राणां चाक्षयंल्लोकान् स्वर्गं ये रक्षसा हृताः ॥८६॥

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।

चन्द्राश्वकपिलाश्वो तु कनीयांसौ कुमारकी ॥८७॥

धोन्धुमारहे दृढाश्वस्य हय्यंश्वश्चात्मजः स्मृतः ।

हय्यंश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्र धर्मंरता सदा ॥८८॥

सहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः ।

अकृशाश्वकृशाश्वो तु सहताश्वसुतो द्विजाः ॥८८॥

तस्य हैमवती कन्या स ता मत्वा ह्यपद्वती ।

विद्ययाता त्रिपु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥ ०

लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरी नाम पतिव्रताम् ।

अभिषस्ता तु सा भर्ता नदी वं बाहुदामवत् ॥८९॥

उस महान् आत्मा वाले राजा को उक्त क ने वरदान दिया था । उसको अक्षय धन दिया था और शत्रुओं के द्वारा अपराजित होने का भी वरदान दिया था ॥८५॥ धर्म में निरन्तर रति तथा स्वर्ग में अक्षय निवास और जो उस राजस के द्वारा पुत्र मार खाले गये थे उनकी स्वर्ग में अक्षय लोकों की प्राप्ति का वरदान दिया था ॥८६॥ अब उस राजा के उन सौ पुत्रों में से केवल तीन ही बचे थे । उन तीनों में दृढाश्व सबसे बड़ा पुत्र था । चन्द्राश्व और कपिताश्व ये दो छोटे कुमार थे ॥८७॥ धीमृमारि का जो दृढाश्व पूज था उसका पुत्र ह्यश्व कहा गया है । ह्यश्व का पुत्र निकुम्भ नाम वाला उत्पन्न हुआ था जो सदा क्षत्रियों के धर्म में रति रखने वाला था ॥८८॥ निकुम्भ का पुत्र सहताश्व हुआ था जो रण करने की विद्या का बहुत यत्न पण्डित था । हे द्विजो ! उस सहताश्व के अकृशाश्व और कृशाश्व दो पुत्र हुए थे ॥८९॥ उसकी हैमवती नाम वाली एक कन्या थी वह उसको ह्यपद्वती मानता था और इसी नाम से वह तीनों लोकों में विख्यात हुई थी । उसके पुत्र का नाम प्रसेनजित् था ॥९०॥ उस प्रसेनजित् ने गौरी नाम वाली परम पतिव्रता भार्या प्राप्त की थी । वह भर्ता के द्वारा अभिषिक्त होगई थी और बाहुदा नाम की नदी होगई थी ॥९१॥

तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्रो नराधिपः ।

मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥९२॥

तस्य चैत्ररथी भार्या शशविन्दोः सुताभवत् ।

साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥९३॥

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य वै ।
 तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुनौ द्विजाः ॥८४॥
 पुरुकुत्सश्च धम्मंजं मुचुकुन्दञ्च पार्थिवम् ।
 पुरुकुत्ससुतस्त्वामीत्ससस्युर्महीपतिः ॥८५॥
 नम्मंदायामथोत्पन्नः सम्भृतस्तस्य चारमजः ।
 सम्भृतस्य तु दायादस्तिघन्वा रिपुमर्दनः ॥८६॥
 राजस्त्रिघन्वनस्त्वासीद्विद्वास्त्रय्यारुणः प्रभुः ।
 तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ॥८७॥
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्र सुदुर्मतिः ।
 येन भाट्या कृतोद्वाहा हता चैव परस्य ह ॥८८॥

उस प्रसेनजित का पुत्र युवनाश्व महान् नराधिप हुआ था । उस युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुआ था जो तीनो लोकों का विजय करने वाला बड़ा प्रतापी राजा हुआ है ॥८४॥ उसकी भार्या शैत्ररपी शश-विन्दु की पुत्री हुई थी । यह विन्दुमती नाम वाली भूलोक में रूप सावण्य में अनुपम थी और परम साखी थी ॥८५॥ यह पतिव्रता थी और दस हजार अपने भाइयों में सबसे बड़ी थी । हे द्विजवध ! मान्धाता ने उस क्षत्री परम की गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥८६॥ एक परम धर्मज पुरुकुत्स था और दूसरा मुचुकुन्द राजा था । इस पुरुकुत्स के पुत्र का नाम असदस्यु महीपति था ॥८७॥ इस असदस्यु के पुत्र का नाम सम्भृत था जो नर्मदा नाम वाली रानी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था और इस सम्भृत का सुत त्रिघन्वा था जो शत्रुओं का मर्दन करने वाला हुआ था ॥८८॥ उसका पुत्र बटान् त्रय्यारुण प्रभु हुआ था । इसके जो कुमार हुआ था वह सत्यव्रत नाम वाला और महान् बलवान् हुआ था ॥८९॥ इस सुदुर्मति ने परिग्रहण मन्त्रों का विघ्न किया था जिसने दूसरे की विवाहिता स्त्री का हरण किया था ॥९०॥

यात्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसञ्चापलेन च ।
 जहार कन्या कामार्त्ता कस्यचित् पुरवासिनः ॥९१॥

अघर्ममंडकुना तेन त स सत्यपारुणोऽत्यजत् ।
 अश्वमेने बहुशो वदन् क्रोधसमन्विन ॥१००॥
 सोऽन्नवीत् पितर त्यक्तं नव गच्छामीति वै मुहुः ।
 पिता च तमयोवाच श्वपार्कः सह वर्त्त्य ॥१०१॥
 नाह पुक्षेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपासन ।
 इत्युक्त स निराकामनगराद्वचनात् पिनु ॥१०२॥
 न च त वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ।
 स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसयान्तिके ॥१०३॥
 पित्रा त्यक्तोऽवसद्वोरः पिताप्यस्य वन ययी ।
 ततस्तस्मिस्तु विषये नावपत् पाकशासन ॥१०४॥
 समा द्वादश भो विप्रास्तेनाघर्मणा वै तदा ।
 दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो मदातपाः ॥१०५॥

वचन से—कामवासना से-गृहस से और चरनता से कामात् होकर
 किसी पुरवासी की कन्या का अपने हरण किया था ॥६६॥ उस
 सत्यपारुण ने अघर्ममंडकु उसके साथ अश्वहार छोड़कर उसका त्याग
 कर दिया था और क्रोध से समन्विन होकर बारम्बार उससे 'अप-
 श्वत्'—यह कहा था ॥१००॥ उसने त्यक्त पिता से कहा था—मैं कहीं
 जाऊँ । तब उसके पिता ने उससे कह दिया था—श्वपार्कों के साथ
 बरताव करो ॥१०१॥ हे क्रूर की याग लगाने वाले ! जब तुम जैसे
 पुत्र के बाहने वाले मैं नहीं हूँ । पिता के इस वचन से वह ऐसा कहे
 आते पर नगर से बाहिर निकल कर चला गया था ॥१०२॥ भगवान्
 वसिष्ठ ऋषि ने भी उसको निवारित नहीं किया था । हे विप्रो ! वह
 सत्यव्रत पिता के द्वारा परित्यक्त होकर महान् धीर होते हुए भी श्वपार्कों

संन्यस्य सागरास्ते तु चकार विपुलं तपः ।
 तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुमभीरसम् ॥१०६॥
 शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ।
 तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः ॥१०७॥
 महविपुल धर्मरतिमा मोक्षयामास भो द्विजाः ।
 सत्यव्रतो महाबाहुभरण तस्य चाकरोत् ॥१०८॥
 विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।
 सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः ।
 महर्षिः कौशिको घोमांस्तेन वीरेण मोक्षितः ॥१०९॥

वह विश्वामित्र अपनी पत्नि को बन्धी पर छोड़ कर उग्र तपश्चर्या करने में लग्न होगये थे । उसकी पत्नी ने मध्यम अपने और सपुत्र को गले में बाँधकर एक सौ गायों में शेष के भरण-पोषण के लिए बेच दिया था । नुर के पुत्र ने उसको बेचने के लिये गले में बाँधा हुआ देखकर हे द्विजगण ! उन धर्मरति ने उस महर्षि के पुत्र को मुक्त करा दिया था । महाबाहु सत्यव्रत ने उसका भरण-पोषण किया था ॥१०६-१०८॥ विश्वामित्र की तुष्टि के लिये और अनुकम्पा करने के लिये उसने उसका भरण किया था । वह गले में बद्ध होने के कारण महान् तपस्वी गालव नाम वाला हुआ था । परम घोमान् महर्षि कौशिक ने उस वीर से उसको मुक्त करा दिया था ॥१०९॥

५—सूर्यवंश वर्णन (२)

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
 विश्वामिकलस्य तु वमार विनये स्थिता ॥१॥
 हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्
 विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं वृक्षे बन्ध च ॥
 उपानुव्रतसास्याय दीप्तां द्वादशवार्षिकीम् ।
 पितुर्नियोगादवसत्तास्मिन् वनगते नृपे ॥२॥

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्त्र पुरं मुनिः ।
 याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठा पर्यरक्षत ॥४॥
 सत्यव्रतस्तु बाल्याञ्च भाविनोऽयं स्य वै बलात् ।
 वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयायास नित्यशः ॥५॥
 पित्रा हि तं तदा राष्ट्रस्यज्यमानं प्रिय सुतम् ।
 निवारयामास मुनिर्वेहना कारणेन च ॥६॥
 पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ॥७॥

श्री सीमहर्षणजी ने कहा—सत्यव्रत ने भक्ति से-कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय से स्थित होकर विश्वामित्रजी की कलत्र का ग्रहण किया था ॥१॥ मृगों को-बराहों को-महिषों को और वनचरों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में माय को वृक्ष में बाँध दिया था ॥२॥ उपाशु व्रत में समास्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा लेकर उस रूप के वन में चले जाने पर पिता की आज्ञा से उसमें ही निवास किया था ॥३॥ अयोध्या-सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुर को वसिष्ठ मुनि ने याज्योपाध्याय के संयोग से परिश्रित किया था ॥४॥ सत्यव्रत वचन से और भावी अर्थ के बल से वसिष्ठ मुनि से नित्य ही अधिक मन्यु मर्यात् क्रोध को धारण करता था ॥५॥ उस समय से पिता के द्वारा पागे हुए उस प्रिय पुत्र को बहुत कारण से मुनि ने निवारण किया था ॥६॥ पाणिग्रहण मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है ॥७॥

न च सत्यव्रतस्तस्माद्व्रतवान् सप्तमे पदे ।
 जानन् धर्मवसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः ।
 सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥
 गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठां कृतवास्तथा ।
 न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपाशुमबुध्यत ॥९॥
 तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः ।
 तेन द्वादश वर्षाणि न्यसर्पत् प्राकशासनः ॥१०॥
 तेन त्विदानीं विहिता दीक्षा ता दुर्वर्हा भुवि ।
 कुलस्य निष्कृतिविप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥

न त वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।

अभिपेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२

स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली ।

अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३

सर्व्वकामदुष्टां दोग्ध्री स ददर्श नृपात्मजः ।

ता वं क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुष्टान्वितः ॥१४

परव्रत ने इस कारण से सप्तम पद में हमन नहीं किया था । वसिष्ठमुनि धर्म को जानते हुए हे द्विजगण ! मेरी रक्षा नहीं करते हैं । उभी समय में सत्यव्रत ने मन से वसिष्ठ मुनि के विषय में रोप किया था ॥८॥ गुणी की बुद्धि से भगवान् वसिष्ठ ने बंसा किया था और सत्य-व्रत ने उनके उस उपाधु को नहीं समझा था ॥९॥ किन्तु उसमें पिता का जो एक महान् आत्मा बाले थे बहुत ही अपरितीय हुआ था इसी कारण से बारह वर्ष तक भद्र ने वर्षा नहीं की थी ॥१०॥ इसी कारण से इस समय में भूलोक में अत्यन्त दुर्बह उस दीक्षा की किया था । हे विप्रो ! वह की हुई दीक्षा भूत की मिष्कृति हो जावेगी ॥१॥ भगवान् वसिष्ठ ने उसको निवारित नहीं किया था क्योंकि मुनि का ऐसा विचार था कि मैं इसके पुत्र का अभिषेक कर दूंगा ॥१२॥ उस वनवान् ने बारह वर्ष तक उस दीक्षा का वहन किया था । मांस के विद्यमान न रहने पर उस भूत के पुत्र ने महात्मा वसिष्ठ की समस्त कामनाओं को देने वाली दोग्ध्री धेनु को देखा था । हे मुनिर्षयो ! उस धेनु को क्रोध से-मोह से और श्रम के कारण से भूख से अन्वित होकर मार डाला था ॥१३-१४॥

देशधर्मंगतो राजा जघान मुनिसत्तमाः ।

तन्मांसं स स्वयं चैव विद्वामिहस्य चात्मजान् ॥१५

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुकूधे ॥१६

पातयेयमहं क्रूरं त्वं शंकुमशंशयम् ।

यदि ते द्वाविमो शङ्कून् स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च ।

आप्रोक्षितोपयोगञ्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८॥

एवं श्रोण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।

शिषंकुरिति होवाच शिषंकुस्तेन स स्मृतः ॥१९॥

विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।

तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतश्चित्रशङ्कवे ॥२०॥

छन्दमानो वरेणाय वरं वव्रे नृपात्मजः ।

सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः ॥२१॥

वेश धर्म में जाने वाले उस राजा ने उस धेनु का हनन कर दिया था और उसके मांस को स्वयं तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिला दिया था । यह श्रवण करके वसिष्ठ मुनि भी इस पर अत्यन्त क्रुपित होगये थे ॥१९-१९॥ वसिष्ठजी ने कहा—मैं बिना किसी लक्ष्य के निश्चित रूप से तेरे इस शकु को गिरा देता यदि पुनः कृत में तेरे ये दो शकु न होते ॥१७॥ पिताजी के अपरितोष से और गुरु की दोग्ध्री का वध कर डालने से तथा आप्रोक्षितोपयोग के योग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१८॥ इस प्रकार से उस महान् तपस्वी ने इसके उन तीन शकुओं को देख कर उससे शिषकु—इस नाम से कहा था । इस कारण से वह शिषकु ही कहा गया है ॥१९॥ इसने विश्वामित्र की दाराओं का भरण किया है इस कारण से मुनि ने प्रसन्न होकर उस शिषकु के लिये वरदान प्रदान किया था ॥२०॥ जब उससे वरदान की योजना करने की आज्ञा दी तो उन नृपात्मज ने यही वरदान माँगा था कि मैं इसी शरीर को लेकर स्वर्गलोक में गमन करूँ । २१॥

अनावृष्टिमये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।

पित्र्ये राज्येऽभिपिच्यथा याजयामास पार्थिवम् ॥२२॥

मिपता देवतानां च वसिष्ठस्य च कोशिकः ।

दिवमारोपयामास सशरीरं महातपाः ॥२३॥

तस्य सत्यरथा नाम पत्नी चक्रेयवशंजा ।

पुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमपत्मपम् ॥२४॥

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्वैशङ्कव इति स्मृतः ।

आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥२५॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूदोहितो नाम पाण्डित्यवान् ।

हरितो रोहितस्याय चक्षुर्हारित उच्यते ॥२६॥

विजयश्च मुनिश्चेष्टाश्चक्षुःपुत्रो बभूव ह ।

जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः ॥२७॥

रुक्कस्तनयस्तस्य राजा घर्ममर्थिकोविदः ।

रुक्कस्य वृकः पुत्रो वृकाद्वाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८॥

सप्त बारह वर्ष के अनावृष्टि के मय के अतीत हो जाने पर पिता के राज्य पर अभिवेक करके उस पाण्डित्य को यजन कराया था ॥२२॥ महा तपस्वी कौशिक ने सब देवताओं के और वसिष्ठ मुनि के देखते हुए उसको शरीर के सहित दिवलोक में आरोपित कर दिया था ॥२३॥ उनकी तरफ़रा नाम वाली फँकेय के वंश में समुत्पन्न परमी थी जिसने कल्पय रहित हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को जन्म दिया था जो राजसूय यज्ञ का आहर्त्ता था और सम्राट्—इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था ॥२४-२५॥ उस सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित नाम वाला राजा हुआ था । रोहित का दामाद हरित था जो चक्षुर्हारित कहा जाया करता है ॥२६॥ हे मुनिगणो ! उस चक्षु के पुत्र का नाम विजय था । यह सम्पूर्ण पृथ्वी का जीतने वाला था अतएव “विजय”—इस नाम से कहा गया है ॥२७॥ उसका पुत्र रुक्क हुआ था जो कि राजा घर्म और अर्थ का महान् भण्डित था । रुक्क के पुत्र का नाम वृक था तथा वृक के वीर्य से बाहु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२८॥

हैहयास्तालर्जघाञ्च निरस्यन्ति स्म त नृपम् ।

तापतनी गर्भमादाय ऊर्व्वस्याश्रममाविशत् ॥२९॥

नात्मर्षं घास्मिकदत्तैव स हि घर्ममृगोऽभवत् ।

सगरस्तु सुतो बाहोर्ध्वजो सह गणेन वै ॥३०॥

ऊर्व्वस्याश्रममासाद्य भागवेणामिरक्षितः ।

आग्नेयमस्तं सञ्ज्ञ्या च भागं यावत् सगरो नृपः ॥३१॥

जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।

शकाना सहलवानां च धम्मं निरसदच्युतः ।

क्षत्रियाणा मुनिश्रेष्ठाः पारदानां च धम्मं विवृ ॥३२

कथं स सगरो जातां गरेणैव सहाच्युतः ।

किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महोजसाम् ॥३३

धम्मं निकुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युतः ।

एतन्नः सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४

हेह्य और तालजंघो ने उस राजा को निरस्त कर दिया था । उसकी पत्नी जो थी वह गर्भ लेकर ऊर्ध्व के आश्रम में प्रवेश कर गयी थी ॥३६॥ वह उस धर्म के युग में भी अत्यधिक धार्मिक नहीं हुआ था । बाहु का पुत्र सगर था जो यज्ञ में गर के साथ समुत्पन्न हुआ था ॥३७॥ ऊर्ध्व के आश्रम को प्राप्त कर वह मार्गव के द्वारा अभिरक्षित हुआ था । उस सगर नृप ने मार्गव से आश्वेय अस्त्र की उपलब्धि की थी ॥३८॥ फिर उस सगर ने तालजंघों हेह्यों के सहित मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया था । उस धर्म के वेत्ता ने, हे मुनिगणों ! शकों का—पहलवानों का और पारद क्षत्रियों का धर्म निरस्त कर दिया था ॥३९॥ मुनिगण ने कहा—वह सगर परम अच्छुत गर के साथ किस प्रकार से समुत्पन्न हुआ था ? और क्या कारण था कि उस राजा ने क्रुद्ध होकर महान् ओजस्वी शकादि क्षत्रियों को, जो धर्मानुकूल चर्चित थे निरस्त कर दिया था ? हे महामते ! यह तपस्त हाल कृपा करके विस्तार के साथ हमारे सामने वर्णन करने की इदाराता करिए ॥३३-३४॥

बाहोर्ध्वसन्निः पूर्व हृतं राज्यमभूत् किल ।

हेह्येस्तालजङ्घंश्च शकैः साद्धं द्विजोत्तमाः ॥३५

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पहनवास्तथा ।

एते ह्यपि गणाः पञ्च हेह्यार्थं पराक्रमम् ॥३६

हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं गयी ।

पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥३७

पत्नी तु यादवी तस्य संगर्भा पृष्ठतोऽवगात् ।
 सपत्न्या च गरस्तन्यं दत्तः पूर्वं किलानघा ॥३८॥
 सा तु भर्तुं श्रितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत ।
 ऊर्ध्वस्तां भागं वो विप्राः कारुण्यात् समवारयन् ॥३९॥
 तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाच्युतः ।
 व्यजायत महाबाहुः सगरः नाम पार्थिवः ॥४०॥
 ऊर्ध्वंस्तु जातकर्मणां दीप्तस्य कृत्वा महात्मनां ।
 अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽश्वं प्रत्यपादयत् ॥४१॥
 आग्नेयं तु महाभागो अमरं रपि दुःसहम् ।
 स तेनास्त्रवलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥४२॥

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—हे द्विषमणो ! यह बाहु राजा पहिले बहुत ही व्यसन झील था । इसी लिये शकों के साथ हैहय और तालजंघों ने इसका राज्य छीन लिया था ॥३५॥ यवन-पारव-काम्बोज-पल्लव ये भी पाँच गण थे जो हैहयों के लिये अपना पराक्रम दिखाया करते थे ॥३६॥ जब राज्य छीन लिया गया था तो वह बाहु राजा वन में चला गया था । उसकी पत्नी उसके पीछे गयी थी किन्तु वह राज्य के ह्राण होने के कारण अत्यन्त दुःखित होगया था और वहीं पर उसने प्राणी को त्याग दिया था ॥३७॥ उसकी यादवी पत्नी गर्भवती थी और अपने गति के साथ ही पीछे से गयी थी । हे अनघो ! उसकी सपत्नी ने पहिले ही उसको गर (विष) दे दिया था ॥३८॥ अपने स्वामी के मर जाने पर उसने चिता बनाकर वन में वह भी उस चिता पर सती होने के लिये प्रस्तुत होरही थी । उसी समय में भागं व ऊर्ध्व ने दया करके उसे सती होने से रोक दिया था ॥३९॥ फिर वह यही पर आश्रम में निवास करने लग गई थी । वही पर वह अच्युत गर्भ गर के साथ उत्पन्न हुआ महाबाहु राजा सगर था ॥४०॥ ऊर्ध्व मुनि ने ही उसके जात कम आदि समस्त संस्कार कराये थे और उस महान् आत्मा वाले को वेद शास्त्र सब पढ़ाकर इनके पश्चात् उसे ब्रह्म दिया था ॥४१॥ जो आग्नेय अस्त उस समर राजा को दिया वह इतना उग्र था

किं देवगणभी ससे सहन नहीं कर सकने थे वह सगर उसी अस्त्र के बल से और अपने वृत्त विक्रम से युद्ध में समन्वित होकर गया था ॥४२॥

हेहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।

आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमता वरः ॥४३॥

ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।

पह्नुवाश्चैव नि.शेषान् कृत्वा व्यवमितो नृप. ॥४४॥

ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।

वसिष्ठ शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीशिनम् ॥४५॥

वसिष्ठस्त्वयताम् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।

सगरं वारयामास तेषां दत्वाभयं तदा ॥४६॥

सगरः स्वा प्रतिज्ञां तु गुरोर्वक्यं निशम्य च ।

धर्मं जघान तेषां वै वेशानन्याश्चकार ह ॥४७॥

अद्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसजयत् ।

यवनानां शिवं सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥

पारदा मुक्तकेशाश्च पह्नुवा समश्रधारिणः ।

नि.स्वाध्यायवपट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥

कीर्त्तिमानो मैं परम श्रेष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे क्रुपित रुद्र पशुओं का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हेह्यों का हनन कर विना था और लोकों में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया ॥४३॥ इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारद और पल्लवों को नि शेष करने का निश्चय कर लिया था ॥४४॥ महात्मा और सगर के द्वारा बध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण में जाकर प्रणिपात करने लगे थे ॥४५॥ महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ भुनि ने उन सबको शरण में समागत देखकर समय (समझौता) के द्वारा उन सबको अभय दान देकर सगर को पारने से रोक दिया था ॥४६॥ राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का ध्यान कर उनका हनन ही नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेष धारित उनकी कर

दिया था ॥४७॥ अर्घ्य शकी का शिर मुंडवा कर उनकी छोड़ दिया था । यवनी का तथा काम्बोजी का पूरा माया मुंडवा कर छोड़ दिया था । पारद युक्त केशों वाले और पल्लव शम्भुघारी बना दिये थे । स्वाध्याय और वपट्टकार से रहित उस महारमा ने उन सबको कर दिया था ॥४६॥

क्षका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।

कोणिसर्ग माहिषका दर्व्याश्चोलाः सकेरलाः ॥४०॥

सर्वे ते क्षत्रिया विप्रः धर्मस्तेषा निराकृतः ।

वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सारेण महात्मना ॥४१॥

स धर्मविजयी राजा विजित्येमा वसुधराम् ।

अश्व प्रचारयामास बाजिमेघाय दीक्षितः ॥४२॥

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।

वेलासमीपेऽपहतो भूमि चैव प्रवेशनः ॥४३॥

स त देशं तदा पुत्रः खानयामास पार्थिवः ।

आसेदुस्तु तदा तस्य खत्यमाने महार्णवे ॥४४॥

समादिपुरुषं देव हरि कृष्णं प्रजापतिम् ।

विष्णुं कपिलरूपेण स्वयन्तं पुरुषं तदा ॥४५॥

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यता ।

१. सर्वे भूनिश्रेष्ठ आन्वारस्त्ववशेषिताः ॥४६॥

किं देवगणभी उसे सहन नहीं कर सकने थे वह सगर उसी अम्न के बच से और अपने बल विक्रम से मुक्त में समन्वित होकर गया था ॥४२॥

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशुनिव ।

आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमता वरः ॥४३॥

ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।

पहनुवाश्चैव नि.शेषान् कष्टं व्यवमितो नृपः ॥४४॥

ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।

वसिष्ठ शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥४५॥

वसिष्ठस्त्वयतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।

सगरं वारयामास तेषां वत्साभयं तदा ॥४६॥

सगरः स्वा प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।

धर्मं जघान तेषां वै वेशानन्याश्चकार ह ॥४७॥

अद्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा उपसर्जयत् ।

यवनानां शिवं सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥

पारदां मुक्तकेशाश्च पहनुवा इमश्चधारिणः ।

नि.स्वाध्यायवपट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥

कीर्त्तिमानो मे परम श्रेष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे क्रुपित हस्त्र पशुभी का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हैह्यो का हनन कर दिया था और लोकों में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया ॥४३॥ इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारद और पहलुओं को नि.शेष करने का निश्चय कर लिया था ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा बध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण में जाकर प्रणिपात करने लगे थे ॥४५॥ महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ मुनि ने उन सबको शरण में समागत देखकर समय (समझौता) के द्वारा उन सबको अभय दान देकर सगर को मारने से रोक दिया था ॥४६॥ राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का धरग कर उनका हनन तो नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेश वाले उनकी कर

दिया था ॥४७॥ अर्घ्य शको का शिर मुंडवा कर उनको छोड़ दिया था । यवनो का तथा काम्बोजो का पूरा मोथा मुंडवा कर छोड़ दिया था । पारद युक्त केशो वाले और पल्लव वनश्रमारी बना दिये थे । स्वाम्याय और बघट्कार से रहित उस महात्मा ने उन सबको कर दिया था ॥४६॥

शका यवनकाम्बोजा. पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
कोणिसर्प माहिषका दर्व्याश्चोलाः सकेरलाः ॥५०॥
सर्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषा निराकृतः ।
वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सारेण महात्मना ॥५१॥
स धर्मविजयी राजा विजित्येवा वसुधराम् ।
अथ प्रचारयामास बाजिमेघाय दीक्षितः ॥५२॥
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रं पूर्ववक्षिणे ।
बेलानमीपेऽपहृती भूमिं चैव प्रवेशनः ॥५३॥
स त देशं तदा पुनः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्तु तदा तस्य खल्यमाने महार्णवे ॥५४॥
तमादिपुरुषं देव हरि कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा ॥५५॥
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यत ।
दग्धाः सर्वे मुनिश्रेष्ठ अत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५६॥

शक-यवन-काम्बोज-पारद-कोणिसर्प-माहिषिक-दर्व्य-ओल-केरल ये हे विप्री ! क्षत्रिय ही रहे, केवल इनका धर्म निराकृत कर दिया गया था और क्यों कि ये सभी अपने प्राणों की रक्षा के लिये वसिष्ठजी की शरण में चले गये थे अतएव श्रीगुरुदेव के वचनों से महात्मा सगर ने इनको फिर मारा नहीं था केवल इनके धर्म को परिवर्तित कराकर क्षत्रिय ही बना रहने दिया था ॥५०-५१॥ यह सगर धर्म का विजयी राजा हुआ था और उसने इस सम्पूर्ण वसुधरा को जीत कर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित होकर उस यज्ञ के अश्व को बाजिमेघ के सम्पूर्ण होने के लिये समस्त भूमि पर प्रचारित किया था ॥५२॥ चरण कराने वाले

के वह अश्वमेध का अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र में वेला के समीप में अपहृत हुआ भूमि में प्रवेशित कर दिया गया था ॥५३॥ उस समय में उसके पुत्रों के द्वारा उस राजा ने उस देश की खुदवाया था । उस समय में उस महार्णव खनन किये जाने पर वहाँ पर उन सगर के पुत्रों ने देखा था कि वहाँ पर आदिपुरुष प्रजापति कृष्ण हरि देव विष्णु कपिल मुनि के स्वरूप में रायन कर रहे थे ॥५४-५५॥ जब जाग्रत हुए तो उनके षड्भुजों से निकले हुए तैज से ह मुनिगण । वे सब सगर के पुत्र दग्ध होकर राख के ढेरी हो गये थे केवल चार अवशिष्ट रहे थे ॥५६॥

बहिकेतुः सुकेतुश्च तथा घर्मरथो नृपः ।

धूर पञ्चनदश्चैव तस्य वशकरः नृपाः ॥५७

प्रादाञ्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।

अक्षय वशमिक्षवाकोः कीर्ति चाप्यनिवर्त्तिनीम् ॥५८

पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गं वास तथाक्षयम् ।

समुद्रश्चाध्व्यमादाय ववन्दे त महीपतिम् ॥५९

सागरश्च च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह ।

त्वञ्चादवमेधिक सोऽश्व समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०

आजहारादवमेधाना शत स सुमहातपा ।

पुत्राणां च सहस्राणि पण्डितस्तस्येति न श्रुतम् ॥६१

सगरास्यात्मजा वीराः कथ जाता महाबलाः ।

विक्रान्ताः पण्डिताहस्ता विधिना केन सत्तम ॥६२

बहिकेतु-सुकेतु-घर्मरथ नृप-धूर और पञ्चनद ये ही नृप उस के वश के करने वाले शेष बचे थे ॥५७॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि राजा इक्ष्वाकु का वश क्षय हित होगा और कमी निवृत्त न होने वाली कीर्ति लोक में रहेगी ॥५८॥ विभु ने पुत्र समुद्र की तथा अक्षय स्वर्गलोक का निवास प्रदान किया था । समुद्र ने अध्व्य लेकर उन महीपति की वन्दना की थी ॥५९॥ उसने उसके उस कम से सागररथ की प्राप्ति किया और वह तू उस अश्वमेध यज्ञ के भयव की समुद्र से प्राप्त करने वाला हुआ था ॥६०॥ उस सुन्दर महान् तप

के करने वाले ने एक भी अश्वमेध यशों का यजन किया था । उसके साथ हजार पुत्र थे—ऐसा हमने सुना है ॥६१॥ मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! उन राजा सगर के किस विधि से महान् बलवाली परम वीर और विप्रागत साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ? ॥६२॥

हे भार्य्यो सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।

उघेष्ठा विदमंदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥

कनीयसी तु महती पत्नी परमधम्मिणी ।

अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥

ऊर्ध्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्व्युष्यठ्वं द्विजोमताः ।

पटि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वे का नितम्बिनी ॥६५॥

एक वंशधर त्वेका यथेष्टं वरपरिवति ।

तयैका जगृहे पुत्रान् पटिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥

एकं वंशधरं त्वेका तपत्याह ततो मुनिः ।

राजा पञ्चजनो नाम यभूव स महाद्युतिः ॥६७॥

द्वतरा सुपुत्रे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ।

तत्र पटिगहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥

धृनपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ॥६९॥

घात्रीद्वर्ककशः प्रादग्तावतीः पोषणे नृपः ।

ततो दशसु मासेषु समुत्तस्म्ययथाक्रमम् ॥७०॥

भीतीमहर्षेण मुनि ने कहा—उन राजा सगर के दो भार्य्यों थी जो उपर्यर्ध के द्वारा किल्बिषों को दग्ध कर देने वाली थीं । जो गवने बड़ी रानी थी वह विदमं की पुत्री थी और उगहा नाम केशिनी था ॥६३॥ छोटी रानी जो थी वह भी परम धर्म वाली पत्नी थी । वह अरिष्टनेमि की पुत्री थी और भूमन्वत में अपने रूप तादृश्य में अनुपम था ॥६४॥ हे द्विजोत्तमो ! ऊर्ध्व ने उन दोनों को परदान प्रदान किया । उगहा जब आप सोन धरण करी । उन दोनों में एक नितम्बिनी साठ हजार पुत्रों को ग्रहण करे ॥६५॥ और उनमें केवल एक वंश धरने वाला पुत्र प्राप्त करेगी । जो भी इन दोनों वरों में से

जिसको भी चाहे अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर लेवे । उनमें से एक ने तो साठ हजार पुत्रों का प्राप्त करना ही बर प्राप्त कर लिया । और एक ने केवल एक वंशधर पुत्र की प्राप्ति का बरदान प्राप्त किया । तब मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा । वह महती छुति वाला पञ्चजन नाम वाला राजा हुआ ॥६६-६७॥ दूसरी पत्नी ने एक बीजों से मरी हुई तुम्बी का प्रसव किया—ऐसा ही सुना जाता है । उसमें तिलो के समान साठ सहस्र गर्भ थे वे ॥६८॥ फिर यह किया गया कि घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को डाल दिया गया । राजा ने एक-एक गर्भ के लिये एक-एक घाय पोषण कार्य के लिये वे बी बीं । इसके पश्चात् दश मासों में वे यथा क्रम समुत्पन्न हो गये थे ॥६९-७०॥

कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना ।

पष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवगभवन् द्विजाः ॥७१॥

गर्भादिलाबुमध्याह्नं जातानि पृथिवीपतः ।

तेषां नारायण तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥७२॥

एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा यभूत ह ।

शूरः पञ्चजनस्यासीदशुमान्नाम वीर्यवान् ॥७३॥

दिलीपस्तस्य तनयः छट्वाङ्ग इति विधूत ।

येन स्वर्गादिहागत्य मृहूतं प्राप्य जीवितम् ॥७४॥

त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन धानधाः ।

दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ॥७५॥

यः स गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ।

समुद्रमानयच्च ना दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६॥

तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वशचितकः ।

भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविधुतः ॥७७॥

वे समस्त कुमार काल के अनुसार महाराज सगर की प्रीति को वर्धित करने वाले हो गये थे । हे द्विजगण ! इस प्रकार से साठ हजार उस राजा के पुत्र हुए थे ॥७३॥ उस राजा के गर्भ दत्तायु मध्य से वे सब पुत्र समुत्पन्न हुए थे । वे सब महात्मा नारायण के तेज में प्रविष्ट

हुए थे ॥७२॥ एक जो पञ्चजन नाम वाला पुत्र दूसरी पत्नी के हुआ वह राजा हुआ । उस पञ्चजन का महान् बोर्य वाला शूर अंशुमान् पुत्र हुआ । उसका पुत्र दिलीप था जो सद्वाङ्मय इष्ट नाम से लोक में विद्युत हुआ था जिसने स्वर्ण से यहाँ साकर एक सुहृत् मान (दो घड़ी का समय) जीवित प्राप्त किया ॥७३-७४॥ इसने हे मनषी ! अपनी बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसन्धित कर लिया । दिलीप का पुत्र महाराज भगीरथ हुए थे ॥७५॥ जिस प्रभु ने सरिताओं में परम श्रेष्ठ गंगा का अवतारण किया था और इसकी समुद्र में ले आये थे तथा दुहितृत्व में कल्पित कर दिया ॥७६॥ इसी कारण से वश के विस्तार करने वालों के द्वारा यह भगीरथी गङ्गा कही जाया करती है । उन महाराज भगीरथ का पुत्र श्रुत इम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥७७॥

नामागस्तु धृतस्यासीत् पुत्रः परमधाम्मिकः ।

अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपितामवत् ॥७८॥

अयुताजित् दायादः सिन्धुद्वीपस्य धीर्मवान् ।

अयुताजित्सुतस्त्वासीदुत्तुपर्णो महायशः ॥७९॥

दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ।

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्त्तपर्णिर्महायशः ॥८०॥

सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रगणोऽभवत् ।

सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सीदातो नाम पाण्डिवः ॥८१॥

दयातः कल्माषपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत् ।

कल्माषपादस्य सुतः सव्वकर्मोति विद्युतः ॥८२॥

अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सव्वकर्मणः ।

अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नोतो द्वौ वसूवतुः ॥८३॥

अग्निमो रघुश्चैव पाण्डिवमसत्तमौ ।

अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुसिदुहोऽभवत् ॥८४॥

युत का पुत्र नामाग हुआ जो परम धर्मात्मा था । नामाग का पुत्र राजा अम्बरीष हुआ जो यह अम्बरीष सिन्धुद्वीप नामक पुत्र के पिता थे ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र बड़ा ही बोर्य आता अयुताजित्

हुआ । इस अयुताजित् के पुत्र का नाम श्रुतपर्ण था जो मरुद् यशस्वी हुआ ॥७६॥ यह दिव्य बली (पार्श्व) के हृदय का ज्ञाता था तथा बली बली और राजा नल का सखा हुआ । इस श्रुतपर्ण का पुत्र बहुत अधिक यश वाला आर्त्तर्षणि हुआ ॥७७॥ इसका पुत्र राजा सुदाम समुत्पन्न हुआ जो कि देवराज इन्द्र का सखा था । इस सुदाम का सुत सौदाम नाम वाला राजा हुआ ॥७८॥ कल्पाय पाद के नाम से विद्यपात वह राजा मितसह हुआ । उस कल्पायपाद का सुत सर्व कर्मा-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७९॥ सर्वकर्मा का आत्मज अनरण्य हुआ । अनरण्य का पुत्र विघ्न नाम वाला उत्पन्न हुआ । उस निघ्न के दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥८०॥ ये दोनों पार्थिवों में परम श्रेष्ठ अनमित्र और रघु नाम वाले थे । अनमित्र का सुत परम विद्वान् राजा दुर्लभिह्व हुआ ॥८१॥

दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः ।

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८२॥

अयोध्याया महाराजो यः पुरासीन्महाबलः ।

अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८३॥

रामो दशरथाजज्ञे धर्म्मार्त्मा सुमहायशाः ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसंज्ञितः ॥८४॥

अतिथिस्तु कुशाञ्जले धर्म्मार्त्मा सुमहायशाः ।

अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषघो नाम वीर्यवान् ॥८५॥

निषघस्य तप्त पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ।

नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ॥८६॥

क्षेमघन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ।

आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥८७॥

अहीनगोस्तु दायादः सुघन्वा नाम पार्थिवः ।

सुघन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥८८॥

उस दुर्लभिह्व का पुत्र राजा दिलीप उत्पन्न हुआ जो श्रीराम का पितामह (दादा) था । राजा दिलीप का सुत दीर्घ बाहुओं वाला रघु

उत्पन्न हुआ ॥८५॥ जो अयोध्यापुरी में महान् बलवान् पहिले महाराज हुए थे । महाराज प्रतापी रघु के सुत का नाम अज था और उस अज के वीर्य से महाराज दशरथ की उत्पत्ति हुई ॥८६॥ श्रीराम ने दशरथ से जन्म ग्रहण किया जो परम धर्मात्मा और महान् यशस्वी हुए थे । श्रीराम के पुत्र का नाम कुश हुआ ॥८७॥ श्रीरामचन्द्र के सुत कुश से अतिथि नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई । यह अतिथि बहुत ही धर्मात्मा और बहुत अधिक यश वाले हुए थे । इस अतिथि के वीर्य से निषध नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । यह निषध महान् बल-विक्रम वाला राजा हुआ ॥८८॥ निषध से नल नामक पुत्र ने जन्म लिया और नल का पुत्र नभ हुआ । नभ के पुण्डरीक सुत ने जन्म लिया तथा पुण्डरीक के क्षेमधन्वा सुत उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक था जो बहुत ही प्रताप वाला था । इस देवानीक से अहीनगु नामक पुत्र ने जन्मग्रहण किया । अहीनगु का दामाद (पुत्र) सुघन्वा नाम वाला राजा हुआ । सुघन्वा के वीर्य से शल नाम घारी वृष ने प्रलय प्राप्ति किया ॥९०-९१॥

उक्तयो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह ।

वप्यनाजः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥

नलो द्वावेव विख्यातो पुराणे मुनिसत्तमाः ।

वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेदवाकुकुलोद्बहः ॥९३॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।

एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसाः ॥९४॥

पठन् राम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।

श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ।

प्रजावानेति सामुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

उक्त नाम वाला परम धार्मिक राजा शल का सुत समुत्पन्न हुआ ।

इसका पुत्र वप्यनाभ और उस महात्मा वप्यनाभ का सुत नल हुआ

॥९२॥ हे मुनिर्घोष्ठो ! पुराण में दो ही नल विख्यात हुए हैं । राजा

वीरसेन का पुत्र जो इक्ष्वाकु के कुल का उद्बहन करने वाला था ॥९३॥

यहाँ पर प्रधान रूप से उन्हीं नृपों का वर्णन किया गया है जो इन्द्रावु-
क वंश में समुत्पन्न हुए हैं। ये विश्वाम्बु के वंश में बहुत अधिक तेज
वाले नृप हुए हैं ॥६४॥ आ इम विश्वाम्बु आदित्य की सृष्टि को भी
प्रजापति को पुष्टि के देने वाले ब्राह्मण देव की सृष्टि को पढ़ना है वह प्रजा-
पति और विश्वाम्बु आदित्य के सामुज्य की प्राप्ति होता है ॥६५॥

६-सोमोत्पत्ति वर्णन

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञंऽन्निर्भगवानृषि ।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्व्वं प्रजासर्गं विधित्सन् ॥१॥
अनुत्तर नाम तपो येन सप्त्य हि तत्पुरा ।
स्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि मा धुनश्च ॥२॥
ऊर्ध्वमाचक्रमेत्तस्य रेतो सोमत्वमीयिवान् ।
नेत्राभ्या वारि सुक्ताव दशधा द्यौर्नयन् दिश ॥३॥
त गर्भं विधिनादिष्टो दश देव्यो ददुस्ततः ।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समश्वनुवन् ॥४॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिश ।
ततस्ताभि स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
पतित सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह ।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥६॥
तस्मिन्निपतिते देवा पूत्रेऽन्ने परमात्मनि ।
सुष्टुबुध्न्याण पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमा ॥७॥

श्रीसोमहर्षणजी ने कहा—हे विप्री ! प्रजा के सर्ग के करने की
इच्छा वाले ब्रह्माजी के मन से पूर्व्व से भगवान् अग्नि ऋषि उत्पन्न हुए
ये ॥१॥ जिसने पहले समय अनुत्तर नाम वाला तप तीन हजार दिव्य
वर्ष तक तपा था ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका रेत ऊर्ध्व भाग में
आक्रान्त हो गया और वह सोमल को प्राप्त हो गया । दसों दिशाओं

को चोतिन करता हुआ उनके नेत्रों से जल का स्रवण हुआ ॥३॥ विष्णु ने उस गर्भ को आज्ञा दी थी और फिर दंश देविर्वा दी दी । उनमें एकत्रित होकर धारण किया किन्तु वे समर्थ नहीं हुई थीं ॥४॥ जब वे दंशो दिशाएँ उस गर्भ की धारण करने में समर्थ न हुई थीं तो इसके अनन्तर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया और वह वसुन्धरा पर गिर गया ॥५॥ लोको के पितामह श्रीब्रह्माजी ने सोम को गिरता हुआ देखा तो उन्होंने लोको के हिस की कामना से उसेको एक रथपर समावेशित कर दिया ॥६॥ देवगणों ने अग्नि के पुत्र परमात्मा के निपत्तिन हो जाने पर तब ब्रह्माजी के पुत्र सप्त अर्ष्यों ने हे मुनि-श्रेष्ठो ! स्तवन किया ॥७॥

तस्य सस्तूपमानस्य नेजः सोमस्य भास्वतः ।

आप्यायनाय लोकाना भावयामास सर्वतः ॥८॥

स तेन रथमुख्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।

त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥

तस्य पञ्चदितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।

ओपधस्ताः समुद्भूता यामिः सन्ध्यामते जगत् ॥१०॥

स लब्धतेजा भगवान् संस्तवेष्ट्र स्वकर्मभिः ।

तपस्तेपे महाभागः पद्माना दर्शनाय सः ॥११॥

तसस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदावरः ।

वीजोपघ्नीना विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः ॥१२॥

स सत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सोम्यवतांवरः ।

समाजह्य राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥१३॥

दक्षिणामददात् सोमस्त्रील्लोकानिति नः श्रुतम् ।

तेभ्यो ब्रह्माविमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ॥१४॥

उस भली भाँति संस्तुत और भासमान सोम का तेज लोकों को आप्यायित करने के लिये सभी ओर भावित हुआ ॥८॥ उस सोम ने अपने प्रमुख रथ के द्वारा सागर की समाप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण वसुन्धरा का अत्यधिक पथ वाते में इकट्ठित चार भूमि की प्रदक्षिणा की ॥९॥

उसका जो तेज इस पृथ्वी पर आया और चारों ओर घूमन किया तो उससे वे समस्त ओषधियाँ समुत्पन्न हुईं थी जिनके द्वारा यह जगत् सधारण किया जाता है ॥१०॥ उस तेज को प्राप्त कर लेने वाले भगवान् ने संस्तवों तथा स्तवकों के द्वारा महामाग उसने पयो के दशन के लिये तपस्वियों की थी ॥११॥ हे मुनिगणों ! इसके अनन्तर श्रीब्रह्मा जी ने जो वेदों के ज्ञाताओं ने परम श्रेष्ठ थे फिर उस सोमदेव की बीजीपधियों का—विप्रों का और जलो का राज्य प्रदान कर दिया ॥१२॥ सोम्यता रखने वाली में परमोत्तम उस सोम ने उस महान् राज्य को प्रान्त करके सहस्रसप्त दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ का यजन किया ॥१३॥ उस यज्ञ में हमने ऐसा ही सुना है कि सोम ने तीनों लोकों को दक्षिणा में दे दिया । हे द्विजगणों ! वह दक्षिणा उन्हीं ब्रह्मपियों में प्रसूओं और सदस्यों को दी गयी ॥१४॥

हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिभृगुश्च ऋत्विजोऽभवत् ।

सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्वहुभिर्वृतः ॥१५॥

त सिनीश्च कुहूश्चैव क्षुतिः पुष्टिः प्रभा वसुः ।

कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव दध्यः सिपेविरे ॥१६॥

प्राप्यावभृथमध्यम्यं सव्यदेवपिपूजितः ।

विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७॥

तस्य तत्प्राप्य द्रुप्राप्यमैश्वर्यमृपिसत्कृतम् ।

विवभ्राम मतिस्ताताविनयादनयाहता ॥ ८॥

वृहस्पतेः ॥ वै भार्यामैश्वर्यमदमोहितः ।

जह्यार तरसा सोमो विमर्याङ्गिरसः सुतम् ॥१८॥

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवपिभिर्बुधैः ।

नैव व्यसज्जयत्तारा तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥२०॥

उथना तस्य जग्राह पाष्णिमाङ्गिरसस्तथा ।

रुद्रश्च पाष्णि जग्राह गृहीत्वाजगव धनुः ॥२१॥

उस सोमदेव के द्वारा किए हुए राजसूय यज्ञ में हिरण्य गर्भ ब्रह्मा-अत्रि और भृगु ऋत्विज हुए वे और उसमें सदस्य बहुत-से मुनिवों के मण्डन

से युक्त श्रीहरि हुए थे ॥१५॥ उसका सेवन सिनी-कुह-द्युति पुष्टि-
प्रवा-वस-कीर्ति-धृति-और लक्ष्मी नौ देवियो ने किया ॥१६॥ समस्त
देवपियो के द्वारा पूजित वह अधिराजे-द्र अत्युत्तम अवभृथ की प्राप्त
कर दश प्रकार से दिशाओ की भासित करता हुआ शोभित हुए थे
॥१७॥ ऋषियो के द्वारा सत्कृत-दुष्प्राप्य उस ऐश्वर्य की प्राप्त करके
अविनय से आहुन उसकी मति है सात ! विभ्रमित हो गई थी ॥१८॥
उम ऐश्वर्य के मद से मोहित होते हुए उसने अगिरा के पुत्र बृहस्पति
का अपमान करके सोमदेव ने वेग के साथ बृहस्पति की भार्या का हरण
कर लिया ॥१९॥ उस समय में सब देवगणों ने जोर देवपियों ने उस
सोम से बारम्बार याचना की थी सो भी उम समय में उस सोम ने
बृहस्पति को पत्नी तारा को उसके लिये नहीं दिया था ॥२०॥ उसना
(शुक्राचार्य) ने उम अगिरा के पुत्र बृहस्पति की पार्ष्णि का ग्रहण किया
था अर्थात् बृहस्पति की सहायता की थी तथा रुद्रदेव ने भी अपना
भजगव धनुष ग्रहण करके बृहस्पति की सहायता की थी ॥२१॥

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।

उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट येनैवा भाषित यशः ॥२२

तत्र तद्गुद्धमभवत् प्रख्यात तारकामयम् ।

देवाना दानवानाश्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३

तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुविताम्रं च ये द्विजाः ।

ब्रह्माण शरण जग्मुरादिदेव सनातनम् ॥२४

तदा निवार्योशनस त वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।

ददावाङ्गिरसो तारा स्वयमेव पितामहः ॥२५

तामन्तःप्रसवा दृष्ट्वा क्रुद्ध प्राह बृहस्पतिः ।

मदीयाया न ते योनी गर्भो धार्य कथञ्चन ॥२६

इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससज्जं ह ।

जातमालः स भगवान् देवानामाक्षिपद्गुः ॥२७

ततः सशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमा ॥

सत्य ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्यार्थं बृहस्पते ॥२८

उस महात्मा ने भी ब्रह्मशिर नाम वाला परमास्त्र को देवों का सद्देस्य करके छोड़ दिया जिससे उसका यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर बड़ा युद्ध हुआ था जो तारकास्य युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हो गया यह ऐसा भयानक युद्ध हुआ जो देवों और दानवों का लोकों का क्षय करने वाला बहुत बड़ा था ॥२३॥ वहाँ पर जो परम शिष्ट देवगण थे तथा तुषित द्विजगण थे वे सब आदि देव सनातन ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हो गये थे ॥२४॥ उस समय में पितृमह ने स्वयं वहाँ उपस्थित होकर उशना की तथा शूकर भगवान् वद को निवारित किया और उस तारा बृहस्पति की पत्नी को उनको दे दिया ॥२५॥ उस अपनी पत्नी तारा को गमिणी देखकर बृहस्पतिजी को बहुत अधिक क्रोध आया और उन्होंने कहा—मेरी योनि से तुझको किसी भी प्रकार से गर्भ नहीं धारण करना चाहिए था ॥२६॥ उसने फिर इषीका स्तम्भ पर जाकर अपने उस गर्भ का उत्सर्ग कर दिया । वह उत्पन्न होते ही भगवान् ने अपने वपु की देवी के मध्य में आक्षिप्त किया था ॥२७॥ उस समय में बहुत अधिक सशय को प्राप्त हुए देवों ने उसी समय में सुरोत्तमो ने उस तारा से पूछा था—तू यह सत्य बात हमको बतला दे कि यह गर्भ किसका है सोमदेव का बीर्य से हुआ है भगवान् बृहस्पति का है ॥२८॥

पृच्छ्यमाना यदा देवेर्नाहि सा विबुधान् किल ।
 तदा ता शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्मनः । २९
 त निवाच्य ततो ब्रह्मा तारा पप्रच्छ सशयम् ।
 यदन्न तथ्य तदन्न हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् । ३०
 उवाच प्राञ्जलिः सा तसोमस्येति पितृमहम् ।
 तदा त मूर्ध्निचाघ्राय सोमो राजा सुतप्रति ॥३१
 बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः ।
 प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बूधः ॥३२
 उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकाम् ।
 तस्मापत्य महातेजा बभूवैलः पुरुरवाः ॥३३

उर्व्वश्या जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः ।
 एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्तित कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
 ब्रह्मस्य मुनिश्चैष्टाः कीर्त्यमान निबोधत ।
 घ्न्यमायुष्यमारोग्य पुण्य सङ्कल्पसाधनम् ॥
 सोमस्य जन्म श्रुत्वाऽप्यपेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३५॥

इस प्रकार से जब वह तारा देवों के द्वारा बहुत पूछी भी गयी तो भी उसने देवों को यह नहीं बताया कि यह गर्भ सोम का था । उस समय मे दस्युओं के हनन करने वाले कुमार उसको शाप देने के लिये उद्यत हो गये थे । उसी समय मे उनको ब्रह्माजी ने रोक दिया और स्वयं उन्होंने उस तारा से उस संस्य के वाक्य पूछा था—हे तारा ! इस क्षण मे जो भी कुछ सत्य बात हो वही तू बतलादे कि यह पुत्र तेरे गर्भ मे किसका आया था ॥३६-३७॥ उस समय मे वह तारा हाथ जोड़कर गितामह से बोली कि यह गर्भ सोमदेव के धर्म से ही मेरे उदर मे हुआ । उसी समय मे राजा सोम ने उस सुत के मन्त्रक का द्राण किया ॥३८॥ फिर सोमदेव ने उसका नाम बुध रख दिया क्योंकि वह बालक बहुत बुद्धिमान् था । बुध गगन मे प्रति-
 फूल समुत्थित हुआ करता है ॥३९॥ उस समय मे उसने पुत्र और राज पुत्रिता को उत्पन्न किया था । उसकी सन्तति महान् तेजस्वी पुष्करा ऐन हुआ था ॥४०॥ जिस महारत्ना के उर्वशी मे सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे । यह सोमदेव की उत्पत्ति का वर्णन हमने आपको सुना दिया है जो कीर्त्ति को बढ़ाने वाला है ॥४१॥ हे मुनिगणों ! इसके वश का कीर्त्तन करना परम घ्न्य—आयु के बढ़ाने वाला—आरोग्य-
 प्रद तथा परम पुण्य प्रदान करने वाला और मन के मनोरथों का पूर्ण करने वाला होना है । इस सोमदेव के जन्म का कथा का अर्थ मात्र करने ही से मनुष्य पापी से छूट जाया करता है ॥४२॥

७-सोमवंशवर्णन

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरुरवाः ॥

तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपलदक्षिणः ॥१॥

ब्रह्मावादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्दमः ।

आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः ॥२॥

सत्यवादी पुण्यमतिः सम्पक् सवृतमंथुनः ।

अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रन्मिः सदा ॥३॥

तं ब्रह्मावादिनं शान्न धर्मजं सत्यवादिनम् ।

उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४॥

तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च ।

पट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥५॥

वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनोत्तरे ।

अलकाया विशालाया नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥

उत्तरान् स कुरुन् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान् ।

गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे ॥७॥

श्रीलोमहर्षेण भी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! बुध का पुत्र पुरुरवा बहुत विद्वान् था—तेजस्वी-दान देने के स्वभाव वाला—यज्ञ करने वाला—विशेष दक्षिणा देने वाला—ब्रह्मावादी-दुर्दम तथा युद्ध में शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त-अग्निहोत्र करने वाला तथा यह महीपति यज्ञों के करने वाला हुआ ॥१-२॥ राजा पुरुरवा सदा सत्य भावम करने वाला पुण्यमय मति से युक्त—मत्ती-मति मेंयुन करने वाला था और भूमण्डल में सदा तीनों लोकों में अनुरम यश से युक्त हुआ ॥३॥ परम यशस्विनी उर्वशी ने उस ब्रह्मावादी-परम शास्त्र स्वभाव वाले-धर्म के शास्त्रा और सत्यवादी मुर पुरुरवा को अपना मान त्याग कर वरण कर लिया था ॥४॥ हे द्विजगण ! उन उर्वशी के साथ उस राजा ने १८७५६५१० वर्ष तक निवास किया । चैत्ररथ अति सुन्दर वन में मन्दाकिनी के तट पर-विनाल अलकापुटी में और परम उत्तम मन्दन वन में उर्वशी के साथ रमण किया । उसने सुन्दर कन्यों से युक्त द्रुमों वाले उत्तर द्रुम

देशों की प्राप्त कर लिया । गन्धमादन पर्वत के प्रान्तों में तथा उत्तर मेरु पर्वत के शिखर पर भी उसने उर्वशी के साथ आनन्द विहार किया था ॥५७॥

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।

उन्वयया सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।

राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥९

एवम्प्रभावो राजासीदलस्तु नरसत्तमः ॥१०

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः ।

गन्धर्वलोकं विदिता आयुर्धोमानमावसुः ॥११

विश्वायुश्चैव घर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापय ।

दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोन्वयशीमुताः ॥१२

अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाय राजराट् ।

श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ॥१३

विद्वास्तु काञ्चनस्यापि सुहोतोऽभून्महाबलः ।

सुहोतस्याभवज्जहनुः केशिन्या गर्भसम्भवः ॥१४

इन उपर्युक्त प्रमुख वनों में वहीं पर देवगण विहार किया करते हैं अश्वत्थि आनन्द के साथ उस राजा ने उस उर्वशी अप्सरस के साथ रमण किया ॥८॥ उस पृथिवीपति ने अपनी राजधानी महान् पुण्यतम और बड़े-२ महर्षियों के द्वारा अभिष्टुत प्रयाग में बनायी थी ॥९॥ राजा ऐल मनुष्यों में परम श्रेष्ठ इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न हुआ ॥१०॥ श्री महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस ऐल के यही देवों के पुत्रों के समान सात सुतों ने जन्म लिया । ये सब गन्धर्व लोक में प्रसिद्ध थे इनके नाम आयु-धीमान्-प्रभावसु-विश्वायु घर्मात्मा श्रुतायु-दृढायु और वनायु तथा बह्वायु ये सात उर्वशी से समुत्पन्न हुए थे ॥११-१२॥ राजाओं का राजा भीम राजा अमावसु का पुत्र हुआ था तथा उस राजा भीम का दायाद काञ्चनश्रव नाम वाला उत्तरप्र हुआ ॥१३॥ उस

कान्चनप्रभ का पुत्र महान् बल वाला सुहोत्र हुआ था । इन सुहोत्र का अरुणज जह्नु हुआ जो केशिनी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था ॥१४॥

आजह्ने यो महत् सप्त सर्पमेघ महामखम् ।

पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥

नेच्छन्, प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद ।

स तया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥१६॥

सीहोत्रिरशपदगङ्गा क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा ।

एष ते विफल यत्न पिवन्नम्भं करोम्यहम् ॥१७॥

अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः, फलमवाप्नुहि ।

जह्नु राजपिशा पोता गङ्गा दृष्ट्वा महर्षय ॥१८॥

उपनिन्युमहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।

युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नु रावहव ॥१९॥

युवनाश्वस्य शापेन गङ्गाद्वेन विनिर्गता ।

कावेरी सरिता श्रेष्ठा जह्नुोर्मांमनिन्दिताम् ॥२०॥

जह्नुस्तु दयित पुत्र सुनद्य नाम धार्म्मिकम् ।

कावेर्या जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥२१॥

यह ऐसा प्रतापी जह्नु, राजा था जिसने महान् सर्पमेघ नामक महा-
मख सत्र किया और जिसकी गंगा बेनी ने अपना पति वरण करने के
लीम से इससे समीप में गमन किया ॥१५॥ इच्छा न करने वाले उस
राजा की समा की उस समय में गंगा ने प्लावित कर दिया । उस
समय में उस गंगा के द्वारा चारों ओर से प्लावित उस अपने यज्ञवाट
को देखकर हे द्विजगण ! उस सीहोत्रि राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर
उस समय में गंगा को शाप दे दिया था और कहा था कि यह तेरा यत्न
विफल है । मैं तेरे सम्पूर्ण जल का पान करिये लेता हूँ । हे गणेश ! तू
इस तेरे अधिमान का बहुत ही शीघ्र फल प्राप्त करेगी । जब राजा
जह्नु ने द्वारा सम्पूर्ण गंगा के जल का पान करने वाला देता तो
समस्त महर्षियों ने उस महाभागा गंगा की बेटी बना कर जाह्नवी उर-
भोज किया । युवनाश्व की पुत्री कावेरी को जह्नु ने बहुत किया था

॥१६-१६॥ यह युवनाश्व के शाप से गंगा के अर्ध भाग से विनिर्मल हुई थी समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ कावेरी सरिता जहनु की अतिमन्दित भार्या थी । उस कावेरी में जहनु ने परम धार्मिक महोन्नय नामक पुत्र को समुत्पन्न किया और इसके पुत्र का नाम अजक हुआ था ॥२०-२१॥

अजकस्य तु दाय्यादो बलाकाश्वो महीपतिः ।

बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२

कुशपुत्रा बभूवुहि चत्वारो देववर्चसः ।

कुशिकः कुशानाभश्च कुशाम्बो मूर्तिमास्तथा ॥२३

वल्लवैः सह सवृद्धो राजा वनचरः सदा ॥१॥

कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥२४

लभेयमिति तं शक्रस्त्राणादभ्येत्य जज्ञिवान् ।

पूर्णं वरसहस्रं वै ततः शक्रो ह्यपश्यत् ॥२५

अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ।

समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्थ शाश्वतः ॥२६

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः ।

स गाधिरभवद्राजा मघवान् कोशिका स्वयम् ॥२७

पौरकुत्साभवद्भार्या गाधिरास्यामजायत ।

गाधे, कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८

राजा अजक दाय्याद बलाकाश्व नाम वाला महीपति हुआ था । यह बहुत ही अधिक मृगया करने के स्वभाव वाला था । इसके यहाँ कुश नाम वाले पुत्र ने जन्म धारण किया ॥२२॥ इस कुश के वीर्य से चार देवों के समान वर्चस वाले पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया । उनके नाम कुशिक कुशनाभ-कुशाम्ब और मूर्तिमान् थे हुए थे ॥२३॥ बलज के साथ रावर्धन पाने वाला राजा सदा वनचर ही रहा । कुशिक ने बड़ा घोर तप किया था कि मैं इन्द्र के समान पुत्र की प्राप्ति करूं । इसके पश्चात् प्राप्त से इन्द्र ने उनके समीप आकर स्वयं ही जन्म ग्रहण किया । एक सहस्र वर्षों के पूर्ण होजाने पर फिर इन्द्र ने उसकी देखा था । पुत्र के जनन में समर्थ उसने स्वयं ही पुत्र के लिये अपने आपको

कलित किया और सुर श्रेष्ठ देवेन्द्र ही स्वयं पुत्र रूप से समुत्पन्न हुआ था। वह राजा गाधि नाम वाला हुआ और वह कोशिक स्वयं ही मयवान् था ॥२४-२७॥ उसकी भार्या पौरुकुत्सा थी। उनमें ही गाधि ने जन्म लिया। उस गाधि राजा की कन्या महाभागा परम शुभ सत्यवती नाम वाली हुई थी ॥२८॥

ता गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ।

तस्याः प्रीतः स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥२९॥

पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च ।

उवाचाहूय ता भार्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥

• उपयोज्यश्चरुरय स्वया माता स्वयं शुभे ।

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभ ॥३१॥

अजेयः क्षत्रियलोके क्षत्रियर्षभसूदनः ।

तथापि पुत्र कल्याणि धृतिमस्त तपोधनम् ॥३२॥

शमात्मक द्विजश्रृष्ठ चरुरेव विधास्यति ।

एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥३३॥

तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविवेश ह ।

गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ॥३४॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टुं नरेश्वर ।

चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषे सत्यवती तदा ॥३५॥

ब्रह्मादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ।

माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्व चरुं ददौ ॥३६॥

राजा गाधि ने उस अपनी कन्या की काय के पुत्र ऋचीक के लिये समर्पित कर दिया। उसके भर्ता भृगुनन्दन भार्गव ने परम प्रसन्न होकर गाधि के पुत्र समुत्पन्न होने के लिये चरु का साधन किया। उस समय में भार्गव ऋचीक ने उस भार्या को बुलाकर कहा—हे शुभे ! तुझे और तुम्हारी माता की स्वयं इस चरु का उपयोग करना चाहिए। उसमें क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ—दीप्तिमान् पुत्र समुत्पन्न होगा ॥२९-३१॥ यह लोक में क्षत्रियों के द्वारा अजेय और स्वयं क्षत्रियो में परम श्रेष्ठ होगा

तथा बड़े-२ वीर क्षत्रियो का सूदन करने वाला होगा । हे कल्याणि ! यह चर जो तुझे दिया जा रहा है वह तुझको भी परम सपत्नी-धृति-मान् शम स्वरूप-द्विजो मे अच्छे पुत्र प्रदान करेगा । इस प्रकार ते कह और अपनी भार्या को सनी-माँति दोनों चरों के शिष्य मे समझा कर भृगुनन्दन ऋषीक निरख ही तपश्चर्या मे अभिरत होते हुए घन मे प्रवेश कर गये थे । उसी समय मे गांधी राजा अपनी परनी के सहित ऋषीक मुनि के आश्रम मे प्राप्त हो गये थे ॥३२-३४॥ वह नरेश्वर तीर्थ यात्रा व प्रसंग से वहाँ पर अपनी पुत्री को देखने के लिये समागत हो गये थे । उस समय मे वह सत्यवती ऋषि के दोनों चरों को ग्रहण कर बड़ा उपस्थित हो गई । उसने बड़े ही यत्न पूर्वक चर को लेकर माताजी को दे दिया । माता ने देव बलात् उस अपनी पुत्री को अपना चर दे दिया ॥ ३५-३६॥

तस्याश्चरमथाज्ञानादात्मसस्य' चकार ह ।

अथ सत्यवती सर्वं क्षत्रियान्तकर तदा ॥३७

धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ।

तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपगृह्य च ॥३८

त गोद्वीद्विजश्रेष्ठः स्वा भार्यां वरवर्णिनीम् ।

मानासि वञ्चिता भव्रे चरुभ्यत्मासहेतुना ॥३९

जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्ममितिदारुणः ।

भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥४०

विश्व हि ब्रह्म तरसा मया तस्मिन् समर्पितम् ।

एवमुक्ता महाभाग भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१

प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् ।

ब्राह्मणापसदस्त्वत् इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२

इसके अनन्तर अज्ञान से उसने अपनी माता का चर आत्म सस्य कर लिया था । इसके पश्चात् उस समय मे समस्त क्षत्रियो के अन्त कर देने वाले गर्भ को सत्यवती ने धारण किया और दीप्त वपु से परम घोर दर्शन वाली हो गई थी । इसके उपरान्त समीप मे आकर ऋषीक ऋषि

मे योग के द्वारा देखा था । इसके अनन्तर वह द्विजश्रेष्ठ अपनी वरव-
णिनी भार्या से बोले—हे भर्ते ! जब के व्यत्यास कर देने के कारण से
अपनी माता के द्वारा तुमको वधित कर दिया गया है ॥३७-३८॥ तू
अब क्रूर कर्मों के करने वाला परम दारुण पुत्र को जन्म देगी और
तेरा भाई ग्रहाभूत परम तपस्वी समुत्पन्न होगे ॥४०॥ मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मा
तप के द्वारा उसमें समर्पित कर दिया । इस प्रकार से जब वह महान्
भागवती अपने स्वामी के द्वारा कहो गयी थी तो उस सत्यवती ने
अपने पति को प्रसन्न किया कि मेरा पुत्र इस प्रकृति का न होवे । आप
से ब्राह्मणों में नीच पुत्र नहीं होना चाहिए । जब इस तरह से पत्नी के
द्वारा बहुत अधिक प्रार्थना की गयी तो मुनि ने कहा—॥४१-४२॥

नैव सङ्कल्पितः कामो मया भर्ते तथास्त्विति ।

उग्रकर्म्म भवेत् पुनः पितुर्मर्माश्च कारणात् ॥४३

पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाग्नवीदिदम् ।

दृष्टोल्लोकामपि मुने सृजेथा किं पुन सुतम् ॥४४

शमात्मकमृजु त्व मे पुत्र दातुमिहार्हसि ।

काममेवविधः पीत्रो मम स्यात्तान च प्रमो ॥४५

यद्यन्यथा न शक्य वै कर्तुमेतद्विजोराम ।

तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो वतात् ॥४६

पुत्रे नास्ति विशेषो मे पीत्रे वा वरवणिनि ।

त्वया यथोक्त वचन तथा भर्ते भविष्यति ॥४७

तत सत्यवती पुन जनयामास भार्गवम् ।

तपस्यभिरत दा त जमदग्नि शमात्मकम् ॥४८

भृगोर्जगत्या वशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत ।

सा हि सत्यवती पुण्या सत्तमधर्मपरायणा । ४९

ऋषिक मुनि ने कहा—हे भर्ते ! मैंने कभी भी मन में ऐसा संकल्प
नहीं किया कि ऐसा होवे । पिता और माता के कारण से तेरा पुत्र
उग्र कर्मों के करने वाला होवेगा ॥४३॥ फिर सत्यवती ने इस प्रकार
से वाक्य को कह कर यह कहा—हे मुनिवर ! लोको को चाहते हुए

भी आप फिर क्यों पुनः का सृजन करते हैं । आप से तो ऐसी सामर्थ्य है कि आप परम सीधा शम स्वरूप पुत्र प्रदान करने के योग्य है । हे प्रभो ! हे विजातम ! यदि यह अग्न्या नहीं किया जा सकता है तो यह तो आप कर सकते हैं कि भले ही मेरा और आपका पौत्र इस प्रकार का हो जावे । इसके उपरान्त उस ऋषि ने अपने तप के बल से उस पर प्रसन्नता की थी ॥४४-४६॥ हे वर वर्णिनि ! मेरे पुत्र में अग्न्या पौत्र में विशेषता नहीं होगी । तुमने जैसा भी कहा है हे भद्रे ! वैसा ही होगा ॥४७॥ इसके अनंतर उस सत्यवती ने भार्गव पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था । जो तप में अभिरत था—परम दमन शील था और शम-स्वरूप जमदग्नि नाम आता हुआ ॥४८॥ जगत् में भृगु के वंश में जमदग्नि ने जन्म लिया था । वह सत्यवती परम पुण्यमयी और सत्य तपा धर्म में परायण हुई थी ॥४९॥

कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तोय महानदी ।

इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥५०॥

तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।

रेणुक या तु कामल्या तपोविद्यासमन्वितः ॥५१॥

आर्क्षिको जनयामासजामदग्न्य सुदारणम् ।

सर्वविद्यान्तर्ग श्रुत धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

राम आश्रयहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ।

ओर्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महायशाः ॥५३॥

जमदग्निस्तपोवीर्याज्जित् ब्रह्मविदावरः ।

मध्यमश्च शुनःशेषःशुन पूच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥

विश्वामित्रं तु दायाद गाधिः कुशिकनन्दनः ।

जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥

प्राप्य ब्रह्मपिसमता योऽयं ब्रह्मपिता गतः ।

विश्वामित्रस्तु धम्मर्तिमा नाम्ना दिश्वरयः स्मृतः ॥५६॥

यह कौशिकी नाम से समाख्यात हुई भी तथा यह महान ही प्रवृत्त हुई थी । इक्ष्वाकु राजा के वंश में समुत्पन्न होने वाला एक रेणु नामक

नराधिप हुआ ॥५०॥ उसकी महाभागा कापली रेणुका नाम वाली एक कन्या हुई । उस कामली रेणुका में तपोविद्या में मुक्त अर्चीक ने अति दक्षिण जामदग्न्य को समुत्पन्न किया । यह जामदग्न्य सब विद्या को के पारगामी तथा धनुर्वेद के परम श्रेष्ठ विद्वान् थे ॥५१-५२॥ इस प्रकार के शत्रियों के हनन करने वाले बनती हुई अग्नि के समान प्रवीण श्री परशुराम थे । महान् यक्षशी जमदग्नि ने जो ब्रह्म के ज्ञाताओं में बहुत ही श्रेष्ठ थे ओर श्रेष्ठ ही सत्यवती में तपोवीर्य से जन्म ग्रहण किया था । मध्यम धुन शेर और कनिष्ठक धुन, पुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक नन्दन गाधि न तप-विद्या और राम स्वरूप अपना दायाद विश्वामित्र पुत्र को समुत्पन्न किया ॥५५॥ जो यह विश्वामित्र ऋषि ब्रह्मपि समता को प्राप्त कर ब्रह्मपि हो गये थे । यह विश्वामित्र परम धर्मात्मा हैं और नाम से यह विश्वरूप कहे जाते हैं ॥५६॥

जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः ।

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥

प्रध्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्वयतः परम् ।

देवरातः कनिश्चैव मस्मात् कात्यायना स्मृताः ॥५८॥

शालावत्या हिरण्याक्षो रेणुजं कश्यप रेणुकः ॥५९॥

सप्तृतिर्गलिप्रश्नैव मुद्गलश्चैव विश्वतः ॥

मधुचन्द्रो जयश्र्वं च देवलश्च तथाष्टमः ।

मच्छतो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते मुताः ॥६०॥

तेषां नृपातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ।

पाणिनो मभवश्चैव ध्यानेजप्यास्त्रयेव च ॥६१॥

पायिवा देवराताश्च शालङ्क्यामनयाग्रलाः ।

लोहिता यमदूनाश्च तथा वारुणकाः स्मृताः ॥६२॥

वीर्यस्य मुनिश्चेष्टा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ।

गन्धर्घोऽप्यस्य यमोऽस्मिन् ब्रह्मदात्रस्य विश्वतः ॥६३॥

महर्षि भृगु के प्रसाद से कौशिक से बंश के वर्धन करने वाले ने जन्म ग्रहण किया था और विश्वामित्र के पुत्र देवरात्र प्रभृति कहे गये

है ॥५७॥ ये तीनों लोकों में प्रख्यात हुए थे । इसके आगे उनके नामों का श्रवण करो देवराज और कृति नाम वाले थे जिसमें कात्यायन कहे गये हैं ॥५८॥ शास्तावती में हिरण्याक्ष हुआ और इसके अनन्तर रेणु ने रेणुक को जन्म दिया ॥५९॥ संस्कृति और गालव तथा मुद्गल प्रसिद्ध हुआ । मयुकुम्भ-जय और अठ्ठाई देवता हुआ था । कच्छप और हारित ये सब विश्वामित्र के पुत्र थे ॥६०॥ उन समस्त महान् आत्मियों के शीघ्र कोशिक विद्यमान हैं । पाणिन-अश्वत्थ तथा व्यास अप्य और देवराज दायिब शान कात्यायन और वाष्कल-लोहित एवं यमदूत तथा कारुण्यक कहे गये हैं ॥६१॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! वीरव के और ब्रह्मापि कोशिक के इस कोश में भी सम्बन्ध है जो ब्रह्मक्षत्र का श्रुत हुआ था ॥६३॥

विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेषोऽग्रजः स्मृतः ।
भार्गवः कोशिकत्वं हि प्राप्नः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेषोऽभवत् किल ।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥६५॥
देवैर्दत्तः शुनःशेषो विश्वामित्राय वै पुनः ।
देवैर्दत्तः स यं यस्माद्देवराजस्ततोऽभवत् ॥६६॥
देवराजादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः ।
दृपद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रास्तथाष्टकः ॥६७॥
अष्टकस्य सुतो लोहिः प्रोक्तो जद्गुणशोभया ।
अत उद्धं प्रवक्ष्यामि वक्षमायोमहात्मनः ॥६८॥

विश्वामित्र के पुत्र शुन शेष हुआ जो सब में अग्रज कहा गया है । यह मुनि श्रेष्ठ भार्गव को शकत्व को प्राप्त हो गया ॥६४॥ यह हरिदश्व के यज्ञ के पशुत्व में विनियोजित किया गया था ॥६५॥ दशों के द्वारा यह शुनःशेष पुनः विश्वामित्र के लिये दे दिया गया था क्योंकि यह देवों के द्वारा दिया गया था अतएव तब से देवराज हो गया ॥६६॥ देवराज अदि सात विश्वामित्र के सुत थे । दृपद्वती का सुत भी विश्वामित्र का अष्टक था । इस अष्टक का पुत्र लोहि हुआ था । मैं यह जह्नु का

गण बतला दिया है । अब इससे जागे महात्मा आमु के वंश को बत-
लाऊंगा ॥६७-६८॥

८—सोमवंश में आमुवशवर्णन

आयोः पुत्राश्च ते पञ्च सर्व्वे वीरा महारथाः ।

स्वर्गान्निनयाया च प्रभाया र्ज्जिरे नृपाः ॥१॥

नहुषः प्रथम जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम् ।

रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२॥

रजिः पृथञ्जतानोह जनयामास पञ्च वः ।

राजियमिति विद्वान् क्षविमद्भगवावहम् ॥३॥

यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्नो सुदाहणे ।

देवाश्च वासुराश्चैव पितामहमथाबुवन् ॥४॥

भावयोर्मंगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।

सूहि तः सर्व्वभूतेश श्रीतुमिच्छाम तत्पुत्रः ॥५॥

येषामर्थाय सग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ।

योद्विषसे ते विजेष्यति त्रील्लोकान्नास सशयः ॥६॥

यतो रजिर्घृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ।

यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥७॥

श्री सोमहर्षण गहामुनि ने कहा—आमु के पाँच पुत्र थे और ये सब वीर एवं महारथ हुए थे । स्वर्गान् की युद्धी के गर्भ से जिसका नाम प्रभा था ये सब नृप समुत्पन्न हुए थे । १॥ सबसे प्रथम नहुष समुत्पन्न हुआ, इसके पश्चात् वृद्ध शर्मा हुआ था । रम्भा-रजि और अनेक ये तीनों लोकों में विभूत हुए हैं ॥२॥ रजि ने एक सौ पाँच पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । यह वंश “राजिय”-इस नाम से विख्यात हुआ जो इन्द्रदेव को भी भय देने वाला था ॥३॥ जिस समय में परम दाहण देवों और असुरों का वृद्ध समुत्पन्न हो गया, उस समय में देव और असुर पितामह श्री ब्रह्माजी से जाकर कहने लगे थे ॥४॥ देवासुरो ने

कहा—हे भगवन् ! हम दोनों दलों का युद्ध होने वाला है । कृपा कर, आप हमको यह बतला दीजिए कि इनमें कौन विजेता होगा । हे समस्त प्राणियों के स्वामिन् ! यह आप हमको बता दीजिए । हम तान्त्रिक रूप से यह श्रवण करना चाहते हैं ॥५॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये परम समर्थ शक्तिशाली रजि आयुष्य ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा उनके ही हाथ में तीनों लोकों की विजय भी होगी—इसमें शेष शङ्का भी सशय नहीं है ॥६॥ जहाँ पर रजि है वही पर धृति है और जहाँ धृति है वही पर श्री होती है तथा धृति और श्री दोनों जहाँ पर है वही पर धर्म तथा अय रहा करती है ॥७॥

ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजितदा ।

अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृष्वानास्त नरपंथम् ॥८॥

स हि स्वभन्निदोहिषा प्रभाया समपद्यत ।

राजा परमतेजस्वी सोमवशविवर्द्धनः ॥९॥

ते हृष्टमनसाः सर्वे रजि वं देवदानवाः ।

ऊचुरम्मज्जयाय त्व गृहाण वरकाम्भुंकम् ॥१०॥

अथोवाच रजिस्तस्य तयोर्वं देवदेत्ययो ।

अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्व च प्रकाशयन् ॥११॥

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा बीर्म्येण वासवः ।

इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि सयुगे ॥१२॥

देवा प्रथमतो विप्रा प्रतीयुर्हृष्टपानसाः ।

एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यता तव ॥१३॥

श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्य राजा रजिस्तदा ।

पप्रच्छासुरमुक्यास्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४॥

दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।

प्रयूचुस्त नृपवरं सामिमानमिदं वचः ॥१५॥

जब इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा सब तथा दानवों से कहा गया था तब वे सब परम प्रसन्न होकर उस समय में रजि के समीप में गये थे । दोनों ही इस उस नरश्रेष्ठ को अपनी २ ओर वरण करना

चाहते थे ॥८॥ वह रजि स्वर्गानु का धेवता था और प्रभा के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था । यह राजा अत्यधिक तेजस्वी तथा सोम के वश का विवर्धन करने वाला था । वे समस्त देव और बान्धव रजि को देखकर परम प्रसन्न हुए थे और उन दोनों में ही उनसे प्रार्थना की थी कि आप हमारी विजय होने के लिये अपने श्रेष्ठ समुप को ग्रहण कीजिए ॥६-१०॥ इसके अनन्तर वह राजा रजि अर्ध के जानने वाला तथा स्वार्थ का उद्देश्य लेकर अपने यश का प्रकाश करते हुए उन दोनों देवों तथा दैत्यों से बोला ॥११॥ रजि नृप ने कहा—यदि समस्त दैत्य गणों की अपने बल-विक्रम से युद्ध में जीत कर धर्म से मैं बाधव इन्द्र हों जाऊँ तो संग्राम युद्ध करूँगा ॥१२॥ हे विप्रो ! देव गण ने प्रथम ही प्रसन्न मन वाले होकर विश्वास कर लिया और कहा था—इ नृप ! इस प्रकार से आपकी कामना पूरी हो जायेगी ॥१३॥ उस समय में राजा रजि ने सुरगणों के वाक्य सुनकर जिस तरह देवगणों से पूछा था वैसे ही असुरगणों से भी पूछा था ॥१४॥ दानवगण तो दर्प से भर गए थे और अपने स्वार्थ को ही समझ कर बड़े अभिमान के साथ उस धैर्य राजा से यह वचन बोले थे ॥१५॥

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्वार्थं विजयामहे ।

अस्मिस्तु समरे राजस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ॥१६॥

स तर्धेति श्रुत्वा देवैरप्यतिचोदितः ।

भविष्यसीन्द्रो जित्वैनदेवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥१७॥

जघान दानवान् सव्वान् वेऽवध्या ध्वजशरिणः ।

स विप्रनष्टा देवाना परामश्री श्रिय वशी ॥१८॥

निहत्य दानवान् सव्वानाजहार राजा नृमुः ।

ततो रजि महावीर्यं देवै सह शत्रुकनुः ॥१९॥

रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाग्रवीद्वचः ।

इन्द्रोऽसि तात देवाना सर्वेषा नास्र सशयः ॥२०॥

यस्याहमिन्द्र. पुत्रस्ते म्यानि यास्यामि कर्ममिमा ।

स तु शत्रुवचः श्रुत्वा यञ्चितस्तेन मायया ॥२१॥

दानवों ने कहा—हम लोगों का तो इन्द्र महाराज प्रह्लाद है जिनके लिये हम विजय करते हैं । हे राजाओं मे परम ध्येष्ठ ! आप इस संग्राम में स्थित हो जाइए ॥१६॥ वह ऐसा ही होगा—यह कहने लगा था और देवों के द्वारा अत्यधिक प्रेरित किया गया था । देवगण ने उस राजा से कहा था कि आप इसको जीतकर इन्द्र हो जायेंगे ॥१७॥ उस वशी और परम धी राजा रजि ने समस्त दानवों को मार बिद्या था जो कि हाथ में बज्र धारण करने वाले अवश्य थे, यथथा जो इन्द्र के वध करने के योग्य नहीं थे अर्थात् इन्द्र जिनके हनन करने में अवसर्य थे । देवों की शिष्ट हुई श्री को समस्त दानवों को मार कर स्वर्ग हरण कर लिया था । इसके अनन्तर उस इन्द्र ने देवों के साथ उस महान् वीर्य वाले रजि से “मैं रजि का पुत्र हूँ” यह कहकर पुनः यह वचन बोला था । हे तात ! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८-२०॥ जिसका आपका मैं इन्द्र पुत्र हूँ—इस कथा को कर्मों के द्वारा प्राप्त हो जाऊंगा । वह तो शत्रु का वधन सुनकर उसके द्वारा माया से बञ्चित हो गया था ॥२१॥

तथैवेत्यप्रधीद्राजा प्रीयमाणः क्षतकतुम् ।

तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिव प्राप्ते महीपती ॥२२

दायाद्यमिन्द्रादाजह राज्यं तत्तनया रजेः ।

पञ्च पुत्रशान्न्यस्य तद्वै स्थानं क्षतकतोः ॥२३

समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।

ते यदा तु स्वसम्पूढा रागोन्मत्ता विषम्भिः ॥२४

शत्रुद्विपश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ।

ततो लेभे स्वमंश्चर्यमिन्द्रः स्थानं तद्योत्तमम् ॥२५

हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ।

य इदं कृपावनं स्यानात्प्रतिष्ठानं शत्रुकृतोः ।

शृणुयाद्वारयेद्वापि न स दीर्घत्वमाप्नुयात् ॥२६

रम्भोऽनघत्यस्त्वासीच्च वंशं बह्व्याम्यनेनसः ।

अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षन्तो महायशाः ॥२७

• प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुतः ।

सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२८

उस राजा ने प्रसन्न होते हुए ऐसा ही हो—यह इन्द्र से कहा था । देवी के समान उस राजा के दिवलोक में प्राप्त होने पर रजि के पुत्रों ने उसके दायाद राज्य का हरण कर लिया था । इसके पाँच सौ पुत्रों ने शतक्रतु (इन्द्र) के उस स्थान को बहुधा विविध स्वर्ग लोक को समाक्रान्त कर लिया था । वे जिस समय में स्वयं महान् सम्पूठ होकर राग में उत्पन्न और विषर्मी हो गये तथा ब्रह्मडिट् बन गये तो हत वीर्य तथा पराक्रम से हीन हो गये थे । तब तो इन्द्र ने स्वयं ही अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को तथा उस उत्तम स्थान की उनसे प्राप्ति कर लिया था ॥२२-२५॥ फिर उस इन्द्रदेव ने उन सब रजि के पुत्रों का हनन करके नष्ट कर दिया था क्योंकि वे सभी काम और क्रोध में परायण हो गये थे । जो कोई पुरुष इस शतक्रतु के अपने स्थान से च्युत होने एवं प्रतिष्ठान की कथा का श्रवण किया करता है क्षयवा धारण करता है वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२६॥ श्री महा मुनीन्द्र सोम-हृषण जी ने कहा—‘‘मम ती सन्ताति हीन था अब हम अनेना व वश का वणन करेंगे । उस अनेना का पुत्र महान् यश वाला राजा प्रतिक्षत्र हुआ था ॥२७॥ उस प्रतिक्षत्र के यही सञ्जय नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था । तबय का सुत जय नाम वाला हुआ था और उस जय का पुत्र विजय हुआ था ॥२८॥

विजयस्य कृति पुत्रस्तस्य ह्य्यत्वन सुतः ।

ह्य्यत्वनसुतो राजा सहदेव प्रतापवान् । २९

सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः ।

नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः ॥३०

सङ्कृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायथाः ।

अनेनसः समाज्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥३१

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायथाः ।

सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परधाम्निवाः ॥३२

काशाः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।
 पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।
 शलात्मज आष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४॥
 काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
 धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५॥

विजय का पुत्र कृति और कृति का पुत्र हर्षत्वंत हुआ था । हर्षत्वंत का पुत्र महान् प्रतापी सहदेव समुत्पन्न हुआ । इस राजा सहदेव का आत्मज परम धार्मिक नदीन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ था । नदीन का दायद जयरसेन और जयरसेन का संकृति नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२९-३०॥ इस संतति के यहाँ भी महान् यश से सम्पन्न-परम धार्मिक क्षत्र वृद्ध ने जन्म ग्रहण किया था । ये सब अनेक वर्णित कर दिये गये हैं । उस क्षत्रवृद्ध का पुत्र महा यशस्वी शुनहोत्र हुआ । इन शुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३१-३२॥ उन तीनों में काश और शल दो तो थे थे तथा तीसरा गृत्समद् प्रभु हुआ था । इस गृत्समद् का पुत्र शुहक नाम वाला हुआ था जिसका शौनक हुआ था । ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हुए थे । शल का पुत्र आष्टिसेन उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज काश्यप हुआ था ॥३३-३४॥ काश का दायद काशिपु पुत्र हुआ तथा उसका पुत्र दीर्घतपा उत्पन्न हुआ था । दीर्घतपा के धीरे से धनु ने जन्म लिया था और फिर इनका पुत्र परम विद्वान् धन्वन्तरि हुआ था ॥३५॥

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमताः ।
 पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेऽपि जन्मनि ॥३६॥
 तस्य मेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
 काशिराजो महाराजः सत्वरोगप्रणाशनः ॥३७॥
 आयुर्वेदं भरद्वाजान् प्राप्येह स भिषक्कियः ।
 तमष्टथा पुनर्ऋषेस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८॥

धन्वन्तरेस्तु तनय केतुमानिनि विश्रुत ।
 अय केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथ स्मृत ॥३६॥
 पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदास प्रजेश्वरा ।
 दिवोदासस्तु घर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥४०॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी द्विजा, ।
 शून्या निवेशयामास क्षमको नाम राजस ॥४१॥
 शून्या हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
 शून्या वपसहस्र वै भवित्री तु न सशय ॥४२॥

वृद्ध धीमान् के महान् तप के अत मे पुन इय जग्य मे मनुष्यो
 में धन्वन्तरि देव समुत्पन्न हुए थे ॥३६॥ उनके घर में उस समय मे देव
 धन्वन्तरि ने जन्म ग्रहण किया था । महाराज काशिराज समस्त रीषी
 के नाश करने वाले थे ॥३७॥ यही पर भियक् की किया वाले वह
 भरद्वाज से आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने वाले हुए थे । इन्होंने
 उसको आठ भागो मे विभक्त करके शिष्यों को प्रदान किया था ॥३८॥
 उन महाराज धन्वन्तरि का पुत्र के तुमान् इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ।
 इसने जन नर के तुमान् का पुत्र परम वीर भीमरथ हुआ था ॥३९॥
 भीमरथ का पुत्र प्रजेश्वर दिवोदास उत्पन्न हुआ था वह परम घर्मात्मा
 दिवोदास वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥४०॥ इसी अवसर पर हे
 द्विजगण ! क्षेमक नाम वाले राजस ने वाराणसी पुरी को शून्य निवे-
 शित कर दिया ॥४१॥ महान् मतिमान् निकुम्भ ने द्वारा वह पुरी शाय
 वाली ही गई थी क्योंकि वह निकुम्भ महान् आत्मा वाला था । उसने
 वाराणसी पुरी को यह शाय दिया था कि महस्र वर्ष पश्य त यह एक-
 दम शून्य रहेगी—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥४२॥

तस्या हि क्षप्तमात्माया दिवोदासः प्रजेश्वरा ।
 विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥
 भद्रश्रेण्यस्य पूर्व्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् ।
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
 भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन वलीयसा ॥४१॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
 दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४२॥
 हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वं महीपतिः ।
 आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदामहृतं बलात् ॥४३॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
 चैरस्यान्तो महाभागाः कृन्ध्वात्मीयतेजसा ॥४४॥
 दिवोदासाद्दृष्टपद्वत्यां घोरो जज्ञे प्रतर्दनं ।
 तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्वलम् ॥४५॥

प्रजेश्वर दिवोदास ने शाप दी हुई उस पुरी में विषया-त में गोमती में परम सुरम्य पुरी की सन्निवेशित किया था ॥४३॥ पूर्व में यह यारा-
 नसी पुरी भद्रश्रेण्य की थी । इस भद्रश्रेण्य के परमोत्तम अनुधारी एक
 गो पुत्र थे ॥४४॥ दिवोदास नृप ने उन सबका हनन करके इस पुरी की
 निवेशित किया था । इस महान् बलवान् नृप ने उस भद्रश्रेण्य के सम-
 पूर्ण राज्य को छीन लिया था ॥४५॥ इस भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम
 से प्रसिद्ध हुआ । दिवोदास ने उन दुर्दम को बालक है—यह कहकर
 नहीं मारा था और दया से बचकी छोड़ दिया था ॥४६॥ उस राजा
 ने हैहय के दायाद का हरण कर लिया था । दिवोदास के द्वारा जो
 अपने पिता के दायाद का हरण कर लिया गया था और बलपूर्वक
 छीन लिया था फिर इस भद्रश्रेण्य के पक्ष में दुर्दम ने वापिस छीन लिया
 था । हे महामागो ! अपने ही तेज के द्वारा इन दुर्दम ने चैर का अन्त
 कर दिया ॥४७-४८॥ इस राजा दिवोदास के बीच में दृष्टपदी ने महान्
 और प्रतर्दन न जन्म लिया । उन नामक पुत्र ने पुनः बल का प्रहरण
 किया था ॥४९॥

प्रतर्दनस्य पुत्री द्वौ भर्तृभग्नौ सुविश्रुतौ ।
 यत्नपुत्री ह्यलपस्तु सप्रतिस्तस्य चारमजः ॥५०॥

अलकंस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्या सत्यमङ्गरः ।
 अलकं प्रति राजपि श्लोको गीत पुरातनं ॥५१॥
 पष्टिवर्षसहस्राणि पष्टिवर्षशतानि च ।
 युवा रूपेण सम्पन्न प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥५२॥
 लोषामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्नवान् ।
 तस्यासीत् सुमहद्राज्य रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
 रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी पुनः ॥५४॥
 सन्नतेरपि दायाद सुनीथो नाम धार्मिकः ।
 सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशः ॥५५॥
 क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
 सुकेतोस्तनयश्चापि धम्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

उस प्रतदन के वंशभग के नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र हुए थे । उसके
 धीमे से धरत पुत्र अलक और सन्तति आत्मज हुए थे ॥५०॥ उसका
 पुत्र अलक ब्रह्मण्या अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्य
 सकर अर्थात् सग्न्य करने वाला हुआ था । उस राजपि अलक के
 विषय में पुरातन लोगो ने यह श्लोक गाया था ॥५१॥ वह साठ हजार
 साठ सौ वर्ष पयन्त प्रथम समय में रूप लावण्य से सुसम्पन्न कुल का
 उद्बहन करने वाला युवा था ॥५२॥ लोषामुद्रा देवी के प्रसाद से उसने
 परम आयु प्राप्त की थी । रूप और यौवन वाले उसका राज्य भी महान्
 था ॥५३॥ शाप के अन्त में उन महाबाहु ने क्षेमकराक्षस का हनन
 करके पुनः परम रम्य वाराणसी पुरी को निवेशित किया था ॥५४॥
 सन्तति का पुत्र सुनीथ परम धार्मिक था और इस सुनीथ का पुत्र महान्
 यश वाला क्षेम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥५५॥ इस क्षेम का आत्मज
 केतुमान् हुआ था तथा इसका पुत्र सुकेतु ने अग्न लिया था । सुकेतु का
 पुत्र धम्मकेतु नाम से कहा गया था ॥५६॥

धम्मकेतोस्तु दायाद सत्यकेतुमहारथः ।

सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥५७॥

आनत्तंस्तु विभो पुत्र सुकुमारश्च तत्सुतः ।
 सुकुमारस्य पुत्रस्तु घृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥५८॥
 घृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।
 वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः ॥५९॥
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः ।
 एते त्वङ्गिरसः पुत्र जाता वशेऽय भार्गव ॥६०॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्च यः पुत्राः सहस्रशः ।
 इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुपस्य निबोधत ॥६१॥

धर्मकेतु का दायाद महारथी सत्यकेतु हुआ था । सत्यकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजेश्वर हुआ था । ॥५८॥ उस विभु के वीर्य से आनत्त पुत्र समुत्पन्न हुआ था, उसका पुत्र सुकुमार उत्पन्न हुआ था । सुकुमार के यहाँ परम धर्मात्मा घृष्ट केतु ने जन्म ग्रहण किया था ॥५९॥ इस घृष्ट केतु का दायाद प्रजेश्वर वेणु होत्र हुआ था और वेणु होत्र का सुत राजा भार्ग हुआ था ॥६०॥ भार्ग से जन्म लेने वाला भार्गभूमि था तथा वत्स का पुत्र वत्सभूमि हुआ था । हे भार्गव ! ये वंश मे अङ्गिरा से पुत्र हुए थे ॥६०॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों सहस्रों की सख्या मे पुत्र थे । ये सब काश्यप वत्सलाये गये हैं । अब नहुप के पुत्रों को समझता ॥६१॥



६ —ययातिचरित्रवर्णन

उत्पन्नाः पितृकन्याया विरजाया महौजसः ।
 नहुपस्य तु दायादाः पटिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥
 यतिर्ययातिः सयातिरयातिर्यातिरेव च ।
 सुयाति पृष्ठस्तेषां वं ययाति पाथिवोऽभवत् ॥२॥
 चतुस्त्ययन्या गा नाम लेभे परमधार्मिकः ।
 यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥३॥

तेपां ययाति पञ्चाना विजित्य वसुधामिमाम् ।

देवयानीमुशनस सुता भार्यामिवाप स ॥४॥

शम्भिष्ठागासुरी चैव तनया वृषपर्वण ।

यदुच्च तुर्वंसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥५॥

द्रुह्य चानु च पूरु च शम्भिष्ठा वार्षपर्वणी ।

सप्तमै शक्रो ददौ प्रीतो रथ परमभास्वरम् ॥६॥

अङ्गद काञ्चन दिव्य दिव्यं परमत्राजिभि ।

युक्त मनोजवं शुभ्रैर्येन काय्य समुद्रहन् ॥७॥

श्री लोमहृषणजी ने कहा—पितृ कथा विरजा में महान् ओज वाले इन्द्र के समान तेज स युक्त राजा नहुष के छ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनके नाम ये हैं—यति—ययाति—सयाति—आयाति—याति और छटर्ग सुयाति था ॥२॥ इस परम धार्मिक राजा ने कनुत्स्य की कथा के साथ विवाह किया था । जो यति नाम वाला पुत्र था वह तो मोक्ष मार्ग में समाप्तियत होकर ब्रह्मभूत मुनि हो गया था ॥३॥ शेष पाँचों में इस ययाति ने इस सम्पूर्ण वसुधा को जीत कर उसना की पुत्री देवयानी को अपनी पत्नी बनाया था ॥४॥ तथा वृषपर्वा की पुत्री अ सुरी शम्भिष्ठा को भी अपनी पत्नी बना लिया था । उस देवयानी ने यदु और तुवसु नाम वाले पुत्रों को जन्म दिया था ॥५॥ वापपर्वणी ने द्रुह्य—अनु और पूरु को जन्म ग्रहण कराया था जिसका नाम शम्भिष्ठा था । इन्द्र देव ने परम प्रसन्न होकर उसकी एक अधिक भास्वर रथ प्रदान कर दिया था ॥६॥ यह रथ सुवर्ण का परम दिव्य अङ्गद और उत्तम अश्वों से युक्त था जिनका वेग मन के ही समान था और इगका वण परम शुभ्र था । जिसके द्वारा वह समुद्रहन् का काय्य किया करता था ॥७॥

स तेन रथमुख्येन पट्टात्रेणाजयन्महीम् ।

ययातिर्युं पि दुद्ध पस्तथा देवान् सदानवान् ॥८॥

स रथ कौरवाणा तु सर्व्वेषामभवत्तदा ।

सर्वत्त वसुनामस्तु कौरवाञ्जनमेजयात् ॥९॥

कुरो पुनस्य राजेन्द्रराज्ञ पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाश शापाद्गर्गस्य धीमत ॥१०॥
गर्गस्य हि सुत बाल स राजा जनमेजय ।
कालेन हिसयामास ब्रह्महृत्यामबाप स ॥११॥
स लोहगन्धो राजर्षि परिघाबन्धितस्तत ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे दाम्मं कहिचित् ॥१२॥
तत स दुःखसन्तप्तो नालमत्सविद कचित् ।
विप्रेन्द्र शौनक राजा शरण प्रत्यपद्यत ॥१३॥
याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजान पावनार्यं द्विजोत्तमा ॥१४॥

उस राजा ययाति ने उस परम प्रमुख रथ के द्वारा छँ ही रात्रियो में समस्त भूमि को जीत लिया था । राजा ययाति बोना तथा दानवों के द्वारा बहुत दुर्घर्ष था और मुझ में उसे कोई भी जीत नहीं सकता था ऐसा महान् यज्ञवान् था ॥८॥ वह रथ उस समय समस्त कीरवों का हो गया था । कीरव जनमेजय से सत्यत् वसु नाम वाला उत्पन्न हुआ था । राजेन्द्रो पा राजा गुरु के पुत्र पारिक्षित बृहद्रथ परम धीमान् गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था ॥९॥ उस राजा जानमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र को मार दिया था और वह फिर ब्रह्महत्या को प्राप्त हो गया था ॥१०॥ वह लोहगन्ध राजर्षि इधर उधर भागता हुआ पुरषासी और देशपातियों के द्वारा त्याग दिया गया था तथा उस महती ब्रह्महत्या के कारण से उसने वही पर भी दाम्नि प्राप्त नहीं की थी ॥११॥ इससे पश्चात् परम दुरा से सतत उस राजा ने वही पर भी सुस्थिरता का लाभ प्राप्त नहीं किया था और विप्रेन्द्र शौनक जी के समीप में पहुच करण ग्रहण की थी ॥१२॥ उस परम ज्ञानी शौनक ने उस जनमेजय से यजन कराया था । हे द्विजोत्तमो ! उस राजा को पावन बनाने के लिये उससे अश्वमेध यज्ञ का यजन कराया था ॥१४॥

स लोहगन्धो व्यनशतस्यावभृथमेत्य ह ।

स च दिभ्यरथो राज्ञो वदश्वेदिपतेस्तदा ॥१५॥

दत्तः शक्रं तुष्टेन लेभे तस्माद्वृहद्रथः ।
 वृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथ नृपम् ॥१६॥
 ततो हत्वा जरासन्ध भीमस्त रथमुत्तमम् ।
 प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७॥
 सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी सप्तागराम् ॥
 विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥१८॥
 ययातिर्विंशतिं पूर्व्वस्यां यदु ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।
 मध्ये पूरुं च राजानमभ्यपिचत् स नाहुपः ॥१९॥
 विंशतिं दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वंगुं मतिमान् नृप ।
 तैरियं पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपा सपत्न्या ॥२०॥
 यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ।
 प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिस्तत्तमा ॥२१॥

उसके अथभुय को प्राप्त करके उसका वह लोहगन्ध विनष्ट हुआ था
 और वह दिव्य रथ उस समय में चैदित के अधीनता में था ॥१५॥
 प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने दिया था और उसके वृहद्रथ ने प्राप्त किया था ।
 क्रम से वृहद्रथ से बार्हद्रथ नृपति को प्राप्त हुआ था ॥१६॥ उसके अनन्तर
 भीम ने राजा जरासन्ध का हनन करके उन अत्युत्तम रथ को कौरव
 नन्दन ने प्रीति के साथ भगवान् वासुदेवजी को समर्पित कर दिया था
 ॥१७॥ उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने सातों द्वीपों वाली सागरों के
 सहित पृथ्वी को जीतकर अपने पाँचों पुत्रों में सिंघे पाँच भागों में उसका
 विभाजन कर दिया था ॥१८॥ राजा ययाति ने पूर्य दिशा में अपने
 ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियोजित किया था । उस नहुष के पुत्र राजा ययाति
 ने मध्य देश में पूरु को अभिषिक्त कर दिया था ॥१९॥ मतिमान् नृप
 ने दक्षिण पूर्व दिशा में तुर्वंगु नामक पुत्र को नियोजित कर दिया था ।
 उन सबके द्वारा उस सातों द्वीपों वाली पत्तनों के सहित समस्त पृथ्वी को
 यया प्रदेश के अनुसार धर्म पूर्वक शासन किया जाता था । हे मुनिश्रेष्ठ !
 अब पहिले उनकी प्रजाओं के विषय में वर्णन करेंगे ॥२०—२१॥

अनुन्यस्य पृथक्काश्च पञ्चभिः पुरुषपैत्रैः ।
 जरावानमवद्राज्य भारमावेश्य बन्धुषु ॥२२॥
 निक्षिप्तशस्त्रं पृथिवी चचार पृथिवीपति ।
 प्रीतिमानभवद्राज्य ययातिरपराजित ॥२३॥
 ह्य विमज्य पृथिवी ययातिर्यदुमव्रवीत् ।
 जरा मे प्रतिग्रह्णोऽप्य पुत्रं कृत्यान्तरेण वै ॥२४॥
 तत्क्षणस्तव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ।
 जरा त्वयि समाधाय तं यदु प्रत्युवाच ह ॥२५॥
 अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
 अनपाकृत्य ता राजन् ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥
 जराया बहवो दोषा पानभोजनवारिता ।
 तस्माज्जरा न तेन राजन् ग्रहीतुमहेमुत्सहे ॥२७॥
 सन्ति ते बहव पुत्रा मत्तं प्रियतरा नृप ।
 प्रतिग्रहीतुं धर्म्मज्ञं पुत्रमन्यं वृणोऽप्य वै ॥२८॥
 स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।
 उवाच बदता श्रेष्ठो ययातिर्यहं यद सुतम् ॥२९॥

पाँच श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा समस्त भार ग्रहण कर लेने पर उस राजा
 के घनपुत्रों में पृथक्को पृथक्से कर दिया था । बन्धुओं पर भार को
 रखकर राजा जरा वाला धर्मात् वृद्ध हो गया था ॥२२॥ असभ्यों के
 निक्षिप्त करने वाला वह राजा समस्त पृथ्वी पर विचरण किया करता
 था । वह अपराजित राजा ययाति परम प्रीति वाला हो गया ॥२३॥
 इस प्रकार से समस्त पृथिवी का विभाजन करने राजा ययाति अपने
 ज्येष्ठ पुत्र यदु से बोला था—हे पुत्र । कुछ समय के लिये तुम मेरी
 वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो प्यो कि मुझे कुछ कृत्य अभी करना है
 अतएव अपना जीवन मुझे देदो ॥२४॥ हे पुत्र । तुम्हारे इस तत्क्षण रूप
 को ग्रहण कर मैं इस पृथिवी पर विचरण करूँगा—ऐसी मेरी इच्छा
 है । इस अपनी वृद्धावस्था को तुमको देदेना चाहता हूँ । यह पिता का
 धन पुनः यदु ने इसका उत्तर दिया ॥२५॥ यदु ने कहा—यैने भिक्षा

निर्विष्ट नहीं की है जो कि ब्राह्मण की प्रतिश्रुत कर दी है । हे राजन् ! उसको अपावृत न करके मैं आपकी इस जरावस्था को ग्रहण नहीं करूँगा ॥२६॥ इस जरा (वृद्धावस्था) में तो खान-पान सम्बन्धी बहुत से बोध हुआ करते हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं आपको इस वृद्धता को लेने का उत्साह ही नहीं करता हूँ ॥२७॥ हे नृप ! आपके तो मुदाते भी अधिक ध्यारे बहुत से पुत्र हैं । हे धर्म के जाता राजन् ! इस जरा को ग्रहण करने के लिये किसी अन्य पुत्र का वरण करिए ॥२८॥ जब उस यदु नामक पुत्र के द्वारा राजा से इस प्रकार से कहा गया था तो वह राजा क्रोध से युक्त होकर बोलने वाली में श्रेष्ठ राजा यथाति अपने पुत्र की निन्दा करते हुए बोले—॥२९॥

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते ।

मामनाडत्तं दुर्वृद्धं यदहं तव देशिक ॥३०॥

एवमुक्तो यदुं विप्रा शशापेन स मन्युमान् ।

अराज्या से प्रजा मूढ भवित्रीति न सशयः ॥३१॥

द्रुह यु च तुर्व्वंशु चैवाप्यनु च द्विजसत्तमाः ।

एवमवाव्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३२॥

शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः ।

यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥३३॥

एव शप्त्या सुतान् सर्व्वश्रितुर पूरुपूव्यजान् ।

तदेव वतन राजा पूरुमप्याह भो द्विजाः ॥३४॥

तरुणस्तव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ।

जरा त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे ॥३५॥

यथाति ने कहा—हे वृष्ट बुद्धि वाले ! तेरा अन्य कौन-सा आश्रय है अथवा कौन सा धर्म तेरे द्वारा किया जाता है जिससे तू मेरा जनादर कर रहा है क्योंकि मैं तेरा आचार्य हूँ । तात्पर्य यह है कि मुझ आचार्य का अनादर करके कोई भी आश्रम और धर्म नहीं किया जा सकता है ॥३०॥ हे विप्रगण ! इस तरह से यदु को कह कर उसने उसको शाप दे दिया क्योंकि वह बहुत ही कुण्ठित हो गया था—हे मूढ़ ! तेरी प्रजा

राज्य हीन होगी—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ हे सत्तमो ! इसके पश्चात् उस राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्य तुव्यं सु और अनु से भी इसी तरह से जाकर अपनी जरा लेकर यौवन देने की बात कही और उन सबने भी राजा के बचनों का स्मरण कर दिया अर्थात् किसी ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ उस अपराजित राजा ययाति ने अत्यधिक क्रोधित होकर उन सबको भी शाप दे दिया । हे द्विज सत्तमो ! इसके विषय में मैंने यथावत् सब कह दिया है ॥३३॥ इस तरह पूरु से पहिले समुत्पन्न हुए अर्थात् बड़े भाइयों को सभी पुत्रों को चारों को राजा ने शाप दे दिया क्योंकि उन चारों ने अपने पिता के वचनों को शिरोधार्य न कर बुरी तरह से झुकरा दिया था । इसके अमन्तर वही वचन राजा ने अपने सुत पूरु से भी आकर कहा ॥३४॥ वह वचन यही था कि मैं तरुण होकर धीरे तेरे इस सारुण्य के रूप को ग्रहण करके अब समस्त पृथ्वी पर विचरण करना चाहता हूँ और मैं अपनी इस वृद्धता को तुझको देकर ऐसा विहार करूँगा यदि हे पूरु ! तुझे यह मेरी जरा को ग्रहण करना स्वीकार हो ॥३५॥

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यंवरन् महीम् ॥३६॥
स मार्यमाण कामगनामन्त नृपतिसत्तमः ।
विश्वाच्या सहितो रेमे बने चैत्ररथे प्रभुः ॥३७॥
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च मराधिपः ।
तदा पूरोः सकाशाद् स्वा जरा प्रत्यपद्यत ॥३८॥
यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना ।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वे ह्यङ्गानि कृम्वेवत् ॥३९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हृदिवा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्द्धते ॥४०॥
अल्पयिव्या व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
चालमेकस्य तत्सर्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥४१॥

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम् ।

कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥

उस प्रतापवाद् पूरु ने अपने पिता ययाति की उस जरा की ग्रहण कर लिया और फिर राजा ययाति भी पूरु के रूप को लेकर पृथ्वी पर परिधरण करने लग गया ॥३६॥ सब नृपो में श्रेष्ठ वह राजा अपनी काम वासनाओं की समाप्ति की सोच करता हुआ वह चंद्ररथ वन में विश्वाची अप्सरा के साथ पूव रमण किया करता रहा । जिस समय में काम वासनाओं में और भोगों के उपभोग करने में वह राजा हस्त हो गया तो फिर आकर उसने अपने पुत्र पूरु से अपनी वृद्धावस्था को वापिस ले लिया ॥३७-३८॥ हे मुनिगणो ! राजा ययाति ने जहाँ पर यह पापा गायी थी, जिनके द्वारा कानों की प्रत्याहृत करना चाहिए । और सब लोग जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ कर अन्दर लेलिया करता है वैसे ही काम वासनाओं की भी सकुचित किया करे । कामों के अधिकाधिक उपभोग करने से काम वासनाएं कभी भी शान्त नहीं हुआ करती हैं प्रत्युत अधिक बढ़ जाया करती हैं जिस तरह हवि के जलने से अग्नि विशेष प्रवीण हो जाती है ॥३९-४०॥ इस पृथ्वी में जितने भी ब्रीहियव-हिरण्य-पशु और स्त्रियां हैं वे सब एक की भी काम-वासनाओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं हैं—यह सबस कर मोह को प्राप्त नहीं होता चाहिए ॥४१॥ जब समस्त प्राणियों ने पाप की मापना नहीं करता है और कर्म-वचन तथा मन से किसी भी तरह से पाप की भावना को त्याग देता है तभी यह प्राणी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त किया करता है ॥४२॥

यदा तेभ्यो न विभेति यदा चास्मान्न विभ्यति ।

यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥

या दुस्त्यजा दुर्ममतिमिर्या न जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४४॥

जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः वेशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यनः ।

घनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यन्ति ॥४५॥

यच्च काममुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
 तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशी कलाम् ॥४६॥
 एवमुक्त्वा रा राजपिः सदारः प्राविशद्वनम् ।
 कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥४७॥
 भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महाप्रशाः ।
 धनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥
 तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजपिसत्तमाः ।
 यैर्याप्ता पृथिवी सत्त्वा सूर्यस्येव गमस्तिभिः ॥४९॥
 यदोस्तु वशं वक्ष्यामि शृणुष्व राजसत्कृतम् ।
 यत्र नारायणो जज्ञे हरिवृष्णि कुलोद्बहः ॥५०॥
 सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमाश्च भवेन्नरः ।
 ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

जब उससे यह भयभीत नहीं होता है और इससे भी कोई भय प्राप्त नहीं किया करता है । और जब यह कुछ भी इच्छा नहीं रखता है और न किसी से द्वेष किया करता है तभी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥ जो बुरी बुद्धि वालों के द्वारा परम दुस्त्यज है और जो जराजीर्ण होने पर भी कभी जीर्ण नहीं हुआ करती है तथा जो ऐसा एक महान् भयानक रोग है कि प्राणों के अन्त तक लगा ही रहता है तथा प्राणों का अन्त ही कर दिया करता है उस तृष्णा को त्याग देने वाले ही को सुख मिला करता है । जरा से जीर्ण होने वाले पुण्य के केश भी ध्वस्त होकर जीर्ण हो जाया करते हैं तथा दात भी जीर्ण होकर छलड़ जाते हैं किन्तु ये सब तो जीवन के साथी पक कर नष्ट हो जाते हैं मगर धन की आशा और जीवित धने रहने की आशाएं दोनों ऐसी प्रवृत्त हैं कि जरा जीर्ण हो जाने पर जीर्ण नहीं हुआ करती है ॥४४-४५॥ जो इस लोक में कामों के उपभोग करने में सुख का अनुभव होता है और जो दिव्य स्वर्गादि लोको के निवास करने का महान् सुख होता है ये सब तृष्णा के शय के हो जाने से जो सुख प्राप्त होता है उस सुख का सोलहवां भी भाग नहीं होता है ॥४६॥ इस प्रकार से तृष्णा के त्याग

का महत्त्व बतला कर उस राजा ययाति ने स्त्री के सहित वन में प्रवेश कर लिया और बहुत समय पर्यन्त इसने परम दारुण तप किया ॥४७॥ उस महान् यज्ञस्वी राजा ने तपश्चर्या के अन्त में शृगु तुङ्ग में सुगति को प्राप्त किया । अशन का त्याग करके अपने देह का त्याग कर दिया तथा अपनी दारा के साथ ही उसने स्वर्ग को प्राप्त कर लिया ॥४८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस राजा ययाति के वंश में पाँच राजर्षियों ने श्रेष्ठ हुए थे । उन सबने सूर्य देव की किरणों के जाल के ही समान समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर लिया ॥४९॥ अब मैं यदु के वंश का वर्णन करूँगा जो राजाओं के द्वारा सत्कार किया गया था । उसका आप लोग श्रवण करो जिसमें वृष्णि कुल के उद्बहन करने वाले भगवान् हरि नारायण ने स्वयं जन्म ग्रहण किया ॥५०॥ इस राजा ययाति के चरित्र का नित्य ही श्रवण किया करता है हे द्विजगणो ! वह मनुष्य परम सुस्थ-प्रजा वाला-आयु से युक्त और कीर्तिमान् हुआ करता है ॥५१॥

१० — पुरवंशवर्णन

पुरोर्वशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।
 द्रुहास्यानोर्यदोश्च व तुवंसोश्च पृथक् पृथक् ॥१॥
 शृणुष्व मुनिशार्दूलाः पुरोर्वशं महात्मनः ।
 विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम ॥२॥
 पूरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।
 राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥३॥
 तथैवाभयदस्यासीत् सुघन्वा नाम पार्थिवः ।
 सुघन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥४॥
 रौद्राश्वस्य दशार्णयुः क्रुक्कण्युस्तथैव च ।
 कक्षेयुस्त्यण्डिलेयुश्च सघ्नतेयुस्तथैव च ॥५॥
 ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः ।
 अनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः ॥६॥

भद्रा शूद्राच मद्राच शलदामलदा तथा ।

खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥७॥

ब्राह्मणो ने कहा—हे सूतजी ! हम सब लोग अब राजा पूरु के वंश का वर्णन तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं तथा दुष्ट-अनु-युक्त और तुर्बंतु के वंश को पृथक्कर श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री सोम हर्षण जी ने कहा—हे मुनि दादूँ लो ! अब आप लोग महारत्ना पूरु के वंश को सुनिए । मैं सब से प्रथम आनुपूर्वी के साथ विस्तार पूर्वक उसका वर्णन कर रहा हूँ ॥२॥ राजा पूरु के वीर्य से सुवीर पुत्र ने जन्म लिया और इस सुवीर का सुत मनस्यु हुआ । अभयद नाम वाला राजा मनस्यु का पुत्र हुआ ॥३॥ इस अभयद का दायद सुधन्वा नाम वाला वृष हुआ । सुधन्वा के पुत्र का नाम सुबाहु था तथा इसका आत्मज रीद्रा-श्व उत्पन्न हुआ ॥४॥ रीद्राश्व के कई पुत्र समुत्पन्न हुए । उनके नाम ये हैं—दशानेयु-कृपणेयु-वनेयु स्यण्डिलेयु-सन्मतेयु-श्रुचेयु-जलेयु-महावल-यान् स्यलेयुष्यनेयु और वनेयु ये सब पुत्र उत्पन्न हुए थे । तथा दश स्त्रियाँ थीं—भद्रा-शूद्रा-मद्रा-शलदा-हे विप्रो ! खलदा-नलदा और सुरसा ये सब थी ॥५—७॥

तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ।

ऋषिर्जातोऽत्रिवशे च तासा भर्ता प्रभाकरः ॥८॥

भद्राया जनयामास सुत सोम यशस्विनम् ।

स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महोम् ॥९॥

तमोभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता ।

स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्या वै पतमानो दिवाकरः ॥१०॥

वचनात्तस्य विप्रर्षेण पपात दिवो महोम् ।

अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥११॥

यज्ञेष्वग्नेर्वलञ्चैव देवेयस्य प्रतिष्ठितम् ।

स तामु जनयामास पुत्रिकास्यात्मकामजान् ॥१२॥

दश पुत्रान् महासत्त्वास्तपस्युग्ने रतास्तथा ।

ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः ॥१३॥

स्वस्त्याग्नेया इति ख्याता किञ्च त्रिधनवर्जिताः ।

कक्षेयोस्तनयाम्त्वासस्त्रय एव महारथाः ॥१४

इसी प्रकार से गो चपला और स्त्री रत्न बूटा थी । ये कुल सब दश सख्या में थी । अग्नि के वध में ऋषि सुत समुत्पन्न हुआ । उन राक्षस अर्त्ता प्रभावकर था ॥८॥ भद्रा नाम वाली पत्नी में परम यशस्वी सीम सुत को जन्म ग्रहण कराया । स्वर्मानु के द्वारा सूर्य देव के हनन किये जाने पर तथा दिवलोक से भूमि पर गिर जाने पर समस्त लोक के अन्धकार से आवृत हो जाने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया । जय बिबाकर का पतन हुआ तो विरते हुए बिबाकर ने यह कहा कि तेरा बल्याण होने ॥९-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन के प्रभाव में यह दिवलोक से वहीं पर नहीं गिरा । जिस महान् तपस्वी ने अग्नि श्रेष्ठ गोत्रो को कर दिया ॥११॥ जिस अग्नि के यज्ञों में देवों के द्वारा वत्स को प्रतिष्ठित किया गया, उन पुत्रिकाओं में उमने आत्मजों को जन्म ग्रहण कराया ॥१२॥ इस तरह से दश पुत्रों को जन्म दिया जो परम उत्तम तपस्वियों में निरत थे । हे विप्रो ! वेदों के पारंगामी ऋषिगण गोध करने वाले थे ॥१३॥ ये सब "स्वस्त्याग्नेय" इस नाम से विख्यात हुए किञ्च त्रिधन से वे वञ्चित थे । वक्षेय के समय बड़े महारथी तीन ही हुए थे ॥१४॥

समानरश्माधुपञ्च परमन्पुस्तयैव च ।

समानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५

कालानलस्य धम्मंशः सृष्टयो नाम ये सुतः ।

सृज्यमस्याभयन् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६

जनमेजयो मुनिश्रेष्ठाः पुरञ्जयमुतोऽभवन् ।

जनमेजयस्य राजपैमहाशालोऽभवन् सुतः ॥१७

देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयज्ञा भुवि ।

महामना नाम मुनो महानानस्य विश्रुतः ॥१८

जज्ञे योरः गुरगणैः पूजितः मुमक्षामनाः ।

महामनाम्पु पुत्रो द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९

उशीनरञ्च घर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम् ।

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजपिवशजाः ॥२०॥

नृगा कृमिनंवा दर्व्वा गन्धमी च दृपद्वती ।

उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥२१॥

उन तीनों के शुभ नाम सभानर-चाक्षुष और परमन्यु ये थे । सभानर का पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ ॥१५॥ कालानल का सुत धर्म का ज्ञाता सृञ्जय नाम वाला उत्पन्न हुआ । इस सृञ्जय के धीर्य से परम वीर पुरञ्जय नाम वाले राजा ने जन्म प्राप्त किया ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! राजा पुरञ्जय का वामाद जनमेजय समुत्पन्न हुआ । उस राजा जन्मेजय का आत्मज महाशाल हुआ ॥१६-१७॥ महाशाल के पुत्र का नाम महामना था जो देवगणों में भी ज्ञान था और भूलोक में अपने यश की प्रतिष्ठापित करने वाला परम विश्रुत हुआ ॥१८॥ सुरगणों के द्वारा वन्दित महामना ने जन्म धारण करके हे द्विजगणो ! अपने धीर्य से दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया ॥१९॥ उनमें एक का नाम उशी नर था जो बहुत बड़ा धर्म का ज्ञाता हुआ था और दूसरा तितिक्षु नाम वाला था जो परम महान् बलवान् था । उशीनर की पाँच राजपियों के वश में समुत्पन्न पत्नियाँ थी । उनके शुभ नाम ये थे=नृगा-कृमि-नवा-दर्व्वा और पाँचवी दृपद्वती थी । उन पाँचों पत्नियों के गर्भों से उस राजा उशीनर के पाँच नुल के उद्वहन करने वाले सत्पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२०-२१॥

तपसा चैव महता जाता बृद्धस्य चात्मजाः ।

नृगायास्तु नृग. पुत्र. कृम्या कृमिरजायत ॥२२॥

नवायास्तु नव. पुत्रो दर्व्वाया. सुव्रतोऽभवत् ।

दृपद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिविरौशीनरो नृपः ॥२३॥

शिवेस्तु शिवयो विप्रा यौधेयास्तु नृगस्य ह ।

नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥२४॥

सुव्रतस्य तयाम्बप्याः शिविपुत्रान्निबोधत ।

शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥२५॥

वृषदर्भः सुवीरश्च केकयी मद्रकस्तथा ।

तेषां जनपदाः स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥

वृषदर्भा. सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा ।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्या दिशि भो द्विजाः ॥२७॥

उपद्रथो महावीर्यं फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।

फेनस्य सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥

इसने जब महान् तपस्या की तब वृद्ध होने पर ही ये पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा पत्नी के गर्भ से नृग नामधारी पुत्र हुआ इमि से कृमि उत्पन्न हुआ ॥२२॥ नवा के पुत्र का नाम भी नव तथा दर्वा के पुत्र का नाम सुप्रत हुआ । उपद्रुती पत्नी ने शिवि औशीनर समुत्पन्न किये ॥२३॥ हे विप्रगण ! राजा शिवि के पुत्र शिविय और नृग के पुत्र वैदेय कहलाये गये । नव का नवराष्ट्र तथा कृमि की कृमिजा पुरी राजधानी थी ॥२४॥ राजा सुप्रत के अम्बष्ठ हुए । अब राजा शिवि के पुत्रों के वियय मे समझ लो । राजा शिवि के जो शिवय नामधारी चार पुत्र हुए ये लोको मे परम प्रसिद्ध थे ॥२५॥ वृषदर्भ-सुवीर केकय और मद्रक ये उन चारों के नाम थे । उनके जो जनपद थे वे बहुत विस्तृत और केकय तथा मद्रक तस्म वाले थे ॥ ६॥ राजा तितिक्षु की प्रजा वृषदर्भ और सुवीर थी । हे द्विजो ! तितिक्षु पूर्व दिशा मे राजा हुआ । महान् वीर्य उपद्रथ फेन उसका पुत्र हुआ । इस फेन के यहाँ सुतपा ने जन्म लिया और फिर सुतपा से बलि उत्पन्न हुआ ॥२८॥

जातो मानुषयोनी तु स राजा काश्वनेपुधि ।

महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपति पुरा ॥२९॥

पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वशकरान् भुवि ।

अङ्ग प्रथमतो जज्ञे वङ्ग सुह्यस्तथैव च ॥३०॥

पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा वालेय क्षत्रमुच्यते ।

वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वशकरा भुवि ॥३१॥

वलेश्च ब्राह्मणा दत्तो वर प्रीतेन भो द्विजाः ।

महामोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥३२॥

वले चाप्रतिमत्वं च धर्मतत्त्वायं दर्शनम् ।

मग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मं चैव प्रधानताम् ॥३३॥

धेलोचयदर्शनश्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा ।

चतुरो नियतान् वर्णस्त्वैव स्थापयितेति च ॥३४॥

इत्युक्तो विभुना राजा बलिः दान्ति परा ययौ ।

पालेन महता विप्राः स्वस्थं स्यान्मुपागमत् ॥३५॥

गुर्वर्णं वा धनुषं वाणं धारणं करणे वालं उभयं बलि मे मानुषं योनि मे ही जन्म ग्रहणं विद्या राजा बलि मे वस के ब्रह्मणे वाले भूलीक मे पाँच पुत्रों को जन्म दिया । मयसे प्रथम भङ्ग ने जन्म लिया फिर गुप्त समुत्पन्न हुआ और वङ्ग हुआ इसी प्रकार से पुण्ड्र और वलिग उत्पन्न हुए । यह वालेय दात नाम से कहा जाया करता है । दूतों में वालेय और ब्राह्मण उत्तम वेदा बलाने वाले हुए हैं । हे द्विजगण ! ब्रह्माजी मे परम प्रमत्त होकर ही बलि को बरदान दिया । श्री ब्रह्माजी मे यह कहा कि तुम मे महायोगिन् होना और एक कल्प के परिमाण पर्यन्त गुप्तारी भावु होगी ॥३०-३२॥ ब्रह्माजी मे कहा-हे बलि ! तुम अनुत्तम होओगे यथां गंगार मे सुम्हारी गमान्ता रघुन वाता भव्य कोई भी नहीं होगा । तुम्हारे हृदय मे धर्म के तप का मही अर्ध दर्शन होगा-गङ्गा मे अत्रेयना होगी तथा छमं मे प्रधाता होगी ॥३३॥ प्रमत्त मे ही वा प्रधानता होगी कि नैलोचन का दर्शन होगा । तुम लगे प्रमाद वाले होओगे कि पार विमत्त वनों के स्थापित करोगे ॥३४॥ जब इस प्रकार मे परमेश्वरी के द्वारा उन राजा बलि मे कहा गया था तो वलि मे परमापिब दानि ग प्राप्त की और फिर बहुत बाल के पञ्चाशत् बहू भवती विद्याग विद्या पर काविस आ गये ॥३५॥

मेवां जनकदा पञ्च अन्ता वन्ता समुत्पन्ताः ।

वानिन्ता पुण्ड्रतामनेव प्रजापतौ नरक माग्नताम् ॥३६॥

अन्तवृत्ता गदानापीनाः श्रेष्ठे दमिवाहनः ।

दीधिवान्तरुचम्बु गता निविरपोऽनरः ॥३७॥

ऋचेयोस्तनमो राजा मतिनारो महीपतिः ।
 मतिनारमुतास्त्वासस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥११॥
 वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः ।
 सर्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥१२॥
 इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वं मुनिसत्तमाः ॥
 ब्रह्मवादिन्यधिष्ठी सा तमुस्तामभ्यगच्छत् ॥१३॥
 तसोः सुतोऽयं राजर्षिर्धर्मनेत्रः प्रतापवान् ॥
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥१४॥
 उपदानवी ततः पुत्राश्चतुरोऽजनयच्छुभान् ।
 दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥१५॥
 दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान् ॥
 स सर्वदमनो नाम नामायुतबलो महान् ॥१६॥

हे मुनिगण ! रोद्राश्व के तनय का ऋचेय था । हे द्विजगण ! उस
 राजा के वंश का मैं वर्णन करता हूँ अब आप लोग समग्रहित होकर
 श्रवण करिए ॥११॥ ऋचेय का पुत्र राजा मतिनार हुआ, उसके वीर्य से
 तीन मृत परम धार्मिक उत्पन्न हुए ॥१२॥ उनके नाम वसुरोध प्रतिरथ और
 सुबाहु थे । ये सब परम धार्मिक वेदों के ज्ञाता और सत्यवादी एक
 ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले थे ॥१३॥ हे मुनिगण ! जिसकी इला
 नाम वाली एक कन्या थी वह ब्रह्मवादिनी अधिष्ठी थी । तमु ने उसके
 साथ विवाह किया था ॥१४॥ इस तमु का आरम्भ बड़े ही प्रताप वाला
 राजर्षि धर्मनेत्र हुआ । यह बड़ा ब्रह्मवादी और पराक्रान्त था तथा
 इसकी भार्या दानवी थी । उस तप दानवी ने अपने गर्भ से परम शुभ
 चार पुत्रों को जन्म दिया । उन चारों सुतों के नाम दुष्यन्त-सुष्मन्त
 प्रवीर और अनघ ये थे ॥१५॥ इसी दुष्यन्त का पुत्र महान् वीर्य
 वाला भरत नाम वाला हुआ जिसके नाम से इस देश का नाम भारत
 हुआ है । वह भरत सर्वदमन था अर्थात् सबको दमन करने वाला हुआ
 और यह महान् तथा दश हजार नामों के समान बल वाला हुआ ॥१६॥

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
 शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७॥
 भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ।
 मातृणा तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥५८॥
 गृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः ।
 अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥५९॥
 पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ।
 ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०॥
 ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिव ययौ ।
 वितथ चाभिपिच्यथ भरद्वाजो वन ययौ ॥६१॥
 स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ।
 सुहोत्रश्च सुहोतार गय गर्गं तथैव च ॥६२॥
 कपिलश्च महात्मान सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।
 काशिकश्च महासत्य तथा गृत्समिति नृपम् ॥६३॥

। महात्मा दुष्यन्त के वीर्य से चक्रवर्ती पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । यह भरत शकुन्तला के उदर से समुत्पन्न हुआ जिसके शुभ नाम से भारत नाम पड़ा ॥५७॥ राजा भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर माताओं का प्रकोप हो गया । यह वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं ॥५८॥ माङ्गिरस गृहस्पति का पुत्र विप्र महामुनि था । उस विप्रु भरद्वाज ने महान् क्रतुओं के द्वारा यज्ञन किया ॥५९॥ पूर्व में उसके पुत्र जन्म के वितथ करने पर इसने पश्चात् वितथ नाम वाला भरद्वाज मुनि का पुत्र हुआ ॥६०॥ इसने अनन्तर किय के समुत्पन्न होने पर भरत राजा दिवलोच यामी हो गये । भरद्वाज मुनि ने राज्यागमन पर वितथ को अभिषिक्त करके यह फिर वन में चले गये ॥६१॥ उस वितथ ने भी पाँच पुत्रों को जन्म दिया । उनके नाम सुहोत्र-सुहोतार-गय-गर्ग और वितथ थे । वितथ बहुत बड़े महात्मा थे । इनके पश्चात् सुहोत्र ने भी दो पुत्रों को उत्पादित किया । महासत्य काशिक तथा गृत्समिति नृप ये उन दोनों पुत्रों के शुभ नाम थे ॥६२-६३॥

तथा गृत्समते पुत्रा ब्राह्मणा क्षत्रिया विश ॥
 काशिकस्य तु काशेय पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
 बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरि सुत ।
 धन्वन्तरेस्तु तनय केतुमानिति विश्रुत ॥६५॥
 तथा केतुमत पुत्रो विद्वान् भीमरथ स्मृतः ।
 पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
 दिवोदास इति ख्यातः सक्वशत्रुप्रणाशन ।
 दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दन ॥६७॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सो भार्गव एव च ।
 अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥६८॥
 हैहयस्य तु दायाद्य हतवान् वै महीपति ।
 आजह्ने पितृदायाद्य दिवोदासहत बलात् ।
 दिवोदासेन बालेति घृणयासो विसर्जित ॥६९॥

गृत्समिति के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य थे । काशिक का काशेय
 दीर्घतपा नाम वाला भूत समुत्पन्न हुआ ॥६४॥ इस दीर्घतपा का दायाद
 परम विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ । इस धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान्
 के नाम से प्रख्यात हुआ ॥६५॥ उस केतुमान् तनय बड़ा विद्वान् भीम
 रथ कहा गया था । भीमरथ का भी पुत्र वाराणसी का स्वामी हुआ था
 ॥६६॥ दिवोदास इस नाम से प्रख्यात हुआ । यह समस्त शत्रुओं का
 विनाश कर देने वाला था । इस राजा दिवोदास का आत्मज परम वीर
 राजा प्रतर्दन नामधारी उत्पन्न हुआ ॥६७॥ राजा प्रतर्दन के वत्स
 तथा भार्गव नाम वाले दो पुत्रों ने जन्म लिया । अलर्क राजपुत्र भूमि
 पर अच्छी मति वाला राजा था ॥६८॥ इस महीपति ने हैहय के दायाद
 को बलपूर्वक हरण कर लिया और अपने पिता के दायाद का भी आ
 हरण कर लिया जो कि दिवोदास के द्वारा बल से हृत किया था ॥६९॥
 ऋद्धिरेण्य के पुत्र महारमा-दुदम दिवोदास ने 'यह बच्चा है—यह विनाश
 करने दया से इसको छोड़ दिया ॥७०॥

अष्टारथो नाम नृप सुतो भीमरथस्य वै ।
 तेन पुत्रेणवालस्य ग्रहृत तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
 चेरस्यान्त मुनिश्रृण्वा क्षत्रियेण विधित्सता ।
 अलकं काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
 षष्टि चपंसहस्राणि पष्टिवपंशतानि च ॥
 युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्बहः ॥७३॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तः सः ॥
 वयसोऽन्ते मुनिधेष्टा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
 रम्या निवेशयामास पुरीं वाराणसी नृपः ॥
 अलकस्य तु दायदः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
 क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ॥
 वर्षकेतोश्च दायदो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६॥
 आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ॥
 सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥७७॥

अष्टारथ नाम वाला राजा भीमरथ का पुत्र था । हे द्विजगणो ! उस पुत्र के द्वारा उस घालक का जो भी कुछ ग्रहृत था उसको हे मुनिगणो ! और उस क्षत्रिय ने बर का अन्त कर देने की इच्छा की । कासीराज जो अलकं था वह ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्यसङ्गर था ॥७१-७२॥ यह काशिकुलोद्बह साठ सौ साठ हजार वर्ष तक रूप से सुतम्पन्न युवा था ॥७३॥ उसने लोपामुद्रा की कृपा से परम आयु प्राप्त की थी । हे मुनिगणो ! अपनी अवस्था के अन्त में उसने क्षेमक राक्षस का हनन कर दिया ॥७४॥ उस नृप ने वाराणसी पुरी में परम रम्य निवेशित किया । अलक के वा पुत्र क्षेमक नाम वाला पार्थिव हुआ ॥७५॥ क्षेमक के सुत का नाम वर्ष केतु था । इस वर्षकेतु का दायद विभु नामधारी प्रजेश्वर था ॥७६॥ विभु का पुत्र आनर्त्त उत्पन्न हुआ । उस से फिर सुकुमार हुआ । इस सुकुमार का सुत महारथ सत्यकेतु ने जन्म ग्रहण किया ॥७७॥

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्मिकः ।
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु मार्गवात् ॥७५॥
 एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वशेऽथ भार्गवे ।
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥७६॥
 अजमीढोऽपरो वशः श्रूयता द्विजसत्तमा ।
 सुहोतस्य बृहत्पुत्रो बृहत्स्तनयाश्चयः ॥७७॥
 अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ।
 अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिलो वै यशसान्विता ॥७८॥
 नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना ।
 अजमीढस्य केशिन्या अर्जो जह्नुः प्रतापवान् ॥७९॥
 आजह्ने यो महासत्र सर्व्वमेधमस्र विभुम् ।
 पतितोमेन य गङ्गा विनीतेय ससार ह् ॥८०॥
 नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सद ।
 तत्तया प्लावित द्वष्ट्वा यज्ञवाट समन्ततः ॥८१॥

यह पुत्र महान् तेजस्वी राजा परम धार्मिक था वत्स का पुत्र वत्स
 भूमि और भार्गव से भर्ग भूमि ने जन्म प्राप्त किया ॥७५॥ ये सब अङ्गिरा
 ऋषि के पुत्र भार्गव वश में समुत्पन्न हुए थे । हे मुनिगणों ! ये ब्राह्मण-
 क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र थे ॥७६॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! अजमीढ दूसरा वश
 था उसका भी श्रवण कर लो । सुहोत का पुत्र बृहत्पुत्र हुआ और बृहत्
 के तीन आत्मज हुए ॥७७॥ वे तीनों अजमीढ द्विमीढ और वीर्यवान्
 पुरुमीढ हुए । राजा अजमीढ की तीन पत्नियाँ बहुत यशस्विनी थी ॥७८॥
 उनके शुभ नाम नीली केशिनी और वराङ्गना धूमिनी थे । उस राजा
 अजमीढ की जा पत्नी केशिनी थी उसके गर्भ से परम प्रतापी राजा
 जह्नु ने जन्म प्राप्त किया ॥७९॥ जिस राजा ने सर्व्वमेध मस्र विभु महा-
 सत्र का बाहरण किया और जिसको अपना पति बना लेने के लोभ
 से गङ्गा ने विनीता के समान सरण किया ॥८०॥ जब उसने इसकी
 इच्छा नहीं प्रकट की तो उसकी सभा की गङ्गा ने प्लावित कर दिया ।

इस प्रकार से राजा जह्नु ने चारों ओर से यज्ञवाट को 'स्वयं' उध पङ्का फे द्वारा प्लावित होते हुए देखा था ॥८४॥

जह्नु रम्यश्रवीद्गङ्गा कृद्धो विप्रास्तदा नृप ॥

एष ते त्रिषु लोकेषु सक्षिप्याप पिबाम्यहम् ॥८५॥

अस्य शङ्खध्वलेपस्य संचयः फलमवाप्नुहि ॥

ततः पीत्वा महात्मारनो दृष्ट्वा गङ्गा महर्षयः ॥८६॥

उपनिन्युमंहाभागा दुहितृ येन जह्नुर्बीभू ॥

युवनाश्वस्य पुष्पी तु कावेरी बह्वरावहत् ॥८७॥

गङ्गाशपेन देहाद्यं यस्या पश्चान्नदीकृतम् ॥

जह्नुस्तु दयितः पुनो अजको नाम वीर्यवान् ॥

अजकस्य तु दायदो बलाकाश्वो महीपतिः ॥८८॥

चभूय मृगयाशीलः कुलिकस्तस्य चारमजः ॥

पहर्जः सह संवृद्धो राजावनचरैः सह ॥८९॥

कुशिकस्यु तपस्तेपे पुत्र मन्द्रसम विभुम् ॥

जभेयमिति त शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिगान् ॥९०॥

स गाधिरभवद्राजा मधवा कौशिक स्वयम् ॥

विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥९१॥

उस समय मे हे विप्रो ! भूष जह्नु को बड़ा क्रोध होगया और उसने गङ्गा में कहा—इस तुम्हारे सम्पूर्ण जल को सक्षिप्त करके मैं पी लेता हूँ ॥८५॥ हे भगो ! यह जो तुमने अपने प्रवाह से प्लावित कर देने का अभिमान हो रहा है उसका फल तु प्राप्ति कर ले ॥८६॥ उस महा भागा गया दुहिता के स्वरूप मे उसने ग्रहण किया और सभी से इसका नाम जह्नुवी पढ़ गया । उस राजा जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से साथ बियाह किया ॥८७॥ पीछे बंगा के शाप से जिसका आभा देह गदी के रूप मे कर दिया गया । उस राजा जह्नु का पुत्र महान् वीर्य वाला अजक हुआ था । इस अजक का पुत्र बलाकाश्व मही पति हुआ ॥८८॥ इसका आत्मज नृजिक्त बहुत अधिक शिवार खेलने के स्वभाव वाला हुआ और यह राजा वनचर बहुतों के साथ ही सम्मिश्रित

हुआ ॥८६॥ उस राजा क्रुशिव ने बड़ा उग्र तप किया कि मैं इन्द्र के सहस्र विष्णु पुत्र प्राप्त करूँ ॥८७॥ यह इन्द्र स्वयं वीरिण गाधि राजा हुआ । इस गाधि का सुत विश्वामित्र गाधेय हुए तथा विश्वामित्र से अष्टक हुआ ॥८८॥

अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तोजहनुगणो मया ।
 आजमीढोऽपरो वक्ष शृष्ट्या मुनिसत्तमा ॥८९॥
 अजमीढास्तु नीत्या वै सुशान्तिरुदपद्यत ।
 पुरुजातिः सुशान्तेऽथ बाह्याश्च पुरुजातिस्त ॥९०॥
 बाह्याश्चतनया पञ्च स्फीता जनपदावृता ।
 मुद्गल सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तया ॥९१॥
 यवीनरश्च विक्रान्त कृमिलाश्च पञ्चम ।
 पञ्चैते रक्षणायां देशानामिति विश्रुता ॥९२॥
 पञ्चानां ते तु पञ्चाला स्फीता जनपदावृता ।
 अल सरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुता ॥९३॥
 मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्य सुमहायशा ।
 इन्द्रमेना यतो गर्भं ब्रह्मन् प्रत्यपद्यत ॥९४॥
 आसीत् पञ्चजन पुत्र सृञ्जयस्य महात्मन ।
 सुत पञ्चजनस्यापि सोमवत्सो महीपति ॥९५॥

इस अष्टक का सुत लौहि उत्पन्न हुआ जिसको मैंने जहनुगण बतलाया था । अब हे मुनिमणो ! दूसरा आजमीढ वक्ष का श्रवण करो ॥८९॥ उस राजा आजमीढ के वीर्य से नीली नाभधारिणी परनी से सुशान्ति ने जन्म लिया । उस सुशान्ति का सुत पुरुजाति हुआ तथा फिर पुरुजाति के वीर्य से बाह्याश्च ने जन्म प्राप्त किया ॥९०॥ इस बाह्याश्च के पाँच पुत्र हुए, जो बहुत विस्तृत जनपदा से समावृत थे । मुद्गल सृञ्जय-राजा बृहदिपु परम विक्रान्त यवीनर तथा पाँचवा कृमिलाश्च हुआ । ये पाँचा सम्पूर्ण देशों की रक्षा करने के लिये परम समर्थ थे—स प्रकार से ये पाँचों प्रकृष्ट हुए ॥९१॥ ९२॥ इन पाँचों के पञ्चाल स्फीत जनपदों से समावृत थे । उन विस्तृत देशों की सुरक्षा के लिये पञ्चाल परम

वियुत हुए ॥६६॥ राजा मुदगल का दायाद भीमक्षत्र था जो सुमहान् यश वाला हुआ । जिसके वीर्य से इन्द्रसेना ने गर्भ धारण किया और बुध्नश्च नामक पुत्र की प्राप्ति की ॥६७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्च-जन हुआ और पञ्चजन के सुत का नाम महीपति सोमदत्त ने जन्म लिया था ॥६८॥

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशः ।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम वियुतः ॥६६॥
अजमीढसुतो जातः क्षीणो बभौ तु सोमकः ।
सोमकस्य सुतो जन्तुयंस्त पुत्रशतं बभौ ॥६७॥
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।
अजमीढाः स्मृताश्च ते महात्मानस्तु सोमकाः ॥६८॥
महिषी त्वजमोढस्य धूमिनी पुत्रगृहिणी ।
पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥६९॥
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता ।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥७०॥
हृत्त्वान्नि विधिवत् सा तु पवित्रा मितभोजना ।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्याप मुनिसत्तमाः ॥७१॥
धूमिन्या स तथा देव्या त्वजमोढः समीपिबान् ।
ऋक्ष सख्यनयामास धूम्रवर्ण सुदर्शनम् ॥७२॥

इस सोमदत्त का दायाद सहदेव था जो महान् यश से सम्पन्न था । तथा सहदेव का पुत्र सोमक नाम वाला प्रख्यात हुआ ॥६६॥ यश के क्षीण हो जाने पर अजमीढ का पुत्र सोमक समुत्पन्न हुआ । इस सोमक के पुत्र का नाम जन्तु था जिसने एक सौ पुत्र इस भूमण्डल में सोमित हुए ॥६७॥ उनमें यवीयान् पृषत था जो प्रभु द्रुपद का पिता था । ये सब अजमीढ कहे गये हैं । ये सब महान् आत्माओं वाले सोमक थे ॥६८॥ हे मुनिज्येष्ठो ! अजमीढ की महिषी धूमिनी महाभिपिता रानी पुत्र गृहिणी धूमिनी थी जो सत्कुलोत्पन्ना महात्मा भागवाती पतिव्रता थी ॥६९॥ वह पुत्र की चाहने वाली देवी व्रतचर्य्य व्रत में एक हो -

दश हजार वर्षों तक उसने अस्थन्त कठिन तपस्या की ॥१०३॥ वह विधि पूर्वक अग्नि में हवन करके परम पवित्र रहा करती और परिमित भोजन किया करती थी । हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! वह अग्निहोत्र के कुशाब्धो पर ही सो गई ॥१०४॥ उस देवी धूमिनी के साथ भजमीढ ने सहवास किया था । तब धूम्रवर्ण वाले सुदर्शन ऋक्ष को उसने जन्म दिया था ॥१०५॥

ऋक्षात् सम्बरणो जज्ञ कुरु. सम्बरणात्तथा ।

यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥१०६॥

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निपेवितम् ।

तस्यान्ववायः सुमहाञ् यस्य नाम्नाय कौरवाः ॥१०७॥

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।

परीक्षिञ्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८॥

परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ।

श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥१०९॥

एते सर्वे महामागा विक्रान्ता बलशालिनः ।

जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरयो मतिमास्तथा ॥११०॥

सुरयस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।

विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥१११॥

द्वितीयस्तु भरद्वाजाधाम्ना तेनैव विश्रुतः ।

द्वावृक्षी सोमवशेऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥११२॥

उस ऋक्ष से सम्बरण ने जन्म प्राप्त किया तथा फिर सम्बरण से कुरु समुत्पन्न हुआ । जिसने प्रयाग से अतिक्रमण करके कुरुक्षेत्र को किया ॥१०६॥ वह कुरुक्षेत्र परम पुण्य स्थल और अधिक रमणीय था जो कि पुण्यात्मा पुरुषों के द्वारा सेवित था । उस कुरु का वंश बहुत विशाल था जिसके नाम से कौरव प्रसिद्ध हुए थे ॥१०७॥ उस महाराज कुरु के चार पुत्र हुए । सुधन्वा, सुधनु-महाबाहु परीक्षित और प्रवर अरिमेजय ये उन चारों के शुभ नाम थे ॥१०८॥ राजा परीक्षित का पुत्र परम धार्मिक जनमेजय उत्पन्न हुआ । श्रुतसेन-अग्रसेन और भीम-

सेन इन नामों वाले सभी परम विक्रान्त एवं बलशाली थे । तथा जनमेजय का पुत्र मतिमान् सुरथ समुत्पन्न हुआ था ॥१०६-११०॥ सुरथ के वीर्य से परम विक्रान्त विदूरथ ने पुत्र रूप में जन्म लिया । इस विदूरथ का दायाद महारथी ऋक्ष ही हुआ ॥१११॥ दूसरा भरद्वाज से उसी नाम से विभूत हुआ । इस सोम के वंश में दो ऋक्ष हुए हैं और दो ही परीक्षित भी हुए हैं ॥११२॥

भीमसेनाश्रयो विप्रा द्वौ अपि जनमेजयौ ।

ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३॥

प्रपीपो भीमसेनात् प्रतीपस्य तु शान्तनुः ।

देवापिर्वाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥११४॥

शान्तनोस्त्वभवद्भीष्मस्तस्मिन् वशे द्विजोत्तमाः ।

बाह्लिकस्य तु राजपर्वशं शृणुत भो द्विजाः ॥११५॥

बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमवत्तो महायशाः ।

जज्ञिरे सोमवत्तात् भूरिभूरिश्रवाः शलः ॥११६॥

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।

प्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७॥

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः ।

शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वशं त्रैलोक्यविभूतम् ॥११८॥

गाङ्गां देवव्रतं नाम पुत्र सोऽजनयत् प्रभुः ।

स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥११९॥

हे विप्रगण ! भीमसेन तीन हुए हैं और जनमेजय भी दो हुए हैं ।

द्वितीय ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ ॥११३॥ उस भीमसेन के वीर्य से प्रतीप नामक सुत समुत्पन्न हुआ तथा प्रदीप का पुत्र शान्तनु हुआ । देवापि और बाह्लिक ये तीनों ही महारथ थे ॥११४॥ हे द्विजोत्तमो ! उस महाराज शान्तनु का पुत्र भीष्म हुआ और उस वंश में यह उत्पन्न हुए थे । अब हे द्विजो ! आप लोग बाह्लिक के विषय में श्रवण करो ॥११५॥ उस बाह्लिक का दायाद महान् यश वाला सोमवत् समुत्पन्न हुआ । उस सोमवत् के वीर्य से भूरि भूरिश्रवा और शल इनने जन्म

लिया । देवों का उपाध्याय देवापि मुनि हुआ । महात्मा ध्यवन का पुत्र कृतक इष्ट था ॥११७॥ समस्त कौरवों का परम धुरधर शातनु राजा हुआ । अब हम राजा शातनु के तीनों लोको में प्रसिद्ध वंश का वर्णन करेंगे ॥११८॥ उस प्रभु क्षान्तनु ने गाङ्ग देवव्रत ना । वाले पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था । वही 'धीष्म' इस नाम से विख्यात हुए थे जो कि समस्त पाण्डवों के पितामह थे ॥११९॥

काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भो द्विजा ।

क्षान्तनोदयित पुत्र धर्म्मार्त्मानमकल्मषम् ॥१२०॥

कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ।

धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥१२१॥

धृतराष्ट्रस्तु गांधार्या पुत्रानुत्पादयन्धृतरम् ।

तेषां दुर्योधनश्च श्वश्रुः सव्वपामपि स प्रभुः ॥१२२॥

पाण्डोर्धनञ्जयं पुत्रं सोमद्रस्तम्यं चात्मजम् ।

अभिमन्यो परीक्षितं पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३॥

पारीक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु ।

चन्द्रापीडस्तु नृपतिं सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ॥१२४॥

चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।

जानमेजयमित्येव क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥१२५॥

तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वारणसाह्वये ।

सत्यकर्णो मद्राबाहुयज्वा विपुलदक्षिणः ॥१२६॥

हे द्विजगण ! काली ने विचित्र वीर्य को उत्पन्न किया था जो शातनु का परम प्रिय वर्मात्मा और कल्मष रहित पुत्र था । कृष्ण द्वैपायन से विचित्रवीर्य के क्षेत्र में अर्थात् उसकी पत्नी के उदर से धृतराष्ट्रपाण्डु तथा विदुर ने जन्म प्राप्त किया था ॥१२०-१२१॥ धृतराष्ट्र ने गांधारी नाम वाली पत्नी के गर्भ से एक सौ पुत्रों को उत्पन्न किया । उन सब में दुर्योधन श्वश्रु था और वह सब का स्वामी धन गया था ॥१२२॥ पाण्डु का आत्मज धनञ्जय था और उसका पुत्र सोमद्र

हुआ । अभिमन्यु से परीक्षित पुत्र उत्पन्न हुआ जो पारीक्षित का पिता था ॥१२३॥ उस पारीक्षित के काशी में दो तनय उत्पन्न हुए । उनमें चन्द्रापीड तो नृपति हो गया तथा दूसरा जो सूर्यापीड था वह मोक्ष का ज्ञाता था ॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए थे । यह सब जानमेजय क्षात्र भूलोक में विख्यात हुए ॥१२५॥ उस उन सब पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह वारणस नामक नगर में था और इसका शुभ नाम सत्यकर्ण था । यह महाबाहु और यजन करने वाला तथा बहुत अधिका दक्षिणा देने वाला हुआ ॥१२६॥

सत्यकर्णस्य दामादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।

अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७

तस्माद्वनगता गर्भ यादवी प्रत्यपद्यत ।

सुचारोर्दुहिता सुधर्माग्निनी ग्राहमालिनी ॥१२८

सम्भूते स च गर्भं च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।

अन्वगच्छत् कृत पूर्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९

सा तु दृष्ट्वा प्रिय त च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।

सुचारोर्दुहिता साध्वी घने राजीवलोचना ॥१३०

पथि सा सुपुत्रे बाला सुकुमारं कुमारकम् ।

तमपास्याय तत्रैव राजान सान्वगच्छत् ॥१३१

पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती ।

कुमारः मुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे दरोद ह ॥१३२

दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः ।

श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिकः ॥१३३

इस सत्यकर्ण का जो सुत उत्पन्न हुआ उसका नाम श्वेतकर्ण था तथा यह बहुत प्रताप वाला था । इस धर्मात्मा के कोई भी पुत्र नहीं था अतएव इसने तपोवन में प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ फिर उससे वन में गयी हुई यादवी ने गर्भ धारण किया । यह सुचार की पुत्री सुधर्म ग्राहमालिनी थी ॥१२८॥ उस गर्भ के सम्भूत हो जाने पर प्रजेश्वर श्वेतकर्ण पूर्ववत् अच्युत महा प्रस्थान को चला गया ॥१२९॥ उस मालिनी

ने जब अपने प्रिय स्वामी को गमन करते हुए देखा तो वह भी पीछे से चली गयी । वह सुचारु की पुत्री राजीव कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली परम साध्वी थी ॥१३०॥ उस वासा ने भाग में ही परम सुकुमार कुमार को जन्म ग्रहण कराया । उसने उस कुमार को वहीं पर छोड़कर वह राजा के ही पीछे २ चली गयी । यह गहाभागा पतिव्रता थी और जैसे पहिले सती द्रौपदी ने अपने स्वामी का अनुसरण किया था वैसा ही इसने भी किया । वह परम सुकुमार कुमार पवत के ऊपर गड़ा हुआ रुदन कर रहा था ॥१३१ १३२॥ उस महात्मा के ऊपर दया करके भेष प्रादुर्भूत हो गये थे । श्रविष्ठा के दो पुत्र थे और पैप्पलादि तथा कौशिक थे ॥१३३॥

दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तौ प्राक्षालयता जले ।
 निधृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलाया रुधिरप्लुतौ ॥१३४
 अजश्याम स पार्श्वाम्ब्या धृष्टाम्ब्या सुसमाहित ।
 अजश्यामौ तु तत्पद्मी देवेन सम्बभूवतु ॥१३५
 अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ ।
 स तु रेमकशालाया द्विजाम्ब्यानभिर्वदित ॥१३६
 रेमकस्य तु भार्या तमुद्रहत् पुनकारणात् ।
 रेमत्या स तु पुत्रोऽभूदब्राह्मणोऽसचिवीतु नौ ॥१३७
 तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविन ।
 स एष पौरवो वश पाण्डवाना महात्मनाम् ॥१३८
 श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुयेन ययातिना ।
 जरासक्रमणो पूत्य तदा प्रातेन घोमता ॥१३९
 अचन्द्रापाग्रहा भूमिभवेदियमसशयम् ।
 अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन ॥१४०॥

इहोने जिस समय में इस कुमार को देखा तो उसके चहोने ग्रहण कर लिया । उन्होंने उसको जल में प्रक्षालित किया था । उसके दोनों पार्श्वभाग शिना में निधृष्ट होकर रुधिर से प्लुत हो गये ॥१३४॥ वह धृष्ट पार्श्वभागों से सुसमाहित होकर अज के समान श्याम हो गया ।

देव के द्वारा उसके दोनों पार्श्वभाग अज श्याम हो गये ॥१३५॥ इसके अनन्तर उन दोनों ने उस कुमार का नाम अज पार्श्व कर दिया । फिर वह कुमार रेमकशाला में द्विजों के द्वारा सम्बन्धित किया गया ॥१३६॥ रेमक की भार्या ने पुत्र होने के कारण से उसका उद्बहन किया । वह अज रेमकी का पुत्र हो गया और वे दोनों ग्राहण सचिव हो गये ॥१३६॥ उनके पुत्र और पौत्र एक साथ तुल्यजीवी थे । वह यही महात्मा पाण्डवों का पौरव वंश है ॥१३८॥ इनके विषय में नहुष के पुत्र ययाति ने एक श्लोक का गान किया । उस राजा ययाति ने जो कि परम श्रीमान् एवं प्रसन्न होते हुए इस श्लोक का गान जरा (वृद्धावस्था) के संक्रमण के पूर्व में ही किया था ॥१३८॥ उसने कहा—यह भूमि बिना किसी सशस्त्र के बिना चन्द्र सूर्य और ग्रहों वाली हो सकती है किन्तु पौरव वंश इतना विदाल है कि यह भूमि पौरवों से रहित कभी भी नहीं होगी ॥१४०॥

एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया ।

तुव्यंसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रष्टोश्चानोयं दोस्तथा ॥१४१॥

तुव्यंसोस्तु सुतो वह्निर्गोमानुस्तस्य चात्मजः ।

गोमानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपरजितः ॥१४२॥

परन्धमस्तु त्रैशानेमंरुतस्तस्य चात्मजः ।

अन्यस्त्याक्षितो राजा मरुतः कथितो मया ॥१४३॥

अनपत्योऽभवद्वाजा यज्वा विपुलदक्षिणः ।

दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः ॥१४४॥

दक्षिणाथ तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने ।

दुप्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमवल्मपम् ॥१४५॥

एव ययातिनायेन जरासकमणो तदा ।

पौरव तुव्यंसोर्वंश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥

दुप्यन्तस्य तु दायादः करुरोमः प्रजेश्वरः ।

करुरोमादथाहोदधेत्यारस्तस्य चात्मजाः ॥१४७॥

यह पौरव वंश परम विद्वान् है जिसका वर्णन मैंने कर दिया है ।

अथ तुव्यं गु-द्रुह्य -अनु और यदु व वंश का वर्णन मैं करके आपकी धन्य-

कराऊंगा ॥१४१॥ तुर्वसु वा पुत्र वह्नि उत्पन्न हुआ था और उसका
 आत्मज योमानु हुआ । इस योमानु वा सुत अपराजित राजा त्रैशानु
 हुआ ॥१४२॥ त्रैशानु का आत्मज वरधम उत्पन्न हुआ तथा मरुत्
 इसका पुत्र हुआ । अथ अवियमित राजा या जो मरुत् से मैंने बतलाया
 था ॥१४३॥ यह राजा यजन करने वाला तथा विपुल दक्षिणा देने वाला
 था किन्तु यह सन्तति से हीन था । उस राजा की एक सम्मला नाम
 वाली पुत्री थी ॥१४४॥ उस पुत्री का समपण महात्मा सम्पत् के लिये
 दक्षिणा के रूप में लिया । उसने दुष्यन्त और अकल्मष पीरव पुत्र को
 प्राप्त किया ॥१४५॥ इस प्रकार से उस समय में जरा के सक्रमण में
 ययाति के शाप से हे 'द्वजगणो' पीरव तुर्वसु के वश में प्रवेश कर गया
 ॥१४६॥ राजा दुष्यन्त का सुत प्रजश्वर कररोम हुआ । इस कररोम
 से इसके पश्चात् आह्लाद सुत उत्पन्न हुआ और फिर इसके चार आत्मजों
 ने जन्मग्रहण किया ॥१४७॥

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिव ।
 द्रुह्योश्च तनयो राजन् चक्रसेतुश्च पार्थिव ॥१४८॥
 अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते ।
 यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
 युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश ।
 अङ्गारसतोर्दयादो गान्धारो नाम पार्थिव ॥१५०॥
 रयायते यस्य नामना वै गान्धारविषयो महान् ।
 गान्धारदेशराश्रयं तुरगा वाजिना वरा ॥१५१॥
 अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
 द्युतादनदुहो जज्ञ प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
 प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्त्वनवो मया ।
 वभूवुस्ते यदो पुना पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३॥
 सहस्राद पयोदश्च त्रौष्टा नीलोऽज्जिकस्तथा ।
 सहस्रादस्य दायिदास्य परमघार्म्मिका ॥१५४॥

उनके नाग पाण्ड्य-केरल-कोल और चोल पार्थिव थे । हे राजन् !
द्रुह्यु का समय वक्रसेतु राजा ने जन्म लिया । इस वक्रसेतु का पुत्र
अङ्गारसेतु हुआ जो मरुतो का पति कहा जाता है । परम कुञ्ज योवनाश्व
ने संग्राम में वली को निहत किया ॥१४८-१४९॥ यह महा शीपण
युद्ध चौदह मास पर्यन्त हुआ । इस अङ्गार से युक्त सेतु के वीर्य से
गान्धार नाम वाले पार्थिव पुत्र ने जन्म लिया ॥१५०॥ जिसके नाम से
महान् गान्धार नाम वाला देश विख्यात होता है । इस गान्धार देश में
उत्पन्न होने वाले तुरग अश्वों में परम श्रेष्ठ हुआ करते हैं ॥१५१॥ अनु
के पुत्र का नाम धर्म था और धर्म का सुत द्युत नाम वाला उत्पन्न हुआ ।
द्युत से अनदुह ने जन्म प्राप्त किया और फिर प्रचेता इसका पुत्र हुआ
॥१५२॥ प्रचेता का सुचेता हुआ । इस तरह से मैंने आप लोगों के समक्ष
अनुओं का वर्णन कर दिया है । वे सब पाँच देव सुतो के समान यदु
के पुत्र हुए । उन पाँचों के शुभ नाम सहस्राद-पयोद-क्रौंठ-नील और
बाज्जिक थे । इस सहस्राद के वीर्य से तीन परम धार्मिक पुत्रों ने जन्म
ग्रहण किया ॥१५३-१५४॥

हैहयश्च हयश्चैव राजा वेरुह्यस्तथा ।

हैहयस्याभवत् पुत्रोधर्मनेत्र इति श्रुतः ॥१५५॥

धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहस्रस्तस्य चात्मजः ।

साहस्रजनी नाम पुरी तेन राजा निवेदिता ॥१५६॥

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रथेण्यः प्रतापवान् ।

भद्रथेण्यस्म दायदो दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥१५७॥

दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः ।

कनकस्य तु दायदाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१५८॥

कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतघन्या तथैव च ।

कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यादियाज्जुनः ॥१५९॥

योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।

जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्त्तसा ॥१६०॥

स हि वर्षाद्युतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६१॥

उन तीनों के नाम हेहय-हय और राजा वेणुहय ये थे । हेहय के वीर्य से धर्मनेत्र मुन ने जन्म लिया ॥१५५॥ धर्मनेत्र का मुन कार्त हुआ तथा इस वरत्त का पुत्र साहज्र समुत्पन्न हुआ । उस राजा ने अपने ही नाम से साहज्रनी पुरी को निवेशित किया ॥१५६॥ महिष्माद् का पुत्र भद्रार्थ्य का दायाददुदम नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५७॥ दुदम का पुत्र धीमान् कनक नाम वाला उत्पन्न हुआ और फिर इस कनक के लोको में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१५८॥ उन चारों के परम शुभ नाम वृत्तवीर्य-कृताञ्ज, वृत्तधन्वा और चीपा कृतान्ति ये हुए थे । इस वृत्तवीर्य के वीर्य से अर्जुन समुत्पन्न हुआ ॥१५९॥ जो अर्जुन अपने एक सहस्र बाहुओं के द्वारा सारों द्वीपों का स्वामी हुआ । आवित्य के समान वर्चस्व वाले एक ही रूप व द्वारा इसने समस्त पृथ्वी को जीत लिया । ऐसा प्रतापी था ॥१६०॥ उस कार्तवीर्य ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तपस्या करके अग्नि ऋषि से समुत्पन्न दत्त की आराधना की ॥१६१॥

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो मूर्तिजसः ।

पूर्वकं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥१६२॥

अधर्म्मोऽधोयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।

उग्रेण पृथिवीं जित्वा धर्म्मणेवानुरञ्जनम् ॥१६३॥

सग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।

सग्रामे वर्त्तमानस्य वधं चाम्यधिकाद्रणे ॥१६४॥

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भो द्विजाः ।

योगाद्ययोगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५॥

तेनेयं पृथिवीं सर्वार्थं सप्तद्रुपा सप्ततना ।

सप्ताधुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१६६॥

तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।

प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥१६७॥

सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।

सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः ॥१६८॥

दत्त ने परम सन्तुष्ट होकर उसके बहुत अधिक तेज वाले चार घर-
दान प्रदान किये । सबसे प्रथम उसने अपनी एक सहस्र बाहुओं के हो-
थाने पर सुमहान् वरदान पाने की प्रार्थना की ॥१६८॥ अधर्म में अधी-
यमान का वहाँ पर सत्पुरुषों के द्वारा निवारण था । अत्युग्र धर्म के
द्वारा ही अनुच्छिन था ॥१६९॥ उसने बहुत से सग्रामों में विजय प्राप्त
करके और सहस्रों ही क्षत्रियों को जीतकर अर्थात् उनका हनन किया ।
सग्राम में वर्तमान अधिक बलवान् रिपु का वध कर दिया ॥१६४॥ हे
द्विजगणो ! युद्ध करते हुए योगीश्वर के ही समान योग से उसके माया
के द्वारा एक सहस्र बाहु प्रादुर्भूत हो जाया करती थी ॥१६५॥ उस
सहस्राङ्गुन ने यह सातो द्वीपों वाली नगरों के तथा पत्तन और सागरों
के सहित समस्त पृथिवी उग्र विधि के द्वारा जीत ली ॥१६६॥ हे मुनि-
श्रेष्ठे ! ऐसा सुना जाता है कि उस महान् प्रतापी राजा सहस्राङ्गुन ने
सातो द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये ॥१६७॥ ये सभी यज्ञ हे मुनिगणो !
सहस्र शत दक्षिणा धाने थे । इन सभी यज्ञों में सुवर्ण के रूप ये तथा
सभी यज्ञों में कश्चन की ही वेदियाँ निमित्त की गयी थी । ऐसा विशाल
वैभव का उपभोग सभी यज्ञों में सहस्राङ्गुन ने किया था ॥१६८॥

सर्व्वे देवैर्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृतैः ।

गन्धर्व्वैरप्सरोगिश्च नित्यमेवीपशोभिता ॥१६९॥

यस्य यज्ञो जगौ गाथा गन्धर्व्वो नारदस्तथा ।

बरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विम्मितः ॥१७०॥

न नून कीर्त्त वीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।

यज्ञं दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥१७१॥

स हि सप्तसु द्वीपेषु वर्मा खड्गी शरासनी ।

रथी द्वीपाननुचरन् योगी सदृश्यते नृभिः ॥१७२॥

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।

प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मण रक्षतः ॥१७३॥

स सर्व्वरत्नभाक् सैम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ।

स एव पशुपालोऽभूत् क्षीरपालः स एव च ॥१७४॥

स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादज्जु नोऽभवत् ।

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ॥१७५॥

ये सभी यज्ञ ऐसे हुए कि हे भुनिगणो ! इनमे विमानों मे बैठकर सब देवगण-गन्धर्व और अप्सराएँ नित्य ही वहाँ पर उपशोभित हुआ करते थे ॥१६६॥ जिस सहस्राजुन के यज्ञ मे गन्धर्व तथा नारद मुनि गाथा का गान करते । उसकी महिमा से परम विद्वान् बदरीदास का आत्मज अत्यन्त चिस्मिन होगये थे ॥१७॥ देवर्षि नारद जी ने कहा— इस लोक मे कोई भी नृप मिश्रय ही इस परात्प्रेय की गति को प्राप्त नहीं होने । इसके ऐसे विशाल यज्ञ महान् दान अथुग्र सप विक्रम और श्रुत हैं कि, इसकी समानता कोई भी प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥१७१॥ वह सहस्राजुन सातो द्वीपों मे चर्म-सज्जी और शरामन के धारण करने वाला है । यह रथी द्वीपों मे अनुचरण करता हुआ मनुष्यों के द्वारा योगीराज ही विचरण कर रहा हो ॥१७॥ इस राजा मे विशेषता यह है कि इसका द्रव्य कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है । इसको न कभी शोक और विभ्रम ही होता है । इसका प्रभाव ही ऐसा है कि यह राजा धर्म के साथ प्रजा की रक्षा किया करता है ॥१७३॥ वह समस्त प्रकार के रत्नों को प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ था । वह ही पशुपाल तथा वही क्षीरपाल भी था ॥१७४॥ वह ही वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हो गया था और योगी होने से अजुन हो गया था । वह ही ज्या (धनुष की डोरी) के घात से कठिन त्वचा वाली एक सहस्र बाहुओं से समन्वित था ॥१७५॥

भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्करः ।

स हि नागान्मनुष्येषु महिम्नत्या महाद्युतिः ॥१७६॥

फर्कोटकसुतान् जित्वा पुय्या तस्या न्यवेशयत् ।

स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ॥१७७॥

क्रीडन्निव भुजोदिभन्न प्रतिस्रोतश्चकार ह ।
 प्लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८
 चलद्गुम्फिसहस्रेण शङ्खिताभ्येति नम्मदा ।
 नस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणो महोदधौ ॥ १ १६
 भयान्निलीना निश्चेष्टा पानालस्था महासुरा ।
 चूर्णीकृतमहाबीचि चलन्मीनमहासिमिम् ॥ ८०
 भारताविद्धफेनौघमावर्त्त क्षोभसङ्कुलम् ॥
 प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥१८१
 देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिब मन्दर ।
 मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्खिता ॥१८२
 सहस्रोत्पलिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।
 नत्ता निश्चलमूर्द्धनो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३

वह दारुकाकाल में भास्कर ने समान एक सहस्र किरणों से सुशोभित था । महान् छुति वाले उस माहिष्मती में मनुष्यों में कर्कोटक के सुत नागों को जीतकर उस पुरी में निवेशित कर दिया था । कमल के सदृश मैनों वाले उनमें वर्षाकाल में क्रीडा सी करते हुए ही समुद्र के बेग को प्रतिज्योत भुजाओं से उद्भिन्न कर दिया था । उसने उस ग्राम की मालिनी नदी को क्रीडा करते हुए ही प्लुण्ठित कर दिया था ॥१७९-१७८॥ उस राजा के सहस्रबाहुओं के महोदधि में क्षिप्यमाण करने पर चरती हुई सहस्र ऊर्मियों (तरङ्गों) से नमदा शङ्खित होकर गगन करती है ॥१७९॥ उस समय में पाताल में स्थित महान् असुर गण भी भय से तिलीन हो गये थे और चेष्टा से रहित बन गये थे । महान् तरंगों को चूर्ण किये जाने वाले-मीन और महान् सिमियों का चलायमान किये जाने वाला-भारत से आविद्ध फेनों के समूह वाले तथा आवर्त्तों (भयरो) के क्षोभ से समुत्त समुद्र को उस राजा ने अपनी सहस्रबाहुओं से उस समय में प्रवृत्त कराया था ॥१८०-१८१॥ देवों और असुरों के द्वारा समाक्षिप्त मन्दर क्षीर सागर की तरह मन्दराचल से क्षोभ से चकित तथा अमृत की उत्पत्ति में शका वाले महोरग सहसा उत्पतित हो गये

ये धीर भीम उत्तम नृप कौ दैत्यकर भयभीत हो गये थे । वे सभी महो-
रग नत होकर निश्चल मस्तक वाले हो गये ॥१८२-१८३॥

सायाह्नं कदलाखण्डाः कम्पिता इव वायुना ।

स वै वदध्वा धनुर्ज्यामिरुत्सिक्त पञ्चभिः शरैः ॥१८४॥

लङ्केश मोहयित्वा तु सवल रावण बलात् ।

निजित्य वशमानीय माहिष्मत्या वबन्ध तम् ॥१८५॥

श्रुत्वा तु वदं पौलस्त्य रावण त्वज्जुनेन च ।

ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं बहशे स्वयम् ॥१८६॥

मुमोच रक्षः पौलस्त्य पुलस्त्येनाभियाचित ।

यस्य बाहुसहस्रस्य वभूव ज्यातलस्वन ॥१८७॥

युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ।

अहो वत मुने वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥१८८॥

राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैम तालवन यथा ।

तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥१८९॥

सायाह्न के समय में जिस तरह से वायु के द्वारा कदलाखण्ड कम्पित
हो जाते हैं वैसे ही ये सब कम्पायमान हो गये थे । उस राजा सहस्राजुन
ने पाँच शरों से उत्सिक्त धनुष को प्रत्यञ्चाओं से बढ़ करके बड़े भारी
बल वाले लक्ष्मण के राजा रावण को बलपूर्वक मोहित करके और उसे
जीतकर वश में कर लिया था तथा माहिष्मती में लाकर उसको बाँध
दिया था ॥१८४-१८५॥ जिस समय पुलस्त्य मुनि ने यह सुना था
कि पौलस्त्य रावण को सहस्राजुन ने बाँध लिया है तो पुलस्त्य मुनि
स्वयं उस सहस्राजुन के समीप में जाकर उससे मिले थे ॥१८६॥ जब
पुलस्त्य महामुनि के द्वारा उन्हें याचना की गयी तो उस अजुन नृप ने
उस पौलस्त्य राक्षस को मुक्त कर दिया था । जिन सहस्राजुन की एक
सहस्र बाहुओं के ज्या तल की ध्वनि होती थी तो वह ऐसी प्रतीत होती
थी मानो युगान्त के समय में ध्वज का स्फोटन करने वाले भेष की ध्वनि
हो । ऐसी भीषण ध्वनि उसके धनुष की डोरी की हुआ करती थी ।
ओहो ! भगवन् मुनि का कितना विशाल बल वीर्य था जिनसे उस सह-

अर्जुन के एक सहस्र बाहुओं को हैम शीलवन के समान ही काट दिया था । किसी समय में तृपित चित्रभानु ने उससे भिक्षा की याचना की थी ॥१८७-१८८॥

स भिक्षामददाद्वोरः सप्त द्वीपान् विभासोः ।
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयादन्वं सत्त्वशः ॥१८७॥
जज्वाल तस्य सत्त्वाणि चित्रभानुर्दिरक्षया ।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभवेण महात्मनः ॥१८८॥
ददाह कात्तंवीर्यंस्तु शैलाश्चैव जनानि च ।
सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥१८९॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः ।
य लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥१९०॥
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।
तत्रापवस्तु सं क्रोधाच्छप्तवानज्जुनं विभुः ॥१९१॥
यस्माच्च वज्जितमिदं वनं ते मम हैहय ।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥१९२॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
छित्त्वा बाहुसङ्गन्तैः प्रमथ्य तरसा बली ॥१९३॥

उस वीर ने विभावसु को सात द्वीप भिक्षा में दे दिये और पुर-ग्राम-घोष और सभी विषयो (देशों) को दे दिया ॥१८७॥ देखने की इच्छा से चित्रभानु ने उसके सबों को जला दिया । उस महात्मा पुरुषेन्द्र के अभाव से कात्तंवीर्य ने शैलों को और बनों को दग्ध कर दिया । वरुण आत्मज का सशून्य सुरम्य आश्रम को सहैहय चित्रभानु ने बलवान् से भीत होकर दग्ध कर दिया जिस उत्तम भास्वान् पुत्र को वरुण ने पहिले प्राप्त किया था ॥१८८-१८९॥ वह मुनि वशिष्ठ इस नाम धाला आपव इससे ख्यात थे । वहाँ पर विभु आपव ने क्रोध से उस अर्जुन को शाप दे दिया—हे हैहय ! क्योंकि तुमने मेरे इस वन को वज्जित नहीं किया है इसी कारण तुम्हारे इस दुष्कृत कर्म को कृतमन्यो हनन कर देगा ॥१९०-१९१॥ जमदग्नि ऋषि का पुत्र महान् बाहुओं वाले महान् प्रतापी राम

(मरशुराम) बहुत बली है और वह वेग के साथ तेरी-एक सहस्र भुजाओं को प्रमथन करके छेदन करेगा ॥१६६॥

तपस्वी ब्राह्मणस्त्वा तु हनिष्यति स भार्गव ।

अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥१६७॥

प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षत ।

प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥१६८॥

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृत पुरा ।

तस्य पुत्रशत त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥१६९॥

कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ।

शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥२००॥

जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।

कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवान्तो महाबला ॥२०१॥

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।

तस्य पुत्रशत ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृता ॥२०२॥

तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम् ।

वीतिहोसा सुव्रताश्चभोजाश्चावन्त्य स्मृता ॥२०३॥

वह परम तपस्वी ब्राह्मण भार्गव तेरा हनन करेगा । अमित्र कर्षी जिसकी अनष्ट द्रव्यता हुई थी ॥१६७॥ धर्म से प्रजा को रक्षा करने वाले उस नरेन्द्र के प्रताप से इसके अनन्तर महामुनीन्द्र के शाप से इसकी मृत्यु प्राप्त हुई थी ॥१६८॥ हे विप्री ! उसने स्वयं ही एक वरदान भी प्राप्त किया । उस महात्मा के एक सौ पुत्र उनमें से पाँच शेष रहे थे ॥१६९॥ ये पाँचो अस्त्रधारी-बली-शूर-धर्मत्मा और यशस्वी ये । शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज, और जयध्वज—इनके ये नाम थे और आवन्त्य महान् नृपति हुआ था । कार्तवीर्य के तनय महान् बल वाले वीर्यवान् हुए थे ॥२००-२०१॥ जयध्वज का आत्मज तालजङ्घ उत्पन्न हुआ जो महान् बलवान् था । उसके एक सौ पुत्र हुए जो सबके सब "तालजङ्घा"—इसी नाम से लोको में प्रख्यात हुए ॥२०२॥ हे मुनि-

श्रेष्ठो ! महात्मा हैहयों के कुल में कीर्तिहोत्र-सुव्रत-भोज और भावन्तम
कहे गये थे ॥२०३॥

तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालिजङ्घास्तथैव च ।

भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वाभानुकीर्तिताः ॥२०४

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः ।

वृषो वशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५

मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषस्तस्य वशकृत् ।

वृषपाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६

यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।

न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७

कात्तंबीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।

एते ययातिपुत्राणां पञ्च वशा द्विजोत्तमाः ॥२०८

कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।

भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥२०९

श्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्म्मार्थिकोविदः ।

वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०

जित्त प्रकार से तालजङ्घ विख्यात हुए वैसे ही तौण्डिकेय-भरत और
सुजात भी प्रख्यात हुए । ये सब बहुत थे अतएव उनका वर्णन नहीं
किया गया है ॥२०४॥ हे विप्रो ! वृष प्रभृति पुण्य कर्म वाले यादव थे ।
उनमें वृषवशधर था और इस वृष का पुत्र मधु हुआ । इस मधु के भी सौ
पुत्र हुए उसका वशधर वृष्ण था । वृष्ण से सगस्त वृष्णि हुए तथा मधु से
होने वाले सब माधव कहे गये हैं ॥२०५-२०६॥ यदु के नाम से यादव
हैहय कहे जाया करते हैं । उसके वित्त का नाश नहीं होता है और जो
मष्ट भी हो गया है वह पुनः प्राप्त हो जाया करता है ॥२०७॥ जो नित्य
प्रति इस कात्तंबीर्य के जन्म की कथा को कहा करता है उसका घन
विनष्ट नहीं होता है और विनष्ट भी प्राप्त हो जाया करता है । हे द्विजो-
त्तमो ! ये ययाति राजा के पाँच वश हैं ॥२०८॥ इन लोक वीरो का
वर्णन किया गया है जो लोको को धारण करने वाले थे । हे मुनिश्रेष्ठो !

पाँच भूतो के समान स्थावर जंगमो का श्रवण करके धर्मार्थ का परम भोविद राजा एव विसर्ग पाँच आत्मजो का ईश्वर बशी हो जाया करता है ॥२०६-२१०॥

समेत् पञ्च धराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।

आयुः कीर्त्ति तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च ॥२११॥

धारणाच्छ्रवणाञ्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।

क्रोष्टोर्व्वंश मुनिश्चेष्टा भृगुष्व गदतो मम ॥२१२॥

यदोर्व्वंशधरस्याय यज्विनः पुण्यकर्मणः ।

क्रोष्टोर्व्वंश हि श्रुत्वेव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३॥

यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिवृष्णि कुलोद्बहः ॥२१४॥

वह परम दुर्लभ लोक में होने वाले पाँच बरों की भी प्राप्ति किया करता है । वे पाँच वरदान उममु कीर्त्ति पुत्र-ऐश्वर्य और भूमि ये होते हैं ॥२११॥ हे द्विजगण ! जो पञ्चवर्ग का श्रवण किया करता है तथा धारण करता है उसी को उपर्युक्त पाँच वरदान प्राप्त हुआ करते हैं । अब हम हे मुनिश्चेष्टो ! क्रोष्टु के वंश का वर्णन करते हैं आप लोग मुझसे श्रवण करिये ॥२१२॥ यदु के वंश का धारण करने वाला यज्वा और पुण्य कर्मों के करने वाले क्रोष्टु के वंश का केवल श्रवण करने भर से ही मनुष्य सब तरह के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥२१३॥ जिसके वंश में समुत्पन्न होने वाले वृष्णि कुल के उद्बहन करने वाले साक्षात् विष्णु श्री हरि थे ॥२१४॥



११—यदुपुत्र क्रोष्टुवंशवर्णनम् ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोभार्य्ये वभूवतुः ।

गान्धारी जनयामास अनमित्र महाबलम् ॥१॥

माद्री युधाजितं पुत्र ततोऽन्यं देवमीदुपम् ।
 तेषां वशस्त्रिया भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२॥
 माद्र्याः पुत्रो तु जज्ञाते श्रुतोवृष्ण्यन्धकाबुभे ।
 जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥३॥
 श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्मात्मा यत्र वतंते ।
 नास्ति व्याधिभय तत्र नावर्षस्तापमेव च ॥४॥
 कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।
 व्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावपत् पाकशासनः ॥५॥
 स तत्र चानयामास श्वफल्क परमाश्रितम् ।
 श्वफल्कपरिवर्त्तेन वर्षं हरिवाहनः ॥६॥
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भार्यामिविन्दत ।
 गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥७॥

महामुनि श्री सं.म. हर्षण जी ने कहा—इस क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री दो भार्याएँ हुई थीं । गान्धारी ने महान् बलवान् को अनमित्र को जन्म दिया ॥१॥ माद्री ने युधाजित पुत्र को तथा अन्य देवमीदुप को जन्म ग्रहण कराया । उनका यश तीन भागों में था जो कि इन वृष्णियों के कुल की वृद्धि करने वाला था ॥२॥ माद्री के वृष्णि और अन्धक दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । वृष्णि के भी श्वफल्क और चित्रक इन दो पुत्रों ने जन्म लिया ॥३॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणों ! जहाँ पर परम धर्मात्मा श्वफल्क रहता था वहाँ पर किसी भी व्याधि का कोई भय नहीं होता था और न अनावृष्टि होती थी तथा ताप भी नहीं हुआ करता था ॥४॥ हे मुनिसत्तमों ! किसी समय में काशिराज के देश में पूरे तीन वर्ष तक इन्द्र देव ने वर्षा नहीं की थी ॥५॥ वहाँ पर उस राजा ने परमाश्रित श्वफल्क बुलवाया था । श्वफल्क के वहाँ पर आगमन से ही हरिवाहन ने वर्षा की थी ॥६॥ श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को अपनी भार्या बनाया था । वह नित्य प्रति गान्दिनी नाम वाली गौ को विप्र के लिये दान किया करती थी ॥७॥

दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रिय ।
 अक्रूर सुपुत्रे तस्माच्छ वफलाद्भूरिद क्षण ॥८
 उपमद्गु स्तथा मद्गुमदुरश्चारिमजय ।
 अविक्षितस्तथाक्षेप शत्रुघ्नश्चारिमर्दन ॥९
 धम्मधूग यतिधर्मा च धर्मोक्षान्धकरस्तथा ।
 आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥१०
 अक्रूरणोग्रसेनाया सुगात्रा द्विजसत्तमा ।
 प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञात देववर्चसी ॥११
 चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च ।
 अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपाश्वकगवेर्षणौ ॥१२
 अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धम्मभृत्तया ।
 सुबाहुर्वह्नुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणो स्त्रियो ॥१३
 आसिक्या जनयामास दूर वै देवमीदुपम् ।
 महिष्या जज्ञिरे दूरा भोज्याया पुरुषा दश ॥१४

उस रानी ने स्वपद्म के बायें स भूरिदक्षिणा देने वाला दानशील-
 धजन करके वाला वीर श्रुतवान् और अतिथियों का प्यारा अक्रूर समु-
 त्पन्न किया था ॥८॥ हे द्विजगणो ! उस अक्रूर ने सुन्दर गानो वाली
 उग्रसेना पत्नी के गर्भ से उपमद्गु मद्गु मदुर अरिमेजय अविभित आवेप
 शत्रुघ्न अरिमर्दन धमधूक-यतिधर्मा धर्मोक्ष-अन्धक आवाह-प्रतिवाह और
 वराङ्गना सुन्दरी तथा देवों के समान वर्चस वाले प्रसेन और उपदेव को
 जन्म दिया था ॥९१॥ चित्रक के भी कई एक पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके
 नाम पृथु विपृथु-अश्वग्रीव अश्वबाहु स्वपाश्वक गवेर्षण अरिष्टोमि अश्व
 सुधर्मा धम्मभृत् सुबाहु और वह्नुबाहु थे तथा श्रविष्ठा और श्रवण दो स्त्री
 थी ॥१२१३॥ आसिकी में दूरदेवमीदुप को जन्म ग्रहण कराया था
 तथा महिषी के गर्भ से दूरों को जन्म दिया था और भोज्या में दश
 पुरुषों को समुत्पन्न किया ॥१४॥

वसुदेवो महाबाहु पूढवमानकदुन्दुमि ।

ब्रजयस्य प्रसूतस्य दुन्दुम्या प्राणदन् दिवि ॥१५

आनयानां च सह्यादः सुमहानभवद्विवि ।
 पपात पुष्पचपंश्च दूरस्य जनने महान् ॥१६
 मनुष्यलोके गृत्स्नेर्जप म्मे नास्ति समो भुवि ।
 मस्यासीत्पुरपाग्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥१७
 देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।
 अनाघृष्टिः कनकको यत्तयानय गृहामः ॥१८
 द्यामः दामीको गण्डूपः पञ्च चाम्य यराङ्गनाः ।
 गृधुकीर्त्तिः पृथा पैय श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥१९
 राजाधिदेवो च तथा पश्चं ता यौरमातरः ।
 श्रुतश्रवायां पैयस्तु दिगुपात्राऽभवन्नुपः ॥२०
 हिरण्यकशिपुयोऽग्री दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
 गृधुकीर्त्यां तु मल्लार्जे तनयो वृद्धतम्मणः ॥२१

लोकेऽप्रतिरथो वीर शत्रुतुल्यपराक्रमः ।
 अनमित्राच्छिनिर्जङ्गे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनान् ॥२४॥
 शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः ।
 उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥२५॥
 पण्डितानां परं ब्राह्मदेवश्च वसुमुत्तमम् ।
 अश्मक्यं प्राप्तवान् पुत्रमनाघृष्टिर्यशस्विनम् ॥२६॥
 निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्रुतदेवा त्वजायत ।
 श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैपादियं परिश्रुतः ॥२७॥
 एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निपादं परिवर्द्धितः ।
 वत्सवते त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।
 अद्भिर्ददौ सुत वीर शौरि कौशिकमौरसम् ॥२८॥

कर्णगाधिपति महान् बलवान् वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ था तथा
 पृथा पुत्री कुन्ती ने जन्म लिया था जिसका पाण्डु के साथ विवाह हुआ
 था ॥२२॥ जिसके गर्भ से धर्म का वक्ता धर्म स्वरूप राजा युधिष्ठिर ने
 जन्म लिया था । वायुदेव से भीम और इन्द्रदेव से धनञ्जय (अर्जुन)
 ने जन्म ग्रहण किया था । यह लोक में अप्रतिरथ वीर था जो इन्द्र के ही
 समान पराक्रम वाला हुआ था । अनमित्र से जो सबसे छोटा वृष्णि
 नन्दन था शिनि समुत्पन्न हुआ था । उस शिनि से सत्यक शैनेय और
 युयुधान सात्यकि उत्पन्न हुआ था । देवभाग का महान् भाग वाला उद्धव
 सुत समुत्पन्न हुआ था ॥२३-२५॥ उत्तम देव सखा को पण्डितों ने
 परम श्रेष्ठ कहा जाता था । अनाघृष्टि ने परम यशस्वी अश्मक्य को पुत्र
 के रूप में प्राप्त किया था ॥२६॥ श्रुतदेवा ने ऐसे शत्रुओं के नाशक
 शत्रुघ्न को जन्म दिया था जिसके समस्त शत्रु ही समाप्त हो गये थे । वे
 सब श्रुतदेव के आत्मज थे जिसमें नैपादि परम परिश्रुत था ॥२७॥ हे
 मुनि श्रेष्ठो ! एक लव्य निपादों के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ।
 पुत्रहीन वत्सवान् को प्रताप वाले वसुदेव ने जलो से वीर सुत दिया था ।
 शौरि ने औरस कौशिक को दिया था ॥२८॥

गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् ।
 चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥२९॥
 असग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन ।
 रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥३०॥
 वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृष्ठतोऽश्वयुः ।
 चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥३१॥
 तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतो कनकस्य तो ।
 वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरो तावय गृञ्जिमौ ॥३२॥
 श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
 जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३॥
 अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ।
 वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥३४॥
 वृष्णोऽस्त्रिविधमेवन्तु बहुशास्त्रं महौजसम् ।
 धारयन् विपुलं वशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥

अपुत्र अर्थात् पुत्रहीन गण्डूप के लिये विष्वक्सेन ने पुत्रों को दिया था । चारुदेष्ण-सुदेष्ण-पञ्चाल कृत लक्षण उनके नाम थे । पर ऐसा वीर था कि बिना सग्राम के कभी भी आवर्तित नहीं हुआ था । हे द्विजो ! महान् बाहुओं वाला रौक्मिणेय कनीयान् सबसे छोटा था । ॥२९-३०॥ गमन करने वाले जिसके पीछे-पीछे सहस्रो धायस (कौए) गमन किया करते थे कि युद्ध में चारुदेष्ण के द्वारा निहत्तों को चारु नदी से उपभोक्ष करेगे इसी प्रकार वायस पीछे-पीछे जाया करते थे ॥३१॥ कनक के तान्त्रिज और तन्त्रिपाल दो सुत समुत्पन्न हुए थे । वीर और अश्व दनु ये दो गृञ्जिम वीर थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक हुआ था और इस शमीक ने ही राज्य को वहन किया था । उसने जुगुप्समान होते हुए भोजत्व होने से राजसूय को प्राप्त किया था ॥३३॥ उसका पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाला अजात शत्रु हुआ था । इससे आगे हम वसुदेव के वीर सुतों का कीर्त्तन करेंगे ॥३४॥ वृष्णि वर तीन प्रकार का बहुत सी

शाखाओं वाला महान् ओज से युक्त विपुल वंश को धारण करने वाला था जो यहाँ पर अनर्थों से युक्त नहीं होता है ॥३५॥

या पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गना ।
 पौरवी रोहिणी नाम भतिरादिस्तथापरा ॥३६॥
 वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
 सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७॥
 वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
 सुतनुवड्या चैव द्वे एते पारचारिके ॥३८॥
 पौरवी रोहिणी नाम बाल्लिकस्यात्मजाभवत् ।
 ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभे ॥३९॥
 लेभे ज्येष्ठ सुत राम क्षरण्य शठमेव च ।
 दुर्धम दमन शुभ्र पिण्डारकमुञ्जीनरम् ॥४०॥
 चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव ।
 चित्रा मुभद्रेति पुनर्वित्याता मुनिसत्तमा ॥४१॥
 वसुदेवाच्च देवक्या जज्ञ शौरिमहायशः ।
 रामाच्च निशठो जज्ञ रेवत्या दयित सुत ॥४२॥

वसुदेव की जो पत्नियाँ थीं वे वराङ्गनाएँ थीं और सगदा भी चौदह थीं । उनमें नाम पौरवी-रोहिणी भतिरादि वैशाखी-सुनाम्नी भद्रा पंचमी थीं । सहदेवा शान्तिदेवा-श्रीदेवी देवरक्षिता-वृकदेवी उपदेवी और सातवीं देवकी थीं । सुतनु और वड्या ये दोनों पारिचारिकाएँ थीं ॥३६-३८॥ पौरवी रोहिणी नाम धानी जो वसुदेवजी की पत्नी थी वह पंडिता की आरमजा थी । है मुनिश्रेष्ठा । यह आनकदुन्दुभि की परम प्रिया ज्येष्ठ पत्नी थी । दमन मयम बड़ा पुत्र बनगम प्राप्त किया था जो क्षरण्य था अर्थात् क्षरण से समाप्त । वह रक्षा करन वाला था । शठ दुर्धम-दमन शुभ्र पिण्डारक उजीनर नामक पुत्र था ॥३९-४०॥ और चित्रा नाम धानी कुमारी थी । रोहिणी की ही तनया थी । है मुनिश्रेष्ठ । यह चित्रा मुभद्रा इस नाम से विख्यात हुई थी ॥४१॥ वसुदेव व धीयम

देवरी के गर्भ में महान् यश वाले क्षीरि ने जन्म ग्रहण किया था । राम से
रेवती में प्रिय पुत्र निष्ठल ने जन्म धारण किया था ॥४२॥

सुभद्राया रथी पार्थादिभिमन्युरजायत ।

अक्र रात्काशिकन्याया सत्यनेतुरजायत ॥४३॥

यसुदेवस्य भार्यासु महाभागसु सप्तसु ।

ये पुत्रा जशिरे दूरा समस्तास्तान्निबोधत ॥४४॥

भोजश्च विजयश्चैव क्षान्तिदेवासुताबुभौ ।

वृषदेव सुनामाया गदश्चास्ता सुताबुभौ ॥४५॥

अगावह महात्मान वृषदेवी व्यजायत ।

वन्या त्रिगर्तराजस्य भार्या वै शिशिरायणे ॥४६॥

जिज्ञासा पौरये चक्रे न चस्कन्देच पौरयम् ।

वृष्णायसप्तमप्रख्या वर्षे द्वादशमे तथा ॥४७॥

मिथ्याभिशन्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरित ।

घोषमन्यामुपादाय मंधुनामोपचक्रमे ॥४८॥

गोपाली घाम्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी ।

धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमव्युतम् ॥४९॥

उस सुभद्रा के गर्भ से पार्थ अर्जुन के पीर्य से रथी अभिमन्यु ने जन्म
लिया था । अक्रूर से काशि की वन्या में सत्यनेतु समुत्पन्न हुआ था
॥४३॥ यसुदेवजी की महान् भाग वाली सात भार्याओं के गर्भोंमें जिन पुत्रों
ने जन्म लिया था वे सभी बड़े दूरबीर थे । अब आप शीघ्र उनका भी
ज्ञान प्राप्त कर लो ॥४४॥ भोज और विजय ये दोनों क्षान्तिदेवा के
आत्मज थे । वृषदेव और गद ये दोनों सुत सुनामा के गर्भ से समुत्पन्न
हुए थे ॥४५॥ वृष देवी ने महात्मा अगावह का प्रसूत किया था । त्रिगर्त
राज की जो वन्या थी वह शिशिरायणि की भार्या हुई थी ॥४६॥ इसने
पौरय में जिज्ञासा की थी और पौरय को आस्पदित नहीं किया था ।
तथा पारहर्षे वर्ष में वृष्णायस (जाले लोहे) के समान प्रदत्त हो गई थी
॥४७॥ घोष से अति समीरित होकर गार्ग्य मिथ्याभिनस्त हो गया था ।
एतने एत घोष की वन्या को लाकर उसने साथ मंधुन का उपक्रम किया

था ॥४८॥ गौप के वैश को धारण करने वाली गोपाली नाम वाली
अप्सरा ने उस गार्ग्य ने अच्युत दुषर गर्भ को धारण दिया था ॥४९॥

मानुष्या गर्गभार्याया नियोगाञ्छूलपाणिनः ।

स कालयवनो नाम यज्ञो राजा महाबल ॥५०॥

वृत्तपूटर्षाङ्गं वायरतु सिंहसहननो युवा ।

अपुनस्य स राजस्तु बबूधेऽन्तःपुरे शिशुः ॥५१॥

यवनस्य मुनिश्रेष्ठा स कालयवनोऽभवत् ।

आयुष्यमानो नृपति पश्यपृच्छद्द्विजोत्तम ॥५२॥

वृष्ण्यन्धककुल तस्य नारदोऽक्ययद्विभुः ।

अक्षीहिण्या तु संन्यस्य मधुरामभ्ययात्तदा ॥५३॥

दूत सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।

पुतो वृष्ण्यन्धका कृष्ण पुरस्कृत्य महामतिम् ॥५४॥

मेता मन्त्रयामासुयवनस्य भयात्तदा ।

कृत्या विनिश्चय सर्वे पलायनमरोचयन् ॥५५॥

विहाय मधुरा स्म्या मानयन्तः पिनाकिनम् ।

कुशस्थली द्वारवती निवेशयितुमीप्सव ॥५६॥

इति कृष्णस्य जन्मेद य शुचिनिगतेन्द्रिय ।

पठ्यसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥५७॥

मानुषी जो गग की भार्या थी उसमे छूलपाणि क नियोग से वह
महान् बलवान् राजा कालयवन नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था
॥५०॥ अब काया जिसकी वृत्त पूव थी और सिंह के समान सहन
वाला वह युवा शिशु उस पुनहीन राजा के अंतःपुर में वृद्धि को प्राप्त
हो रहा था ॥५१॥ हे मुनिगण ! वह कालयवन यवन का हुआ था ।
आयुष्कमान नृपति ने द्विजोत्तम से पूछा था ॥५२॥ विभु श्री नारदजी
ने उत्तरक वृष्ण्यन्धक कुल कहा था । उस समय में एक-अक्षीहिणी सेना
के द्वारा मधुरापुरी पर अभियान किया था ॥५३॥ उसने वृष्ण्यन्धकों के
निवेशन अर्थात् निवास स्थान पर एक दूत को प्रेषित किया था । इसके
अन्तर समस्त वृष्ण्यन्धक लोग उस समय में यवन के भय से महान्

अतिमान भगवान् श्री कृष्ण को आगे करके एकत्रित हुए थे और सब परस्पर में मन्त्रणा करने में तत्पर हो गये थे । सब लोगो ने विशेष रूप से यही निश्चय किया था और वहाँ से वही अन्यत्र भाग जाना ही बचने के लिये पसन्द किया था ॥१५॥ उस परम रमणीक मधुरपुरी को त्याग कर पिनाका की मानता करते हुए कुशस्थली द्वारवती (द्वारकापुरी) के श्वन्दर जाकर निवेशित होने की इच्छा वाले हो गये थे ॥१६॥ जो पुरुष पवित्र होकर इस भगवान् कृष्ण के जन्म की कथा को नियन्त्रिय होते हुए यवों के समय में श्रवण करता है वह विद्वान् मृग से मुक्त और परम सुख सम्पन्न हो जाया करता है ॥१७॥

१२—वृष्णिवशवर्णेन ।

क्रोष्टारयाभवत् पुनो वृजिनीयान्महायशाः ।
 वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृत्वा वरम् ॥१॥
 स्याहिपुनोऽभवद्राजा उपदगुर्वदता वरः ।
 महाकलुभिरीजे यो विविधेभू रिदक्षिणं ॥२॥
 तत प्रसूतिमिच्छन् वै उपदगु सोऽयमात्मजम् ।
 णज्ञे चिनरयस्तस्य पुत्र कर्म्मभिरन्वितः ॥३॥
 आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
 शशविन्दु पर वृत्त राजर्षोणामनुष्ठितः ॥४॥
 पृथुयवा पृथुयशा राजासीच्छाश किन्दवः ।
 शसन्ति च पुराणज्ञा पार्यश्रवसमन्तरम् ॥५॥
 अन्तरस्य सुमज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।
 उपतो यज्ञमखिल स्वधर्म्मं च वृतादरः ॥६॥
 शिनेयुरभवत् पुत्र उपतः शत्रुतापनः ।
 भरतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥७॥

महामुनेन्द्र श्री सोमहर्षणजी ने कहा—इसके अनन्तर क्रोष्टु या १९
 प्यस्वी वृजिनीवान् उत्पन्न हुआ था । स्वाहाकृता स्वाहि यो वाजिनी वः

वर की इच्छा करते थे ॥१॥ बोलने वालों में परम श्रेष्ठ स्वादि का पुत्र
 चण्डगु राजा हुआ था जिसने बहुत अधिक दक्षिणा से युक्त अनेक प्रकार
 के महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया था ॥२॥ इसके उपरान्त उस उप-
 ऋगु ने सम्पत्ति की इच्छा करते हुए अत्युत्तम आत्मज चैत्ररथ को जन्म दिया
 था । उस चैत्ररथ का पुत्र कर्मों से समुक्त चैत्ररथि वीर समुत्पन्न हुआ था
 जो यजन करने वाला था तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था ।
 इसके आगे राजपियों ने अमुष्णित शशविन्दु हुआ था ॥३॥ अधिक
 मश काल पृथु धना साशविन्दव राजा था । जो पुराणों के ज्ञाता हैं
 के अन्तर पायंथय को कहा करते हैं ॥४॥ अन्तर का सुत सुपन्न हुआ था
 तथा इस सुयज्ञ का सुत उन्नत उत्पन्न हुआ था जिसने पूर्ण यज्ञ किया था
 और अपने धर्म में अत्यधिक आबर करने वाला हुआ था ॥५॥ उस
 उपत का तनय शिनेयु नाम वाला हुआ था जो अपने शत्रुओं को ताप
 देने वाला था । इसका आत्मज भरत राजपि हुआ था जो कि नृप था ॥६॥

मरुतोऽलभत ज्येष्ठ सुत कम्बलवर्हिषम् ।

चचार विपुल धर्मममर्षाद् प्रेत्यभाषि ॥७॥

स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुत कम्बलवर्हिषः ।

बभूव स्वमकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥८॥

निहत्य स्वमकवचः शत कवचिना रणो ।

धन्विना निशितैर्वाणीरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥९॥

जज्ञे च स्वमकवचात् पराजितपरवीरहा ।

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या पराजिताः ॥१०॥

स्वमेपुः पृथुस्वमश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।

पालित च हरि चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥११॥

स्वमेपुरमद्राजा पृथुस्वमस्य सथयात् ।

ताभ्या प्रधाजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥१२॥

इस मरुत ने अपना ज्येष्ठ पुत्र कम्बलवर्हिष नाम वाला प्राप्त किया
 था । उसने प्रेत्यभाग होते हुए भी अमर से बहुत अविष धर्म का समान-

चरण किया था ॥८॥ उतने कम्बल वह्नि के सुते सत्प्रसूति की इच्छा की थी तब मतप्रसव से रुक्म कवच हुआ था ॥९॥ इस रुक्म कवच के रणक्षेत्र में सौ गर्वजियों का निहलन करके घन्वियों के निशित वाणों के द्वारा उत्तम श्री की प्राप्ति की थी ॥१०॥ रुक्म कवच से ऋषभों के वीरों का हनन करने वाले पराजित ने जन्म प्राप्त किया था । महाम् घीयं वाले पराजित के पाँच पुत्रों ने जन्म घारण किया था ॥११॥ उनके शुभ नाम सुक्मेपु-पृथु रुक्म-ज्यामघ-प्रासित और हरि थे । पिता ने पालित और हरि की विदेहों के लिये दे दिया था ॥१२॥ पृथुरुक्म के सभ्रम से सुक्मेपु राजा हो गया था । उन दोनों के द्वारा प्रभावित राजा ज्यामघ आश्रम में निवास किया करता था ॥१३॥

प्रशान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणेभ्यो वबोधितः ।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥१४॥
नर्मन्दाकुलमेकाकीमेखलां मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्त गिरि जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥१५॥
ज्यामवस्याभवद्भार्या शैव्या बलवती सती ।
अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्यामविन्दत ॥१६॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
भार्यामुवाच सन्नस्तः स्नुपेति स जनेश्वरः ॥१७॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुपेति वै ।
अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥१८॥
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्यापपादिता ॥१९॥
उद्येन सपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥२०॥
राजापुन्यातुविद्वासी स्नुपाया क्रयकंशिकी ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरो रणविशारदी ॥२१॥

उस समय में राजा प्रशान्त था और ब्राह्मणों के द्वारा समझा दिया गया था । वह ध्वजी रथी अपना धनुष ग्रहण करके अन्य देश को चला गया था ॥१४॥ उस एकाकी ने नर्मदानुल मेखला मृत्तिकावती और

शुद्धवन्त गिरि को जीत कर फिर वह शुक्तिमती में निवास करता था ॥१५॥ उस ज्यामघ की भार्या बलवती सती शैव्या थी वह राजा पुत्रहीन भी था सोभी उसने दूसरी कोई भार्या नहीं बनाई थी ॥१६॥ उसकी बुद्ध में विजय हुई थी और वही पर उसने एक बच्चा को प्राप्त किया था। वह जनेश्वर डरते हुए अपनी भार्या से बोला था—यह स्नुषा है ॥१७॥ यह राजा का बच्चा थवण करके उस देवी ने कहा—हे देव ! यह किसकी स्नुषा है। यह थवण करके राजाओ में थैल्ल ज्यामघ ने कहा ॥१८॥ राजा बोला—जो तेरा पुत्र समुत्पन्न होगा उसकी यह भार्या उपपादित की गयी है ॥१९॥ महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस कन्या की उग्रतपस्वर्या से उस सुभगा सती परिणत शैव्या ने विदभ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२०॥ पीछे विदभ ने उस राजपुत्री स्नुषा में रण-विद्या में विशारद शूरवीर और परम विद्वान् क्रम और कौशिक को जन्म ग्रहण कराया था ॥२१॥

भीमो विदभस्य सुत कुन्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ।

कुन्तेषूष्ट सुतो जज्ञे रणषूष्ट प्रतापवान् ॥२२॥

षूष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रय परमधार्मिका ।

आवन्तश्च दशार्हश्च बली विपहरश्च स ॥२३॥

दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ।

जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ स्मृत ॥२४॥

अथ भीमरथस्थासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।

तस्य चासौद्दशरथा शकुनिस्तस्य चात्मज ॥२५॥

तस्मात्करम्भ कारम्भिर्देवरातोऽभवत्तथा ।

देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशा ॥२६॥

देवगभसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दन ।

मधूना वशकुव्राजा मधुर्मनुरवागपि ॥२७॥

मधोज्ञस्य वैदम्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तम ।

ऐशवाकी चाभवद्भार्या मयास्तस्या व्यजायत ॥२८॥

सत्त्वात् सव्यगुणोपेत. सात्वतो कीर्तिवद्धेन ।

इमा विसृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ।

बुध्यते परमप्रीत्या प्रजावाञ्छ भवेत् सदा ॥२६॥

राजा भीम पिदमं कन पुत्र या और उत्तका आत्मजे धुन्ति हुआ
प्रा । धुन्ति का सुत पृष्ट उत्तम पुत्रा जो रण में पृष्ट और प्रतापवान्
था ॥२२॥ इस पृष्ट के वीर्य से तीन पुत्रों ने जन्म धारण किया था जो
शूर और परमवामिक हुए थे । उनके पुत्र नाम भावन्त दशार्ह और
शमीविपट्ट थे ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र ज्योमा उत्पन्न हुआ था तथा
ज्योमा का पुत्र जीमूत कहा जाता है । जीमूत से यहाँ विपुति नाम वाला
पुत्र प्रसूत हुआ था और उसका पुत्र भीमरथ कहा गया है ॥२४॥ इसके
अनन्तर उस भीमरथ के नवरथ पुत्र ने जन्म लिया था । उसका आत्मज
दशरथ हुआ था और इस दशरथ के वीर्य में शत्रुनि तनय ने जन्म लिया
था ॥२५॥ उसके करम्भ प्रसूत हुआ था । करम्भ से वारम्भ देवराते
पुत्र हुआ था । उसके पुत्र देवरात्र हुआ था । उस देवरात्र का पुत्र महान्
यसस्वी-दशगम के समान वृद्धशत्रु समुत्पन्न हुआ था । यद्युर याणी वाला
मधु मधुभी का वधधर राजा हुआ था ॥२६-२७॥ इसके अनन्तर उस मधु
से यदभी ने गर्भ से उत्तम पुरुष पुराटान् प्रसूत हुआ था । उस मधु की
भायां ऐश्वारी हुई थी । मधु की उस पत्नी से सत्यगुणो से मुक्ता और
शास्वती की कीर्ति की वृद्धि करने वाला सरवान् समुत्पन्न हुआ था ।
महान् आत्मा वाले ज्यामघ की इस विशेष गृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने
के समुप्य परम प्रीति से मुक्त होता है और सदा प्रजा वाला हुआ करता
है ॥२८-२९॥

गत्वत्त. गत्वसम्पन्नान् कीर्तत्या मुपुवे सुतान् ।

भागिन भजमान च दिव्य देवावृष नृपम् ॥३०॥

अन्यक च महाबाहु कृष्ण च यदुनन्दनम् ।

तेषां विसर्गाञ्चित्कारो विस्तरेणेह कीर्तिताः ॥३१॥

भजमानस्य मृष्टायो वाचनायोपवाचना ।

आस्ता भाष्ये सपोस्तस्मान्नजनिरेवह्वमुताः ॥३२॥

क्रिमिश्च क्रमणश्चैव घृष्ट शूर पुरञ्जय ।

एते बाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३३॥

अयुताजित् सहस्राजिन्धता जित्कथ दासक ।

उपवाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३४॥

यज्ज्वा देववृधो राजा चचार निपुल तप ।

पुत्र सन्वंगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितम् ॥३५॥

महर्षि श्री लोमहर्षण जी ने कहा—उस सत्त्व ने कौशल्या के गर्भ से सत्त्व से सुसम्पन्न पुत्रों को प्रसूत किया था । उनके शुभ नाम भागी-भजमान दिव्य-देवा घृष्ट भुप-अन्धक-महाबाहु-वृष्णि और यदुनन्दन थे । उनके विशेष सर्ग चार थे जिनका कि यहाँ पर मैंने विस्तार के साथ वर्णन कर दिया है ॥३०-३३॥ भजमान के सृञ्जय में बाह्यक और उप-बाह्यक हुए थे । तथा भायतप हुआ था और इससे बहुत से पुत्रों ने जन्म धारण किया था ॥३२॥ क्रिमि-क्रमण घृष्ट-शूर-पुरञ्जय ये सब बाह्यक सृञ्जय में भजमान के भीम से समुत्पन्न हुए थे ॥३॥ अयुताजित्-सहस्राजित्-शताजित्-दासक ये सब उपवाह्यक सृञ्जयी में भजमान की स नति समुत्पन्न हुई थी ॥३४॥ राजा देववृध यजन करने वाला था जिसने बहुत तप किया था । उसके तपस्या का यही निश्चित उद्देश्य था कि मेरे समस्त सद्गुणों से सुसम्पन्न मुत समुत्पन्न होंगे ॥३५॥

सयुज्यमानस्तपसा पर्णाशिया जल स्पृशत् ।

सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥३६॥

चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निःचपम् ।

काल्याणत्वाभिरपतेस्तस्या सा निम्नागोत्तमा ॥३७॥

नाध्यगच्छतु ता नारी यस्यामेव विध सुत ।

भवेत्तस्माद् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य सहानुगा ॥३८॥

अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रती परम वपु ।

वरयामास नृपतिं मामियेष च स प्रभु ॥३९॥

तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधी ।

अथ सा दशमे मासि सुपुत्रे सरिता वरा ॥४०॥

पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं वभ्रं देवावृधं द्विजाः ।
 अत्र बभे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥४१॥
 गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
 यथेवाग्रे तथा ब्रूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात् ॥४२॥

तप से संयुज्यमान-वर्णाशा को जल का उपस्पर्शन करती हुए और सर्व्वदा उपस्पर्शन करने वाले उसका प्रिय अम्पगा ने किया था ॥३६॥
 निन्ता से अभिपरीता उसने कोई निश्चय नहीं किया था । नरपति के कल्याण होने से उसकी वह उत्तमा निम्नगा नारी उसका अधिगमन न करे जिसमें इस प्रकार का पुत्र होवे इससे मैं स्वयं ही जाकर इसकी सहानुगामिनी हो जाऊँ ॥३७-३८॥ इसके अनन्तर वह स्वयं पुंसारी होकर परम सुन्दर शरीर को धारण करती हुई उसने उस राजा का वरण किया था और वह प्रभु भी उसी को चाहता था ॥३९॥ उसमें उस गृपति ने जो अत्यन्त उदार प्रदि वाता था एक परम सेजस्वी गर्भ धारण कर दिया था । इसके उपरान्त दशवें मास में उस सखिद्वरा ने प्रसव किया था ॥४०॥ हे द्विजगण ! उससे सगस्त सद्गुणों से युक्त वभ्र देवा वृध-पुत्र समुत्पन्न हुआ था । इस वक्ष में पुराणों के ज्ञाता लोग यह परिश्रुत-ज्ञान किया करते हैं और महात्मा देव वृध के सद्गुणों का कीर्त्तन किया करते हैं कि जिस प्रकार से इसके आगे बीसे ही दूर से एवं समीप से भी हम इसकी सेवा करते हैं ॥४१-४२॥

वभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणा देवदेवावृधः समः ।
 पटिञ्च पद् च पुल्याः सहस्राणि च सप्त च ॥४३॥
 एतेऽमृतस्व प्राप्ता वै वभ्रोदवावृधादपि ।
 यज्वा दानपतिर्धोमान् ब्रह्मण्यः सुहृदायुधः ॥४४॥
 तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकायताः ।
 अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५॥
 कुकुरं मजमानं च सप्तकं वलवाहिपम् ।
 दृगुरस्य सुतो वृष्टिर्दृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥

कपोतरोमा तस्याथ तिलिरिस्तनयोऽभवत् ।

जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजिह्व पुनर्वसो ॥४७

तथा व पुत्रमियुन बभ्रुवाभिजित किल ।

आहुक आहुकश्चैव रयातौ ख्यातिमता वरौ ॥४८

इमा चोदाहरन्त्यन गाथा प्रति तमाहुकम् ।

इवेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९

बभ्रु मनुष्यो मे परम श्रेष्ठ है और देवावृध देवों के ही समान है
 सान हजार छयासठ पुरुष बभ्रु देवा वृध से अमृतत्व को प्राप्त हो गये
 हैं । यह यजन करने वाला षानपति धीमान् सुदृढ आयुधो वाला और
 धारण में समागता की सुरक्षा करने वाला था । इसका अवधाय (वश)
 सुमहान् था जो कि मार्त्तिकावत भोज थे । काश्य की पुत्री ने अध्वक
 के वीर्य से चार पुत्रों की प्राप्ति की थी ॥४३ ४५॥ उनके शुभ नाम
 कुकुर भजमान-ससक और बलमाहिष थे । कुकुर का पुत्र वृद्धि और वृद्धि
 वा आत्मज कपोतरोमा हुआ था तथा इसका सुत तिलिरि नाम वाले ने
 जन्म धारण किया था । फिर इससे पुनर्वसु ने जन्म लिया था और
 पुनर्वसु के वीर्य से अभिजित् समुत्पन्न हुआ था ॥४६ ४७॥ उत्त अभि
 जित का एक युग्म पुत्रों का हुआ था । वे दोनों परम प्रसिद्धि प्राप्त करने
 वाला मे आहुक-आहुक इन नामों से ही प्रख्यात हुए थे ॥४८॥ यहाँ पर
 उत्त आहुक के प्रति इस गाथा को उदाहृत करते हैं कि वह इवेत परिचार
 से महान् किशोर प्रतिमा जाता था ॥४९॥

अशीतिवम्मणा युक्त आहुक प्रथम ब्रजेत् ।

नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुष ॥५०

ताशुद्धकर्मा नायज्वा या भोजमभितो ब्रजेत् ।

पूर्वस्या दिशि नागाना भोजस्य प्रययु किल ॥५१

सोमात्सङ्गानुकर्पाणा ध्वजिना सवर्धनाम् ।

रथाना मेघघोषाणा सहस्राणि दर्शव तु ॥५२

रौप्यकाञ्चनकक्षाणा सहस्राण्येकविंशति ।

तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्था तथा दिशि ॥५३

आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः ।
 आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसार ददुरन्वकाः ॥५४
 आहुकस्य तु काश्याया द्वौ पुत्री सम्बभूवतुः ।
 देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारश्चिदशोपमाः ॥५५
 देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६

अस्सी वर्म्म से युक्त आहुक ही सबसे प्रथम गमन करे । जपुत्रवान्-
 अशतद असहस्र-शतायुष-अशुद्धकर्मा मयन्वा कोई भी इसमें से नहीं है जो
 भोज के समक्ष में गमन करे । पूर्व दिशा में भोज के नामों के प्रति गमन
 किया था ॥५०-५१॥ सोम से सङ्गानुकर्षों के-ध्वजियों के-सर्वरूयियों के
 और मेघों के समान धोप करने वाले रथों की सख्या दश सहस्र थी
 ॥५२॥ रौप्य काञ्चन कक्षों की सख्या इक्कीस सहस्र थी । उतने ही सहस्र
 उत्तर दिशा में थे ॥५३॥ आभूमिपाल भोज ज्याकिङ्किणीकिन थे । और
 आहु तथा अवन्तियों के लिये अन्धको ने अपनी स्वसा (बहिन) देदी थी
 ॥५४॥ इस आहुक के काश्या में दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । देवक के बेटों
 के समान चार पुत्रों ने जन्म लिया था । उनके शुभ नाम-देववान्-उपदेव-
 सदेव और देवरक्षित थे ॥५५६॥

कुमार्यः सप्त चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ ।
 देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७
 वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ।
 नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषा कसस्तु पूष्वजः ॥५८
 न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्क सुभूषण ।
 राष्ट्रपालोऽप्य सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९
 तेषा स्वसारः पञ्चासन् कसा कसवती तथा ।
 सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥६०
 उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यात कुकुरोद्भवः ।
 कुकुराणामिभ वश धारयन्नमितीजसाम् ॥६१
 आत्मनो विपुल वश प्रजावानान्पुयात्तरः ॥६२

इसके सात कन्याएँ भी उत्पन्न हुई थी । उसने उन सात कुमारियों को वसुदेवजी को समर्पित कर दिया था । उन कुमारियों के नाम देवकी शान्तिदेवा सुदेवा-देवरक्षिता वृकदेशी-उपदधी और सातवीं सुनाम्नी थी । राजा उग्रसेन के नी सुते हुए थे उन सबम कस सबरी बड़ा था । ५७-४-॥ उनके नाम न्यग्रोध सुनाम-कङ्क-मुभूषण राष्ट्रपाल-सुतनु-अनागृष्टि और सुमान थे थे ॥५८॥ उनकी वहिनें भी पाँच थी कसा-कसवनी सुतनु राष्ट्रपाली और वर अङ्गो वाली बङ्गा थे उनके नाम थे ॥५९॥ राजा उग्रसेन सप्तति के सहित बनला दिया गया है जो कि कुकुरोद्भव था । ये कुकुर अपरिमित ओज वाल थे । इनके वश की धारणा करने वाला मनुष्य अन्न प्रजा वाले विपुल वश को प्राप्त किया करता है ॥६०॥ ६१॥

- * -

१३—सत्ताजित उपाख्यान वणन

भजमानस्य पुत्रोऽयं रथमुख्यो विदूरथ ।
 राजाधिदेव दूरस्तु विदूरथमुतोऽभवत् ॥१॥
 राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे धीम्यवत्तरा ।
 दत्तातिदत्तो वत्तिनी शोणाश्व स्वतवाहन ॥२॥
 क्षमी च दण्डशर्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित् ।
 श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारी सम्बभूवतु ॥३॥
 क्षमिपुत्र प्रतिशत्रु प्रतिशत्रुश्च चात्मज ।
 स्वयम्भोज स्वयम्भाजाद्दृढिक् गम्भभूव ह ॥४॥
 तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भोमवराजमा ।
 श्रुतवर्माग्रजस्तथा शतघन्वा तु मध्यम ॥५॥
 दवान्तश्च नरान्तश्च निपम्पंतरणश्च य ।
 गुदान्तश्चातिदातश्च निषादस्य तानदम्भ ॥६॥

सत्राजित उपाख्यान वर्णन]

देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलवर्हिषः ।

असमीजाः सुतस्तस्य नासमीजाश्च तावुभौ ॥७॥

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—भजमान का पुत्र रथियो मे परम प्रमुख विदूरथ समुत्पन्न हुआ था । राजाधिदेव शूर इस विदूरथ के वीर्य से समुत्पन्न हुआ था ॥१॥ इस राजाधिदेव के बहुत बलवीर्य वाले सुतो ने जन्म लिया था । परम बलवान् दत्त-अनिदत्त-शोणाश्व-श्वेत बाहन शमी-दण्ड शर्मा दन्तशत्रु-शत्रुजित् ये पुत्रो के नाम है तथा श्रवणा एवं श्रविष्ठा ये दो बहिर्ने समुत्पन्न हुई थी ॥२-३॥ शमी के पुत्र का नाम प्रतिभन था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज हुआ था । इस स्वयम्भोज के वीर्य ने हृदिक सुत ने जन्म लिया था ॥४॥ हृदिक के सभी पुत्रो के बल पराक्रम बहुत ही भीषण था ऐसे ही सब सुत समुत्पन्न हुए थे । उन सब मे कृतवर्मा ज्येष्ठ पुत्र था तथा क्षतधन्वा मध्यम था ॥५॥ अन्य पुत्रों के नाम देवान्त-नरान्त-भियक्-वैतरण-सुदान्त-अतिदान्त-निकाश्य और कामदम्भक थे ॥६॥ उस कम्बलवर्हि का पुत्र परम विद्वान् देव हुआ था । उसके पुत्र का नाम असमीजा था । वे दोनों असम ओज वाले थे ॥७॥

अजातपुत्राय सुतान् प्रददात्समीजसे ।

सुदृष्टश्च सुचारुदत्त कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतु ।

गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥८॥

माद्री युधाजित पुत्रं ततो वै देवमोदुपम् ।

अनमित्रममित्राणा जेतारमपराजितम् ॥९॥

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः ।

प्रसेनश्राथ सत्राजिच्छट्रसेनाजितावुभौ ॥१०॥

प्रसेनो द्वारवत्या तु निवसन् ये महामणिम् ।

दिव्यं स्वयमन्तकं नाम स सूर्य्यादुपसन्धवान् ॥११॥

तस्य सत्राजितः सूर्य्यं यथा प्राणसमोऽभवत् ।

स कदाचिन्निष्ठापाये रथेन रथिना वरः ॥१२॥

तोयकूलमप प्रष्टुमुपम्यातु ययौ रविम् ।

तस्योपतिष्ठत सूर्य्य विवस्वानग्रत स्थित ॥१४॥

यह असमोजा पुत्रहीन था इसको पुत्र दिये गये थे । इन पुत्रों के नाम सुदृष्ट सुचारु और कृष्ण थे—ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥८॥ गान्धारी और माद्री ये दोनों क्रोष्टु की भार्याएँ थी । गान्धारी ने महाद्वलवान् अनमित्र को उत्पन्न किया था ॥९॥ माद्री ने युधाजित नाम वाले पुत्र को जन्म दिया था और इसके पश्चात् अनमित्र के मित्रों को जीतने वाला अपराजित देवमीदुष पुत्र को उत्पन्न किया था ॥१०॥ अनमित्र का सुत निघ्न उत्पन्न हुआ था । इस निघ्न के वीर्य से दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था इनके नाम प्रसेन और सत्राजित् थे । ये दोनों ही क्षत्रियों की सेना को जीतने वाले हुए थे ॥११॥ यह प्रसेन द्वारवती में निवास किया करता था और इसने परम दिव्य महामणि स्यमन्तक को सूर्य देव से प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का सूर्य प्राण के समान ही था । यह किसी समय में रथियों में परम श्रेष्ठ रथ के द्वारा निष्काल के समाप्त होने पर तोय के कूल को जल का स्पर्श करने को उपस्थान करने के लिये सूर्य देव के समीप में गया था । जब वह सूर्य देव का उपस्थान कर रहा था उस समय में विवस्वान् उसके आगे स्थित हो गये थे ॥१३ १४॥

विस्पष्टमूर्तिभगवास्तेजोमण्डलवान् विभु ।

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत ॥१५॥

यथैत्र व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते ।

तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरत स्थितम् ॥१६॥

को विदोषोऽस्ति मे त्वत्त सरयेनोपगतस्य वै ।

एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥१७॥

स्ववण्ठादवमुच्याथ एवान्ते न्यस्तवान् विभु ।

ततो विग्रहन्त त ददश नृपतिस्तदा ॥१८॥

प्रीतमानथ त दृष्ट्वा गृह्णन् कृतवान् कथाम् ।

तमभिप्रस्थित भूया विवस्वन्त स सत्रजित् ॥१९॥

लोकान् भासयसे सन्वान् येन त्वं सततं प्रभो ।

तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि ॥२०॥

ततः स्यमन्तकमणि दत्तवान् भास्करस्तदा ।

स तमावध्य नगरी प्रविवेश महीपतिः ॥२१॥

यह भुवन भास्वर विभु भगवान् विस्पष्टमूर्ति वाले थे और तेजो गण्डस से युक्त थे । इसके अनन्तर उस राजा ने अपने आगे स्थित विभु-स्वान् प्रभु से कहा था—हे ज्योतिषो के स्वामिन् ! मैं जिस प्रकार आपको सदा ही व्योम में देखा करता हूँ वैसे तेजो गण्डस वाले देव आपको इस पमथ में भी अपने आगे स्थित हुए को भी देख रहा हूँ ॥१५-१६॥ सत्यभाव से समुपगत आप से मुझ में क्या विशेषता है ? यह श्रवण करके भगवान् सूर्यदेव ने मणियों में सर्वोत्तम स्यमन्तक मणि को अपने कण्ठ से उतार कर विभु ने एकान्त में विन्यस्त कर दिया था । उस समय में फिर राजा ने विग्रहवान् उनका दर्शन किया था ॥१७-१८॥ परम प्रीति वाले उसने उनका दर्शन करके मुहूर्त भर तक पचायी थी । उस सत्राजित् ने अभिप्रस्थान करने वाले विवस्वान् देव से फिर निवेदन किया था—हे प्रभो ! जिसके द्वारा आप समस्त लोको को सदा भागित किया करते हैं हे भगवन् ! उस मणि रत्न को आप मुझे प्रदान कर देने में योग्य होते हैं ॥१९-२०॥ उसी समय भगवान् भास्वर ने उसको स्यमन्तक मणि प्रदान कर दी थी । उस मणि को कण्ठ में पहिन कर फिर राजा ने द्वारवती नगरी में प्रवेश किया था ॥२१॥

त जना पथ्यघावन्तः सूर्योऽप्य गच्छतीति ह ।

स्या पुरी ॥ विसिध्माय राजा त्वन्तःपुर तथा ॥२२॥

त प्रसेनजित दिव्य मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

ददौ आग्ने नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुतम् ॥२३॥

ग मणि स्यन्दते स्वम दृष्ट्यन्धननिवेशने ।

यावदपि च पर्जन्यो न च व्याधिभय ह्यभूत् ॥२४॥

निष्णा चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।

गायिन्द्रा न च त सेवे भक्तोऽपि न जहार सः ॥२५॥

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूपितः ।

स्यमन्तककृते सिंहाद्वयं प्राप वनेचरात् ॥२६॥

अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।

निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशदगुहाम् ॥२७॥

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात् ।

प्रार्थयन्तां तां मरुद्वर्षं दध्वा सर्व्वं एव शशङ्किरे ॥२८॥

जिस समय में वह अपनी नगरी के मध्य से जा रहा था तो लोगो ने उसको देखकर यही समझा था कि यह सूर्यदेव ही गमन कर रहे हैं तथा लोग उसके इधर-उधर घाटो ओर से दौड़ पड़े थे । उस राजा ने अपनी सब नगरी को विस्मित कर दिया और वहाँ पर भी सबको परम विस्मय में डाल दिया था । उस परम दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक को राजा ने अपने भाई प्रसेनजित को प्रेम से दे दिया था वह सत्राजित् के द्वारा दी हुई मणि स्यमन्तक वृष्णि और अन्धको के घर में नित्य ही सुवर्ण का स्यन्दन किया करती थी और उस स्यमन्तक मणि का यह प्रभाव था कि पर्जन्य सदा ठीक समय पर वर्षा किया करता था तथा कभी भी किसी व्याधि का वहाँ पर भय नहीं था ॥२२-२४॥ उस मणिरत्न स्यमन्तक में जो कि प्रसेनजित् के पास था गोविन्द ने अपनी इच्छा की थी किन्तु उसे दे प्राप्त न कर सके थे और भक्त ने भी उसे नहीं दिया था ॥२५॥ किसी समय में वह प्रसेनजित् उस स्यमन्तक मणि से भूपित होकर मृगया (शिकार) के लिये चला गया था । उस स्यमन्तक के लिये एक वनेचर सिंह से वध को प्राप्त हो गया था ॥२६॥ इसके अनन्तर प्रसेनजित् को मार कर सिंह जब स्यमन्तक लेकर दौड़ रहा था तो महान् बलवान् ऋक्षराज जामवन्त ने उस सिंह को पकड़ कर मार डाला था और उस मणिरत्न को लेकर वह जाम्बवान् अपनी गुफा प्रवेश कर गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर ममस्त वृष्णि-अन्धक गण प्रसेन के वध का कारण थीवृष्ण के विषय में शङ्का करने लग गये थे क्योंकि उन्होंने उस मणि के प्राप्त करने की इच्छा प्रार्थना की थी ॥२८॥

स शङ्क्यमानो धम्मर्त्तिमा अकारी तस्य कम्मणः ।

आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं गयी ॥२६

यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।

प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥२७

ऋक्षधन्त गिरिवर विन्ध्यं च गिरिमुत्तम ।

अन्वेपयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥२८

साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् ।

अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥२९

ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु सूचितः ।

पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३०

स हि ऋक्षविले बाष्पी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।

धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥

क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ॥३४

यह भगवान् श्रीकृष्ण पर इस प्रकार से क्षणित किये गये थे जिन्होंने उस कम को बिल्कुल नहीं किया था तब उन्होंने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उस मणि को कहीं से भी खोज कर ला दूंगा और फिर वे घर्मात्मा वन में चले गये थे ॥२६॥ जहाँ पर प्रसेनजित् ने मृगया की थी मा मृगया के लिये विचरण किया था वहाँ पर प्रसेनजित् के चरणों के पिट्टों को आसकारी पुरुषों के द्वारा ग्रहण करके वे धागे बढते गये थे और उस उत्तम ऋक्षराज से युक्त विन्ध्य पर्वत को छोड़ते हुए पूर्णतया परिश्रान्त महामना श्रीकृष्ण ने देखा था ॥२८-३०॥ उन्होंने वहाँ पर अश्व के सहित भरे हुए प्रसेन को तो देखा था किन्तु उस स्वयन्तक मणि को नहीं प्राप्त किया था । इसके पश्चात् भूत प्रसेन के शरीर के समीप में ही रीछ के द्वारा हनन किये हुए सिंह को भी देखा था क्योंकि चरणों के चिह्नों से वह रीछ सूचित हो रहा था । फिर माधव प्रभु उस रीछ के चरण चिह्नों के पीछे चलकर उस रीछ की गुफा पर पहुँच गये थे ॥३१-३३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उस रीछ के वित्त में किसी प्रमदा के द्वारा कही हुई बाष्पी का श्रवण किया था । हे द्विजः

मणि । वह बाणी एक धात्री (घाय) के द्वारा कही गयी थी जो कि जाम्बवान् के गुत को लेकर उठी मणि के द्वारा खिला रही थी और 'मत्त रोमी' यह उससे कह रही थी ॥३४॥

सिंह प्रसेनमयधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।

सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३५॥

न्यातिस्तस्य शब्दस्य तूणगेव विले ययौ ॥

प्रविश्य तत्र भगवास्तदक्षविलमञ्जसा ॥३६॥

स्थापयित्वा विलद्वारे यदूलाङ्गलिना सह ।

शाङ्गधन्या विलस्य तु जाम्बवन्त ददर्श स ॥३७॥

युयुधे दाह्यदेवस्तु विले जाम्बवता सह ।

वासुध्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३८॥

प्रविष्टेऽथ विले कृष्णे वसदेवपुरःसराः ।

पुरी द्वारवतीमेत्य हत कृष्ण न्यवेदयन् ॥३९॥

वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।

क्षेमे जाम्बवतीं नन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४०॥

मणि स्यमन्तक चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।

अनुनीयक्षराजं तु निययौ च ततो विलात् ॥४१॥

उपायाद्द्वारवा कृष्ण सविनीतं पुरःसरं ।

एव स मणिराहृत्य विशोष्पात्मानमन्युत ॥४२॥

धात्री ने कहा—सिंह ने तो प्रसेन वा वध कर दिया था और उस सिंह को जाम्बवान् ने मार डाला है । अब हे कुमार ! मन स्थान करो । यह स्यमन्तक मणि अब तो तयी ही है ॥३५॥ उसके शब्दों के स्पर्शात् अभिव्यक्त हो जाने से धीरुष्ण वुरन्त ही रीछ की गुफा में अन्दर चले गये थे । शीघ्र भगवान् ने उस रीछ के विल को प्रवेग कर प्राप्त कर लिया था । इसके पूर्व उनने उस गुफा के द्वार पर साङ्गती (श्री बतराम) के साथ मादवी को स्थापित करके छोड़ गये थे । शाङ्गधनुष के धारी धीरुष्ण ने विल के अन्दर स्थित जाम्बवान् रीछ को देखा था ॥३६-३७॥ उस विल में भगवान् वासुदेव जी ने उस रीछ के राजा जाम्बवान् के

साथ युद्ध किया था । श्री गोविन्द ने इक्कीस दिन तक बाहुओं से ही युद्ध किया था ॥३८॥ श्री बलदेव जिनमें प्रमुख थे वे सब गुफा के द्वार पर स्थित यादव गण श्रीकृष्ण के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर वापिस द्वारकापुरी में लौटकर आ गये थे और उन्होंने यह कह दिया था श्रीकृष्ण तो निहत हो गये हैं ॥ १॥ उधर भगवान् वासुदेव ने भी महाबली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की सम्भल जाम्बवती कन्या को प्राप्त कर लिया था ॥४०॥ अपनी विशुद्धि के लिये उस स्यमन्तक मणि को भी ग्रहण कर लिया था और रीछों के राजा का अनुनय करके फिर उस बिल से निकलकर आ गये थे ॥४१॥ फिर विनयी पुरोगामियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में आकर प्राप्त हो गये थे । इस तरह भगवान् अच्युत ने उस मणि का आहरण करके अपने ऊपर सगे कलङ्क का परितोषन किया था ॥४२॥

ददौ सत्राजिते त वै सव्यसात्वतससदि ।

एव मिथ्याभिषस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४३॥

आत्मा विशोषितः पापाद्वि नजित्य स्यमन्तकम् ।

सत्राजितो दश त्वासन् भार्यास्तासा शत सुता. ॥४४॥

ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेपाभङ्गकारस्तु पूर्वजः ।

धीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४५॥

कुमार्यश्चापि तिलो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमा. ।

रात्यभामोत्तमा तासा व्रतिनी च दृढव्रता ॥४६॥

तथा प्रस्वापिनो चैव भार्या कृष्णाय ता ददौ ।

सभार्या भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ ॥४७॥

जज्ञाते गुणसम्पन्नो विश्रुतो रूपसम्पदा ।

माद्र्या पुनोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४८॥

जज्ञाते तनयो वृष्णो श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।

श्वफल्क. काशिराजस्य सुता भार्यामिविन्दत ॥४९॥

समस्त सात्वतो की सभा में उस स्यमन्तक मणि को श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को दे दिया था । इस प्रकार से अमित्रघाती और मिथ्या ही

कस्तक सगाये गये श्रीकृष्ण ने स्यमन्त को जीतकर अपनी आत्मा को विशोधित किया था । इस सञ्जावित् न दश भार्याएँ थी और उन सबसे सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥४३-४४॥ उन सब में तीन ज्योति प्राप्त कर लेने वाले हुए थे और भृङ्गकार उन सब में ज्येष्ठ था । दूसरे नीर वात-पति और वसुमेध थे ॥४५॥ हे द्विजोत्तमा ! उसके तीन कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जो दिव्याम्बो में परम प्रसिद्ध थीं । उनमें श्री सत्यभामा अत्युत्तम-व्रतिनी और रूढव्रत वाली थी ॥४६॥ तथा प्रस्थापिनी थी । क सब श्रीकृष्ण के लिये भार्याओं के रूप में समर्पित कर दी थी । सभार्या भृङ्गकारि और नावेम ये दोनों नरों में उत्तम तथा गुणों से सुसम्पन्न समुत्पन्न हुए थे जो रूप की सम्पत्ति के कारण परम प्रसिद्ध थे । माद्री का पुत्र वृष्णि पुत्र युधाजित् ने जन्म ब्रह्म लिया था ॥४७-४८॥ वृष्णि के वीर्य से श्वक्ल्व और चित्रक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । श्वक्ल्व ने क्राशिराज की सुता को अपनी भार्या बनाया था ॥४९॥

गान्दिनी नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता ।

तस्या जज्ञे महाबाहु श्रुतवानतिथिप्रिय ॥५०॥

अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिण ।

उपमद्गुस्तथा । मद्गुम्मुदरश्चारिमदन ॥५१॥

आरिक्षेपस्तथोपेक्ष शत्रुहा चारिमेजय ।

धम्मभृञ्चापि धर्म्मा च गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥५२॥

आवाहप्रतिवाही च सुन्दरो च वराङ्गना ॥५३॥

विश्रुताश्वस्य महिषी च या चाम्य वसुन्धरा ॥५४॥

रूपयौवनसम्पन्ना राध्वसत्त्वगोहरा ।

अत्र रेणोग्रसेनाया सुतो वै पुत्तनन्दनो ॥५५॥

वसुदेवश्चोपदमश्च जनारो देववच्चतो ।

चित्रवस्याभवन् पुत्रा पृथुत्विपृथुरेय च ॥५६॥

उसका नाम गान्दिनी था और उसका पिता सदा गीधों का दान दिया करता था उस भार्या के गर्भ से महाबाहु-अतिविद्यों पर प्यार करने वाला श्रुतवान् समुत्पन्न हुआ था ॥५०॥ महाद्भाग जाता और विपुल

दक्षिणा देने वाले अक्रूर ने जन्म ग्रहण किया था । उपमद्गु-मद्गु-मुदर-
अरिमदन अरिक्षेप-उपेक्ष-शत्रुहा-अरिमेजय-धर्मभृत्-धर्मा-शृङ्गभोजान्धक-
आषाह-प्रतिषाह और बराङ्गना सुन्दरी ने जन्म लिया था ॥५१-५३॥
विश्रुताश्व घो महिषी और इसकी कन्या वसुधरा थी ॥५४॥ यह रूप
एव यौवन से युक्त तथा समस्त प्राणियों में मनोहर थी । अक्रूर ने उग्र-
सेना भार्या में कुल के नन्दित करने वाले देवों के समान बर्चस वाले दो
पुत्रों को समुत्पन्न किया था । चिक्क के पृष्ठ और विपृष्ठ पुत्र हुए थे
॥५५-५६॥

अश्वघोषोऽश्वबाहुश्च सुपाश्वकगवेषणौ ।
अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभृदेव च ॥५७॥
सुबाहुर्वहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रदणो स्त्रियौ ।
इमा मिथ्याभिषास्ति यः कृष्णस्य समुदाहृतम् ॥५८॥
वैव मिथ्याभिषापास्त न स्पृशन्ति फदचिन ॥५९॥

अश्वघोष-अश्वबाहु-सुपाश्वक-गवेषण-अरिष्टनेमि सुता-धर्मभृत् और
धर्म सुबाहु-बहुबाहु तथा श्रविष्ठा और श्रदणो दो स्त्रियाँ समुत्पन्न हुए
थे । इस मिथ्या अभिषास्ति को जो कोई मनुष्य श्रीकृष्ण के विषय में
कही मयी थी जानता है उस पुरुष को कभी भी मिथ्याभिषाप स्पर्श
नहीं किया करते हैं ॥५७-५९॥

—३—

१४—स्यमन्तक उपाख्यान वर्णन

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
वेदावहारयद्बभ्रुर्मोजिन शतघन्बना ॥१॥
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।
अक्र रोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥२॥

सन्नाजित ततो हत्वा शतघन्वा महाबल ।
 रानी त मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३॥
 अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम् ।
 समय कारयान्धके नावेद्योऽह त्वयेत्युत ॥४॥
 वयमभ्युत्प्रपत्स्याम कृष्णेन त्वा प्रघर्षितम् ।
 ममाद्य द्वारका सर्वा वसे तिष्ठत्यसशयम् ॥५॥
 हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी ।
 प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥६॥
 सत्यभामा तु तद्वृत्त भोजस्य शतघन्वन ।
 भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्तयत् ॥७॥

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—श्री कृष्णभगवान् ने जो स्यमन्तक मणिरत्न सन्नाजित् को दी थी उसको वञ्च भोज शतघन्वा ने आहूत कर लिया था ॥१॥ अक्रूर अन्तर का अन्वेषण करते हुए सदा अनिन्वित सत्यभामा की और स्यमन्तक मणि की प्रार्थना किया करते थे ॥२॥ इसके उपरान्त महाबली शतघन्वा ने सन्नाजित् का हनन करके रात्रि में ही उस मणि स्यमन्तक को नाकर अक्रूर को देवी थी । और यह समझीता करा लिया था कि आप मेरा नाम किसी को भी न बतायें ॥३-४॥ हम इस बात को अभ्युत्पन्न करेंगे कि कृष्ण के द्वारा आपको प्रघर्षित किया गया है । आज सम्पूर्ण द्वारका निश्चय ही मेरे वश में स्थित है ॥५॥ मनस्विनी सत्यभामा अपने पिता के मृत हो जाने पर बहुत ही दुःख आर्त्त हो गयी थी । वह सत्यभामा रथ में समावृद्ध होकर वारणावत नगर की चली गयी थी ॥६॥ सत्यभामा ने उस भोज शतघन्वा के वृत्त को भर्ता से निवेदन करके अत्यन्त दुःखार्त्त होकर पार्श्व में स्थिति होती हुई अपने नेत्रों से अधुपात कर रही थी ॥७॥

पाण्डवाना च दग्धाना हरि वृत्त्वोदकक्रियाम् ।
 कुत्सार्थं चापि पाण्डूना न्ययोजयत् सात्यकिम् ॥८॥
 ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुमूदन ।
 पूर्वज हलिन श्रीमानिद वचनमब्रवीत् ॥९॥

हृतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।
 स्वयमन्तकस्तु मदगामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
 तदारोह रथं क्षीघ्रं भोजं हत्वा महारथम् ।
 स्वयमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११॥
 ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुज भोजकृष्णयोः ।
 शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्वतोदिशर्मक्षत ॥१२॥
 सरद्धौ राघुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनी ।
 शक्तोऽपि शापाद्धादिकथमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३॥
 अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे मयावितः ।
 योजनानां शतं साधं हृदया प्रत्यपद्यतः ॥१४॥

श्री हरि ने दण्ड हुए पाँखों की उदक क्रिया करके पाण्डुओं के पुत्रपार्श्व में सत्यकि को नियोजित कर दिया था ॥१०॥ इसके अनन्तर श्रीमधुसूदन क्षीघ्र ही द्वारकापुरी में समागत हो गये थे और श्रीमाद श्रीकृष्ण ने अपने बड़े भाई हनधारी बलदेवजी ने यह वचन कहा था ॥११॥ श्रीकृष्ण ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार डाला था और शतधन्वा ने सत्राजित् का हनन कर दिया है । हे प्रभो ! अब वह स्वयमन्तक मणि मेरे पास आनी चाहिए क्योंकि मैं ही उस मणि का स्वामी हूँ ॥१२॥ अतएव हे महाबाहो ! अति क्षीघ्र रूप रथ पर समावृद्ध हो जाइये और उस महारथी भोज का हनन करके उस स्वयमन्तक को लाए । वह स्वयमन्तक मणि तभी हमारी हो जायगी ॥१३॥ श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—इसके अनन्तर भोज और श्रीकृष्ण का गहात् घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया था । इसके पश्चात् शतधन्वा ने सभी दिशाओं में अक्रूर बने देखा था ॥१४॥ वहाँ पर भोज और जनार्दन इन दोनों को सरद्ध देखकर शक्त होते हुए भी अक्रूर ने दाय से अपने हृदय की घात नहीं गही थी ॥१५॥ इसके पश्चात् भय से भीत होकर भोज ने यहाँ से अपयान करने का विचार किया था और उसको हृदया ने देढ़ सौ योजन दूर पहुँचा दिया था ॥१६॥

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
 भोजस्य बडवा विप्रा ययौ कृष्णमयोधयत् ॥१५॥
 क्षीणा जवेन हृदयामध्वन शतयोजने ॥
 दृष्ट्वा रथस्य स्वा वृद्धि शतघन्वानमर्हयत् ॥१६॥
 ततस्तस्या हतायास्तु श्रमान् खेदाच्च भो द्विजा ।
 क्षमुत्पेतुरथ प्राणा कृष्णो राममद्याव्रवोत् ॥१७॥
 तिष्ठेह त्व महाबाहो दृष्टदोषा हता मया ।
 पद्म्या गत्वा हरिष्यामि मणिरत्न स्पमन्तकम् ॥१८॥
 पद्म्यामेव ततो गत्वा शतघन्वानमभ्युत ।
 मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९॥
 स्पमन्तक च नापश्यद्वत्वा भोज महाबलम् ।
 निवृत्त बाधवोत् कृष्ण मणि देहीति लज्जली ॥२०॥
 नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रथान्वित ।
 धिक्शब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥२१॥

हृदया भोज की एक घोड़ी थी । हे विप्रो ! वह हृदया एक सौ योजन तक गमन करने वाली प्रसिद्ध थी । वह दूर चला गया और उसने श्रीकृष्ण से युद्ध किया था ॥१५॥ जब सौ योजन मार्ग के चलने से वह हृदया घोड़ी बेम से क्षीण हो गयी थी । ऐसी उसको क्षीण देखकर और अपने रथ की वृद्धि को देखकर श्रीकृष्ण ने शतघन्वा को अर्पित किया था ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रम धीरे खेद से निहित उसके प्राण आकाश में उत्पतित हो गये थे । तब श्रीकृष्ण वसुदेवजी से कहने लगे ॥१७॥ हे महाबाहुभो बाले ! आप यहाँ पर ही ठहरिये । दोष के देखे जाने वाली यह बडवा मैंने मार डाली है । अब परो से चलकर ही मैं उस मणि रत्न स्पमन्तक का हरण कर लूँगा ॥१८॥ इसके अनन्तर परम अस्त्रों के ज्ञाता अभ्युत न विप्रगण हे ! परो से ही चलकर मिथिला के समीप में उस शतघन्वा का हनन कर दिया था ॥१९॥ उस महान् बलवान् भोज को मार कर भी उसने पास उस स्पमन्तक मणि को नहीं देखा था । जब श्रीकृष्ण उस मार कर भागित लीं तो

बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा था—उस स्यमन्तक मणि को हमको दे दो ॥२०॥ श्रीकृष्ण ने बलदेवजी को यही उत्तर दिया था कि वह मणि तो उसके पास नहीं मिली है । सब तो बलदेवजी बहुत क्रोधित हो गये थे और वे बारम्बार चिक्कार रहे ऐसे शब्द श्री कृष्ण से उन्होंने कहे थे ॥२१॥

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ।
 कृत्यन् मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥
 प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ।
 सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
 एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुमंतिमता वरः ।
 नानारूपान् क्रतून् सर्व्वनाजहार निरर्गलान् ॥२४॥
 दीक्षामय स कवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
 स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशः ॥२५॥
 अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च ।
 पष्टि वर्षाणि धर्म्ममात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
 अकूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
 बह्वैर्ब्रह्मक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
 अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः ।
 गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८॥

मैं भाई होने के कारण से ही इस बात को सहन कर रहा हूँ, अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो अब यहाँ से जाता हूँ । मुझे अब द्वारकापुरी से, तुमसे और वृष्णियों से कुछ कार्य नहीं है ॥२२॥ इसके अनन्तर धर्मियो के मर्दन करने वाले बलरामजी ने मिथिला में प्रवेश किया था और वहाँ पर सम्पूर्ण अभीष्ट उपाहारों के द्वारा मिथिल ने उनका अभिपूजन किया था ॥२३॥ इसी बीच में मतिमानों में परमश्रेष्ठ बभ्रु ने समस्त अनेक रूपों वाले निरर्गल क्रतुओं को किया था ॥२४॥ उस परम प्राज्ञ महायशस्वी गान्दी पुत्र ने स्यमन्तक लिये दीक्षामय कवच तथा रक्षार्थं प्रवेश किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर अन्य रत्नों को और

अनेक घना को साठ वष पर्यंत उस धर्मात्मा ने यज्ञो में ही नियोजित किया था ॥२॥ उस महात्मा के वे यज्ञ अक्रूर यज्ञ हैं ऐसे ही विख्यात हुए थे । वे सभी यज्ञ बहुत अन्न और दक्षिणा वाले थे तथा सब काम नाओं के प्रदान करने वाले भी थे ॥२७॥ इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर परम दिव्य गदा चलाते श्री शिक्षा श्रीवलदेवजी से ग्रहण की थी ॥२८॥

सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथं ।

आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥

अक्रूरश्चान्धकं साह्य मायात पुरुषपथ ।

हत्वा सन्नाजित सुप्त सहवन्धु महाबल ॥३०॥

ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवास्तदा ।

अपयाते तदाक्रूरै नावपत्पाकक्षारान् ॥३१॥

अनावृष्ट्यो तदा राष्ट्रमभवद्धुधा कृशम् ।

तत प्रसादयामासुरक्रूर कुकुरान्धका ॥३२॥

पुनर्द्वारवती प्राप्ते तस्मिन् दानपती तत ।

प्रवचप सहस्राक्ष वक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥

कन्या च वासुदेवाय स्वसार शीलसम्मत्ताम् ।

अक्रूर प्रददौ धीमान् प्रीत्यथ मुनिसत्तमा ॥३४॥

अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगत मणिम् ।

सभामध्यगत प्राह तमक्रूर जनाह न ॥३५॥

इसके पश्चात् वृष्णि और अन्धक महारथियों के द्वारा तथा महात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा भनी भानि प्रसन्न करके श्रीवत्सराज को पुनः द्वारका-पुरी में ले आया गया था ॥२९॥ पुराणा में यह अक्रूर अन्धको के साथ आये थे और यह महान् चलवान् सोते हुए सहवन्धु सन्नाजित को हनन करने ही समागत हुए थे । उस समय में ज्ञाति के भेद के भय से श्रीकृष्ण ने उसकी उपसर्ग करदी थी । उस अक्रूर के उस समय में अपयात हो जाने पर पाप सागन (दण्ड देव) ने वर्षा नहीं की थी ॥३३॥ उस समय में अनावृष्टि हुई और सम्पूर्ण राष्ट्र यद्धुधा शून्य हो गया था ।

तब तो कुकुरान्धको ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ॥३२॥ उस दानपति के पुन द्वारका में प्राप्त होकर पर इन्द्रदेव ने वर्षा की थी और उन समय में जल निधि के कक्ष में वर्षा हुई थी ॥३॥ हे मुनि सत्तर्गो ! उस बुद्धिमान अक्रूर ने प्रीति के लिये शील से सम्मत अपनी बहिन को वासुदेव के लिये समर्पित की थी ॥३४॥ इसके उपरांत श्रीकृष्ण न योग के द्वारा वभ्रु के पास रहने वाली मणि का ज्ञान प्राप्त करके सभा के मध्य में स्थित होकर जनार्दन ने उस अक्रूर से कहा था ॥३५॥

यत्तद्वत्न मणिवर तव हस्तगत विभो ।

तत्प्रयच्छ च मानार्हं मयि मानार्थ्यक कृया ॥३६॥

पष्टिषर्पंगते काले यो रोपोऽभून्ममानथ ।

स सहोऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्पयो महान् ॥३७॥

स ततः कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतससदि ।

प्रददौ त मणि वभ्रुरक्लेशेन महामति ॥३८॥

ततस्तमार्जवात् प्राप्त वभ्रोर्हस्तादरिन्दम ।

ददौ हृष्टमना कृष्णस्त मणि वभ्रवे पुन ॥३९॥

स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्त मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

आवध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजाशु मानित ॥४०॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—हे प्रभो ! जो मणियो में परम श्रेष्ठ रत्नवर है वह तुम्हारे हस्तगत है । हे मनाह ! उसको आप दे दीजिए और मेरे प्रति अनाथ कृत्य मत करिए ॥ ६॥ हे अनाथ ! साठ वर्ष के बाल के व्यतीत होने पर जो रोप मुझे हुआ था वह बारम्बार सख्त हो गया है और सबसे बहुत नास वा अत्यय हो चुका है ॥७॥ हमने पश्चात् समस्त शात्वतो की सभा में श्रीकृष्ण के इस वचनो से महान् मतिमान वभ्रु ने दिना ही किसी गले के उस मणि को दे दिया था ॥८॥ इसने अनन्तर अरियो के दमन करने वाले श्रीकृष्ण ने सरलता ने साथ उस वभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को श्रीकृष्ण ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुन वभ्रु को प्रदान कर दी थी । उस

शान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से सम्प्राप्त हुई उस भणि स्वमन्त्रक को बांधकर बद्ध अशुमान की तरह सुशोभित हो गया था ॥३६-४०॥

१५—भूभुव स्वरादिलोकवर्णन

कथितं भवता सर्व्वमस्माकं सकलं तथा ।
 भुवर्ल्लोकादिकांस्लाकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥
 तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
 समाचक्ष्व महाभाग यथावत्लोकहर्षण ॥२॥
 रविचन्द्रमसोर्वाविन्मयूखैरवभास्यते ।
 ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
 यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला ।
 नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४॥
 भूमेर्योजनलक्षे तु सीरं विप्रास्तु मण्डलम् ।
 लक्षे दिवाकराद्यापि मण्डलं क्षणिनं स्थितम् ॥५॥
 पूर्व्वं शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
 नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते ॥६॥
 द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
 तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्स्युक्षानां स्थितं ॥७॥

मुनिगण न ब्रह्मा—ह श्री लोमहर्षण जी ! आपने हमारे सामने सभी कुछ सम्पूर्ण वर्णित करके बता दिया है । अब हम लोग भुवर्ल्लोकादिक समस्त लोकों को श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । उसी भांति ग्रहों का संस्थान तथा उनके प्रमाण जो भी जिस भांति हैं वे महाभाग ! आप इस समय मेरी २ वणन कीजिए ॥१-२॥ श्री लोमहर्षण जी ने ब्रह्मा—मूय और चन्द्रमा की विरणा से जितना भाग अवभासित हुआ बताया है जिसमें समुद्र पर्वत और नदियाँ भी हैं उतनी ही

यह पृथिवी कही गयी है ॥३॥ विस्तार के परिमण्डल वाली जितने प्रमाण से युक्त यह पृथिवी है नभ भी उतने प्रमाण से संयुक्त विस्तार परिमण्डल वाला होता है ॥४॥ हे विप्रगण ! भूमि के एक लक्ष योजन में सौर मण्डल है । उस दिवाकर से भी लक्ष योजन में चन्द्र का मंडल स्थित होता है ॥५॥ निशाकर से एक सौ सहस्र योजनों के पूर्व में ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित हुआ करता है ॥६॥ हे विप्रो ! इस नक्षत्र मण्डल से दो लक्ष योजन उत्तर में बुध है । इस बुध के उतने ही प्रमाण भाग में शुक्र स्थित रहा करता है ॥७॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणो व्यवस्थितः ।

लक्षद्वयेन भूमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥८॥

सौरिवृहस्पतेरुद्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।

सप्तपिमण्डलं, तम्माल्लक्षमेक द्विजोत्तमाः ॥९॥

ऋषिम्यस्तु सहस्राणां शतादूद्ध्वं व्यवस्थितः ।

मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥१०॥

अं लोकायमेतत् कथित सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।

इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११॥

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।

एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥१२॥

द्वे कोट्यौ तु जना लोको यत्र ते ब्रह्माणः सुताः ।

सप्तदनाद्याः कथिता विप्राश्रामलचेतसः ॥१३॥

चतुर्गुणोत्तर ओद्ध्वं जनलोकास्तपः स्मृतम् ।

वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्जिताः ॥१४॥

अङ्गारव (मङ्गल) भी उतने ही प्रमाण की शुक्र की दूरी पर व्यवस्थित रहा करता है । भूमि के दो लाख योजन की दूरी पर देवों के पुरोहित (वृहस्पति) स्थित रहा करते हैं ॥८॥ सौरि अर्थात् सूर्यदेव के पुत्र शनि वृहस्पति भी भी ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर अवस्थित रहा करता है । हे द्विजोत्तमो ! गणपियो या मण्डल जग शनि से एक लक्ष योजन के पारंगत पर रहा करता है । जो ऋषियों के एक सौ सहस्र

यह सम्पूर्ण अण्डकटाह के द्वारा तिरछा ऊपर नीचे जिस प्रकार से कपित्थ का बीज होता है उसी भाँति सब ओर से समावृत्त होता है ॥२२॥ हे द्विजगण ! यह दशोत्तर पथ से आण्ड आवृत्त होता है । यह अम्बु परिवार वाला होता है और वह्नि से वेष्टित हुआ करता है ॥२३॥ वह वह्नि वायु से आवृत्त होता है तथा हे द्विजगण ! वह वायु नभ से समावृत्त है । हे मुनिगण ! वह नभ भी महत् से आवृत्त होता है अर्थात् महत् तत्त्व उसके सब ओर परिवेष्टित होकर रहता है ॥२४॥ इन समस्त दशोत्तर हे विप्रो ! ये सात हैं उन सबको और महत्तत्त्व को समावृत्त करके प्रधान समवस्थित रहा करता है ॥२५॥ यह अनन्त है और उसकी कोई रक्ष्या भी नहीं है । क्योंकि वह प्रमाण से भी अनन्त और असंख्यात है । यह सम्पूर्ण का हेतुभूत है हे द्विजो ! वह परा प्रकृति है । जिसका अन्त होता है उन अन्तों के सहस्रो और सहस्रो अयुत होते हैं ॥२६ २७॥ इस तरह रहने वाले वहाँ सत्तडो करोडो के भी करोड हैं । जिस तरह से काष्ठ में अग्नि और तिलो में तैल रहा करता है ठीक उसी भाँति यहाँ पर गुमान् रहते हैं ॥२८॥

प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन ।
 प्रधानञ्च पुमाश्चैव सव्यभूतानुभूतया ॥२९॥
 विष्णुशक्त्या द्विजश्रष्टा धृती सश्रयधम्मिणो ।
 तयो सैव पृथग्भाव कारण सश्रयस्य च ॥३०॥
 क्षोभकारणभूता च सगकाले द्विजोत्तमा ।
 यथा शैत्य जले वातो विभक्तिं कणिकागतम् ॥३१॥
 जगच्छक्तिस्तथा विष्णो प्रधानपुरुषात्मकम् ।
 यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसमुत्त ॥३२॥
 आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि च तत ।
 प्रभवन्ति ततस्तन्मयो भवन्त्यन्ये परे द्रुमा ॥३३॥
 तऽपि तत्त्वक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजा ।
 एवमव्यावृतात् पूर्वं जायते महदादय ॥३४॥

विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः ।

तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः ॥३१॥

यह प्रधान में अवस्थित-व्यापक और चेतनात्म्य निवेदन वाला है । यह प्रधान और पुमान् समस्त भूतो के द्वारा अनुभव की गयी भगवान् विष्णु की शक्ति से हे द्विज्येष्ठो ! सश्रय धर्मवासे धारण किये गये हैं । उन दोनों के पृथग्भाव में वही सश्रय का कारण होती है ॥२९-३०॥ हे द्विजगण ! और सभं के समय में क्षोभ का कारण भूत होती है । जिस तरह से जल में शीतलता होती है और घात कणिका जल को धारण किया करता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् विष्णु की प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाली इस जगत् की शक्ति हुआ करती है । जिस प्रकार से वृक्ष मूल-शाखा आदि से संयुक्त हुआ करता है ॥३१-३२॥ यह वृक्ष आदि में होने वाले बीज से ही उत्पन्न हुआ करता है और इसके पश्चात् इसमें आगे बढ़ा हो जाने पर वैसे ही अन्य बीज भी हो जाया करते हैं और फिर उन्हीं बीजों से आगे चलकर दूसरे अन्य द्रुमभी समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥३३॥ हे द्विजो ! और वेरी उसी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुमत होते हैं । इसी भाँति अन्यादृत से पूर्व में महदादि समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष इनमें अन्तिम होता है उनसे ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं ॥३५॥

धीजाद्वृक्षप्रराहेण यथा नापचयस्तरोः ।

भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३६॥

सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारण तरोः ।

तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥३७॥

व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा ।

काण्डकोपास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥३८॥

तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।

प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥३९॥

तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनव स्थिता ।
 विष्णुर्धात्ति समासाद्य प्ररोहसुपयान्ति वै ॥४०॥
 स च विष्णु पर ब्रह्मा यत् सव्वभिद जगत् ।
 जगच्च यो यत्र चेद यस्मिन्विलयमेध्यति ॥४१॥
 तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परम पदम् ।
 यस्य सव्वंमभेदेन जगवेतच्चराचरम् ॥४२॥
 स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तस्पी जगच्च स ।
 तस्मिन्नेव लय सव्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥४३॥
 कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्तु ,
 स एव तत् कर्मफलं यस्य यत् ।
 गुणादि यस्माच्च भवेदशेषतो-

हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत् ॥४४॥

जिस प्रकार से बीज से जब वृक्ष का प्ररोह होता है तो तब का अपक्षय नहीं होता है उस प्रकार से भूतो के भूतो का सर्ग होने से अपक्षय नहीं हुआ करता है ॥२६॥ जिस प्रकार से सन्निधान से तब के प्रकाश कालादि कारण होते हैं ठीक उसी भाँति विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण होने हैं ॥२७॥ जिस तरह स प्रीति के बीज में उसका मूल नाश पत्र-मकुर-मण्ड कोप पुष्प-शीर आदि होते हैं उसी भाँति तण्डुल होता है ॥२८॥ तुष और कण होने हुए अपने आपका आविर्भाव किया करते हैं । हे मुनिगण ! जिस समय बीज को सम्पूर्ण प्ररोह होने की सामग्री प्राप्त होती है तभी ऐसा होता है अर्थात् शन शन सभी का प्रादुर्भाव हो जाता करता है ॥२९॥ उसी प्रकार से अनेक नामों में देवान् व तानु स्थित होते हैं । जिस समय ये भगवान् विष्णु की शक्ति उनको प्राप्त हो जाती है तभी ये प्ररोह को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥३०॥ वे भगवान् यो विष्णु ही परब्रह्म है जिनके यह सम्पूर्ण जगत् हुआ करता है । और यह जगत् और सम्पूर्ण विश्व जिनमें जाकर दिसप को प्राप्त हो जाया करता है । तात्पर्य यह है कि उमी भगवान् विष्णु से हम जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी में हमका

विलय भी हो जाया करता है ॥४१॥ वही ब्रह्म परम धाम है और सत् तथा असत् परम पद होता है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अभेद से ही विद्यमान होता है ॥४२॥ वह ही मूल प्रकृति है और वही व्यक्त रूप वाला यह जगत् है । उसी में यह सम्पूर्ण लय को प्राप्त हो जाया करता है तथा उसी में स्थित रहा करता है । तारामय यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् उसी परमब्रह्म भगवान् विष्णु का ही स्वरूप है ॥४३॥ समस्त क्रियाओं का वही कर्ता है—और वही क्रतु स्वरूप है जिसका यजन किया जाता करता है—वही उस कर्म का फल होता है जिससे ये सब युगादि हुआ करते हैं । श्री हरि भगवान् से व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है यह सभी कुछ उसी का स्वरूप होता है ॥४४॥

—:❀:—

१६—ध्रुवसंस्थिति निरूपण ।

तारामयं भगुपतः शिशुमाराकृतिः प्रभोः ॥१॥
 दिवि रूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ।
 तैप भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।
 भ्रमन्तमनु स यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥
 सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहेःसह ।
 वातानीकमयैर्धन्वे वृद्धानि तानि च ॥३॥
 शिशुमाराकृतिं प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषा दिवि ।
 नारायणः पर धाम तस्याधारः स्वयं हृदि ॥४॥
 उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम् ।
 स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥५॥
 आधारः शिशुमारस्य सत्त्वाध्यक्षो जनादर्दनः ।
 ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुव्यवस्थितः ॥६॥

तदाधारं जगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।

येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥७॥

श्रीसोम हर्षण जी ने कहा—उन्ही प्रभु भगवान की यह तारामय शिशुमार आकृति है ॥१॥ दिवनीक में यह उसी श्री हरि का रूप होता है और उसके पुच्छ में ध्रुव की स्थिति है । वही स्वयं भ्रमण करता हुआ चन्द्र तथा आवित्य आदि समस्त ग्रहों को भ्रमण कराया करता है । भ्रमण करते हुए उसी के पीछे चन्द्र की भांति ये सब नक्षत्र गमन किया करते हैं ॥२॥ सूर्य-चन्द्र-तारागण सब ग्रहों के साथ वाता-नीक मय बन्धों के द्वारा ध्रुव में बद्ध होते हैं ॥३॥ दिविलोक में ज्यो-तियों का जो स्वरूप है वह शिशुमार की आकृति कहा गया है । भगवान् नारायण परम धाम है और उसका आधार स्वयं हृदय में होता है ॥४॥ राजा उत्तानपाद का जो पुत्र ध्रुव था उसने उसी प्रजापति की आराधना की थी और वह ध्रुवतारा शिशुमार के पुच्छ में व्यवस्थित रहता है ॥५॥ इस शिशुमार का आधार सबका स्वामी भगवान् जनार्दन होते हैं । यह शिशुमार ध्रुव का तथा उस ध्रुव में मानु व्यवस्थित होता है ॥६॥ उसका आधार वह जगत् है जिसने देव-असुर और मानव सभी विगमान हैं । हे विप्रगण ! जिस विधान से इन सबकी स्थिति होती उसका अब आप सोच सब मुझसे श्रवण करिए ॥७॥

दिवस्वानष्टभिर्मसिर्ग्रसत्यापो रसात्मिकाः ।

वपत्येषु तत्तश्चात्रमक्षदमखिल जगत् ॥८॥

दिवस्वानशुभिस्तीक्ष्णरादाय जगत्तो जलम् ।

सोम पुप्यत्यधेन्दुश्च कायुनाडीमयेदिवि ॥९॥

जलं विक्षिप्यतेऽध्रेषु घूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु ।

न भ्रस्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥१०॥

अग्न्या प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।

संस्कार कालजनित विप्राश्चासाद्य निर्मृताः ॥११॥

सरित्समुद्रा भोमास्तु यथापः प्राणिसम्भवाः ।

चतुष्प्रकारा भयवान्मदन्ते सविता द्विजाः ॥१२॥

आकाशगङ्गासलिलं त्रैधाहृत्य गमस्तिमान् ।

अनभगतमेवोच्यते सद्यः क्षिपति रत्निभिः ॥१३॥

तस्य सस्पर्शनिर्धूतपापपद्मे द्विजोत्तमा ।

न भालि नरक मर्ह्यो दिव्य स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१४॥

यह ईवत्त्वत् (सूर्य) अथ मासो मे जो रसात्मक जल है उसका भ्रमन किया करता है फिर वही इन पर जल की वृष्टि द्वारा अन्न की वर्षा किया करता है और उगी अन्न से यह सम्पूर्ण जयन निर्मित हुआ करता है ॥१०॥ ईवत्स्यान अपनी परम तीक्ष्ण किरणों के द्वारा जगत के जल को ग्रहण करा लिया करता है । यह सोम को पृष्ठ किया करता है और यह इन्दुवायुनादौ मय दियलोक में रहता है ॥११॥ धूम-अग्नि और अनिल भूति वाले मेघों के जलों के द्वारा विक्षिप्यमाण किया जाता है जिस कारण से उनसे अन्न जलों को नहीं गिराया करते हैं ॥१२॥ इनमें वर्तमान रहने वाले जल जब वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं सभी नीचे गिरा करते हैं । हे विप्रयणो ! बालजनित सत्त्वान्न भो प्राप्त करने के निर्मल हो पाते हैं ॥१३॥ हे द्विजगणो ! भगवन् सविता पार प्रकार के जलों का आदान दिया करते हैं—सरिता-समुद्र-भूमि पर होने वाले और प्राणियों से समुत्पन्न जल हैं ॥१२॥ अभोस्तिमान् (सूर्य) उसी भाँति आकाश गङ्गा के जल का आहरण करके उस अनभगत को ही मृत्ता अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी पर क्षिप्त कर दिया करते हैं ॥१३॥ हे द्विजोत्तमो ! उमने अली-भाँति स्वर्ण होने से जिसके पानों का बीच धुल गया है वह मगुप्ता फिर गरवने में कभी भी समन नहीं किया करता है क्योंकि वह परम दिव्य स्नान बताया जाता है ॥१४॥

दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यर्धं विना दिवः ।

आकाशगङ्गासलिलतद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१५॥

वृत्तिनादिषु श्लेषेषु विपमेष्वम्बु यद्विदवः ।

दृष्ट्वाकं पणितं जय तद्गाङ्गां दिग्गजोद्धृतम् ॥१६॥

शुग्मर्सेषु तु यत्तोय पतत्यर्कोद्धृतं दिव ।
 तत्सूर्य्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥१७॥
 उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजा ।
 आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजात्तमा ॥१८॥
 यस्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारितं प्राणिनां द्विजाः ।
 पुष्पात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि नत् ॥१९॥
 तेन वृद्धिं परा नीतः सकलश्चोपधीगण ।
 साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥
 तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः
 कुर्व्वन्तेऽहरहृश्च देवानामप्यायन्ति ते ॥२०॥

जिसने सूर्य का दर्शन न प्राप्त किया है वह जल बिना ही मेघों के
 देवलोक से गिरा करता है । वह आकाश गङ्गा का जल है जो रश्मि
 की किरणों के द्वारा प्रक्षिप्त हुआ करता है ॥१७॥ कृत्तिका आदि
 ऋषी मे विषमो मे जो जलदिव से अक की देखकर पतित होता है
 तकी दिग्गजों के द्वारा उद्धृत गाङ्गाजल ही समझना चाहिए ॥१८॥
 एम नक्षत्रों मे जो जल दिवसोक से सूर्य के द्वारा उद्धृत नीचे गिरा
 करता है वह सूर्य की किरणों के द्वारा तुरन्त ही ग्रहण कर निरस्त हो
 जाता करता है ॥१९॥ हे द्विजो ! यह दोनों प्रकार का जल मनुष्यों
 के लिये परम पुण्यमय होता है । और पापों का हरण करने वाला हुआ
 करता है । हे द्विजो ! आकाश गङ्गा का जो जल होता है वह परम
 देव्य स्नान बताया गया है । इस जल का बहुत बड़ा महत्व है ॥२०॥
 द्विजगण ! जो मेघों के द्वारा जल छोड़ा जाता करता है वह प्राणियों
 की सब ओपधियों का पोषण किया करता है और वह जीवन के लिये अमृत
 हुआ करता है ॥२१॥ इससे सम्पूर्ण ओपधियों का समुदाय परमाधिक
 वृद्धि को प्राप्त हो गया था तथा प्रजाजनों का फल पश्वान्त साधक हो
 जाता है ॥२२॥ उससे शास्त्रों के वक्षुओं वाले अर्थात् शास्त्रों के द्वारा
 अपना कर्तव्य मार्ग निर्णय करने वाले मनुष्य आये दिन यथा वक्षित

यज्ञो को मिया करते हैं और वे देवों को आर्घ्यापन करते रहते हैं ॥२१॥

*

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णोश्च द्विजपूर्व्वकाः

सर्व्वदेवनिष्कायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२॥

वृष्ट्या धृतिमिदं सर्व्व जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥

सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥९॥

आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः ॥

ध्रुवस्य शिशुमारोऽसी सोऽपि नारायणाश्रयः ॥

हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ॥

विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५॥

एव मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ॥

भूतमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुञ्छथ ॥२६॥

इस प्रकार से यज्ञ-वेद-द्विज जिनमें प्रमुख हैं ऐसे वर्णों तथा सब देवों के निष्काय और पशुभूतगण वृष्टि के ही द्वारा यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत धारण किया गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! वह वृष्टि भी सवित्रा के ही निष्पादित की जाया करती है ॥२२॥२३॥ हे मुनिवरोत्तमो ! उस वृष्टि के वर्त्ता सवित्त का आधारभूत ध्रुव है । उस ध्रुव का आधार यह शिशुमाररक्त होता है और वह शिशुमार भगवान् नारायण का आश्रित है ॥२४॥ उस शिशुमार के हृदय में नारायण संस्थित रहता करते हैं । वे भगवान् नारायण समस्त भूतों के विशेष धारण करने वाले आदिभूत एव सनातन है ॥२५॥ इस प्रकार से हे मुनिगणो ! मैंने भूमि और समुद्र आदि से युक्त यह पूर्ण ब्रह्माण्ड वर्णित कर दिया है अब आप लोग यह बताओ कि अन्त क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥२६॥

१७—सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णन ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतेनानि च ।
 वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतु नो वर्तते मनः ॥१॥
 यस्य हस्तो च पादौ च मनश्च व सुसप्तम् ।
 विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
 मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,
 वार्त्ता तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
 एतानि तीर्थानि शरीरजानि,
 स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
 चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति ।
 शतशोऽपि जलैर्घातं सुराभाण्डमिवाशुचि ।
 न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ॥
 दृष्टाशयं दण्डवत्पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
 इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र मनः करोन्नरः ।
 तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
 तस्माच्छृणुष्व कथयामि तीर्थान्यायतनानि च ।
 सक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा पृथिव्यां यानि कानि वै ॥७॥

मुनिगण ने कहा—हे धर्म के ज्ञाता ! इस सूचकाल में जो भी तीर्थ
 तथा परम पुण्यस्थल स्थल हैं उनका जब आप वर्णन करने के योग्य हैं
 क्योंकि हमारा मन उनके श्रवण करने का बहुत इच्छुक है ॥१॥ श्री
 सोमहर्षण मुनि ने कहा—सभी तीर्थ फल देने वाले होते हैं—इसमें कुछ भी
 सन्देह नहीं है किन्तु जिस मनुष्य के हाथ-पैर और मन सुसप्त हुआ
 करते हैं तथा जिसमें विद्या-तप और भीति विद्यमान होते हैं वही
 मनुष्य तीर्थों के फल का उपभोग किया करता है । तीर्थों के फल
 जाने के लिये सुसप्त होने की परमावश्यकता है ॥२॥ पुरुष का विशुद्ध
 मन ही एक महान् तीर्थ है । मनुष्य की याणी का निग्रह और सब

इन्द्रियो का निग्रह रखना ये भी मानव के शरीर में ही रहने वाले तीर्थ होते हैं तथा ये स्वर्ग के मार्ग को बतला देने वाले होते हैं ॥३॥ अन्तर शरीर में रहने वाला चित्त ही यदि बुद्ध है अर्थात् अनेक दोषों से मुक्त है तो वह तीर्थों के स्नान करने से कभी भी शुद्ध नहीं हुआ करता है । जिस तरह से सैकड़ों बार जल से धोया हुआ भी घुरा का पात्र अशुचि ही रहा करता है और कभी भी शुद्ध एवं पवित्र नहीं हो सकता है वैसे ही दोष युक्त मन वाला मनुष्य तीर्थों के स्नान से कभी पवित्र नहीं होता है ॥४॥ जिस पुरुष की दूषित भावनाएँ होती हैं जो दण्ड में रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अधिजित होती हैं उस मनुष्य को तीर्थ-दान-व्रत और आश्रम कभी भी विशुद्ध नहीं कर सकते हैं । अपनी इन्द्रियो को घास में करके मनुष्य जहाँ २ पर भी निवास किया करता है वहाँ २ पर ही कुक्षेत्र प्रयाग और पुष्कर हो जाया करता है । शुद्धि के लिये अपनी इन्द्रियो का हनन करना परमावश्यक होता है ॥५-६॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! इसलिये क्योंकि आप लोग तीर्थों के शुभ नाम जानना चाहते हैं मैं तीर्थों तथा पुण्य स्थलों को संक्षेप के साथ बतलाऊँगा । आप लोग श्रवण करिये जो भी इस पृथिवी पर विद्यमान हैं ॥७॥

विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ।
प्रथमं पुष्कर तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
प्रयागश्च प्रवक्ष्यामि घर्मरारण्यं द्विजोत्तमाः ।
धेनुकं चम्पकारण्यं सौन्धवारण्यमेव च ॥९॥
पुण्यश्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च ।
गया प्रभास श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा ॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं कुशस्थलीम् ।
लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ॥११॥
महाबलं कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा ।
रूपतीर्थं सूकरवं चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२॥

योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं तथा ।

तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥

सोमतीर्थं तुङ्गवूटं तीर्थं स्वन्दाश्रमं तथा ।

कोटितीर्थंश्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं तथा ॥१४॥

यदि कोई भी विस्तार के साथ तीर्थों के और शुद्ध आयतनों को बतलाने का प्रयत्न कर तो संकड़ों वर्षों में भी सनको नहीं बतला सकता है । सर्व प्रथम पुष्कर तीर्थ है—तथा नर्मिपारण्य है ॥८॥ हे द्विजोत्तम ! प्रयागराज को बतलाता हूँ । धर्मारण्य तीर्थ है । धेनुक चम्पकारण्य है तथा सन्धवारण्य तीर्थ है ॥९॥ परम पुण्यमय मे तीर्थं मगधारण्य और दण्डकारण्य तीर्थ हैं । गया प्रभास श्रीतीर्थ तथा दिव्य कनकल तीर्थ हैं ॥१०॥ भृगुतुङ्ग हिरण्याक्ष भीमारण्य कुशस्थली-लोहाकुल सकेदार- और मन्दारारण्य तीर्थ हैं ॥ १॥ महाबल कोटितीर्थ तथा सवपापहर तीर्थ हैं । रूपतीर्थ दूकरन और महा फलचक्र तीर्थ हैं ॥१२॥ योगलीय-सोम तीर्थ तथा साहोटक तीर्थ है परम पुण्य कोकमुख तथा बदरीशैल तीर्थ हैं ॥१३॥ सोमतीर्थ-तुङ्गवूट तथा स्वन्दाश्रमतीर्थ है । कोटितीर्थ-अग्निपदतीर्थ और पञ्चशिख तीर्थ है ॥१४॥

धर्मोद्भव कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम् ।

गङ्गाद्वारं पञ्चवूटं मध्यकेसरमेव च ॥१५॥

चक्रप्रभं मतङ्गं च क्रुशदत्तं च विश्रुतम् ।

दष्टाकुण्डं विष्णुतीर्थं साद्व्यकामिकमेव च ॥१६॥

तीर्थं मत्स्यतिलचैव बदरी सुप्रभं तथा ।

ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा ॥१७॥

चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशवारकम् ।

मानसं स्थूलं शृङ्गं च स्थूलदण्डं तथा र्ध्वशो ॥१८॥

लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च ।

सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमाभिषेचनम् ॥१९॥

महास्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम् ।

सप्तधारकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥२०॥

सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णन]

शालग्राम चक्रतीर्थ कोटिद्रुममनुत्तमम् ।

वित्त्वप्रभ देवहृद तीर्थं विष्णुहृद तथा ॥२१॥

धर्मोद्भव-कोटितीर्थ और बाघ प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है । गङ्गाद्वार-पञ्चकूट और मध्य केशर तीर्थ है ॥१५॥ चक्रप्रभ-मगङ्ग-कुशवत् परम विश्रुत तीर्थ होता है । दद्याकुण्ड विष्णुतीर्थ और सार्वकामिक तीर्थ है ॥१६॥ मत्स्यतिल तीर्थ है और चवरी सुप्रभ तीर्थ है । ब्रह्मकुण्ड बलिकुण्ड तथा सत्यपद तीर्थ है ॥१७॥ चतु स्रोत-चतुष्टय तथा द्वादश और धारक तीर्थ है । मानस-स्पूलशृङ्ग-स्पूलदण्ड और उर्वशी तीर्थ है ॥१८॥ लोकपाल-मगुवर-सोमाह्वय-सदाप्रभ-मेरुकुण्ड और सोमाभिषेक तीर्थ है ॥१९॥ महास्रोत-कोटरक-पञ्चधार त्रिधारक सप्तधार एकधार और अमर कण्टक तीर्थ हैं ॥२०॥ शालग्राम-चक्रतीर्थ सर्वोत्तम कोटिद्रुम-वित्त्व प्रभ तथा विष्णुहृद नाम वाले तीर्थ हैं ॥२१॥

शङ्खप्रभ देवकुण्ड तीर्थं बज्रायुध तथा ।

अग्निप्रपञ्च पुष्पाग देवप्रभमनुत्तमम् ॥२२॥

विद्याधर सगान्धर्व श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम् ।

सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा ॥२३॥

तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुण्यं पिण्डारक तथा ।

मलय गोप्रभावश्च गोवर वटमूलकम् ॥२४॥

स्नानदण्ड प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपद तथा ।

कन्याश्रम वायुकुण्ड जम्बूमार्गं तथोत्तमम् ॥२५॥

गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि ।

कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवनं तथा ॥२६॥

नर्मन्दातीर्थमपरं तीर्थं ब्रजं तथाब्जं दम् ।

पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठ तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम् ॥२७॥

तीर्थं दौर्वासिकं नाम तथा पिछरकं शुभम् ।

ऋषितीर्थं ब्रह्मसुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम् ॥२८॥

शङ्खप्रभ-देवकुण्ड बज्रायुध-अग्निप्रभ पुष्पाग-सर्वोत्तम देवप्रभ-विद्याधर सगान्धर्व श्री तीर्थं प्रह्लाद-सप्तोर्व-लोकपालाख्य-मणिपूरगिरि-पञ्चहृद

तीर्थं तथा पुण्य और पिण्डारक तीर्थ हैं । मलय-गोप्रभाव-गोवर-वटमूलक स्नानदण्ड-प्रयाग-गुह्य तथा विष्णुपद-कन्याश्रम वायुकुण्ड तथा सर्वोत्तम जम्बूमार्ग तीर्थ हैं ॥२२-२५॥ गभस्ति तीर्थ-ययातिपतन शुचि-कोटितीर्थ भद्रवट तथा महाकातवन तीर्थ हैं ॥२६॥ कंभर नर्मदा तीर्थ-तीर्थवप्य-अबुंद-पिङ्गतीर्थ सवासिष्ठ और पृथु सङ्गमतीर्थ हैं ॥२७॥ दीर्घासिक नामक एक तीर्थ है तथा शुभ पिङ्गरक तीर्थ है । श्रुपितीर्थ-ब्रह्मपुङ्ग-वसु तीर्थ और कुमारिक तीर्थ हैं ॥२८॥

शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च ।

पैतामहश्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम् ॥२९॥

मणिमत्तश्च कामाक्ष्यं कृष्णतीर्थं कुशाविलम् ।

यजनं याजनश्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम् ॥३०॥

पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् ।

दीर्घसत्रं ह्यपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१॥

गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च ।

वल्गापदं दारुवलं छायारोहणमेव च ॥३२॥

सिद्धेश्वरं मित्रवलं कालिकाश्रममेव च ।

षटावरं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३॥

द्वीप सारस्वतश्चैव विजय कामद तथा ।

रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्रायनामितम् ॥३४॥

स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् ।

सततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदको ॥३५॥

शत्रुतीर्थ-पञ्चनद रेणुकातीर्थ-पैतामह-विमल तथा उत्तम रुद्रपाद-मणिमत्त-कामाक्ष्य-कृष्णतीर्थ-कुशाविल यजन-या न तथा ब्रह्मवालुक तीर्थ हैं ॥२९-३०॥ पुष्पन्यास-पुण्डरीक-मणिपूर-दीर्घसत्र-ह्यपद तीर्थ और अनशन नाम वाला तीर्थ है ॥३१॥ गङ्गोद्भेद-शिवोद्भेद-नर्मदोद्भेद-वल्गापद-दारुवल-छायारोहण-सिद्धेश्वर-मित्रवल-कालिकाश्रम-षटावर-भद्रवट-कौशाम्बी और दिवाकर ये सभी तीर्थ हैं ॥३२-३३॥ द्वीप-सारस्वत-विजय-कामद रुद्रकोटि-सुमनस और सद्रायनामित नामक तीर्थ हैं ॥३४॥

स्यमन्त पञ्चकतीर्थ-ब्रह्मातीर्थ-सुदर्शन-सतत पृथिवी सर्व्व तथा परिप्लव
एवं पृथुदक तीर्थ है ॥३५॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सपिजं विपयान्तिकम् ।
कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदम् ॥३६॥
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तमम् ।
वदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७॥
लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च ।
सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥३८॥
तीर्थंश्च यक्षराजस्य ब्रह्मावत् सुतीर्थकम् ।
कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९॥
स्नानलोमापहृत्वं मासससरकं तथा ।
दशाश्वमेघ केदारं ब्रह्मादुम्बरमेव च ॥४०॥
सप्तपिण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम् ।
ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जल्पं तथा ॥४१॥
कारण्डवं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमयापरम् ।
पाणिखातं मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥४२॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं, सपिज-विपयान्तिकं कोटितीर्थं, पञ्चनद-
यक्षिणीहृद-पुण्डरीक-सोमतीर्थं उत्तम मञ्जुवाट-वदरीवन-रत्नमूलक-
लोकद्वार-पञ्चतीर्थ-कपिलातीर्थं सूर्य्यतीर्थ-शङ्खिनी-ओर गवां भवन तीर्थ
है ॥३६-३८॥ यक्षराज का तीर्थ-ब्रह्मावत्-सुतीर्थ-कामेश्वर-मातृतीर्थ-
शीतवन-स्नानलोमापह-मासससरक-दशाश्वमेघ-केदार-ब्रह्मादुम्बर तीर्थं है
॥३९-४०॥ सप्तपिण्ड नाम वाला तीर्थं तथा देवी का सुजम्बुकतीर्थ-
ईहास्पद तीर्थ-कोटिकूट-किन्दान-किञ्जल्प तीर्थं है ॥४१॥ कारण्डव-अवेध्य
तथा अपर त्रिविष्टप तीर्थ-पाणिखात-मिश्रक-मधुवट तथा मनोजव तीर्थं
है ॥४२॥

कोशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थंश्च ऋणमोचनम् ।
दिव्यञ्च नृगधूमारयं तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥४३॥

अमराणां हृदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् ।
 श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशेयञ्च विथ्रुतम् ॥४४
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।
 ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम् ॥४५
 सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।
 ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥४६
 त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृतालयम् ।
 शाकम्भरीं देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं हृदम् ॥४७
 क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।
 ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्वतमेव च ॥४८
 कुजाम्रकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च ।
 स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥४९

कौशिकी-देवतीर्थं-ऋणमोचन तीर्थं-विष्णु-नृग धूमाख्य तीर्थं-विष्णुपद तीर्थं है ॥४४॥ अमरो का अर्षादे देवो का पुण्य हृद-तथा अपर कोटि तीर्थं-श्रीकुञ्ज-शालितीर्थं और परम प्रसिद्ध नैमिषेय तीर्थं है ॥४५॥ ब्रह्मस्थान-सौगन्धिक-वन नाम वाला मणि तीर्थं, सरस्वती-ईशान तीर्थं प्रवर एवं पावन पाञ्चयज्ञिक तीर्थं हैं ॥४६-४७॥ त्रिशूल धार-माहेन्द्र-देवस्थान-कृतालय-शाकम्भरी-देव तीर्थं-सुवर्णाक्ष-कलि-हृद-क्षीरस्रव-विरूपाक्ष-भृगु तीर्थं-कुशोद्भव-ब्रह्म तीर्थं-ब्रह्मयोनि-नीलपर्वत तीर्थं हैं ॥४७-४८॥ पुजाम्रक भद्रवट-वसिष्ठपद-स्वर्गद्वार-प्रजाद्वार और कालिकाश्रम तीर्थं हैं ॥४९॥

रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्र्वं कपिलावनमेव च ।
 भद्रकर्णं हृदञ्चैव शङ्कुकर्णं हृदं तथा ॥५०
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थं मोशनसं तथा ।
 कपालमोचनञ्चैव अधकीर्णञ्च काम्यकम् ॥५१
 चतुःसामुद्रिकञ्चैव शक्तिकञ्च सहस्रिकम् ।
 रेगुकं पञ्चवटकं विमोचनमथोजसम् ॥५२

स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम् ।
विश्वेश्वरं माणवकं रूपं नारायणाश्रयम् ॥५३॥
गङ्गाहृदं वटश्चैव वदरीपाटनं तथा ।
इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥५४॥
सोमतीर्थं दधीचश्च श्रुततीर्थं च भो द्विजाः ।
कोटितीर्थं स्थलीश्चैव भद्रकालीहृदं तथा ॥५५॥
अरुन्धतीवनश्चैव ग्रह्यावत्तं तथोत्तमम् ।
अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभवं तथा ॥५६॥

उद्रापत्तं-सुगन्धाश्व-कपिलावन-भद्रवर्णहृद-गङ्गुवर्णहृद-सप्त सारस्वती-
तीर्थ-प्रोशनस-वपाल मोचन अवधीर्ण-वाम्यव तीर्थं है ॥५०-५१॥ चतु-
सामुद्रक तीर्थ-शक्ति-साहसिक-रेणक-पञ्चवटक-विमोचन-भोजन तीर्थं
है ॥५२॥ स्थाणु तीर्थ-कुरोस्तीर्थ-स्वर्गद्वार-कुशध्वज विश्वेश्वर-माणवक-
रूप नारायणाश्रय तीर्थं है ॥५३॥ गङ्गाहृद-वट वदरीपाटन इन्द्रमार्ग-
एकरात्र और क्षीरकावास तीर्थं है ॥५४॥ सोमतीर्थ-दधीच-श्रुततीर्थ-
है द्विजगण । कोटितीर्थ-स्थली तथा भद्रकाली हृद तीर्थं है ॥५५॥
अरुन्धती वन-ग्रह्यावत्तं उत्तम तीर्थं अश्ववेदी-कुब्जावन तथा यमुनाप्रभव
तीर्थं है ॥५६॥

धीर प्रमोक्ष सिन्धूत्यमृषिवुल्या रावृत्तिरुम् ।
उर्वीसिकमणश्चैव मायाविद्योद्भव तथा ॥५७॥
महाश्रमो वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम् ।
याहुतीर्थं चारुनदी वितलाशोकमेव च ॥५८॥
तीर्थं पञ्चनदश्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत ।
सोमतीर्थं सितोदश्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा ॥५९॥
सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थं मशोक्तवनमेव च ।
अरण्यारपदं कामदञ्च घृष्टतीर्थं सवालुम् ॥६०॥
पिशाचमोचनश्चैव सुभद्राहृदमेव च ।
गुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च ॥६१॥

ज्येष्ठस्थानहृदञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा ।
 जैगीपव्यगुहा चैव हरिकेशवन तथा ॥६२॥
 अजामुखसरञ्चैव घण्टाकर्णहृद तथा ।
 पुण्डरीकहृदञ्चैव बापी कर्कोटकस्य च ॥६३॥

क्षीर प्रमोक्ष-सिन्धूत्य-ऋषिकुल्या- सृष्टिक उर्वी सक्रमण मायाविधो-
 द्भव, महाशम वैतासिकारूप सुन्दरिकाशम-वाहू तीर्थ-चारुनदी तथा
 विमलाशोक तीर्थ है ॥५७॥ ५८॥ पञ्चनद तीर्थ धीमान् मार्कण्डेय का
 तीर्थ-सोमतीर्थ-सितोद तथा मत्स्योदरी तीर्थ है ॥५९॥ सूर्यप्रम-
 सूर्यतीर्थ अशोक वन-अरुणास्पद-कामद-शुक्रतीर्थ-सालुक तीर्थ है ॥६०॥
 पिशाच मोचन-सुभद्रहृद-कुण्ड-विमलदण्ड तीर्थ-चण्डेश्वर का तीर्थ है
 ॥६१॥ ज्येष्ठस्थान हृद पुण्य ब्रह्मसर जैगीपव्य गुहा तथा हरिकेश वन
 तीर्थ है ॥६२॥ अजामुखसर-घण्टाकर्णहृद-पुण्डरीकहृद बापी कर्कोटक
 तीर्थ है ॥६३॥

सुधर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थं हृद तथा ।
 कुण्ड घण्टारिकायाञ्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका ॥६४॥
 श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकहृद तथा ।
 हूप सिन्धूदभवञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा ॥६५॥
 रुद्रावास तथा तीर्थ नागतीर्थ पुलोमकम् ।
 भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम् ॥६६॥
 ब्रह्मावर्त्त कुशावर्त्त दधिकर्णोदपानकम् ।
 ऋद्धतीर्थ महातीर्थ तीर्थ श्रेष्ठा महानदी ॥६७॥
 दिव्य ब्रह्मसर पुण्य गयाशीर्षक्षय वटम् ।
 दक्षिण चोत्तरञ्चैव गोमय रूपशीतिकम् ॥६८॥
 कपिलाहृद गृध्रवट सावित्रीहृदमेव च ।
 प्रभासन सीतवन योनिदारञ्च धेनुवम् ॥६९॥
 धन्यक वीजिलारयञ्च मतङ्गहृदमेव च ।
 पतृगूप रुद्रतीर्थ शक्रतीर्थ सुमालिनम् ॥७०॥

गुवर्णास्योद्यान-श्वेततीर्थहृद, घर्घरिका का कुण्ड-श्यामाकूप-
चन्द्रिका-शमशानस्तम्भ कूप-तथा विनायक हृद-सिन्धुद्रव
नूपपुण्य ब्रह्मसर तीर्थ हैं ॥६४-६५॥ रद्रावास-नागतीर्थ पुजोमक-
भक्तहृद-क्षीरसर-प्रेताधार-कुमारक ब्रह्मावर्त्त-कुशावर्त्त दधिकर्णोदपानक-
शृङ्गतीर्थ-महातीर्थ-तीर्थश्रेष्ठा-महानदी ये सब भी तीर्थ हैं ॥६६-६७॥
दिव्य ब्रह्मसर-पुण्य गयातीर्थश्रय वट-दक्षिण ओर उत्तर-गोमय-रूपशीतिक
तीर्थ हैं ॥६८॥ कपिलाहृद-गुधवट-सावित्रीहृद-प्रभासन सीतवन-योनिदार
धेनुक घन्यक-गोरिलालय पतङ्गहृद पट्टकूट-छत्रतीर्थ-शक्रतीर्थ और सुमा-
लिन तीर्थ हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मस्थान सप्तकुण्ड मणिरत्नहृद तथा ।

कौशिक्य भरत चं व तीर्थ ज्येष्ठातिका तथा ॥७१॥

वस्येश्वर कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च ।

निश्रीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥

दैवभूटच रूप च वसिष्ठाश्रममेव च ।

वीराश्रम ब्रह्मसरो ब्रह्मबीरावकापिली ॥७३॥

कुमारधारा श्रीधारा गीरीशिखरमेव च ।

शुन कुण्डोऽथ तीर्थश्च नन्दिनीत्यर्थव च ॥७४॥

कुमारवास श्रीवासमौर्वीक्षीतीर्थमेव च ।

गुम्भकणहृदञ्चैव कौशिरीहृदमेव च ॥७५॥

धम्मंतीर्थ कामतीर्थ तीमुद्दालक तथा ।

रान्ध्यातीर्थ कामतीर्थ कपिल लोहिताण्यम् ॥७६॥

शोणोद्भव वदगुल्ममृषभ वलतीर्थम् ।

पुण्यावतीहृद तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥७७॥

वत्सराणा-सप्तकुण्ड-मणिरत्नहृद-कौशिक्य-भरत तीर्थ-ज्येष्ठातिका-

वस्येश्वर-रत्नसर-कन्या सरय निश्रीवाप्रभव वसिष्ठाश्रम-ये सभी तीर्थ हैं ।

वीराश्रम-देवाट्ट-रूप वत्ससर-वत्सबीरा वत्सबी-कुमारधारा-श्रीधारा-

गीरीशिखर-शुन कुण्ड तीर्थ तथा नन्दिनी तीर्थ हैं ॥७१-७५॥ कुमारवास,

श्रीवास, क्षीरीक्षी तीर्थ, गुम्भकणहृद, कौशिरीहृद धम्मतीर्थ, काम तीर्थ,

चहालक तीर्थ, सन्ध्या तीर्थ, कार तोय, कपिल, लोहितार्णव तीर्थ हैं ॥७५-७६॥ सोणोद्भव, वशगुल्म, ऋषभ, कलतीर्थ, पुण्यावतीह्रद तीर्थ और बदरिकाश्रम तीर्थ हैं ॥७७॥

रामतीर्थं पितृवन विरजातीर्थमेव च ।

मार्कण्डेयवनञ्च वृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥

रोहिणीवृषप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् ।

सानुगत्तं समाहेन्द्र श्रीतीर्थं श्रीनद तथा ॥७९॥

इषुतीर्थं वापभञ्च कावेरीह्रदमेव च ।

कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०॥

बदरीह्रदमन्यज्ञं मध्यस्थानं विकर्णकम् ।

जातीह्रदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१॥

सर्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमह्रदं तथा ।

तथान्यद्कालखिल्यानां संपूर्वाणां तथापरम् ॥८२॥

तथान्यञ्च महर्षीणामखण्डितह्रदं तथा ।

तीर्थेष्वेतेषु विधियत् सम्यक् श्रद्धासमन्वित ॥८३॥

स्नानं करोति यो मत्स्यं सोपवासो जितेन्द्रियः ।

देवानृषीन्मनुष्याश्च पितॄन् सन्तर्प्य च कृमात् ॥८४॥

अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् ।

पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजा ॥८५॥

प्राप्नोति ह्यमेघस्य नरो नास्त्यत्र सशयः ।

यस्त्विदं श्रुत्वाप्रित्य तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्वपापं प्रमुच्यते ॥८६॥

बहुत से तीर्थ हैं जिनमें प्रमुख तीर्थ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेय वनतीर्थ, वृष्णतीर्थ, वट, रोहिणी वृष, प्रवर, इन्द्रद्युम्नसर, सानुगत्तं, समाहेन्द्र श्रीतीर्थ तथा श्रीनद तीर्थ हैं ॥७८-७९॥ इषुतीर्थ, वापभ, कावेरीह्रद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्री स्थान, अन्य बदरीह्रद, मध्य स्थान, विकर्ण, जातीह्रद, देवकूप, कुशप्रवण, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमह्रद, कालखिल्यो का अन्यह्रद तथा अगर संपूर्वों का ह्रद तीर्थ

है ॥८०-८२॥ अन्य महर्षियो का अखण्डित हृद तीर्थ होता है । ये बहुत से जो तीर्थों के नाम बताये गये हैं इस समस्त तीर्थों में भली भाँति श्रद्धा से युक्त होकर विधि के साथ जो कोई स्नान किया करता है और सपवास के साथ तथा अपनी सब इन्द्रियो को जीतकर जो स्नान करता है और देवों को, ऋषियों को एवं मनुष्यों को और पितृगणों को क्रम से भली भाँति तृप्त करके वहाँ तीर्थ पर ही देवगण की अर्चना करे और तीन रात्रि तक वहीं पर अपनी स्थिति करनी चाहिए । हे द्विजगणो ! इन प्रत्येक तीर्थ का पृथक् २ फल हुआ करता है ॥८३-८५॥ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । जो पुरुष इसको नित्य सुनता है जो कि उत्तम तीर्थों का माहात्म्य बताया गया है इसका पाठ करे या श्रवण करावे वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥८६॥

१८—स्वयम्भूवर्हापिसंवादवर्णन

पृथिव्यामुत्तमा भूमि धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।
तीर्थानामुत्तम तीर्थं ब्रूहि नो वदतावर ॥१॥
इमं प्रश्नं मम गुरु पप्रच्छुर्मुनयः पुरा ।
तमहं सम्प्रक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥२॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुण्योपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैरघंखादिरैः ॥४॥
पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुण्योपशोभितैः ॥५॥

कुरुक्षेत्रे रामासीन व्यास मतिमता वरम् ।
 महाभारतकर्तार सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥
 अध्यात्मनिष्ठ सर्व्वज्ञ सर्व्वभूतहिते रतम् ।
 पुराणागमवक्तार वेदवेदाङ्गपरारम् ॥७॥
 पराशरसुत शान्त पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 द्रष्टुमम्यायमु प्रीत्या मुनयः सशितव्रता ॥८॥

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आपसी बोलने वाली मे परमश्रेष्ठ हैं । अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि इस पृथ्वी में सबसे उत्तम भूमि कौनसी है जो धर्म अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों के देने वाली हो और इन समस्त तीर्थों में जो अभी आपने बहुत से बतलाए हैं । सर्वोत्तम तीर्थ तीनसा है ॥१॥ श्री सोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगण ! पहले समय में जो इस समय भुजने आपने पूछा है इसी प्रश्न को मुनिगण ने मेरे गुरुजी से पूछा था । हे द्विश्रोतृमो ! जा आप भुजन पूछने हो उसे मैं आपको बतलाता हूँ ॥२॥ सुमहान् पुण्यमय अपने आश्रम में गुरुदेव निराजमान थे । यह आश्रम अनेक पुष्पो से उपशोभित था और नाना प्रकार के वृक्षों तथा लताओं से घिरा हुआ था । इस आश्रम में बहुत प्रकार के पशुगण रहा करते थे ॥३॥ पुष्पाग-वर्णिकार-सरल देव-दाव शाय-तालतमाल-पनस-अर्चसदिर - पाटल-अशोक-वकुल - करवीर-चम्पक- ये वृक्ष तथा अन्य भी बहुत तरह के वृक्षों से एवं अनेक पुष्पों से यह आश्रम दीभायमान था । यह आश्रम गुरुनेत्र में था वहाँ पर मतिमानों में श्रेष्ठ महाभारत महान् ग्रन्थ के रचयिता-समस्त शास्त्रों के महामनीषी-अध्यात्मनिष्ठ सर्वज्ञ और सब प्राणियों के हित करने में रति रखने वाले पुराणों एवं आगमों के यत्ता वेदों और वेदों के अङ्ग के पात्रगामी पराशर मुनि के पुत्र-परम शान्त मूर्ति तथा पद्म के तुल्य सुन्दर एवं आयत नेत्री वाले व्यासजी उस अपने आश्रम में जित समय में विद्यमान थे उसी समय में सीशत व्रत वाले मुनिगण प्रीति से व्यासदेवजी के दर्शन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे ॥४-८॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गीतमः ।
 वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मीकिः ॥१६
 विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः ।
 सुमन्तुर्भागवो नाम कण्वो मेघातिथिर्गुरुः ॥१७
 माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।
 मीदगल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥१८
 सम्बर्तः कौशिको रैम्यो मंत्रेयो हरितस्तथा ।
 शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोकशस्तथा ॥१९
 नारदः पर्वतश्चैव वैशम्पायनगालवी ।
 भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥२०
 उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।
 सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥२१

जो मुनियोग व्यासजी से मिलने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे उनमें कश्यप-जमदग्नि-भरद्वाज-गीतम-वसिष्ठ-जैमिनि-धौम्य-मार्कण्डेय-वाल्मीकि विश्वामित्र शतानन्द-वात्स्य-गार्ग्य-आसुरि-सुमन्तु-भागव-कण्व-मेघातिथि और गुरु थे ॥१६-१७॥ माण्डव्य-च्यवन-धूम्र-असित-देवल-मीदगल्य-तृणयज्ञ-पिप्पलाद-अकृतव्रण-सम्बर्तक-कौशिक-रैम्य-मंत्रेय-हरित-शाण्डिल्य-विभाण्ड-दुर्वासा-लोकेश थे ॥१८-१९॥ नारद-पर्वत-वैशम्पायन-गालव-भास्करि-पूरण-सूत-पुलस्त्य-कपिल-उलूक-पुलह-वायु-देवस्थान-चतुर्भुज-सनत्कुमार-पैल-कृष्णानुभौतिक थे ॥२०-२१॥

एतैर्मुनिवरैश्चान्त्रैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।
 रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमा ॥२२
 तानागतान्मुनीन् सर्वान् पूजयामास वेदवित् ।
 तैऽपि स प्रतिपूज्यैव कथा चक्रुः परस्परम् ॥२३
 कथान्ते ते मुनिश्चेष्टाः कृष्ण सत्यवतीसुतम् ।
 पप्रच्छुः सशय सर्वे तपोवननिवासिनः ॥२४
 मुने वेदाश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् ।
 भूत भव्य भविष्यञ्च सर्वं जानासि वाङ्मयम् ॥२५

कण्ठेऽस्मिन् दुःखबहुले नि मारे भवसागरे ।

रागप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसप्लवे ॥१९॥

इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिगतसङ्कुले ।

मोहपद्माविते दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०॥

निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।

पृच्छामस्त्वा महाभाग ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥२१॥

इन उपर्युक्त सब मुनिगण और इनके अतिरिक्त अन्य भी मुनिकों से सत्यवती के सुत व्यासजी समाकृत थे । और वे श्रीमान् मुनीन्द्र श्री-व्यासजी उन समस्त मुनिगणों के मध्य में नक्षत्रों से समावृत चन्द्र की समान सुशोभित हो रहे थे ॥१९॥ उन वेदों के विद्वान् व्यासदेवजी ने उन समस्त समागत हुए मुनिगणों की पूजा की थी और उन सबने भी व्यासजी की प्रति पूजा करके वे रात्रि परस्पर में कथा-वार्त्ता कर रहे थे ॥१९॥ कथा के समाप्त हो जाने पर उन सबने जो मुनियों ने परम धर्म से सत्यवती के सुत श्री कृष्ण ब्रह्मपतिजी से तयोवन में निवास करने वालों ने अपने मन के संशय के विषय में पूछा था—मुनिगण ने कहा— हे मुनिवर ! आप तो सब वेदों को, शास्त्रों को, पुराणों को, आगमन को, भारत को तथा भूत भव्य और भविष्य सम्पूर्ण वाङ्मय को भली भाँति जानते हैं ॥१७—१८॥ यह भवसागर अर्थात् ससार रूपी समग्र निःसार है और इसमें बहुत से दुःख भरे हुए हैं । यह राग रूपी प्राही से समाकुल है तथा परम भयानक एवं विषय रूपी जल से सप्लव वाला है ॥ १९॥ इन्द्रियों ही इस ससार सागर में महान् आवर्त्त हैं उन भँवरों से यह कविल है और संकटों ही भाँति की लहरें इसमें दिखाई दे रही हैं जिनसे यह धिगा हुआ है—इसमें मोह रूपी बीच मरा हुआ और लोभ की गम्भीरता से महान् दुस्तर है ऐसे इस दुर्ग में निमज्ज हुए बिना किसी सहारे के अचेतन यह जगत् हो रहा है । हे मुनि श्रेष्ठ ! हम आपसे पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर हमको वतलाइये ॥२०—२१॥

श्रेय किमत्र ससारे भँरवे लोमहर्षणे ।

उपदेशप्रदानेन लोबानुद्धर्त्तुं मर्हसि ॥२२॥

दुर्लभ परमं क्षेत्रं कर्तुं महसि मोक्षदम् ।
 पृथिव्या कर्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥
 कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म भूमी यथोदितम् ।
 प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥२४॥
 मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।
 तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञं यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५॥
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 व्यासः प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यदित् ॥२६॥

इस महात्मा परम एव लोभ हर्षण ससार मे क्या कल्याण का मार्ग हो सकता है ? आप अपने उपदेश को देकर उसके द्वारा सब लोको का उद्धार करने के योग्य होते हैं ॥२३॥ आप परम दुर्लभ मोक्ष प्रदान करने वाले क्षेत्र को पताने के योग्य हैं । हम सब लोग इस पृथिवी से कर्मभूमि का भ्रमण करना चाहते हैं ॥२४॥ इस भूमि में मनुष्य यथोदित कर्म को करके भली-भाँति परम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है तथा विकर्म करके नरको को प्राप्त करता है ॥२४॥ सुधी पुरुष मोक्ष के क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है । इस कारण मैं हे महाप्राज्ञ द्विजोत्तम ! आपसे जो पूछा गया है वही बताने की कृपा करिए ॥२५॥ उन भावितात्मा वाले मुनिपणों के इस वचन का भ्रमण करके भूत-भव्य और भविष्य के पूर्ण ज्ञाता श्री व्यासदेवजी भगवान ने कहा था ॥२६॥

मृगुष्ट्व मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।
 यः सवादीऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७॥
 मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णं नानारत्नविभूषिते ।
 नानाद्रुमलताकीर्णे नानाष्पोपशोभिते ॥२८॥
 नानापक्षिस्ते रभ्ये नानाप्रसवनाकुले ।
 नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९॥
 नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।
 नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०॥

तथासीन जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् ।

जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥

देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगं ।

मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥३२॥

श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिगणो ! यदि आप सब लोग मुझसे ऐसा पूछ रहे हैं तो भय आप सब सुनिए—मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । पुराने समय में पहिले श्री ब्रह्मा के साथ ऋषियों का जो सम्वाद हुआ था ॥२७॥ नाना भाँति के रत्नों से भूषित परम विस्तीर्ण अनेक द्रुमो-लताओं से सज्जीर्ण और नाना भाँति के पुष्पों से युक्त मेरु पर्वत के ऊपर ही यह सम्वाद हुआ था ॥२८॥ इस मेरुगिरि का पृष्ठ भाग ऐसा था जहाँ पर बहुत प्रकार के पक्षियों की छवि हो रही थी और यह अनेक वस्तुओं के समुत्पन्न होने से पूर्णतया घिरा हुआ परम सुन्दर था । बहुत से जीव इसमें निवास किया करते थे तथा अनेक अद्भुत आश्रय जन्तु पदार्थों से यह युक्त था ॥२९॥ इस मेरु पर्वत पर अनेक वर्ष वाली शिलाएँ थीं और बहुत सी धातुओं से वह परिपूर्ण था । वहाँ पर अनेक मुनिगण रहा करते थे और बहुत से आश्रम बने हुए थे ॥३०॥ उस पर्वत पर इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, जगत् के निर्माता, जगत् के पति, जगत् के बन्दनीय, जगत् के आधार और ईश्वर, चतुर्मुख ब्रह्माजी विराजमान थे ॥३१॥ उन ब्रह्माजी के चारों ओर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, उरग बंटे हुए थे । उस समय में मुनि, सिद्ध, अप्सराएँ और दिवलोक वासी अन्य लोगो से वे घिरे हुए थे ॥३२॥

केचित् स्तुवन्ति तं देव केचिद्गायन्ति चाग्रतः ।

केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नुत्त्यन्ति चापरे ॥३३॥

एव प्रमुदिते काले सर्वभूतसमागमे ।

नानाकुसुमगन्धाद्यैर्दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥

भृग्वाद्यास्त तदा देव प्रणिपत्य पितामहम् ।

इममर्थं भृगुपिवरा प्रपच्छु पितरं द्विजा ॥३५॥

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्मभूमिं महीतले ।
यवतुमहंमि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥ ६
तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।
पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्न तत्सर्वं मुनिसत्तमाः ॥३७

कुछ लोग तो उनकी स्तुति कर रहे थे और उनमें से कुछ लोग उन देव के आगे गान कर रहे थे । कुछ विविध दासों का वादन कर रहे थे तथा दूसरे कुछ लोग नृत्य कर रहे थे ॥३३॥ वह समय इस प्रकार से बहुत ही प्रमोद से युक्त था और सभी प्राणियों का वहाँ पर समागम हो गया था । बहुत तरह के पुष्पो की गन्ध वहाँ पर भरी हुई थी तथा दक्षिण की वायु चल रही थी ॥३४॥ भृगु आदि ऋषि प्रबरो ने हे द्विजगणो ! उस समय में उन देव वितामह को प्रणाम करके पितृ देव से इस अर्थ के विषय में पूछा था ॥३५॥ ऋषिगण ने कहा था—हे भगवन् ! इस महीतल में हम लोग कर्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं । हे देवेश्वर ! आप परम दुर्लभ जो मोक्ष का क्षेत्र हो उसे भी बतलाने के योग्य हैं ॥३६॥ श्री व्यासजी ने कहा—उन सब मुनियों के वचन को सुन कर सुरेश्वर ब्रह्माजी ने कहा—जैसा कि उन सब मुनियेष्टो ने उनसे पूछा था उन्हीं के विषय में उन्हीने कहा ॥३७॥



१६—भारतवर्षवर्णन ।

शृणुष्व मुनयः सर्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराण वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१
पृथिव्या भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृतम् ।
कर्मणः फलभूमिश्च स्वर्गच नरक तथा ॥२
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा घर्मच भो द्विजाः ।
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३

ब्राह्मणाद्याः स्वक कर्म कृत्वा सम्यक्सुसयता ।
 प्राप्नुवन्ति परा सिद्धिं तस्मिन् वर्षे न सशयः ॥४॥
 धर्मश्चार्थाश्च कामश्च मोक्षश्च द्विजसत्तमाः ।
 प्राप्नोति पुरुषः सर्वं तस्मिन् वर्षे सुसयतः ॥५॥
 इन्द्राद्याश्च सुरा सर्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः ।
 कृत्वा सुशोभन कर्म देवराव प्रतिपेदिरे ॥६॥
 अन्येऽपि लेभिरे मोक्ष पुरुषाः सयतेन्द्रियाः ।
 तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगण ! अब आप समाहित मन वाले होकर सुनिए । मैं इस समय में आप सबको वेदों से सम्बद्ध और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले परम शुभ पुराण को बतलाता हूँ ॥१॥ इस पृथिवी पर भारत वर्ष को ही कर्मों के करने की भूमि बताया गया है । यह कर्मों के करने की भूमि है और फल प्राप्त करने की भी भूमि है तथा स्वर्ग एवं नरकों के प्राप्त करने की भी यही भूमि है ॥२॥ हे द्विजगणो ! उस भारत वर्ष में मनुष्य पाप कर्म करके तथा धर्म का कर्म करके अवश्य ही फल प्राप्त किया करता है चाहे वह कोई शुभ कर्म करे तो उसका अच्छा फल उसे अवश्य मिलता है और चाहे वह अशुभ कर्म करे तो उसका भी वह फल प्राप्त किया करता है ॥३॥ ब्राह्मण आदि लोग यहाँ पर भली भाँति सुसयत होकर अपना शास्त्र-विहित कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त किया करते हैं—इसमें तनिक भी सशय नहीं है ॥४॥ हे द्विजसत्तमो ! उस भारत वर्ष में पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की प्राप्ति सुसयत होकर किया करता है ॥५॥ हे द्विजोत्तमो ! इन्द्र आदि सभी देवगण इस भारत वर्ष में परम शोभन कर्म करके ही देवपद का प्राप्त हो गये हैं ॥६॥ सयत इन्द्रिय वाले अन्य पुरुषों ने भी मोक्ष भी प्राप्ति की थी । उस भारत वर्ष में जो बुध हैं—शान्त हैं—वीतराग और विना मात्सर्य वाले हैं वे सब स्वर्गवासी हो गये हैं ॥७॥

ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वरा. ।
 तेऽपि कृत्वा शत कर्म तस्मिन् वर्षे दिव गताः ॥८॥
 निवास भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः ।
 स्वर्गापवागफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९॥
 यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम् ।
 पापाय वा सुरश्रेष्ठ वज्रैर्जयित्वा च भारतम् ॥१०॥
 ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यम तच्च गम्यते ।
 न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूनां कर्म विधीयते ॥११॥
 तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मक्षस्माक भारत वद ।
 यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावत्थिरेव च ॥१२॥
 तस्माद्वर्षमिदं नायं ये वास्मिन् वर्षपर्वता. ।
 भेदाश्च तस्य वर्षस्य घृहि सव्वनिशेषतः ॥१३॥

जो लोग भी इस समय स्वर्ग में स्थित हैं और विमान के द्वारा गतज्वर होकर गमन किया करते हैं वे भी सब उसी भारत वर्ष में सैकड़ों शुभ कर्मों को करने ही दिवलोक में प्राप्त हुए हैं ॥८॥ सदा सुरगण भी इस भारत वर्ष में निवास करने की अभिलाषा किया करते हैं क्योंकि सुरत्व पद भी शुभ कर्मों के फलों के अनुसार अवधि युक्त होता है । पुण्य के क्षीण हो जाने पर अर्थात् उसका फल भोग लेने पर वे सभी पुनः इस कर्म भूमि में जाकर शुभ कर्म करना चाहते हैं । वे यही सोचा करते हैं कि स्वर्ग और अरवर्ग के फल प्रदान करने वाले भारत वर्ष में हम जब पहुँच कर शुभ कर्मों के करने का अवसर देखेंगे ॥९॥ मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो यह बतलाया कि भारत वर्ष में अतिरिक्त अन्यत्र कोई भी पुण्य-फल देने वाला कर्म नहीं हो सकता है अथवा पाप कर्म भी यहीं पर लोगो से बन पड़ता है जिसका पुरा पल नरवादि वा गमन वे प्राप्त करते हैं । शुभानुभूति कर्म की भूमि भारतवर्ष को छोड़कर अन्य नहीं है ॥१०॥ वही से स्वर्ग मोक्ष तथा मध्यम फल प्राप्त किया जाता है । इससे अनिरिक्त मनुष्यों की कर्म करने की भूमि अन्य कोई भी नहीं है ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! जब ऐसा ही

अटल नियम है तो आप इस विषय में अर्थात् भारत वर्ष के सम्बन्ध में हम लोगों को विस्तार पूर्वक बतलाइये । यदि आपकी हम सब लोगों पर कृपा है तो यथा स्थिति वर्णन कीजिए ॥१२॥ इस कारण से हे नाथ ! इस भारत वर्ष में जो भी वर्ष पर्वत हैं और उस भारत वर्ष के जो भी भेद हैं उन सबका पूर्ण रूप से आप वर्णन करके बताइये ॥१३॥

शृणुष्व भारत वर्षं नवभेदेन भो द्विजाः ।

समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥१४॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।

नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥१५॥

अयन्तु नयमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तर ॥१६॥

पूर्वो किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः ॥१७॥

इज्यायुद्धयणिग्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः ।

तेषां सव्यवहारश्च त्रिभिः कर्मभिरिष्यते ॥१८॥

स्यर्गापि वगहेतोश्च पुण्य पापश्च वै तथा ।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानूक्षपर्वत ॥१९॥

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवान् कुलाचलाः ।

तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥२०॥

विरतारोऽद्भुयिणी रम्या विपुलाश्चिनसानवः ।

कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दद्गुं राचल ॥२१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के विषय में आर श्रवण कीजिए—यह नौ भेदों वाला है । ये नौ भेद रूप हैं तथा समुद्रान्तरित है—ऐसा जान लेना चाहिए ॥१४॥ इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व तथा वारुण द्वीप हैं । यह उन नौ में नयमद्वीप है जो सागर ॥ संवृत (घिरा हुआ) है । यह द्वीप दक्षिण उत्तर दिशा में रहने वाला एक सहस्र योजन वाला है ॥१५-१६॥ इसमें पूर्व दिग्भाग में किरात लोग निवास किया करते हैं तथा

इसके पश्चिम में यवन लोग रहते हैं । हे द्विजगण ! इसके मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निवास किया करते हैं ॥१७॥ ये चारों वर्णों वाले लोग क्रम से इज्यायुद्ध और बाणिज्य आदि धर्मों से पावन होते हैं और उनका सव्यवहार भी तीनों प्रभार के कर्मों से अभीष्ट हुआ करता है ॥१८॥ यही कर्म स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) का हेतु होता है और कर्मों के द्वारा ही यहाँ पर पुण्य एवं पाप हुआ करता है । महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋजु पर्वत हैं ॥१९॥ विन्ध्य पारिपात्र—ये सात यहाँ पर कुल पर्वत कहे जाते हैं । इन सात कुल पर्वतों के समीप में ही स्थित अन्य भी हजारों पर्वत हैं ॥२०॥ ये सब विस्तार वाले और ऊँचाई वाले परम रम्य, विपुल तथा विचित्र शिखरों वाले हैं । शोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, ददुराचल पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्धयो वैद्युतश्च मैनाक सुरसस्तथा ।

तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचल ॥२२॥

पुष्पगिरिर्वैजयन्ती रवंतोऽर्जुन एव च ।

ऋष्यमूकः स गोमन्थ कृतशैलः कृताचल ॥२३॥

श्रीपार्वत्यन्तश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः ।

सैविमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः ॥२४॥

तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यन्व, द्विजोत्तमाः ।

गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥२५॥

यमुना शतद्रुविपाशा वितस्तीरावती कूटुः ।

गोमती धूतपापा च याहुदा च दृषद्वती ॥२६॥

विपाशा देविका च मुनिहीवा गण्डकी तथा ।

कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पान्दनि सृताः ॥२७॥

देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च ।

वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥२८॥

वातन्धय, वैद्युत, मैनाक, सुरग, तुङ्ग प्रस्थ, नाग गिरि, गोवर्धन, पाण्डराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्ती, रवंत, अर्जुन, (आरू) ऋष्यमूर, गोमन्थ, कृतशैल, कृताचल, श्री पार्वत, चकोर ये तथा अन्य भी मंसरों

पवंत भारत वर्ष मे विलमान हैं । उन सबसे मिले हुए जनपद भी है
जहाँ भागो मे म्लेच्छ आदि लोग निवास किया करते हैं ॥२२-२४॥ उन
के द्वारा बहुत सो श्रेष्ठ नदियों का पान किया जाता है । हे द्विजोत्तमो !
उनका भी ज्ञान आप लोग प्राप्त कर लेने । वे सरिताएँ—गङ्गा, सरस्वती,
सिन्धु, चन्द्रभागा, हैं ॥२५॥ यमुना, शनद्र, विराशा, वितस्ति, इरावती,
कुहू, गोमती, घृतपात्रा, बहुवा, इषद्वती, विपाशा, देविका, चतु, निङ्गीवा,
गण्डकी, कौशिकी—ये सभी सरिताएँ हिमालय के पाशो से निकली हुई हैं
॥२६-२७॥ देव स्मृति, देववती, वातप्नी, सिन्धु, वेण्या चन्दना सदा-
नीरा तथा मही नदियाँ हैं ॥२८॥

चर्मण्वती वृषी वैव विदिशा वेदवत्यपि ।

सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगा स्मृता ॥२९॥

शोणा महानदी जैव नर्मदा सुरसा क्रिया ।

मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥३०॥

चित्रोत्पला वेत्रवती करमोदा पिशाचिका ।

तथान्यातिलक्ष्मणी विपापा शैवला नदी ॥३१॥

सधेरजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमु ।

ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥३२॥

सिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा ।

वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥३३॥

तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्त शिला तथा ।

विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्य पुण्यजला शुभा ॥३४॥

गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापरा ।

तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५॥

चर्मण्वती, वृषी, विदिशा, वेदवती, सिप्रा, अवन्ती, पारियात्रानुगा,

शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा

नदियाँ हैं ॥२९-३॥ चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, अति-

लक्ष्मणी, विपापा, शैवला नदी, सधेरजा, शुक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा,

क्रमु, ऋक्षपाद, प्रसूता और वेगवाहिनी नदी हैं ॥ ३-३२॥ सिप्रा,

पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सरिद्धारा तापी, वेण्य, चंतरणी, सिती वाली, कुमुदजी, जोया, महागोरी, दुर्गा, अन्तःशिला, विन्ध्यपाद प्रमूता ने नदियाँ हैं जो परम शुभ और पुण्य जल वाली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरघी, कृष्णा वेणा, आपगा हैं, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा अम्यापाप नाशिनी नदी है ॥३५॥

सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यजा प्रत्यलाधती ॥३६॥
मलयान्निसमुद्रभूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमपिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या ॥३७॥
लाङ्गुलिनी वशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥३८॥
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्वाः पुण्याः सरस्यत्यः सर्वा गङ्गा समुद्रगाः ॥३९॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाः पापहराः स्मृताः ।
अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः धुवनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशलाः ॥४१॥
अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशाऽपि प्रकीर्तिताः ॥४२॥

ये सब सरिताएँ सह्याचल के पादों से निकलने वाली तथा परम वैठ हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलाधती ये सब नदियाँ शीतल जल वाली-पुण्यमयी और मत्स्यागिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं । पितृसोमपिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वशकरा ये सब सरिताएँ महेन्द्र सर्वत से उद्भूत प्राप्त करने वाली हैं । सुविकाला, कुमारी, मनुगा और मन्दगामिनी नहीं हैं ॥३६-३८॥ क्षयापलासिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमत् पर्वत से उद्भूत होने वाली हैं । सभी सरस्यती नदियाँ पुण्यमयी हैं और सब गङ्गाएँ समुद्र गामिनी हैं ॥३९॥ ये सभी विश्व की माताएँ हैं तथा सब पापों के हरण करने वाली हैं ऐसा कह

गया है । हे द्विजोत्तमो ! उन उपयुक्त नदियों के अतिरिक्त सहस्र धुन नदिया बनाई गयी हैं ॥४०॥ कुछ सरिताएँ तो ऐसी हैं जो वर्षा के समय में ही बहने लगती होती हैं और कुछ सदा काल में बहने वाली हैं । मत्स्या, मुकुटकुल्या, कुन्तला, कारि, कोशला, अधुका, कलिङ्गा और शमकानुको के साथ मध्यदेश के जो जनपद हैं प्रायः वे ब्रह्मा पर कही गयी हैं ॥४१-४२॥

सहस्रस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।
 पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरम ॥४३॥
 गोवर्द्धनपुर रम्य भागवस्य महात्मन ।
 वाहीका वाटधानाश्च सुतीरा कालतोयदा ॥ ४॥
 अपरास्ताश्च दूद्राश्च वाल्लिकाश्च सकेरला ।
 गाधारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रका ॥४५॥
 शतद्रुहा कलिङ्गश्च पारदा हारमूयिका ।
 माठराश्चैव कनका कंकेया दम्भमालिका ॥४६॥
 क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यदूद्रकुलानि च ।
 काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा यव्वराश्च सलीकिका ॥४७॥
 धीराश्चैव तुपाराश्च पहलवाधायता नरा ।
 आनेयाश्च भरद्वाजा पुष्कलाश्च दशेरका ॥४८॥
 लम्पका शुन शीकाश्च कुलिवा जाङ्गल सह ।
 औपध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातय ॥४९॥

सह्य आदि के उत्तर भाग में जहाँ पर गोदावरी नदी है वह प्रदेश इस सम्पूर्ण पृथ्वी में परम मनोरम है ॥४३॥ महात्मा भागवत गोवर्द्धनपुर बहुत ही रम्य है । वाही का, वाटघामा, सुतीरा कालतोय और ऊपरवे दूद्र हैं । और सकेरन, वाल्लिका गाधारा यवना, सिंधु सौवीर, मद्रक, शतद्रुहा, कलिङ्ग, पारदा हारभूयिक, माठर कंकेय कनक, दम्भमालिक ये क्षत्रियोपम देश हैं । तथा वैश्य एवं दूद्रकुल हैं । हे विप्रेन्द्रो ! काम्बोज यवर्, सलीकिक, धीर, तुपार और नर पहलवाधायन हैं । आनेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक नम्बक, शुनगोक,

कुलिक जाङ्गलो के सहित, औपध्य, चलचन्द्र, ये किरागो की जातियां हैं ॥४४-४६॥

तोमरा हसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।
 शूलिकाः कुहकाश्चैव सागधाश्च तथैव च ॥४०
 एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ।
 अग्धा वामङ्कुरावाश्च बल्लकाश्च मलान्तकाः ॥४१
 तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवत्तिकाः ।
 भद्रतुङ्गाः प्रतिजया भार्याङ्गाश्चापमर्दकाः ॥४२
 प्रागूज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलित्तकाः ।
 मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥४३
 तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
 पूर्णाश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥४४
 ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमार राभठाः शकाः ।
 महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥४५
 आभीराः सह वैशिक्या अटव्या सरवाश्च ये ।
 पुलिन्दाश्चैव मीलेया वैदर्भा दन्तकैः सह ॥४६

तोमर, हसमार्ग, काश्मीर, करण, शूलिक, कुहक, मागध ये सब देश उदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले हैं । अथ जो देश प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में हैं उनको भी समझलो—अग्ध, वामङ्कुराक, बल्लक, गरवान्तक तथा अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवत्तिक, भद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्दक, प्रागूज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलित्तक, मल्ल, मगधक और नन्द ये प्राच्यजन पद हैं ॥४०-४३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणापथवासी हैं । पूर्ण, केरल, गोलाङ्गूल, ऋषिक, मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, वैशिकी के सहित आभीर, अटव्य, सरव, पुलिन्द, मीलेय और दन्तको के सहित वैदर्भ ये सब दक्षिण दिशा के भाग में जनपद हैं ॥४४-४६॥

पोलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः ।

कोलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालका ॥१७॥

दक्षिणात्यास्त्वभी देशा अपरान्ताग्निबोधत ।

क्षूर्पारका कालिधना लोलास्तालकटं सह ॥१८॥

इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्व विन्ध्यवासिनः ।

मलजा कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकं सह ॥१९॥

उत्तमार्गा दशार्णाश्च भोजा किष्किन्ध्यकं सह ।

तोपला कोशलश्चैव त्रैपुरा चंदिशास्तथा ॥२०॥

तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवना पवनं सह ।

अभया रुण्डिकेराश्च चर्चरा होत्रघर्त्तय ॥२१॥

एते जनपदा सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः ।

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्चविणश्च ये ॥२२॥

नीहारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा खसा ।

कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घा सकुन्तका ॥२३॥

चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरं सह ।

कुतरेतादिकश्चान चतुर्गुणकृतो विधिः ॥२४॥

पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्द्धन, कोलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलकालक ये सब दक्षिणात्य देश हैं । अब अपरान्तों को समझ लो । क्षूर्पारक, कालिधन, तालकटों के सहित लोल—ये सब अपरान्त देश हैं । अब विन्ध्य वासियों का श्रवण कीजिए । मलज, कर्कश, मेलक, धौतक, उत्तमार्ग, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्यक, तोपल, कोशल, त्रैपुर, चंदिशा, तुम्बुर, चर, यवन, पवन, अभय, रुण्डिकेर, चर्चर, होत्रघर्त्त—ये सब जनपद वहाँ पर विन्ध्य के निवास करने वाले हैं । अब यहाँ से आगे जो पर्वतों का आश्रय करने वाले हैं उन देशों को बतलाते हैं ॥१७-२२॥ नीहार, तुपमार्ग, कुरव, तङ्गण, खस, कर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्घ, सकुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात, तोमर, महा परशुत त्रेता आदि चतुर्गुण वृत्त विधि है ॥२३-२४॥

एव तु भारत वर्ष नवसस्थानसंस्थितम् ।
 दक्षिणे परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः ॥६५॥
 हिमवानुत्तरेणास्य कामुकस्य यथा गुणः ।
 तदेतद्भारत वर्ष सर्व्वबीज द्विजोत्तमा ॥६६॥
 ब्रह्मत्वममरेशत्व देवत्व मरुता तथा ।
 मृगयक्षाप्सरयोनि तद्वत् सर्पसरीसृपा ॥६७॥
 स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः ।
 प्रयान्ति कर्मभूविप्रा नान्या लोकेषु विचरन् ॥६८॥
 देवानामपि भो विप्राः सर्व्वेषा मनोरथः ।
 अपि मानुष्यमास्यामो देवत्वात् प्रत्युता क्षितौ ॥६९॥
 मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्य सुरासुरैः ।
 तत्कर्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्मक्षपणोन्मुखैः ॥७०॥

इस प्रकार से यह भारत वर्ष भी सस्यानों में संस्थित है जिसके परे
 दक्षिण में और पूर्व में महोदधि है ॥६५॥ इस भारत वर्ष के उत्तर में
 हिमालय पर्वत है और धनुष के गुण के समान है । हे द्विजोत्तमो ! यह
 यह भारत वर्ष सर्व्वबीज है ॥६६॥ यहाँ पर ब्रह्मत्व है, अमरेशत्व,
 देवत्व तथा मरुत हैं । मृगयक्ष और अप्सराओं की योनि है और उसी
 भाँति सर्प और सृप हैं ॥६७॥ हे विप्रगण ! यहाँ पर सब स्थावरो का
 शुभाशुभ कर्मों के द्वारा इस कर्मभू को प्रयाण करते हैं । ऐसी कर्म
 भूमि लोगों में अन्य कोई भी नहीं है ॥६८॥ हे विप्रो ! देवताओं का भी
 सर्व्वदा यही मनोरथ रहा करता है कि हम लोग भी इस देवत्व से
 मनुष्यत्व को क्षिति में उलटा प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य यहाँ कर्म-दोष में
 जो कुछ किया करता है उस कर्म को मुर एव असुर कोई भी नहीं कर
 सकता है । ये सुरासुर सब अपने कर्मों के निगड (घन्घन) से ग्रस्त हैं
 और उस कर्म के क्षपण करने के लिये उन्मुख हुआ करते हैं ॥७०॥

न भारतसम वर्ष पृथिव्यामस्ति भो द्विजा ।

यत्र विप्रादयो वर्णा प्राप्नुवन्त्यभिवान्छितम् ॥७१॥

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमा ।
 धर्म्यैकाममोक्षाणा प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
 प्राप्यते यत्र तपस फल परमदुर्लभम् ।
 सर्व्वदानफलश्चैव सर्व्वयज्ञफल तथा ॥७३॥
 तीर्थयात्राफलश्चैव गुरुसेवाफल तथा ।
 देवताराधनफल स्वाध्यायस्य फल द्विजा ॥७४॥
 यत्र देवा सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।
 नानाव्रतफलश्चैव नानाशास्त्रफल तथा ॥७५॥
 अहिंसादिफल सम्यक्फल सर्व्वार्तिवाञ्छितम् ।
 ब्रह्मचर्य्यफलश्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
 यत् फल वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् ।
 इष्टापूर्त्त फलश्चैव तथान्यच्छुभकर्मणाम् ॥७७॥

हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के समान इस पृथिवी में कोई भी
 वर्ष नहीं है जहाँ पर विप्र आदि सब वर्णों वाले मनुष्य अपने अभिवाञ्छित
 मनोरथा की प्राप्ति किया करते हैं ॥७१॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य इस भारत
 वर्ष में समुत्पन्न होते हैं वे परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं । ये
 लोग यहाँ पर धर्म, अथ, काम और मोक्ष-इन गुरुपाथों का महान् फल

भी फल प्राप्त होना है तथा इष्टापूर्त फल होता है और अन्य शुभ कामों
वा जो फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाया करता है
॥७६-७७॥

प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।

कः शक्नोति गुणान् वक्तु भारतस्यास्त्रिस्तान्द्विजाः ॥७८॥

एव सम्यङ्गया प्रोक्तं भारत वर्षमुत्तमम् ।

सर्वपापहर पुण्य धन्य बुद्धिविवर्द्धनम् ॥७९॥

य इव शृणुयान्नित्य पठेद्वा नियतेन्द्रियः ।

सर्वपार्ष्वनिर्मुक्तो विष्णुलोक स गच्छति ॥८०॥

हे द्विजोत्तमो ! यह भारत वर्ष ही एक स्थल है जिसमें सभी पुण्य
फल प्राप्त किये जाया करते हैं और वे अन्य यहाँ पर भी नहीं प्राप्त
होते हैं । हे द्विजो ! इस भारत के समस्त गुणों को कहने में कौन समर्थ हो
सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं है जो भारत वर्ष के सब
गुणों का वर्णन कर सके ॥७८॥ इस प्रकार से मैंने यह बतला दिया है
यह भारत वर्ष बहुत ही उत्तम है । यह समस्त पापों के हरण करने
वाला पुण्य, धन्य और बुद्धि का विशेष वर्धन करने वाला है ॥७९॥ इस
भारत वर्ष की महिमा का जो कोई श्रवण करता है या इसका पाठ
करता है और नियत इन्द्रियो वाला रहता है यह सब पापों से विमुक्त
होकर सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८०॥

- ❦ -

२०—कीर्णादित्यमाहात्म्यवर्णन ।

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिमस्थितः ।

ओण्ड्रदेश इति स्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥

समुद्रादुत्तरं तावदयावद्विरजमण्डलम् ।

देशोऽग्रे पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वगलङ्कृतः ॥२॥

तत्र देशे प्रसूता ये ब्राह्मणा सयतेन्द्रिया ।
 तप स्वाध्यायनिरता वन्द्या पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
 श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे वाचाय्यकर्मणि ।
 प्रशस्ता सर्वकार्येषु तत्र देशोद्भवा द्विजा ॥४॥
 पट्कर्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वैवपारगा ।
 इतिहासविदर्भा व पुराणार्थविशारदा ॥५॥
 सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सरा ।
 अग्निहोत्ररता केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निमतपरा ॥६॥
 पुत्रदारघनैर्युक्ता दातार सत्यवादिन ।
 निवसन्नुत्कले पुष्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर भारत वर्ष में दक्षिण सागर में
 स्थित “ओण्ड्र देश”—इस नाम से विख्यात है जो कि स्वर्ग और मोक्ष
 दोनों के प्रदान करने वाला है ॥१॥ समुद्र से उत्तर में उतना भाग
 जितना कि पिरजमडल है वह सब गुणों से अलङ्कृत पुण्य शीलो का देश
 है ॥२॥ उस देश में जो सयत इन्द्रियो वाले ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे
 तपस्या और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और वे सदा ही वन्दना
 करने के योग्य तथा सदा पूज्य हैं । उस देश में समुत्पन्न होने वाले विप्र
 श्राद्ध-दान विवाह-यज्ञ तथा आचार्य के कर्म में और सब ही कार्यों में
 प्रशस्त होते हैं ॥३-४॥ वहाँ पर वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण पट्कर्मों
 में निरत रहने वाले हैं तथा वे इतिहास के ज्ञाता और पुराणों के अर्थ
 के जानने वाले हैं ॥५॥ ये ब्राह्मण सभी शास्त्रों के अर्थों में कुशल हैं—
 यजन करने वाले हैं तथा मातसर्व दोष से रहित होते हैं । इनमें कुछ तो
 अग्निहोत्र करने में रति रखते हैं और कुछ स्मार्त (स्मृतियों द्वारा
 उपदिष्ट) अग्नि में तत्पर रहा करते हैं ॥६॥ वहाँ पर निवास करने
 वाले ब्राह्मण पुत्र-घन और दारा से युक्त होते हैं—दान देने वाले और
 सत्यवादी होते हैं जो सोम इस पुण्यमय और यज्ञोत्सवों में भूषित इस
 उत्कल देश में निवास किया करते हैं ॥७॥

इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसमताः ।

स्वधर्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः ॥८॥

कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।

य दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥

श्रोतुमिच्छाम तद्व्यूहि श्वेत्र सूर्यस्य साम्प्रतम् ।

तस्मिन् देशे सुरथेष्ठ यज्ञास्ते स दिवाकरः ॥१०॥

लवणस्योदयेस्तोरे पवित्रे सुमनोहरे ।

सर्वत्र बालुकाकीर्णे देशे सर्वगुणान्विते ॥११॥

चम्पकाशोकयकुलैः करवीरैः सपाटलैः ।

पुष्पागैः कर्णिकारैश्च वकुलैर्नागिकेसरैः ॥१२॥

तगरैर्धन्ववाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।

मालतीकुन्वपुष्पैश्च तथाग्न्यैर्मल्लिकादिभिः ॥१३॥

वैतकीयनक्षण्डैश्च सर्वत्र कुसुमोज्ज्वलैः ।

कादम्बलैर्कुचैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः ॥१४॥

विप्रों से भक्तिरिक्त अन्य भी तीनों वर्ण क्षत्रिय आदि सुसमत् होते हैं और ये सभी अपने २ धर्मों में निरत रहने वाले शान्त और धार्मिक बर्तन पर रहा करते हैं ॥८॥ उस देश में व्यवस्थित “कोणादित्य”- इस नाम से विख्यात भगवान् सूर्यदेव हैं जिन भुवनभास्वर का दर्शन करके मनुष्य सभी प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥९॥ मुनिगण ने कहा—हे सुरो में परम श्रेष्ठ ! जिस भाग में वह दिवाकर भगवान् विराजमान हैं और इस समय में जो सूर्य का खेल उस देश में विद्यमान है उसके विषय में हम लोग अवण करने की अभिलाषा रखते हैं । कृपा करके हे भगवन् ! अब आप उसका वर्णन कीजिए ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस देश में जो खारी समुद्र है, उसके उत्तर दिशा के भाग में परम पवित्र सुमनोहर और सभी गुणों से समुत्त एक भाग है जो सर्वत्र बालुका से घिरा हुआ है तथा चम्पक, अशोक, बकुल, करवीर, पाटल, पुष्पाग, कर्णिकार, नागकेसर, नगर, धन्ववाण, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, गुन्द तथा अन्य मल्लिका आदि से और वैतकी के वनपक्षों से एवं सभी

ऋतुओं के पुष्पो से युक्त उज्ज्वल, कदम्ब, लकृच, शाल, पवस और देवदारु के वृक्षों से घिरा हुआ है ॥११-१४॥

सरलं मुचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितैतरै ।

अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैः राम्रातकैस्तथा ॥१५॥

तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः ।

अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समनङ्कृतम् ॥१६॥

क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम् ।

समस्ताद्योजनं साग्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१७॥

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः ।

कोणादित्य इति ख्यातो भूक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१८॥

माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्या सयतेन्द्रियः ।

कृतोपवासो यत्रेत्य स्नात्वा तु मकरालये ॥१९॥

कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवः दिवाकरम् ।

सागरे विधिवत् स्नात्वा शठवर्ष्यन्ते समाहितः ॥२०॥

देवानृषीन्मनुष्याश्च पितॄन् सन्तर्प्य च द्विजाः ।

उत्तीर्ष्य वाससी धौते परिधाय सुनिर्मले ॥२१॥

वहाँ पर साल मुचुकुन्द के वृक्ष हैं तथा वह स्थल चन्दन, सितैतर चन्दन, अश्वत्थ एवं अनेक प्रकार के वृक्ष—सप्तपर्ण, आम्र, आम्रातक, ताल, पूगफल, नारियल, कपित्थक आदि माना प्रचार के द्रुमों से समलङ्कृत है ॥१५-१६॥ वहाँ पर ही जगत् में प्रख्यात रविदेव का परम पुण्यक्षेत्र विद्यमान है । वह धारो और डेढ योजन विस्तार वाला क्षेत्र है जो भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है ॥१७॥ वहाँ पर स्वयं देव सहस्रांशु दिवाकर साक्षात् विराजमान रहते हैं । ब्रिनका शुभ नाम “कोणादित्य” यह प्रसिद्ध है और जो भुक्ति मुक्ति के प्रदाता हैं ॥ १८॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि के दिन में मनुष्य सयत इन्द्रिय वाला होकर उपवाग करके वहाँ आये और मकरालय में स्नान करे ॥ १९॥ शौच करके विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे और रात्रि के अन्त में समाहित होकर सागर में विधि

के साथ स्नान करे ॥२०॥ हे द्विजगणो ! फिर उस मनुष्य को वहाँ पर देव ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिए । फिर पहिले पहिले हुए वस्त्रों को उतार कर निर्मल धुले हुए दूसरे शुद्ध वस्त्र धारण कर लेने चाहिए ॥२१॥

आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः ।
उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा ॥२०॥
विलिख्य पद्म मेधावी रक्तचन्दनवारिणा ।
अष्टपत्रं कैसराढ्यं वत्सलं चोद्धर्कणिकम् ॥२१॥
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसयुतम् ।
रक्तपुष्प सदभञ्ज्य प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥२२॥
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटं कृत्वा तिलादिकम् ।
पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्र पात्रेण विन्यसेत् ॥२३॥
वारन्यासाङ्गवन््यास कृत्वाङ्गहृदयादिभिः ।
आत्मानं भास्कर धात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥२४॥
मध्ये चाग्निदले धीमान्न शृते श्रामने दने ।
कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥२५॥
प्रभूत विमल सारमाराध्य परम सुखम् ।
सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥२६॥

इसके अनन्तर आचमन करे और प्रयत्न होकर उस समुद्र के तट पर उपविष्ट हो जावे । उस उदय के समय में उता समय में सूर्य देव की ओर पूर्व दिशा में मुख करके स्थित हो जाना चाहिए ॥२०॥ यहाँ पर मेधावी भक्त को चाहिए कि रक्त चन्दन को घिसकर उससे एक पत्र का बिलेखन करे । यह पत्र अष्टदल वाला कैसरो से युक्त-वत्सल और ऊर्ध्वकर्णिका वाला पद्म बनाना चाहिए ॥२१॥ तिल-तण्डुल-रक्त चन्दन से युक्त तोय-रक्त पुष्प-दभं इनकी एक ताम्र के पात्र में प्रक्षिप्त करना चाहिए ॥२२॥ यदि ताम्र का पात्र न हो तो आक के पत्तों के दोनों से तिल आदिक पदार्थों को उनमें रखे और हे मुनिगणो ! पात्र के द्वारा पात्र को विन्यस्त करना चाहिए ॥२३॥ उदय आदि अङ्गों से करन्यास तथा

अङ्गन्यास करे और आत्मा को भास्कर का ध्यान करके भली भाँति श्रद्धा से समर्पित होना चाहिए । २६॥ धीमान् को मध्य अग्निदल में नैऋत वासन दल में और कामारि गोचर में तथा पुन मध्य में पूजन करना चाहिए ॥२७॥ प्रभूत विमल सार आराधना कर , परम सुख का सम्पूजन करके वहाँ पर गगन से भगवान् भास्कर का आवाहन करना चाहिए ॥२८॥

कर्णिकोपरि सस्थाप्य ततो मुद्रा प्रदर्शयेत् ।

कृत्वा स्नानादिक सर्व्व ध्यात्वा त सुसमाहित । २९

सितपद्मोपरि रवि तेजोविश्वे व्यवस्थितम् ।

पिङ्गाक्ष द्विभुज रक्त पद्मपनारुणाम्बरम् ॥३०

सर्व्वलक्षणसमुक्त सर्व्वभरणभषितम् ।

सुरूप वरद शान्त प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१

उद्यन्त भास्कर दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् ।

ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्या धरणी गत ॥३२

कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यत ।

व्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्यागार्घ्य निवेदयत् ॥ ३

अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नवाग्य प्रयच्छति ।

श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यत ॥३४

अग्निनिष्ठं तिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिशु च ।

हृच्छिरश्च शिखावमनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५

उस लिखित पत्र की कर्णिका पर सस्थापित करके इसके उपरान्त मुद्रा को प्रदर्शित करे । स्नानादिक सब क्रिया करके सुसमाहित होकर उनका ध्यान करे ॥२९॥ तेजो विश्व सित पद्म के ऊपर में व्यवस्थित रवि का ध्यान करना चाहिए । पिङ्गल वण के नेत्रों वाले, दो भुजाओं से युक्त रक्त वण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से समुत्, धी रविदेव सब गुणलक्षणा से समन्वित है और समस्त आभरणों से सुशोभित है । सुन्दर रूप वाले—वरदान प्रदान करने वाले—परम शान्तस्वरूप से युक्त और प्रभामण्डल में मण्डित है ॥३०-३१॥ घने सिन्दूर के महान्

उगते हुए सूर्यदेव का दर्शन करे । इसके अनन्तर उस पात्र को लेकर जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर उस पात्र को शिर पर रख करके चित्त को एकाग्र करे और मौनी रहे इसके अनन्तर व्यक्षर मन्त्र से सूर्यदेव के लिये अर्घ्य देवे ॥३२-३३॥ जो अदीक्षित होवे तो उसके नाम से ही अर्घ्य देता है । क्योंकि थढ़ा के द्वारा भाव से युक्त मनुष्य से ही सूर्यदेव भक्ति से ग्रहण करने के योग्य है ॥३४॥ अग्नि, निर्गुति, वामु, ईशान, मध्यपूर्वादि दिशाओं में हृदय, शिर, शिखा, वस्त्र, नेत्र और अस्त्र का पूजन करना चाहिए ॥३५॥

दत्तार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च ।

जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां वद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥

ये वार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः ।

ग्राह्याः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्राश्च सयताः ॥३७॥

भक्तिभावेन सतत विशद्वेनान्तरात्मना ।

ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परा गतिम् ॥३८॥

त्रिलोक्यदीपक देव भास्करं गगनेरतम् ।

ये सथयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९॥

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्करोय यथोदितम् ।

तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥

तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने ।

आदित्याय शुचिभूत्वा पुष्पगन्धमनोरमैः ॥४१॥

एव ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्या सुसमाहितः ।

आदित्याय शचिः स्नातः स लभेदीप्सित फलम् ॥४२॥

अर्घ्य देकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य सब समर्पित करके तथा जप-स्तवन और नमस्कार नरके और मुद्रा बाँध कर विसर्जन करे ॥३६॥ जो लोग नियत इन्द्रिय वाले भगवान् सूर्य को अर्घ्य दिया करते हैं ग्राह्य, क्षत्रिय, वंश्य और शूद्र सयत होकर सर्वदा भक्ति की भावना से तथा विशुद्ध अन्तरत्मा से सूर्यदेव को अर्घ्य देते हैं वे अभिमत पदार्थों का उपयोग करके परम गति को प्राप्त हुआ करते हैं ॥३७-३८॥ त्रिलोकी

के दीपक देव भास्कर को जो गगनरत रहते है जो लोग इनका सधर्म ग्रहण करते हैं । वे मनुष्य सदा सुख के पात्र हुआ करते हैं ॥१८॥ जिस समय तक भगवान् भास्कर देव के लिये जैसा बताया गया है वैसा अर्घ्य नहीं दिया जाता है तब तक भगवान् विष्णु देव अथवा शङ्कर एवं सुरेश्वर का पूजन नहीं करना चाहिए ॥४०॥ अतएव प्रबल प्रयत्न में समास्थित होकर आये दिन सूर्य देव को अर्घ्य देना ही चाहिए । भगवान् आदित्य के लिये मनोरम और सुगन्धित पुष्पों के साथ पवित्र होकर अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार से सप्तमी तिथि के दिन परम समाहित होकर स्नान करके और पवित्र होकर भगवान् आदित्य के लिये जो मनुष्य अर्घ्य दिया करता है यह अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥४२॥

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् ।

विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३॥

य य काममभिध्यायन् सूर्यायार्घ्यं प्रयच्छति ।

तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुष सुधी ॥४४॥

स्नात्वा च सागरे दत्त्वा सूर्यायार्घ्यं प्रणाम्य च ।

नरो वा यदि वा नारा सर्वकामफल लभेत् ॥४५॥

ततः सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यत ।

प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु त्रिं प्रदक्षिणम् ॥४६॥

पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्धं मुनिसत्तमा ।

गन्धं पुष्पंस्तथा दीपं धूर्त्तं चैव नरपि ॥४७॥

दण्डवत् प्रणिपातश्च जयशब्दस्तथा स्तव ।

एव सम्पूज्य तं देव महत्साधु जगत्पतिम् ॥४८॥

दशानामश्वमेवानां फल प्राप्नोति मानव ।

सद्यः पापविनिर्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नरः ॥४९॥

भगवान् आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग से मुक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाता करता है और धन की प्राप्ति की इच्छा रखता है उसकी धन प्राप्त हो जाता करता है । विद्या का चाहने वाला विद्या प्राप्त

योग को प्राप्त करके फिर वह मोक्ष को प्राप्त किया करता है । हे मुनि श्रेष्ठो ! इस प्रकार से मैं आप सब लोगों के सामने यह परम दुत्तम क्षेत्र का वर्णन कर दिया है जो कोणाक उदधि के तट पर पुक्ति और मुक्ति दोनों के फलों को प्रदान करने वाला है ॥६४॥



२१—सूर्यपूजाप्रकरण

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भयता यदुदाहृतम् ।
 भास्करस्य पर क्षेत्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥
 न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्त सुखदा कथाम् ।
 तव वक्तव्योद्भवा पुण्यामादित्यस्याधनाशिनाम् ॥२॥
 अतः पर सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतावर ।
 देवपूजाफल यच्च यच्च दानफल प्रभो ॥३॥
 प्रणिपाते नमस्कारे तथा च व प्रदक्षिणे ।
 दीपधूपप्रदाने च समाज्जनविधौ च यत् ॥४॥
 उपवासे च यत् पुण्य यत् पुण्य नक्तभोजने ।
 अर्घ्यश्च वीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा सप्रदीयते ॥५॥
 कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देव प्रसीदति ।
 एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो भास्कर देव का परमोत्तम क्षेत्र का वर्णन किया है जो कि भोगों और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है हम लोगों ने श्रवण कर लिया है ॥१॥ किन्तु ऐसी मुक्ति देने वाली क्या वी मुनते हुए भी हम लोग तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं जो कि आपसे मुगारविन्द के द्वारा कही गयी है और परम पुण्यमयी तथा आदित्य देव की क्या कथा का विना करने वाली है ॥२॥ हे गुरो म परमश्रेष्ठ ! इससे भी आगे जो देव की पूजा का फल है और जो जो धन देने का पुण्य फल होता है उस भी आप वर्णित कीजिए ।

आप तो यत्ताओ मे परमाधिक श्रेष्ठ वक्ता हैं ॥३॥ मूर्त्य देव के प्रणिपात करने मे नमस्कार मे तथा उनकी परिक्रमा करने मे धूप दीप समर्पित करने मे और वहाँ पर समाजर्जन करने मे उपवाम मे तथा रात्रि के भोजन मे जो भी पुण्य होता है उसे बतलाइये । अर्घ्य किस प्रकार का होता है और वह वहाँ पर दिया जाता है । भगवान् सूर्यदेव की भक्ति किस तरह से की जाती है तथा देव किस प्रकार से परम प्रसन्न हुआ करते हैं ? हे गुरुश्रेष्ठ । यह सभी हम लोग श्रवण करना चाहते हैं ॥४-६॥

अर्घ्य पूजादिक सर्व्व भास्करस्य द्विजोत्तमाः ।

भक्ति श्रद्धा समाधिश्च कथ्यमान निबोधत ॥७॥

मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते ।

ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुष्व सुसमाहिताः ॥८॥

तत्कथा श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयीत वा ।

अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९॥

तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ।

तत्कर्मभृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ॥१०॥

देवायै क्रियमाणानि यः कर्मणि नुमन्यते ।

कीर्त्तनाद्वापरो विप्राः स वै भक्ततरो नरः ॥११॥

नाम्नासूयेत तद्भवतान् ननिन्द्याच्चान्यदेवताम् ।

आदित्यव्रतचारी च स वै भक्तनरो नरः ॥१२॥

गच्छतिष्ठन् स्यपक्षिघ्नन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।

गः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्तनरो नरः ॥१३॥

एवमिद्या त्वियं भक्तिः सदा वाय्या विजानता ।

भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ॥१४॥

श्री प्रह्लादी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! अर्घ्य और अर्चना आदि सब तथा मूर्त्य की श्रद्धा और समाधि मेरे द्वारा बही जा रही है उसको अब आप सभी भक्ति समझ लीजिए ॥७॥ मन द्वारा जो भावना की जाती है वही अभीष्ट भक्ति होती है और यही यज्ञ बही जाया जाती है । जो ध्यान किया जाता है वही समाधि है—ऐसा कहा गया है । अब आप

सोग पूर्णतया सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥८॥ उनकी कथा को जो भक्तों को श्रवण कराता है तथा उन भक्तों का वर्णन किया करता है एव अग्निदेव की जो श्रुत्या किया करता है वही परम सनातन भक्त होता है ॥९॥ जो अपने इष्टदेव में ही अपना चित्त लगाये रहना है—अहं निरा उन्ही में मन को रमाता है—जो देव की पूजा में रति रखता है और सदा इष्टदेव के कर्मों में करने में सलग्न रहता है वही सनातन भक्त कहा जाया करता है ॥१०॥ देव के लिये किये हुए कर्मों की जो अनुमोक्ति किया करता है हे विप्रगण ! जो उन कर्मों का ही कीर्तन करता है वह मनुष्य ही अधिक भक्त हुआ करता है ॥११॥ इष्टदेव के भक्तों की कभी भी व्यस्यसूया न करे तथा किसी भी व्यस्य देवता की निंदा नहीं करनी चाहिए । जो ऐसा भक्त आदित्यदेव व यत का समाचरण करने वाला हो वह मनुष्य अधिक भक्त होता है ॥१२॥ जो समन करता हुआ स्थित रहकर शयन करते हुए सूर्षते हुए और उन्मेष एव निमेष करते हुए भी नित्य ही भगवान् आत्मार देव का स्मरण किया करता है वह विशेष भक्त मनुष्य हुआ करता है ॥१३॥ इस प्रकार की यह भक्ति होती है और इस भक्ति को जानवान् पुरुष के द्वारा सदा ही करनी चाहिए । ऐसी भक्ति से सभाधि से तथा मानसिक सब स ही मूल्य देव की उपासना करनी चाहिए ॥१४॥

क्रियते नियमा यस्तु दान विप्राय दीयते ।

प्रतिगृह्णन्ति त देवा मनुष्या पितरस्तथा ॥१५॥

पत्र पुष्प फल तोय यद्भवत्या समुपाहृतम् ।

प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्तिकान् वज्रयन्ति च ॥१६॥

भावशुद्धिं प्रयोक्तव्या नियमाचारसयुता ।

भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्वं मफल भवेत् ॥१७॥

स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वत ।

उपवासेन भक्त्या वै सत्त्वपापे प्रमुच्यते ॥१८॥

प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कार उराति य ।

तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशय ॥१९॥

भक्तियुक्तो नरो योऽसी रवे. कुर्व्यात् प्रदक्षिणाम् ।
 प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥२०॥
 सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्व्याद्ध्योमप्रदक्षिणाम् ।
 प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि ॥२१॥

जो यह सब नियम का पालन किया जाता है और जो विप्र के लिये दान दिया जाया करता है उसको देवगण-पितृगण और मनुष्य सभी ग्रहण किया करते हैं ॥१५॥ जो हादिक भक्ति के साथ पत्र-पुष्प-फल और जल भी समर्पित किये जाते हैं उसको देव ग्रहण किया करते हैं किन्तु जो नास्तिक होते हैं अर्थात् देवों की सत्ता को ही नहीं मानते हैं उनको विजित कर दिया करते हैं ॥१६॥ नियमों तथा आचारों से सम्पन्न जो हादिक भाव की शुद्धि है उसी का प्रयोग करना चाहिए भाव-शुद्धि के द्वारा जिस कर्म को भी किया जाता है वह सभी सफल हुआ करता है । सबसे मुख्य हृदय की भावना की शुद्धि ही होती है ॥१७॥ भगवान् विद्यमान् की पूजा-स्तुति-जय उपहार और उपवास के द्वारा जो वि भक्ति की भावना से किये जाते हैं मनुष्य सभी पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥१८॥ जो अपने मस्तक को भूमि में टेक कर सूर्य देव को नमस्कार करता है वह उसी क्षण में समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१९॥ जो भक्ति से युक्त मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की ही परिक्रमा करली है अर्थात् उसे समस्त भूमि की प्रदक्षिणा वा पुष्प-फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२०॥ मन में सूर्य देव का ध्यान करके जो ध्योम में प्रदक्षिणा किया करता है उसने सभी देव-ताओं की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त कर लिया है ॥२१॥

एवाहरो नरो भूत्वा पृथ्वा योऽर्चयते रविम् ।
 नियमयतचारो च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥२२॥
 सप्तम्या वा महाभागाः सोऽश्वमेधफल लभेत् ।
 अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२३॥

सप्तम्यामथवा षष्ठ्या स याति परमा गतिम् ।
 कृष्णपक्षस्य सप्तम्या सोपवासो जितेन्द्रिय ॥२४
 सत्त्वंरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।
 पद्मप्रभेण यानेन सूर्यलोके स गच्छति ॥२५
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नर ।
 सत्त्वंशुल्कोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६
 सत्त्वंपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके स गच्छति ।
 अर्कसम्पुटसयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥२७
 क्रमवृद्ध्या चतुर्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः ।
 ब्रह्म्या सवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमा भवेत् ॥२८

एक बार ही आहार करके जो मनुष्य पक्षी तिथि में रवि देव की अर्चना किया करता है तथा नियमों में समास्थित होकर ब्रह्मर्षि धारण करता है एवं भक्तिभाव से युक्त होता है अथवा सप्तमी तिथि में ऐसा करता है हे महाभागो ! वह मनुष्य अथर्वेय यज्ञ के यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है । जो एक अहोरात्र के उपवास को करके भास्कर देव की पूजा किया करता है । पक्षी या सप्तमी किसी भी तिथि में करे तो वह मनुष्य परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है । मांस की कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि में जितेन्द्रिय होकर जो उपवास करता है और सब रत्नों के उपहारों के द्वारा सूर्य देव का अर्चना किया करता है वह पक्ष के समान प्रभा वाले यान के द्वारा अन्त में सीधा सूर्यलोक में गमन किया करता है ॥२२-२५॥ मांस के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में मनुष्य उपवास परायण होकर सम्पूर्ण शुक्ल वर्ष के उपहारों से जो भगवान् भास्कर देव का पूजन करता है वह सब पापों से विमुक्त होकर सूर्यलोक को गमन किया करता है । अर्क सम्पुट से मयुक्त उदक का प्रसृत पान करे तथा क्रम वृद्धि से चौबीस को एक एक करके पुन क्षीण करता जावे । इस प्रकार से दो वर्षों में समाप्त नियम वाला होता है ॥२६-२८॥

सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।
 शुल्कपक्षस्य सप्तम्या यदादित्यदिन भवेत् ॥२९॥
 सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
 स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
 सर्वं विजयसप्तम्या महापातकनाशनम् ।
 ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥३१॥
 यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् ।
 येषां धर्म्म्याः क्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ॥३२॥
 न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
 श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३॥
 उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम् ।
 चित्रमानु विचित्रैस्तु कुशुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
 पूजयेत् तोपवासो यः स कामानीप्सितं लभेत् ।
 घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥३५॥
 आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते ।
 दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३६॥

यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं की प्रदान करने वाली होती है और परम प्रशस्त मानी गयी है । शुक्ल पक्ष की सप्तमी में जब आदित्य का दिन होवे ॥२९॥ यह विजया नाम वाली सप्तमी बड़ी जाती है । उसमें दिये हुए दान का महान् फल हुआ करता है । चाहे उस दिन में स्नान किया जावे कुछ भी दुःख एवं सत्कर्म किया जावे सब विजय सप्तमी में महान् पातकों का नाश करने वाला होता है । जो मनुष्य आदित्य के दिन में प्राप्त होने पर श्राद्ध किया करते हैं और महाश्वेत का यजन किया करते हैं वे जो भी कुछ चाहते हैं उसे ही प्राप्त कर लिया करते हैं । जिसकी समस्त क्रियाएँ धर्म युक्त होती हैं और सदा भगवान् भास्कर देव का उद्देश्य ग्रहण करते ही की जाया करती हैं उनको कुल में कोई भी दरिद्र अथवा व्याधिग्रस्त समुत्पन्न नहीं हुआ करता है । श्वेत-रक्त अथवा पीत मृत्तिका में जो उपलेपन करने वाला होता है यह

चिन्तित फल को प्राप्त किया करता है। जो निचभानु का विविध, सुगन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा उपवास करके पूजन किया करता है वह अपनी अभीप्सित कामनाओं की प्राप्ति किया करता है। घृत से दीपक को जलाकर अथवा तिल तैल से दीपक जलाकर जो भगवान् आदित्य देव की नित्य अर्चना किया करता है वह कभी भी बन्धु से क्षीण नहीं होता है। दीपदाता मनुष्य नित्य ही ज्ञान दीप से दीप्त रहता है ॥३००॥

३६॥

तिला, पवित्र तैल वा तिलगोदानमुत्तमम् ।

अग्निकार्ये च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७॥

दीप ददाति यो नित्य देवतायनेषु च ।

चतुष्पयेषु रघ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ ८॥

हविर्भि, प्रथम, कल्पो द्वितीयश्चोपधीरसं ।

वसामेदोस्थिनिर्यासैर्न तु देय कथञ्चन ॥३८॥

भवेद्दूर्ध्वगतिद्वीपो न कदाचिदधोगतिः ।

दाता दीप्यति चाप्येव न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥४०॥

ज्वलमान सदा दीप न हरेन्नापि नाशयेत् ।

दीपहर्त्तानरो बन्ध नाश क्रोध तमो ब्रजेत् ॥४१॥

दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजने ।

य समालमते नित्य कुङ्कुमागुरुचन्दनै ॥४२॥

तिल परम पवित्र है अथवा तिलो या तैल और तिलो वा गोदान भी परमोत्तम होता है। अग्नि कार्य में और दीप में यह महापातकों का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो पुरुष नित्य प्रति देवों व आत्माओं में दीपक जलाया करता है—चतुष्पयो (चौराहों) में—रघ्याओं में (गवियों में) दीपक जलाना है वह परम रूपवाना और सुभग हुआ करता है ॥३८॥ हविषों से प्रथम पत्न्य है और दूसरा पत्न्य ओषधियों के रसों से होता है। वसामेद-अस्थि और निर्यासों से कभी भी नहीं देना चाहिए ॥ ३९॥ दीप हमेशा ऊर्ध्व गति वाला ही होता चाहिए। दग प्रकार से दीपों का दाता दीप्त होता है और कभी भी तिर्यग् गति

को प्राप्त नहीं किया करता है ॥४०॥ जलने हुए दीपक को सदा हरण न करे और न उसका नाश ही करे । दीपक का हरण करने वाला पुरुष धन्धन-नाश-क्रोध और तम को प्राप्त किया करता है ॥४१॥ दीपो को दान करने वाला पुरुष स्वर्ग लोक में दीप माला के ही समान राजित होता है । जो मनुष्य नित्य ही कुकुम-अगुद और चन्दन के द्वारा समावेपन किया करता है वह धनी होता है ॥४२॥

सम्पद्यते नर प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया ।
रक्तचन्दनसमिश्रे रक्तपुष्पै शुचिर्नरः ॥४३॥
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं सर्वत्सराल्लभेत् ।
उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥४४॥
जपक्षभिमुखं किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा ।
आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥४५॥
अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्वं साङ्गं प्रदीपयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्तं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६॥
सुवर्णधेन्वनहुहवमुघावस्नसयुतम् ।
अर्घ्यप्रदस्ता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥४७॥
अग्नी तोयेऽन्तरिक्षे च शुची भूम्या तथैव च ।
प्रतिमाया तथा पिण्ड्या देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८॥
नापसद्य न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा ।
सपृतं गुग्गुलुं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥४९॥

ऐसा पुरुष प्राणान्त होने पर धन एवं यश से और श्री से सम्पन्न हुआ करता है । जो मनुष्य पवित्र होकर रक्त चन्दन से समुत रक्त वर्ण के पुष्पों से सदा उदय काल में अर्घ्य दिया करता है वह पुरुष एवं वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । जो उदय काल से आरम्भ करे जब तक अस्तकाल हो, स्थित रहता है और सूर्य के अभिमुख होकर किसी मन्त्र का जाप या किसी स्तोत्र का पाठ किया करता है । यह परमोत्तम आदित्य व्रत है जो महापातकों का नाश करने वाला होता है ॥४३-४५॥ अर्घ्य के सहित सब साङ्ग प्रदान करना चाहिए । उदय काल में

धृद्धा से युक्त होकर ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥४६॥ सुवर्ण धेनु-अनडवान् वसुधा और वस्त्र से युक्त अश्व के देने वाला पुण्य सात जन्मानुग फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ अग्नि में, जल में, अन्तरिक्ष में तथा पवित्र भूमि में, प्रतिमा में और पिण्डी में प्रयत्न पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी तथा बाईं ओर न देवे और सदा ही अभिमुख होकर ही अर्घ्य देना चाहिए । धृत के साथ गुग्गुलु को भी दवे और भक्ति से युक्त होकर ही सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४९॥ ॥

तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नान सशय ।

श्रीवास चतुरस्रश्च देवदारु तथैव च ॥५०॥

कूर्पू रागुरुधूपानि दत्वा च स्वर्गगामिन ।

अयने उत्तरे सूर्यमथवा दक्षिणायने । ५१

पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापे प्रमुच्यते ।

विषुवेऽपराणेऽपि पञ्चशीतिमुखेषु च ॥५२॥

पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापे प्रमुच्यते ।

एव वेलासु सर्वसि सुसर्वकालश्च मानव ॥५३॥

भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके गृहीयते ।

कुसरे पायसे पूषे फलमूलघृतोदने ॥५४॥

घर्षि कृत्वा तु सूर्याय सर्वान् कामानवाप्नुया

घृतेन तपण कृत्वा सत्त्वसिद्धो भवेन्नर ॥५५॥

क्षीरेण तपण कृत्वा मनस्त्रापनं युज्यते ।

दध्ना तु तपण कृत्वा कार्यसिद्धिं लभेन्नर ॥५६॥

भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य देने वाला मनुष्य उसी क्षण में तुरन्त सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है-इसमें कुछ भी सशय नहीं है । श्री वास-चतुरस्र देवदारु कूर्पूर-अगुरु धूप देकर मनुष्य स्वर्गगामी हो जाया करते हैं । उत्तरायन में अयना दक्षिणायन में सूर्यदेव का पूजन करने विशेष रूप से मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है । विषु वेनु-उपरान (ग्रहण) में और पञ्चशीति मुखों में विशेष

रूप से पूजन करके मानव सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है । इस प्रकार से सब वेलाओं में और सर्वकाल में मनुष्य भक्ति की भावना से जो भी सूर्य का अर्चन करता है वह सूर्यलोक में पहुँच कर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । कृसर-पायस-पूआ-फल-मूल घृत और ओदन आदि के द्वारा सूर्यदेव के लिये दक्षिण देकर मनुष्य सभी मनोरथों की प्राप्ति किया करता है । घृत के द्वारा तर्पण करके मनुष्य सर्वसिद्ध हो जाता है ॥५० ५५॥ क्षीर के द्वारा तर्पण करके मनुष्य मानसिक तापों से कभी युक्त नहीं होता है । दधि से सूर्यदेव का तर्पण करके मनुष्य कार्य की सिद्धि का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

स्नानाथमाहरेद् यस्तु जल भानोः समाहितः ।

तीर्थेषु शुचितापन्नः स याति परमा गतिम् ॥५७॥

छत्र ध्वज वितान वा पताका चामराणि च ।

श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८॥

यद्यद्वद्ब्रवी नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति ।

तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९॥

मानस वाचिक वापि कायज यच्च दुष्कृतम् ।

सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति ॥६०॥

एकाहेनापि यद्भानो. पूजाया प्राप्यते फलम् ।

यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥६१॥

जो पुरुष भावधान होकर भानुदेव के स्नान के लिये जल का आहरण किया करता है वह तीर्थों में शुचिता को प्राप्त होने वाला परम गति को प्राप्त किया करता है ॥५७॥ छत्र-ध्वजा-वितान पताका-चमर इन वस्तुओं को परमाधिक श्रद्धा से जो भानुदेव को समर्पित करता है वह अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ॥५८॥ मनुष्य क्रिम-क्रिम श्रद्धा को भक्तिभाव के साथ आदित्य देव के लिये अर्पित करता है उस उस वस्तु को शतगुना एव सहस्र गुना भगवान् भास्कर उत्तापन कर दिया करते हैं ॥५९॥ मानस-वाचिक और कायज जो भी कुछ उपहृत होता है वह सभी समयदेव के प्रगाढ से पूज्यता विनष्ट हो

जाया करता है ॥६०॥ एताह भानुदेश की पूजा का जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है वह यथाक्त दक्षिणा जाने विप्रों के द्वारा सैकड़ों कृतुओं से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है ॥६॥

- * -

२२ — आदित्यमाहात्म्यवर्णन (१)

अहो देवस्य माहात्म्य श्रुतमेव जगत्पते ।
 भास्करस्य सुरश्रेष्ठ यदतस्तेषु दुर्लभम् ॥१॥
 भूय प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् पर कीर्तुहल हि न ॥२॥
 गृहस्थो ब्रह्मचारी च यानप्रस्थोऽथ भिक्षुक ।
 य इच्छेन्मोक्षमास्थ तु देवता का यजेत स ॥३॥
 कुतो ह्यस्याक्षयं स्वर्गं कुतो नि श्रेयस परम् ।
 स्वगतश्चैव किं कुर्याद्येन च च्यवते पुन ॥४॥
 देवानां चात्र को देवः पितॄणाञ्चैव कः पिता ।
 यस्मात् परतर नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५॥
 कुत सृष्टमिदं विश्वं सर्वं स्वावरजङ्गमम् ।
 प्रलये च कामभ्येति तद्भवान् जनतृमहति ॥६॥
 उद्यन्तेर्वप कुस्ते जगद्वित्तिमिर करे ।
 नात परतरो देव कश्चिदन्यो द्विजोत्तमा ॥७॥

भुक्तिमण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! जगत् के पति भास्कर देव का माहात्म्य हम लोगों ने आप के मुख से श्रवण किया है जोकि बहुत ही दुर्लभ है । हे जगन् के स्वामिन् ! हे देवेश ! आपसे हम लोग पुन कुछ पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर वह बतनाइये । हे ब्रह्मन् ! हमको इस बात के जानने के लिये हृदय में बड़ा कीर्तुहल हो रहा है ॥१॥ २॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी इनमें जो मोक्ष चाहता है वह किरा देव का यजन करे ? ॥३॥ इस प्राणी का अक्षय स्वर्ग कैसे होता है और परमनिश्चेष्ट्यम कैसे हुआ करता है । यदि यह स्वर्ग में भी पुण्या के प्रभाव से पहुँच जावे तो वहाँ पर भी उसे क्या करना चाहिये जिससे पुन उसका ज्यवन वहाँ से न होये ॥४॥ यहाँ पर देवी का भी देव कौन है और पितृगणों का भी पिता कौन है ? हे सुरेश्वर । हमको उसे बतलाइये जिससे कोई बड़ा नहीं है ॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिसमें जड़ और चेतन सभी है कैसे सृजन किया गया है और जिस समय में महाप्रलय होता है तो यह सम्पूर्ण निषव किसमें चला जाया करता है— यह सब हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे द्विजोत्तमो । यह भगवान् भास्कर उदय होते ही इस समस्त जगत् को अन्धकार से रहित कर दिया करता है ? इससे बड़ा अन्य कोई भी देवता नहीं है अर्थात् यह सूर्य देव ही परात्पर देव हैं ॥७॥

अनादिनिघ्नो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष श्रीलोकान् भवनुरक्षिभिरुत्तमैः ॥८॥
सर्वदेवमयो ह्येष तपता तपनो वरः ।
सर्वस्थ जगतो नायः सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥९॥
सक्षिपर्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः ।
एष भाति तपत्येष वर्यत्येष गभस्तिभिः ॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतमावनः ।
न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥
पितृणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता ।
ध्रुवस्थान स्मृत ह्येतद्यस्मात्प्र ज्यवते पुनः ॥१२॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमम्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥
योगिनश्चाप्यसख्यातास्त्यक्त्वा गृहकनेवरम् ।
वायुर्भूत्वा विशन्त्यस्मिस्तेजोराशी दिवाकरे ॥१४॥

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता ।

यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥

अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।

स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुहः ॥२१॥

इस देव की सहस्रों रश्मियाँ होगी हैं । जैसे पक्षीगण द्रुम की शाखाओं में आश्रय लेकर चाम किया करते हैं वैसे ही मुनिगण देवों के सहित-ससिद्ध-जनक आदि गृहस्थ-योग के धर्म वाले राजा लोग ब्रह्मादी बाल खिल्यादि ऋषिगण-ब्रानप्रस्थ-य-य व्यासादि सन्यासी वे सभी योग में समाविष्ट होकर सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हुआ करते हैं और आश्रय लेते हैं ॥१५-१७॥ व्यास देवजी के पुत्र श्रीमान् शुक्रदेव योग धर्म को प्राप्त करके आदित्य की किरणों में पहुँच कर अपुनर्भाव को प्राप्त हो गये हैं ॥१८॥ ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देवगण केवल शब्द से ही कहे जाने वाले हैं और श्रुति ही इनका मुख्य है अर्थात् इनकी वाणी श्रुति को ही कहा जाता है । यह सूर्य देव तो प्रदक्ष पर देव हैं जोकि अन्धकार का विनाश करने वाले हैं ॥१९॥ इसलिये जो कोई अपना शुभ चाहता है उसको सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी देवता में भक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे सब अन्य विष्णु आदि देवगण इति में अगम्य होते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं दिया करते हैं । इसलिये आप सब को निरन्तर भगवान् रविदेव का अभ्यर्चन करना चाहिए । वह रविदेव इस सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता और गुह हैं ॥२०-२१॥

अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाती जगत्पतिः ।

मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२॥

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।

सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दशः ॥२३॥

लोकानां स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित् ।

सृष्ट्वा प्रजापतीन् सव्यानिमृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥२४॥

ततः शतसहस्राशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम् ।

कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपगच्छते ॥२५॥

इन्द्र धाताय पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्य्यमा भग ।

विवस्वान् विष्णुरशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥

आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना ।

कृत्स्न जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमा ॥२७॥

तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता ।

स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥२८॥

हे द्विजोत्तमो ! यह सूर्यदेव अनाद्य हैं—लोकों के नाथ हैं—रश्मिमाली तथा जगत् के पति हैं । क्योंकि यह मित्रत्व में स्थित हैं और तप किया करते हैं ॥२२॥ ब्रह्माजी भी आदि-अन्त से रहित नित्य और अक्षय हैं वे सागर और द्वीपों के सहित इन चौबह लोकों की रृष्टि करके वही लोकों के हित के लिये सरित्तट पर चढ़ होकर स्थित हो गये हैं । सगस्त प्रजा पतियों का और अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करके इसका अनन्तर पुनः वह स्वयं ही अव्यक्त शत सहस्रांशु होकर अपने आभके स्वरूप को बारह रूपों में करके आदित्य के रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥२९-३५॥ वे बारह नाम ये हैं—इन्द्र धाता पर्जन्य त्वष्टा पूषा-अग्रमा भग विवस्वान् विष्णु अश वरुण मित्र इन द्वादश नामों से परमात्मा सूर्य के द्वारा बारह मूर्तियों से हे द्विजोत्तमो ! यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है ॥२६-२७॥ उस आदित्य देव की जो सब मूर्ति है वही इन्द्र सभा वाली है और वह देवों के राजा के पद पर स्थित है जो देवों के शत्रुओं का विनाश करने वाली है ॥२८॥

द्वितीया तस्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता ।

स्थिता प्रजापतित्वेन विविधा सृजते प्रजा ॥२९॥

तृतीयाकस्य या मूर्ति पर्जन्य इति विश्रुता ।

मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभि ॥३०॥

चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।

स्थिता वनस्पतौ सा तु औषधीषु च स्रवत्य ॥३१॥

पञ्चमी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।

अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुण्याति नित्यश ॥३२॥

मूर्तिः पक्षी रवेर्या व अय्यमा इति विश्रुता ।
 वायोः ससरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥३३॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
 भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४॥
 मूर्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
 अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५॥

दूसरी जो आदित्य देव की मूर्ति है वह धाता इस शुभ नाम से कही गयी है जोकि प्रजापति के पद पर स्थित होती है और विविध भाति की प्रजाओं का सृजन किया करती है ॥३६॥ इन अर्कदेव की जो तीसरी मूर्ति है वह "पर्जन्य"—इस शुभ नाम से प्रख्यात है । वही मूर्ति मेघों में भी स्थित है जो फिरणों के द्वारा जल की वर्षा किया करती है ॥३७॥ चौथी जो सूर्य की मूर्ति है वह "रश्मि"—इस नाम से विप्रुत है । यह मूर्ति समस्त वनस्पतियों में और ओषधियों में स्थित है और सभी ओर व्याप्त रहती है ॥३८॥ पाँचवी इसकी मूर्ति "पूषा"—इस नाम से प्रसिद्ध है और यह मूर्ति अन्न में व्यवस्थित रहा करती है जो नित्य ही समस्त प्रजा का पोषण किया करती है ॥३९॥ छठवी जो सूर्यदेव की मूर्ति है वह "अय्यमा"—इस शुभ नाम से विख्यात है । वह वायु के ससरण करने वाली है और देवों में ही समाश्रित रहा करती है ॥४०॥ भानुदेव की जो सातवी मूर्ति है वह "भग"—इस नाम से विश्रुत है । वह भूतों में और सब देहियों में देहों में अवस्थित रहा करती है ॥४१॥ आठवीं जो उषा की मूर्ति है वह विवस्वान् इस नाम से प्रख्यात है और यह अग्नि में प्रतिष्ठित रहा करती है जोकि शरीर धारियों के अन्न का पाचन किया करती है ॥४२॥

नवमी नवभानोर्या मूर्तिविष्णुश्च नामतः ।

प्रादुर्भवति सा नित्यं देवानामरिसूदनी ॥४३॥

दशमी तस्य या मूर्तिरग्न्यामिति विश्रुता ।

वायो प्रतिष्ठिता सा तु प्रत्नादयति वै प्रजाः ॥४४॥

मूर्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसञ्जिता ।

जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥३८॥

मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रति सञ्जिता ।

लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्ते ॥३९॥

वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषां ।

अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरनानाविधैस्तु सः ॥४०॥

एवं सा जगता मूर्तिहिताय विहिता पुरा ।

तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्र परं स्मृतम् ॥४१॥

आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ।

कृत्स्न जगदिदं व्याप्त मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२॥

नवमी जो सूर्यदेव की मूर्ति है वह त्रिण्यु के नाम से प्रसिद्ध है । वह देवों के अरियो का ज्तिनाश करने वाली नित्य ही प्रादुर्भूत हुआ करती है ॥३६॥ दशमी मूर्ति 'अशुमात्र' नाम से विद्युत है । वह वायु मे प्रतिष्ठित रहा करती है और समस्त प्रजा का आह्लाषित किया करती है ॥३७॥ भानुदेव की ग्यारहवीं मूर्ति वरुण सना वाली होती है । यह जलो मे ही अवस्थित रहा करती है और नित्य ही प्रजा को पोषित किया करती है ॥३८॥ बारहवीं भानुदेव की मूर्ति "मित्र" इस सना वाली होती है वह लोकों के हित सम्पादन करने के लिये चन्द्र सरित् के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मैत्रचक्षु से स्थित होकर वायु का भक्षण करने वाली तपस्व्या किया करती है । यह अनेक वरदानों के द्वारा अपने भक्तों पर राधा अनुग्रह किया करती है ॥४०॥ इस प्रकार से नव लोकों के हित के लिये पहिले बारह मूर्तियों मे बह देव स्थित हुए हैं । इनमे जो मित्ररूपा से स्थित है अतएव वह परम मित्र अर्थात् हिन्दू सम्पादक कहे गये है ॥४१॥ हे द्विजो ! इन उपर्युक्त बारह नामों से परमात्मा सवित्रा ने अपनी मूर्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर सकना है ॥४२॥

तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्यासु मूर्तिषु ।

भक्तिमद्भिरननित्य तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३॥

इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः ।
 नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महोयते ॥४४॥
 यदि तावदयं सूर्यश्चादिदेवः सनातनः ।
 ततः कस्मात्तपस्तेषु वरेप्सुः प्राकृतो यथा ॥४५॥
 एतद्वः संप्रवक्ष्यामि परं गुह्यं विभावसोः ।
 पृष्टं मित्रेण यत् पूर्वं नारदाय महात्मने ॥४६॥
 प्राङ्मयोक्तास्तु युष्मभ्यं रवेर्द्वादश मूर्तयः ।
 मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासां तपसि सस्थितौ ॥४७॥
 अब्रूमक्षो वरुणस्तासां तस्थौ पश्चिमसागरे ।
 मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८॥
 अथ मेरुगिरेः शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।
 नारदस्तु महायोगी सर्वालीकाश्चरन् वशी ॥४९॥

इस कारण से इन द्वादश मूर्तियों में स्थित सूर्यदेव ध्यान करने के योग्य और नमस्कार करने के योग्य होते हैं। जो भक्तिमान् हैं उनको तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा नित्य ही सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिए ॥४३॥ इस प्रकार से मनुष्य को इन द्वादश आदित्यों को नित्य ही नमस्कार करना चाहिए। नित्य इनका श्रवण या पठन करके मनुष्य अन्त में सूर्यलोक में पहुँचकर प्रतिष्ठित होता है ॥४४॥ मुनिगण ने कहा—हे भगवन् । यदि यह सूर्यदेव सबसे आदिदेव हैं और सनातन हैं तो फिर यह एक वरदान की इच्छा वाले प्राकृत मनुष्य की तरह तपस्या क्यों किया करते हैं? ॥४५॥ यह हम विभावसु का परम गोपनीय हाल बतलायेंगे। यही बात पहिले महात्मा नारदजी के लिये मित्र ने पूछी थी ॥४६॥ मैंने पहिले आपको रविदेव की द्वादश मूर्तियों बतलाई थी। उनमें से मित्र और वरुण ये दोनों तपश्चर्या में सस्थित हैं ॥४७॥ उन मूर्तियों में से जब का भक्षण करने वाला वरुण पश्चिम सागर में स्थित हो गया है। उस समय में वायु का भक्षण करने वाला मित्र इस मित्रवत में रहता था ॥४८॥ इसके अनन्तर मेरु शृङ्ग से गन्धमादन से

प्रच्युत महायोगी नारद वशी समस्त लोको मे विचरण करते हुए यहाँ पर आगये थे ॥४६॥

आजगामाथ तत्रैव यन मित्रोऽचरत्तप ।

त दृष्ट्वा तु तपस्यन्त यस्य कीतूहल ह्यभूत् ॥५०॥

योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन ।

धृतमेकात्मक येन त्रैलोक्य सुमहात्मना ॥५१॥

य पिता सत्त्वदेवाना पराणामपि य पर ।

अयजद्देवता कास्तु पितॄन् वा कानसो यजेत् ॥५२॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा न देव नारदोऽब्रवीत् ।

वेदेषु स पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।

त्वमज शाश्वता घाता त्वं निधानमनुत्तमम् ॥५३॥

भूत भव्य भवश्चैव त्वयि सर्व्व प्रतिष्ठितम् ।

चत्वारश्चश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥५४॥

यजन्ति त्वामहरहस्त्वा मूर्त्तित्व समाश्रितम् ।

पिता माता च सत्त्वस्य दैवत त्व हि शाश्वतम् ॥५५॥

यजसे पितर क त्व देव वापि न विद्महे ॥५६॥

यह योगी नारदजी वही पर समागत हुए थे अहाँ पर मित्र तपश्चर्या कर रहा था । उसको इस प्रकार से तप करते हुए देखकर इनके हृदय मे बड़ा भारी कीतूहल हो गया था ॥५०॥ जो क्षय रहित है—जो अव्यय और व्यक्ताव्यक्त सनातन है और जिस सुमहात्मा एक ने इस एकात्मक त्रैलोक्य को धारण कर रक्ता है ॥५१॥ जो समस्त देवा वा पिता है और जो परो से भी पर है वह त्रि देवों का यजन करता है तथा त्रि पितरों का यजन किया करता है । देवर्षि ने अपने मन मे इस तरह से चिन्तन करके उन देव से कहा था—श्री नारदजी ने कहा—वह जो वेदों मे और साङ्गोपाङ्ग पुराणों में गान किया जाता है वह आप अज-शाश्वत-घाता और उत्तम निधान है ॥५२-५३॥ भूतभव्य और भयन् सभी कुछ आप मे प्रतिष्ठित है । हे देव । चारों आश्रम जो गृहस्थ आदि होत हैं वे सभी मूर्त्तित्व की प्राप्त होने वाले आपका ही रातदिन यजन किया

करते हैं । आप सभी के माता-पिता और शाश्वत देवता हैं । फिर आप किस पितर का यजन किया करते हैं अथवा किस देव का अभ्यर्चन करते हैं यह हम नहीं जान पाये हैं ॥५४-५६॥

अवाच्यमेतद्वक्तव्य पर गुह्यं सनातनम् ।

त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥

यत्तत् सूक्ष्मविज्ञेयमव्यक्तमचल ध्रुवम् ।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्जितम् ॥५८॥

रा ह्यन्तरात्मा भूताना क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।

त्रिगुणाढ्यत्तिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥

हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः ।

महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥

सारथ्यश्च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः ।

स च स्वरूपो विश्वात्मा सर्व्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१॥

धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।

अक्षरीरः क्षरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥

वसन्नपि क्षरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः ।

ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥६३॥

मित्र ने कहा—यद्यपि यह बात कहने के योग्य नहीं है क्योंकि यह विषय परमाधिक गोपनीय है और सनातन है तथापि हे ब्रह्मन् ! आप परम भक्तिमान् हैं इसी कारण से मैं इस विषय को आपसे सामने ठीक २ कहूँगा ॥५७॥ जो अत्यन्त सूक्ष्म है—अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है तथा जो इन्द्रियो, इन्द्रियार्थों और सर्व्व भूतों से विवर्जित है वह भूतो या अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है । यह त्रिगुण से व्यतिरिक्त पुरुष ही कल्पित है । यह हिरण्यगर्भ भगवान् है और यह ही बुद्धि यह कहा गया है । यही भोगों में मग्न और प्रधान कहा जाया करता है । ॥५८-६०॥ बहुधात्मक अर्थात् अनेकों स्वरूपों वाला यह नानों से योग में सादृश्य कहा जाता है । और वह तीन रूपों वाला विश्वात्मा सर्व्व तथा अक्षर यह कहा गया है ॥६१॥ यह एवात्मक त्रैलोक्य उस आत्मा के

द्वारा धारण किया गया है। यह बिना शरीर वाला सब शरीरों में निवास किया करता है ॥६२॥ शरीरों में निवास करता हुआ भी वह कर्मों से लिप्त नहीं हुआ करता है। यह मेरा अन्तरात्मा तथा आपका अन्तरात्मा है और जो अन्य देशों में सस्थित है ॥६३॥

सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् ।

सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥

सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।

सर्वतः श्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥

विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।

एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरक्षरी यथासुखम् ॥६६॥

क्षेत्राणीह क्षरीराणि तेषां च यथासुखम् ।

तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥६७॥

अव्यक्तं च पुरे क्षेत्रे पुरुषस्त्वेन चोच्यते ।

विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्वत्र उच्यते ॥६८॥

तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।

तस्मैकस्य महत्त्वं हि स चक्रः पुरुषः स्मृतः ॥६९॥

महापुरुषशब्द हि विभक्त्यैकः सनातनः ।

स तु विधिक्रियायुक्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥

यह सबका साक्षिभूत है और कहीं पर भी किसी के द्वारा ग्रहण करने के योग्य नहीं है। यह सगुण, निर्गुण, विश्व तथा ज्ञान के ही द्वारा गम्य अर्थात् जानने के योग्य होता है ऐसा कहा गया है ॥६४॥ यह सभी ओर हाथों तथा चरणों वाला है और सभी ओर नेत्र एवं मुख वाला तथा शिर वाला है। लोक सर्वत्र श्रुतिमान् है और सबको आवृत करके स्थित रहता है ॥६५॥ यह विश्व के मूर्द्धा वाला, विश्व की भुजाओं वाला और विश्व की पदअक्षि (नेत्र) और नासिका वाला है। यह एक ही क्षेत्र में चरण किया करता है तथा सुख पूर्वक स्वगच्छन्द सञ्चरण करने वाला है ॥६६॥ ये सब शरीर ही इसके क्षेत्र हैं और उनमें ही सुख पूर्वक यह निवास किया करता है। वह योगात्मा उनको जानता है।

अतएव ये शरीर क्षेत्र कहे जाते हैं ॥६७॥ यह अव्यक्त पुर में शयन किया करता है । इसीसे वह पुरुष कहा जाया करता है । यह विश्व बहुत प्रकार का जानना चाहिए और वह सर्वत्र बहा जाता है ॥६८॥ इसी कारण से उसके बहुत रूप होने से वह निश्चरूप बहा गया है । उस एक का ही महत्त्व है और वह एक ही पुरुष कहा गया है । वह एक सनातन ही महापुरुष शब्द को धारण किया करता है । वह विधि और क्रिया के अधीन है तथा आत्मा से ही आत्मा का सृजन किया करता है ॥६९-७०॥

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ।

कोटिशश्च करोत्येव प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥

आकाशात् पतित तोयं याति स्वादन्तरं यथा ।

भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात् स ॥७२॥

एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा ।

एकत्वं च पृथक्त्वं च तथा तस्य न सशयः ॥७३॥

स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम् ।

सज्ञा तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥७४॥

यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते ।

तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥७५॥

यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः ।

एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तते ॥७६॥

नित्यं हि नास्ति जगति भूतस्थावरजङ्गमम् ।

अक्षयश्चाग्नेयश्च सार्वगश्च स उच्यते ॥७७॥

सो प्रकार से—सहस्र प्रकार से तथा शत सहस्र प्रकार से और करोड़ प्रकार से यह आत्मा से ही आत्मा को प्रत्यक्ष किया करता है ॥७१॥ आकाश से गिरा हुआ जल जिस प्रकार से भिन्न स्वाद वाला हो जाया करता है और भूमि के रस विशेष से ही ऐसा होता है वैसे ही गुणों के रस से वह हो जाया करता है ॥७२॥ जिस तरह से वायु एक ही होता है किन्तु देहों में पाँच प्रकार का प्राण—श्वानादि भेदों वाला हो जाता है

उसी भाँति उसका भी एकत्व और पृथक्त्व होता है । उसका सश्रय नहीं है ॥७३॥ जिस तरह से स्थानान्तरो की विशेषता से परासैशा की प्राप्ति किया करता है । हे मुनिवर ! यह भी ब्रह्म आदि सद्भावों की प्राप्ति किया करता है ॥७४॥ जिस तरह से एक ही दीपक सहस्रो दीप को जला कर प्रसूत कर दिया करता है उसी प्रकार से यह ही सहस्रो रूपों को सम्प्रसूत किया करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है उसी समय में वह केवल होता है । इसके एकत्व के प्रलय हो जाने पर ही बहुत्व की प्रवृत्ति हो जया करती है ॥७६॥ इस जगत् में स्थावर जङ्गम भूत नित्य नहीं है और वह अक्षय अप्रमेय और सबत्र गमन करने वाला कहा जाता है ॥७७॥

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमा ।

अव्यक्तमावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥

ता योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।

लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ॥७९॥

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः ।

आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्त पूजयाम्यहम् ॥८०॥

स्वर्गेष्वपि हि ये केचित नमस्यन्ति देहिनाः ।

तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफला गतिम् ॥८१॥

त देवा स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः ।

भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्य गतिर्वाप्य ददाति स ॥८२॥

स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।

एव मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥

ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः ॥

एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥८४॥

हे द्विजोत्तमो ! उससे ही तीन गुणों वाला अव्यक्त समुदाय होता है । अव्यक्त और व्यक्त भाव में स्थित जो है वह प्रवृत्ति कहो जाया करती है ॥७८॥ ब्रह्म की यानि उसको ही सगङ्गना चमहए । यह वह सद् और असद् स्वरूप वाला है । यही यह लोक में दैव तथा पित्र्य कर्म्म

मे पूजा जाया करता है ॥७८॥ हे द्विजो ! उससे पर अन्य कोई भी नहीं है । यही पिता तथा देव एव परात्पर है । वह आत्मा के द्वारा ही जानने के योग्य है; इसी कारण से मैं उसका अभ्यर्चन किया करता हूँ ॥८०॥ स्वर्गों में भी जो कोई बेहधारी हैं वे उसको नमन किया करते हैं । हे देवर्षे ! इसी से उसके द्वारा उद्दिष्ट फल वाली गति को वे गमन किया करते हैं ॥८१॥ उसकी देवगण—अपने आश्रमों में स्थित रहने वाले तथा नाना भूतियों में समाश्रित आद्य की पूजा भक्ति से किया करते हैं और वह इन सबको सद्गति प्रदान किया करता है ॥८२॥ वह सबमें रहने वाला भी है और निर्गुण ही कहा जाया करना है । इस प्रकार से गानकर ज्ञान के अनुसार दिवाकर का पूजन किया करता हूँ ॥८३॥ जो लोक में एक तत्त्व में समाश्रित उसकी भावना से भावित है । उनका यह भी अधिक है कि वे एक में प्रवेश किया करते हैं ॥८४॥

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः ।

अस्मद्भवत्यापि देवापि त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥

सुरैर्व्या मुनिभिर्व्यापि पुराणैर्व्वरद स्मृतम् ।

सर्व्वे च परमात्मन पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

एवमेतत् पुराख्यात नारदाय तु भानुना ।

मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमा ॥८७॥

इदमाख्यानमाख्येय मयाख्यात द्विजोत्तमा ।

न ह्यनादित्यभवताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥

यश्च तच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः ।

स सहस्राक्षिप देव प्रविशेन्नात्र सशय ॥८९॥

मुच्येतात्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वमामादितः कथाम् ।

जिज्ञासुलभते ज्ञान गतिमिष्टा तथैव च ॥९०॥

क्षणेन लभतेऽब्जानमिदं यः पठते मुने ।

यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसशयम् ॥९१॥

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः ।

स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः प्रभुः ॥९२॥

हे नारद ! यह परम गोपनीय समुद्देश है जो अब आपको मैंने बतला दिया है । हे देवर्षे ! हमारी भक्ति से भी आपने बहुत उत्तम किया है ॥८५॥ सूरों के द्वारा—मुनियों के द्वारा और पुराणों के द्वारा यह वरद कहा गया है । सब परमात्मा दिवाकर का पूजन किया करता हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह पुराने समय में भानुदेव ने देवर्षि नारदजी को कहा था और द्विजगणों ! मैंने भी भानुदेव की कथा का वर्णन किया है ॥८७॥ हे द्विजगणों ! यह जो आढ्यान्त मैंने आप को बतलाया है इसका कभी भूल न कर भी जो आदित्यदेव का भक्त न हो उसे नहीं देना चाहिए ॥८८॥ इस उत्तम आदित्याख्या की बहुत बड़ी महिमा है जो इसको नित्य-प्रति श्रवण कराया करता है और जो नित्य-प्रति श्रवण किया करता है वह मनुष्य सहस्राब्धिदेव में प्रवेश किया करता है—इसमें शेष मात्र भी राक्षस नहीं है ॥८९॥ इस कथा की आदि से जो मनुष्य श्रवण किया करता है वह यदि आर्त होता है तो उसकी रोग से मुक्ति हो जाता करता है । यदि वह ज्ञान के प्राप्त करने का इच्छुक होता है तो वह उस ज्ञान की प्राप्त किया करता है तथा वह अभीष्ट गति की भी प्राप्त कर लेता है ॥९०॥ हे मुने ! जो इस आढ्यान्त का पाठ किया करता है वह एक क्षण मात्र में ही मार्ग की लक्ष्य कर लेता है । निष्पर्याय यही है कि इसका करने वाला पुरुष जो भी जिस कामना की किया करता है वह उसकी निश्चय प्राप्त कर लिया करता है ॥९१॥ इसलिये आप लोगो की निरन्तर भगवान् रविदेव का स्मरण करना चाहिए । वह प्रभु हम सम्पूर्ण जगत् का धाता तथा विधाना है ॥९२॥

२३—आदित्यमाहात्म्यवर्णन (२)

आदित्यमूलमखिल त्रैलोक्य मुनिसत्तमाः ।
 भवत्यस्माज्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
 रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवीकसाम् ।
 महाद्युतिमताश्च ते तेजोऽयं साव्वलीकिकम् ॥२॥
 सर्व्वर्त्तिमा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।
 सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूल परमदेवतम् ॥३॥
 अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
 आदित्याज्जायते वृष्टिवृष्टेरक्षं ततः प्रजाः ॥४॥
 सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
 भावाभावौ हि लोकानामादित्याग्निः सृती पुरा ॥५॥
 एतत्तु ध्यानिना ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।
 तत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥
 क्षणां मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।
 मासाः सम्बत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठा ! यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य देव के ही मूल वाला है । इसी से यह सम्पूर्ण देव-असुर और मनुष्यो से युक्त जगत् समुत्पन्न हुआ करता है ॥१॥ रुद्रदेव-उपेन्द्र-महेन्द्र विप्रेन्द्र तथा देवों का और महती श्रुति वाली का यही सार्व्वलौकिक तेज होता है ॥२॥ यह सबकी आत्मा है—सब लोको का ईश है—देवों का भी देव और प्रजापति है । यह सूर्य्यदेव ही तीनों लोको का मूल एव परम देवत है । ॥३॥ अग्नि में अर्पित की हुई आहुति भली भाँति आदित्य देव को पहुँचा करती है । इस आदित्य देव ने ही वर्षा हुआ करती है और वृष्टि से अन्न की समुत्पत्ति हुआ करती है तथा उस अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ॥४॥ इन सूर्य्यदेव से ही समस्त पदार्थों का उद्भव हुआ करता है तथा अन्न उन्हीं में सबका लय भी हो जाता है । पहिले भाव और अभाव ये दोनों

जो लोको के हैं वे आदित्य देव से ही निरुत हुए थे अर्थात् लोको की उत्पत्ति और विनाश दोनों के कारण आदित्य ही है अथ नहीं हैं ॥५॥ यही ध्यान करने वालो का ध्यान है और यही मोक्ष प्राप्त करते बानो का मोक्ष है । वही पर लोग निर्वाण को जाया करते हैं और इन्ही देव से पुन पुन जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥६॥ क्षण मृहत्त दिवस रात्रि पक्ष नित्यही-मास सम्पत्सर ऋतुए और युग ये सभी आदित्य देव से ही हुआ करते है ॥७॥

अथादित्यादृते ह्येषा कालसख्या न विद्यते ।

कालदृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥८॥

ऋतुनामविभागश्च तत् पुष्पफल कुत ।

कृतो वै क्षम्यनिष्पत्तिस्तृणोपधिगण कुत ॥९॥

अभावो व्यवहाराणा जन्तूना दिवि चेह च ।

जगत्प्रभावादिशते भास्कराद्वारितस्करात् ॥१०॥

नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।

नावृष्ट्या परिधि धत्ते वारिणा दीप्यते रवि ॥११॥

वसन्ते कपिल सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभ ।

श्वेतो वर्षासु वर्णन पाण्डु शरदि भास्कर ॥१२॥

हेमन्ते ताम्रवर्णाभ शिशिरे लोहितो रवि ।

इति वर्णा समाख्याता सूर्यस्य ऋतुसम्भवा ॥१३॥

ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य क्षेमसुभिक्षकृत् ।

अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमा ॥१४॥

बिना आदित्य देव क इन उक्त समयो की सख्या ही नहीं हो सकती है । काल की सख्या और अवसर व बिना न कोई नियम हो होता है और न अग्नि में विहरण क्रिया हो होती है ॥८॥ जब ऋतुओ का ही कोई विभाग नहीं होगा तो पुष्प और फल भी कैसे समुत्पन्न होये । ऋतु-विभाग न होने पर क्षम्य की निष्पत्ति भी सम्भव नहीं हो सकती है और तृण तथा औपधियो की भी उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है ॥९॥ काल-विभाग के अभाव में समस्त व्यवहारों का भी जो कि जीवो का इस

लोक में तथा दिवलोक में होते हैं अभाव हो जायगा । तत्करो के वारण करने वाले भास्वर देव से यह जगत् प्रभाव से प्रवेश किया करता है ॥१८॥ वृद्धि के न होने से सूर्य नहीं तपता है और अवृद्धि से परिशुष्क भी नहीं होता है । अवृद्धि से परिधि को धारण नहीं किया करता है । जल से ही रविदेव दीप्त हुआ करते हैं ॥१९॥ वसन्त ऋतु में सूर्य कपिल वर्ण वाले होते हैं—ग्रीष्म काल में सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले हुआ करते हैं । वर्षा ऋतु में श्वेत वर्ण से युक्त तथा शरत्काल में भास्वर पाण्डु वर्ण वाले हुआ करते हैं ॥२०॥ हेमन्त ऋतु में ताम्रवर्ण की आभा वाले होते हैं और फिशिर में रवि सोहित वर्ण वाले हुआ करते हैं । ये वर्ण सूर्यदेव के मित्र २ ऋतुओं में हुआ करते हैं ॥२१॥ ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार जो वर्ण होते हैं उन्हीं के द्वारा सूर्यदेव क्षेम और सुभिक्ष के करने वाले हुआ करते हैं । इसके अन्तर हे द्विजगण ! आदित्य के सामान्य नामों को बतलाया जाता है ॥२४॥

द्वादशीव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यक्षेपतः ।

आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽकः प्रभाकरः ॥२५॥

मार्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ।

रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥२६॥

विष्णुर्धाता भग. पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽय्यमा ।

विवस्वानशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः ॥२७॥

इत्येते द्वादशादित्या पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।

उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासद्वादशभिः क्रमात् । २८॥

विष्णुस्तपति चैत्रे तु वंशाधे चाय्यमा तथा ।

विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु आपादे चाशुमान् स्मृतः ॥२९॥

पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठमजके ।

इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥३०॥

मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः ।

माघे भगस्तु विजेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥३१॥

ये द्वादश ही नाम हैं किन्तु उनको पृथक् २ पूर्णतया कहत हैं—
 आदित्य, सविता, सूर्य, मित्रि, अर्न, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु,
 चित्रभानु, दिवाकर—इन द्वादश नामों से रवि देव का ज्ञान किया जाता
 है जो कि सूर्य के सामान्य नाम हैं ॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा,
 मित्र, इन्द्र, वरुण, अयमा, विवस्वान्, अशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये भी
 अन्य द्वादश सूर्यदेव के नाम हैं जिनसे सूर्य को कहा गया है ॥१७॥ ये
 द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित किये गये हैं । ये सदा क्रम से
 बारह नामों से बारह मासों में उदित हुआ करते हैं ॥१८॥ चैत्र मास
 में विष्णु तपा करते हैं वैशाख में अयमा नामधारी सूर्य तपते हैं । ज्येष्ठ
 मास में विवस्वान् और आषाढ मास में अशुमान् तप दिया करते हैं
 ॥१९॥ प्राच्य मास में पर्जन्य और भाद्रपद में वरुण नाम वाले सूर्य
 तपा करते हैं । आश्विन मास में इन्द्र तथा कार्तिक में धाता नामक
 सूर्य तपते हैं ॥२०॥ मार्गशीर्ष में मित्र-पौष मास में पूषा दिवाकर
 तपते हैं । माघ मास में जो सूर्य तप दिया करते हैं वह भग नाम वाले
 होते हैं और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ओंको को तप दिया करते
 हैं ॥२१॥

शतद्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दीप्यते सदा ।
 दीप्यते गीसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरस्यमा ॥२२॥
 द्वि रात्रिकीविनस्वास्तु ॥ शुमान् पञ्चमिस्त्रिभि ।
 विवस्वानिव पर्जन्या वरुणश्चाय्यमा तथा ॥२३॥
 मित्रद्भृगवास्त्वाष्टा सहस्रेण शतेन च ।
 इन्द्रस्तु द्विगुणं पङ्क्तिर्घातिकादशभि शतं ॥२४॥
 सहस्रेण तु मित्रो व पूषा तु नवभि शतं ।
 उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥२५॥
 दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्त सूर्यरश्मय ।
 एष रश्मिसहस्रन्तु सूर्यलोकादनुग्रहम् ॥२६॥
 एव नाम्ना चतुर्विंशदेक एषा प्रकीर्तित ।
 विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्तितम् ॥२७॥

विष्णु नामधारी सूर्यदेव सदा बारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं । एक हजार तीन सौ रश्मियों से अर्यमा दीप्त हुआ करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् चौदह सौ रश्मियों के द्वारा ताप देते हैं और अशुमान् पन्द्रह सौ किरणों के द्वारा तपा करते हैं । विवस्वान् की ही भाँति पर्जन्य-वसुण-अर्यमा तपा करते हैं । मित्र की ही भाँति त्वष्टा गत सहस्र किरणों से दीप्त होने हैं और छाता अग्रह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं ॥२३-२४॥ मित्र नाम वाले सूर्यदेव एक सहस्र रश्मियों के द्वारा तपा पूरा नौ सौ किरणों से दीप्त हुआ करते हैं । उत्तर उपक्रम में सूर्य की रश्मियाँ बढ़ा करनी हैं ॥ ५॥ फिर दक्षिणोपक्रम में अर्वाङ्क दक्षिणापन में सूर्य की किरणें ह्रास को प्राप्त हुआ करनी हैं । इस प्रकार से सहस्र रश्मियाँ सूर्यलोक से अनुग्रह किया करनी हैं ॥२६॥ इस रीति से यह एक ही सूर्यदेव चौबीस नामों के द्वारा कहे गये हैं । विस्तार से फिर इनके एक सहस्र नाम भी कहे गये हैं जो कि अग्य है ॥२७॥

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते ।

तेपा भवति कि पुण्य गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

शृणुष्व मुनिशार्दूलः सारभूत सनातनम् ।

अर्कं नामसहस्रेण पठन्नेव स्तव शुभम् ॥२९॥

मानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च ।

तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्व भास्करस्य वै ॥३०॥

विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः ।

लोकप्रकाशकः श्रीर्माँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा ।

तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्वबाहनः ॥३२॥

गभस्तिहस्तो ग्रहा च सव्यदेवनमस्कृतः ।

एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः ॥३३॥

शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धिदास्करः ।

स्तवराज इति स्यात्तस्मिन् लोकेषु विद्युतः ॥३४॥

य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।

स्तोति सूर्यं शुचिभूत्वा सब्वपाप प्रमुच्यते ॥३५॥

मुनिगण ने कहा—हे प्रजापते ! जो लोग सूर्य के एक सहस्र नामों के द्वारा उनका स्तवन किया करते हैं हे परमेश्वर ! उन स्तोताओं का क्या पुण्य फल हुआ करता है और उनकी क्या गति होगी है ? ॥३५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग सनातन सार-भूत का श्रवण कीजिए । इस प्रकार वे शुभ स्तव का पाठ करते हुए ही परम फल्याण होता है फिर एक सहस्र नामों के द्वारा स्तवन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥३६॥ जो शुभ नाम परम गोपनीय हैं और पवित्र हैं उन भास्वर भगवान् के नाम हैं उनका ही मैं आप लोगों के सामने बघन करता हूँ । आप लोग उनका श्रवण करिए ॥३७॥ ये परम शुभ नाम ये हैं—विवर्त्तन, वियस्यान्, भास्वण्ड, भास्वर, रवि, लोक, प्रनाशक, श्रीमाद्, मोक्षक, महेश्वर, मोक्षाली, त्रिलोकेश, वर्णा, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, और सप्ताश्व माहन ॥३८॥ गमस्ति हस्त, ब्रह्मा, सर्वदेवनमस्कृत—मह इवरीस नामा का स्तव है जो रविदेव को सदा दृष्ट होता है ॥३९॥ यह स्तव शरीर के आरोग्य को प्रदान करने वाला और घन वृद्धि तथा यश को देने वाला है । इसको स्तव राज तीनों जोरों से कहा जाता है और यह हमी नाम से प्रसिद्ध भी है ॥४०॥ हे श्रेष्ठ द्विजगणो ! इस स्तव के द्वारा दोनों सन्ध्याओं के समय में अर्घान् उदय काल और अस्त मां येला में पवित्र होकर सूर्यदेव की स्तुति किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥४१॥

मानस चाधियं चापि देहज मर्ममज तथा ।

एवजप्येन तत्सर्वं नश्यत्यर्घ्यं मन्त्रिणो ॥४२॥

एवजप्यश्च होमश्च मन्धोपासनमेव च ।

पूषमन्यार्घ्यमन्त्रश्च यलिमन्त्रसायैव च ॥४३॥

अघ्नप्रदो स्नाने च प्रयिपाते प्रदक्षिण ।

पूजितोऽयं महामन्त्र मर्त्यसापहर् शुभ ॥४४॥

तस्माद्यूप प्रयत्नेन स्तवेनानेन च द्विजाः ।

स्तुवीध्व वरदं देव सर्व्वकामफलप्रदम् ॥३६॥

चाहे कौसा भी पाप हो मानस हो, वाचिक हो, देहज हो या कर्मज हो इन स्तव के एक ही बार जाप करने से जो कि सूर्य की सन्निधि में स्थित होकर किया जावे वो वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ एक बार इसका जप-होम-सङ्क्षोपासन-धूप मन्त्र-अर्घ्य मग्न तथा बलि मन्त्र अन्न के प्रदान में, स्नान, प्रणिपान करने में और परिक्रमा करने में पूजित किया हुआ यह महामन्त्र परम शुभ होता है और सब पापों का हरण करने वाला है ॥३७-३८॥ हे द्विजगणो ! इस कारण से आप लोग प्रयत्न के साथ इस स्तव के द्वारा समस्त कामनाओं के फल की प्रदान करने वाले वरद सूर्यदेव की स्तुति किया करो ॥३९॥

२४ — पञ्चतीर्थविधिवर्णन

अतः पर प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा ।

यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥१॥

मार्कण्डेयहृद गत्वानरश्चोदह्मुखः धुचिः ।

निमज्जेत्तत्र वाराह्रीनिम मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥

सत्तारसागरे मग्न पापग्रस्तमचेतनम् ।

आहि मा भगनेश्वरन् त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३॥

नमः शिवाय दान्ताय सर्वपापहराय च ।

स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४॥

नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।

तिलोदयेन मत्तिमार्निपतृश्चान्याश्च तर्पयेत् ॥५॥

स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततो गच्छेच्चिद्बालयम् ।

प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तत्र त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६॥

मूलमन्त्रेण मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।

अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इससे आगे हम अब पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन करते हैं—जो फल स्नान-दान और देवता के दर्शन से होता है वह सब बताया जाता है ॥१॥ मार्कण्डेय हृद मे जाकर मनुष्य को पवित्र होकर उत्तर की ओर मुख वाला हाकर उस हृद मे निमज्जन करना चाहिए और तीन बार इस अधोवर्णित मन्त्र का उच्चारण करे ॥२॥ हे त्रिपुरासुर ने नाशक ! हे भग के नेत्री का हनन करने वाले ! इस सत्सार रूप सागर मे मन पापा से ग्रसित और ज्ञान से शून्य मेरी रक्षा करो । आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥३॥ भगवान् शास्त्र स्वरूप और सब पापों के हरण करने वाले शिव के लिये मेरा नमस्कार है । हे देवश्वर ! मैं यहा स्नान करता हूँ—मेरा पातक नष्ट हो जावें ॥४॥ नाभ्यमात्र जल मे स्नात करके विधि के साथ मतिमान् पुत्र को तिलोदक के द्वारा देवता ऋषि और अन्य पितृगणों का तपण करना चाहिए ॥५॥ स्नान करके तथा आचमन करके फिर शिवालय मे गमन करना चाहिए । उस देवता के स्थान मे प्रवेश करके वहाँ पर उनकी नील प्रदक्षिणा करे ॥६॥ मार्कण्डेय के ईश्वर का मूल मन्त्र से भलोभाति पूजन करे और हे विप्रगण ! अघोर मन्त्र के द्वारा प्रणाम करके शिव को प्रसन्न करना चाहिए ॥७॥

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु वमस्ते क्षशिभूषण ।

ग्राहि मा त्व विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८॥

मार्कण्डेयहृदे त्वेव स्नात्वा दृष्ट्वा च क्षवरम् ।

दशानामश्रमेधाना फल प्राप्नोति मानव ॥९॥

पाप सर्वविनिमुक्त शिवलोक स गच्छति ।

तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसप्तवम् ॥ १० ॥

इहलोक समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुत ।

दाकर योगमासाद्य ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥११॥

चल्पवृक्ष ततो गत्वा वृत्वा त त्रि प्रदक्षिणम् ।

पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन त वटम् ॥१२॥

ओ नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे ।
महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोघाय नमोऽस्तु ते ॥१३॥
अमरस्त्व सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतन वट ।
न्यग्रोघ हर मे पाप कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४॥

हे तिलोत्पल ! हे शक्ति के रूपण वाले ! आपको नमस्कार है—आपकी सेवा में प्रणाम है । हे बिल्वाक्ष ! हे महादेव ! आप मेरी रक्षा कीजिए । आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१३॥ इस प्रकार से मार्कण्डेय हृद में स्नान करके तथा भगवान् शङ्कर का दर्शन करके मनुष्य वश अश्वमेध यज्ञो ५ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है ॥१६॥ वह मानव सब पापों से निर्मुक्त होकर तीर्था शिवलोक में गमन किया करता है । यहाँ पर परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होता है किया करता है ॥१७॥ फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर इस लोक में जन्म ग्रहण करके यह बहुधृत विप्र होता है और यहाँ पर शाङ्कर योग को प्राप्त करके फिर मोक्ष को प्राप्ति किया करता है ॥१८॥ इसके उपरान्त कल्प वृक्ष के समीप में जावे और उसी तीनों बार परिक्रमा करे । फिर पराशक्ति से निम्न कथित मन्त्र के द्वारा उस वट का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१९॥ महा प्रलय के करने वाले व्यक्त रूपधारी महद्रस से उपाविष्ट न्यग्रोघ के लिये नमस्कार है ॥१॥ आप तो सदा कल्प में भी अमर हैं । हे वट ! आप तो श्री हरि का आश्रय हैं । हे न्यग्रोघ ! आप मेरे पाप का हरण करो । हे कल्पवृक्ष ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥१४॥

भक्त्या प्रदक्षिण कृत्वा नत्वा कल्पवट नर ।
सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इयोरगः ॥२५॥
छाया तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजा ।
ब्रह्महत्या नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥२६॥
दृष्ट्वा वृष्णाङ्गसंभूत ब्रह्मतेजोमय परम् ।
न्यग्रोधाकृतिक विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥२७॥

राजसूयाश्रमेधाभ्या फल प्राप्नोति चाधिकम् ।
 तथा स्थवक्षामुद्धत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८॥
 वैनतेय नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।
 सयंपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१९॥
 दृष्ट्वा वटं वैनतेय यः पश्येत्पुष्पांशमम् ।
 सकर्पणं सुभद्रा च स याति परमां गतिम् ॥२०॥
 प्रविश्याऽऽपतनं विष्णो वृत्वा तं त्रिं प्रदक्षिणम् ।
 सकर्पणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥२१॥

भक्ति-नाम स प्रदक्षिणा करके तथा कल्प-वट को नमस्कार करके मनुष्य सहसा पाप से छुटकारा पा जाया करता है जैसे जीर्ण त्वचा वाला सर्प अपनी केशुली को तुरन्त ही छोड़ दिया करता है ॥१९॥ हे द्विजो ! उस कल्पवृक्ष की छाया में स्थित होकर मनुष्य ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाया करता है फिर छोटे मोटे अन्य पापों की तो बात ही क्या है ॥१९॥ हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के अङ्ग से समुत्पन्न ब्रह्म तेज से परिपूर्ण न्यग्रोध की आकृति वाले परम विष्णु को प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्व इन दोनों यज्ञों के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है और उससे भी अधिक फल प्राप्त कर लेता है । अपने वश वा उद्धार करके वह अन्त में विष्णु लोक को गमन कर जाता है ॥१७-१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के आगे स्थित रहने वाले वैनतेय (गरुड) को प्रणाम करके सब पापों से छुटकारा पाकर फिर विष्णु के पुर को गमन करता है ॥१९॥ वट और वैनतेय का दर्शन करके जो पुरयोत्तम प्रभु सङ्कर्षण तथा सुभद्रा का दर्शन किया करता है वह परम गति को प्राप्त होजाता है ॥२०॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में प्रवेश करके उनकी तीन प्रदक्षिणा करे फिर सकर्षण प्रभु को उनके मन्त्र के द्वारा भक्ति से अर्चना करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥२१॥

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।
 नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥२२॥

नमस्ते वलिना श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर ।
 प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु नाहि मा कृष्णपूर्वज ॥२३॥
 एव प्रसाद्य चानन्तमजेय निदशाचितम् ।
 कलासशिखराकारं चन्द्राटकात्तराननम् ॥२४॥
 नीलवस्त्रधर देव कृणाविकटमस्तकम् ।
 महाबल हलधर पुण्डलकविभूषितम् ॥२५॥
 रीहिरोय नरो भक्त्या लभेदभिमत फलम्
 सर्वपार्ष्विनिर्मुक्तो विष्णुलोक स गच्छति ॥२६॥
 आभूतसम्प्लव यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः ।
 पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिना कुले ॥२७॥
 ब्राह्मणप्रवरा भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारग ।
 ज्ञान तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२८॥

सङ्क्षेपेण भगवान् का मन्त्र यह है—हे बलधारियो मे परम श्रेष्ठ ! हे हल के धारण करने वाले ! हे राम ! हे मुसल का आयुध रखने वाले ! हे देवली के स्वामिन् ! हे भक्तों पर कृपा करने वाले ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है और पुन नमस्कार है । हे धरणी को धारण करने वाले ! आपको धारण्यार नमस्कार है । हे प्रलम्ब के दमन करने वाले ! हे वृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता ! आपको मेरा नमस्कार है । आप मेरी रक्षा कीजिए ॥२२-२३॥ उन अनन्तर-अजेय-देवों के द्वारा पूजित बंतास के सिंगा के आकार वाले और चन्द्र से भी अधिक सुन्दर मुख वाले—नीले वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले—वन के समान विकट मस्तक वाले—महान् बलधारी—पुण्डली से भूषित—रीहिरोय भगवान् हलधर को इस प्रकार से-भक्तिभाव से प्रगट करन मनुष्य अपना अभिमत फल प्राप्त किया करता है और सब पा॥ से विमुक्त होकर अन्त में वर विष्णुलोक में गगन पिया करता है ॥२४-२६॥ महा प्रलय के समय तब वही पर यह मनुष्य पुनोपभोग करता है । फिर पुनो का दाय होन पर वही पर योगियों के पुन में जो बहुत ही श्रेष्ठ होता है उसमें जन्म लेता है और परम श्रेष्ठ सब शास्त्रों का धारणामी ब्राह्मण होता है । जय जन्म में

परम ज्ञान की प्राप्ति करके वह परम दुर्लभ गति प्राप्त कर लेता है ॥२७-२८॥

एवमभ्यर्च्यं हलिन ततः कृष्णं विचक्षणः ।
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥२९॥
 द्विपट्कवणंमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।
 पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥३०॥
 न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।
 यां गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः ॥३१॥
 तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम् ।
 संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२॥
 जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाधिनाशन ।
 जय चारुूरकेशिन् जय कसनियूदन ॥३३॥
 जय पद्मगुलाशाक्ष-जय चक्रगदाधर ।
 जय नीलाम्बुदध्याम जय सर्वसुखप्रद ॥३४॥
 जय देव जगत्पूज्य जय ससारनाशन ।
 जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥३५॥

इस प्रकार से हलधर का अर्चन करके फिर विचक्षण पुरुष को द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासु देवाय) मन्त्र से सुसमाहित होकर कृष्ण का पूजन करना चाहिए ॥२९॥ जो द्वादशाक्षर मन्त्र ॥ भक्तिभाव के साथ पुरुषोत्तम प्रभु का पूजन किया करते हैं वे धीर पुरुष निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ॥३०॥ जिस परमोत्तम गति को द्वादशाक्षर मन्त्र में परामण भक्त तोष प्राप्त किया करते हैं हे विप्रो ! उस गति को सुरगण-योगीजन और महान् से भी महान् लोग भी प्राप्त नहीं किया करते हैं ॥३१॥ अतएव उसी द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वारा जगत् के गुरु श्री कृष्ण का गन्ध-पुष्पादि से भली भाँति पूजन करके तथा प्राणिपात करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥३२॥ फिर अथो लिखित पद्यों द्वारा प्रार्थना करे—हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सब अथो का विनाश करने वाले ! आपकी जय हो । हे चारूर और केशी के

हनन करने वाले ! हे कस के मारने वाले ! आपकी जय हो ॥३३॥ हे पद्म-पलाश के समान नेत्रो वाले ! हे चक्र तथा मदा के धारण करने वाले ! आपकी जय हो ! हे नीलमेघ के सदृश वर्ण वाले ! आपतो सभी को सुख प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ! हे जगत् के पूज्य ! आपही इस ससार के विनाश करने वाले हैं और आप सबकी इच्छाओं के फल प्रदान करने वाले महा पुरुष हैं ! हे लोको के स्वामिन् ! हे नाथ ! आपकी सब्दा जय हो ॥३४-३५॥

ससारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले ।

क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंस्वे ॥३५॥

नानारोगोभिकलिले मोहावतंमुदुस्तरे ।

निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मा पुरपोत्तम ॥३६॥

एव प्रसाद्य देवेश वरद भक्तवत्सलम् ।

सर्वपापहर देव सर्वकामफलप्रदम् ॥३७॥

पीनास द्विभुज वृष्ण पद्मपत्रायतेक्षणम् ।

महोरस्क महाबाहु पीतवस्त्र शुभाननम् ॥३८॥

शङ्खचक्रगदापाणि मुकुटाङ्गदभूषणम् ।

सर्वलक्षणसंयुक्त धनमालाविभूषितम् ॥३९॥

दृष्ट्वा मरौऽञ्जलिं कृत्या दण्डवत्प्रणिपत्य च ।

अश्वमेधसहस्राणां फल प्राप्नोति वै द्विजा ॥४०॥

यत्फलं सधर्तीर्थेणु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४१॥

हे गुरो मे परम श्रेष्ठ ! यह समार रूरी सागर परम घोर और सारगूय है तथा अनेक दुःख ही इसमें जेना के समान भरे हुए हैं । यह समार शायर प्रोध रूपी प्राहो से परिपूर्ण है—महान् रौद्रम्प वाला और विषयो के जल से भरा पूरा है । अनार रोगों की तरङ्गों से मलित और मोहस्थी भँवरों से परम दुस्तर है । ऐसे इस ससारस्थी सागर में मैं निमग्न हो रहा हूँ । हे पुरपोत्तम ! आप मेरी रक्षा कीजिए ॥३६-३७॥ इस तरह से देवेश्वर भगवान् वरदान देने वाले श्री वृष्ण की प्रार्थना करे

जोवि अपने भक्तों पर परम कृपा करने वाले हैं—सब पापों के हरने वाले और सब मनोरथों के फल प्रदान करने वाले हैं ॥३८॥ परिपुष्ट स्कन्धों वाले, दौ मुजामों से युक्त, पद्मपत्रों के समान आयत नेत्रों वाले, महान् वक्षस्थल वाले, बड़ी मुजामों से सयुक्त, पीनवर्ण के दस्त धारी, परम शुभ मुख वाले, कटु-चक्र-गदा आयुधों को हाथों में धारण करने वाले, मुकुट एवं अङ्गदों से भूषित, व वनमाला धारी तथा सभी सुलक्षणों से युक्त श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य दण्ड-की भाँति भूमि में पड़कर उनको जो मनुष्य प्रणाम किया करता है हे त्रिजगण ! वह तत्क्षो अश्व-मैथ यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है ॥३९-४१॥ जो पुण्य फल सभी तीर्थों में आकर स्नान तथा दान करने से प्राप्त होना बताया गया है उस सम्पूर्ण पुण्य फल को मनुष्य केवल श्री कृष्ण का दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४२।

यत्फल सर्वरत्नाद्यैरिष्टे बहुसुवर्णके ।

वरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४३

यत्फल सर्ववेदेषु सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।

तत्फल समवाप्नोति नरः कृष्ण प्रणम्य च ॥४४

यत्फल सर्वदानेन यमेन नियमेन च ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४५

तपोभिविविधैरुग्रैर्यत्फल समुदाहृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४६

यत्फल ब्रह्मचर्येण सम्यक्वीर्णेन तत्कृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४७

यत्फल च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४८

यत्फल वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४९

जो पुण्यफल समस्त रत्नादि से युक्त बहुत से सुवर्ण के दान करने पर मिला करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन

प्राप्त करके तथा प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो फल समस्त वेदों में बताया गया है और जो सभी यजो के यजन करने से प्राप्त हुआ करता है उनी फल को मनुष्य श्री कृष्ण को प्रणिपात करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४४॥ जो पुण्य पर सब प्रकार के दानों के करने से, यमों और नियमों के परिपालन से प्राप्त होता है वह सभी फल श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम करके भक्त मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४५॥ जो फल अनेक प्रकार के तपो के द्वारा प्राप्त होना बताया गया है मनुष्य उनी सम्पूर्ण फल को श्री कृष्ण का दर्शन करके और उसको भक्तिभाव से प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है । ॥४६॥ जो फल भक्ति भाँति ग्रहचक्र वन के परिपालन से होता है उसको केवल श्री कृष्ण भाषान् का चरण दर्शन करके तथा दण्डवत्-प्रणाम करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ शास्त्र में बताये हुए आचार के अनुसार रहने या गृहस्थाश्रमी को जो फल मिला करता है उसी फल को श्री कृष्ण के दर्शन और उनको प्रणाम करने से मनुष्य पा लिया करता है । ४८॥ वानप्रस्थाश्रमी को जो फल वा म ही नियम करने से मिलाता है उसको मनुष्य श्री कृष्ण भाषान् का दर्शन तथा प्रणाम करके प्राप्त कर लिया करता है । श्री कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने का महात् उत्तम फल होता है ॥४९॥

सन्त्यासेन यथोक्तेन यत्पुत्र समुदाहृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥५०॥

ति पात्रं बहुनयनेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजा ।

दृष्ट्वा कृष्ण नरो भवत्या भो प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

पापं विमुक्तं शुद्धात्मा बहिरादिममुद्भवम् ।

श्रिया परमया मुक्त सर्वे सनुदिता गुण ॥५२॥

सर्वे रामसमृद्धेन विमानेन सुवचसा ।

प्रियसप्तममुद्भव नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥

तत्र यत्पुत्रत यावद्भुक्त्वा भागान्मनोरमात् ।

गन्धर्वाप्तिरलं गार्धं यथा विष्णुः शत्रुर्मुचः ॥५४॥

च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणा प्रवरे कुले ।

सर्वज्ञ सर्ववेदी च जायते गतमत्सर ॥५४॥

स्वधर्मनिरतः शान्तो दाता भूतहिते रतः ।

आसाद्य वैष्णव ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५५॥

यथा विधि सन्यास ग्रहण करने से जो फल बताया गया है उसी फल को भक्त मनुष्य श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम से प्राप्त कर लिया करता है उसे सन्यास की आवश्यकता ही नहीं होती है । ॥५०॥ हे द्विजगणो ! भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणिपात करने के महात्म्य का अत्यधिक वर्णन करने की क्या आवश्यकता है । ससार में रहकर परम दुःख भी मोक्ष है उसको भी श्री कृष्ण का भक्त भक्ति के द्वारा उनका दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके आसानी से ही प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ श्री कृष्ण का भक्त मनुष्य करोड़ों कलों में संचित किए हुए पापों से विमुक्त होकर विद्युत् आत्मा होकर परमाधिक श्री से समन्वित हो जाता है तथा सभी मद्गुणों से भी समुद्दिन हो जाता करता है ॥५२॥ सब कामों से समृद्ध तथा सुवचन वाले विष्णु के द्वारा अपने तीन कुला का उद्धार करके सीधा विष्णुपुर को गमन किया करता है ॥५३॥ वहाँ पर सौ कल्प पश्चात् परम सुन्दर भोगों का उपभोग करके चार भुजाओं वाले विष्णु के समान स्वरूप वाला गन्धर्वों तथा अम्तराओं के साथ आनन्द लाभ लिया करता है ॥५४॥ वहाँ से जब च्युत होता है तो वहाँ पर वह किसी विप्रों के पत्र श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण करता है और वह सर्वज्ञ, सर्ववेदी तथा मात्सर्य से रहित होता है ॥५५॥ वह वहाँ पर अपने धर्म में निरत रहने वाला, परमशान्त, शान्तिल, प्राणियों के हित में रति रखने वाला होता है । यहाँ पर वैष्णव ज्ञान का लाभ प्राप्त कर फिर मोक्ष को प्राप्त किया करता है । इस तरह से श्री कृष्ण के भक्त को भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो जाती हैं ॥५६॥

ततः संपूज्य मन्त्रेण सुभद्रा भक्तवत्सलाम् ।

प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य वृत्ताञ्जलि ॥५७॥

नमस्ते सर्वेभ्यो देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।

नाहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥

एव प्रसाद्य तां देवी जगद्धात्री जगद्धिताम् ।

बलदेवस्य भगिनी सुभद्रा वरदा शिवाम् ॥५९॥

यामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत् ।

आभूतसप्लव यावत्क्रीडित्वा तत्र देवयत् ॥६०॥

इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् ।

प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥६१॥

इसके उपरान्त मन्त्र के द्वारा भक्तों पर प्यार करने वाली सुभद्रा का अर्चन करके हे विप्रो ! प्रणिपात करके कृताञ्जलि होकर सुभद्रादेवी को प्रसन्न करना चाहिए ॥५७॥ हे सर्वेभ्यो नमन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है । हे शुभ और सौख्य का प्रदान करने वाली ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे पद्म दल के समान सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कात्यायनि ! आप मेरा परिचाण करिए तथा मेरा आपकी सेवा में प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार से जगत् की धात्री तथा जगत् के हित करने वाली श्री बलदेवजी की भगिनी वरदा एव शिवा सुभद्राजी को प्रसन्न करके अन्न में बहू मनुष्य इच्छानुकूल गमन करने वाले विमान के द्वारा विष्णुपुर का गमन किया करता है । वहाँ पर देवों के सामने महा प्रलय होने के समय तक आनन्द का उपभोग करके पुनः पुण्या का उपभोगों द्वारा शय हो जाने पर यहाँ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होता है । यहाँ हरि का योग प्राप्त करके निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥५९ ६०॥

— ❁ —

२५—नरसिंहमाहात्म्यवर्णन

एव हृष्ट्वा बल वृष्ण सुभद्रा प्रणिपत्य च ।

धर्म धार्य च काम मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥१॥

निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
 प्रणम्याऽऽयतन पश्चाद्ब्रजेत्तत्र समाहितः ॥२॥
 इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते बालुकावृतः ।
 अन्तर्धानगतः नत्वा ततो विष्णुपुरं ब्रजेत् ॥३॥
 सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम् ।
 स आस्ते तत्र भो विप्राः सिंहाद्यर्धवृत्तविग्रहः ॥४॥
 भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकेसरीम् ।
 मुच्यते पातकैर्मृत्युं समस्तैर्नात्र संशयः ॥५॥
 नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः ।
 न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंहं समाश्रयेत् ।
 धर्मार्थिकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा
 को प्रणाम करके मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष को निश्चित रूप से
 प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ देवमन्दिर से निकल कर मनुष्य कृत-
 कृत्य हुआ जाता है । फिर उस देवायतन को प्रणाम करके सावधान होकर
 गमन करना चाहिए ॥२॥ जहाँ पर इन्द्रनीलमय भगवान् विष्णु बालुका
 से समावृत हैं उन अन्तर्धान को प्राप्त हुए विष्णु को नमन करके मनुष्य
 विष्णुपुर को गमन करता है ॥३॥ ७ विप्रों १ सर्वदेवों से परिपूर्ण जिसने
 असुरों उत्तम का हनन किया था वही आगे सिंह का शरीर धारण करने
 वाले भगवान् नृसिंह वहाँ पर विद्यमान हैं ॥४॥ भक्तिभाव से उन देव
 का दर्शन करके और नरकेसरी भगवान् को प्रणाम करे । मनुष्य उसी
 समय में सब पातकों से मुक्त हो जाता है ॥५॥ इसमें लेख मात्र भी संशय
 नहीं है ॥५॥ उस भूमण्डल में जो मानव भगवान् नरसिंह के भक्त होते हैं
 उनको कोई भी दुष्कृत छेप नहीं रहा करता है और जो भी क्षीप्सित
 फल होता है वह प्राप्त होजाया करता है ॥६॥ इस लिये सब प्रकार के
 प्रयत्नों के द्वारा भगवान् नरसिंह देव का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए

जिनसे धर्म-अर्थ-शान्ति और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का फल प्राप्त हो जाया करता ॥७॥

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् ।
 यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान् ॥८॥
 प्रभाव तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते ।
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कीदृहल हि नः ॥९॥
 यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः ।
 भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०॥
 प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यन सिद्धयः ।
 ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११॥
 शृणुष्व तस्य भो विप्रा प्रभाव गदतो मम ।
 अजितस्य प्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च ॥१२॥
 कः शक्नोति गुणान्वयतु समस्तास्तस्य भो द्विजाः ।
 सिंहायैकतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः ॥१३॥
 याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते देवमानुषाः ।
 प्रसादात्तस्य ता सर्वा सिध्यन्ति नात्र शक्यः ॥१४॥

मुनिगण ने कहा—हे देव ! इस भूगण्डल में परम दुर्लभ और सुख देने वाला भगवान् नरसिंह का माहात्म्य है जैसा कि आप वर्णन कर रहे हैं । इससे हमको महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ हे जगत् के स्वामिन् ! उन देव का प्रभाव हम लोग विस्तार पूर्वक श्रवण करने की अभिलाषा करते हैं । आप कृपया हमको बतलाइये । हमारे मन में इसका बड़ा भारी कीतूहल हो रहा है ॥९॥ जिस विधि से यह महान् बलवान् देव नरसिंह प्रसन्न हो जायें उसी विधान को आप भक्तों के उपकार के लिये बतलाइये । हे देव ! आपकी सेवा में हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ नरसिंह भगवान् के प्रसाद से यहाँ पर जो सिद्धियाँ होती हैं उन सबको भी आप बतलाइये । हमारे ऊपर प्रसन्नता कीजिए हे पितामह ! आप परम गुणालु हैं ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे ऋषयों ! अब मैं बतलाता हूँ आप कृपा करने उन देव नरसिंह या जो प्रभाव होता है

उसका श्रवण करिए । वह देव अजित हैं ॥ अग्रेय हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं ॥ १७ ॥ हे द्विजो ! कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष है जो उनके समस्त गुण-गणों का वर्णन कर सके । अर्थात् ऐसी शक्ति वाला कोई भी नहीं है । अनएन आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले उन नरसिंह देव के गुणों को हम अतीव संशय में बतलाते हैं ॥ १३ ॥ देव और मानव जो भी कोई सिद्धियों के विषय में यहाँ पर श्रवण किया करते हैं अर्थात् जितनी भी पुष्ट सिद्धियाँ हैं उन नरसिंहदेव के प्रसाद से वे सभी सिद्ध होजाया करती हैं—इसमें शक भी संशय नहीं है ॥ १४ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये पुरे नगे ।

प्रसादात्तस्य देवस्य भवस्य व्याहृता गतिः ॥ १५ ॥

असाध्य तस्य देवस्य नाम्ना यत्र मचराचरे ।

नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भक्तानुक्रमिणः ॥ १६ ॥

विधान तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम् ।

येन प्रसीदेच्च यासी सिंहार्धवृत्तविग्रहः ॥ १७ ॥

शृणुष्व मुनिशार्दूलाः कल्परज सनातनम् ।

नरसिंहस्य तत्त्वं च यत्र ज्ञातं मुरासुरैः ॥ १८ ॥

शाकपावकमूर्धस्तु फलविण्या कसकनुकं ।

पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा यतयेत्साधकोत्तमः ॥ १९ ॥

कोशकोपीनवासाश्च ध्यानयुवतो जितेन्द्रियः ।

अरण्ये विजने देशे पर्वतो सिन्धुसगमे ॥ २० ॥

ऊपरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा ।

प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाऽपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥ २१ ॥

उन नरसिंह देव के प्रसाद से स्वर्ग में, मर्त्यलोका में, पाताल में, सभी दिशा-विदिशाओं में, जन में, पुर में, पर्वत में, मनुष्य को गति अर्थात् होजाया करती है अर्थात् वह सभी जगह गमन कर दिया करता है और जगहों की पर भी धारण नहीं हुआ करती है ॥ १५ ॥ इन चराचर में उन देव को कुछ भी भयाप्य नहीं है । भगवान् नरसिंह

हे विप्रो ! सर्वदा अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले हैं ॥८६॥ भक्तों का उपकार करने वाले उन देव का विधान मैं बतलाऊँगा जिसके द्वारा भ्राधे सिंह का विग्रह थारण करने वाले नरसिंह प्रभु अनि प्रसन्न होजाया करते हैं ॥८७॥ हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग रानातन कल्प राज का श्रवण कीजिए । वह नरसिंह प्रभु का तत्त्व है जिसको कि सुरो तथा असुरो में किसी ने भी जाना है ॥८८॥ शक यावक-मूल फल-विण्याक-सतुआ और यय के भक्षण के द्वारा हे विप्रेन्द्रो ! उत्तम साधना करने वाले की वर्त्तन करना चाहिए ॥८९॥ कोश और कोपीन का वस्त्र धारण करे-सदा ध्यान में युक्त रहे और इन्द्रियों को जीतकर रखे । चाहे अरण्य में या किसी विद्यावान वेश में-पर्वत पर या दो सरिताओं के सङ्गम के स्थल में-ऊपर में अथवा किसी सिद्ध क्षेत्र में तथा नरसिंह के आश्रम में अपने आपकी स्थिति करे और वहाँ प्रतिष्ठापित करके विधि-विधान से अभ्यर्चन करना चाहिए ॥९०-९१॥

द्वादश्या शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिषु गवाः ।

जपेत्तल्लक्षाणि वै विशन्मनसा सयतेन्द्रियः ॥९२

उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुतः ।

भुक्तो भवत्ततो विप्रा साधको नान सशय ॥९३

कृत्वा प्रदक्षिण तत्र नरसिंह प्रपूजयेत् ।

पुण्यगन्धादिभिर्धूर्पे प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥९४

कर्पूरचन्दनावतानि जातीपुष्पाणि मस्तके ।

प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिं प्रजायते ॥९५

भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिह्न्यते ।

तेज सोढु न शक्ता स्युर्ब्रह्मरुद्रादय सुरा ॥९६

किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः ।

विद्याधरा यक्षगणा सर्किनरमहोरगा ॥९७

मन्त्र यानासुरान्हुन्तु जपन्त्येवेज्यसाधकाः ।

ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽऽनित्याग्निवर्चसः ॥९८॥

हे मुनिपुङ्गवो ! भाग की कृपण पग की द्वादशी के दिन उपवास करें और तप्यो इन्द्रियों वाता मन से योग मग्न जाय करें ॥२२॥ उप पानको मे मुक्त और महापातको मे मुक्त मनुष्य जो साधना करने वाला है यह मुक्त होजाया करता है—इसमें कुछ भी मग्न नहीं है ॥२३॥ पत्नी पर प्रदक्षिणा करते नरसिंह भगवान् का पूजन करना चाहिए । पुत्र-गन्ध पूष सादि से अर्पण करने प्रभु के आगे मल्लय भूमि में देवपर प्रणाम करता चाहिए ॥२४॥ हमने अगन्तर भगवान् नरसिंह के मस्त्र में वपुर् और चन्दन में अक्त जाती पुष्पो का अर्पित करे—ऐसा करने से सिद्धि हो जाया करती है । २५॥ नरसिंह भगवान् समस्त कार्यों में पत्नी पर भी ह्यमान नहीं होने हैं । उनका इतना प्रवण तेज होता है कि उसको ब्रह्मा और इन्द्र आदि कोई भी गुर सहन करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं ॥२६॥ फिर शीत में दान्यों की सो भान ही क्या है । सिद्ध-म धर्म-मनुष्य-विद्याधर-धनगण-विपन्न-महोरग तथा अग्न साधक जिन अगुरो का हनन करने के लिये नरसिंह देव के मग्न का जप किया करते हैं । इस अग्नि के समान बर्षस वालों को देग कर ही वे सब प्रलय को प्राप्त होजाया करते हैं ॥२७-२८॥

सकृज्जप्त तु कवच रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् ।

द्विर्जप्तं कवच दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥

गन्धर्वा पिनरा यक्षा विद्याधरमहोरगा ।

भूता पिशाचा रक्षासि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०॥

त्रिर्जप्तं कवच दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः ।

द्वादशाम्यन्तरे चैव योजनाना द्विजोत्तमाः ॥३१॥

रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः ।

ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम् ॥३२॥

पलाशकाष्ठैः प्रज्वालय भगवन्तं हुताशनम् ।

पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिंशमुप्लुता ॥३३॥

हो शते द्विजशार्दूला वपट्कारेण साधकः ।

ततो विवरद्वारं तु प्रवट् जायते क्षणात् ॥३४॥

ततो विशेत्तु निःशङ्कं कवची विवर बुधः ।

गच्छदतः सकटं तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥२५॥

एक बार भी इनके कवच का जप सब उपद्रवों से रक्षा किया करता है । यदि दो बार इनके कवच का जाप किया जावे जोकि परम दिव्य है देव और दानवों से रक्षा किया करता है ॥२६॥ गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, महोरग, भूत, पिशाच, राक्षस और जो अन्य भी परिपन्थी होवे है इनसे सुरक्षा पाने के लिये तीन बार इस दिव्य कवच का जाप करे जोकि सुरासुरों के द्वारा अनेक है । हे द्विजोत्तमो ! द्वादश धोजभों के अन्दर उसकी महान् बलवान् भगवान् नरसिंहदेव रक्षा किया करते हैं । इसके पश्चात् वहाँ से किसी विल के द्वार पर जाकर तीन रानि पर्यन्त उपवास करता चाहिए ॥३०-३१॥ ठाक के काष्ठों से भगवान् हुलाशन का प्रज्वलित करके तिमघ्न से पुत्र करके उस अग्नि में पलाश की समिग्रामों की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥३३॥ हे द्विजशार्दूलो ! साधक को घण्टाकार से दोसी आहुतियाँ देनी चाहिए । इसके पश्चात् उसी क्षण में विवर का द्वार प्रकट हो जाता है ॥३४॥ इसके अनन्तर कवच धाला बुध निःशङ्क होकर उस विवर में प्रवेश करे । गमन करने वाले उसका तब सङ्कट और तमोमोह नष्ट हो जाया करता है ॥३५॥

राजमार्गं सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि(म्बि)तः ।

नरसिंह स्मरंस्तन पाताल विशते द्विजाः ॥ १

गत्या तन जपेत्तत्त्व नरसिंहाख्यमव्ययम् ।

ततः स्त्रीणां सहस्राणि वीणायादनकर्मणाम् ॥३७॥

निगच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागतं ता वदन्ति च ।

प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८॥

ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः ।

पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहानलः ॥३९॥

धीरुते सह कन्याभिर्याविदाभूतसम्पन्नम् ।

मित्रदेहो वासुदेवे लीयते नाश सशयः ॥४०॥

यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुनः ।

पट्टं शल च खड्गं च रोचना च मणिं तथा ॥४१॥

रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च ।

कृष्णाजिन मुनिध्वेष्टा गुटिका च मनोहराम् ॥४२॥

कमण्डलु चाक्षमूत्र यष्टिं सङ्गीवनो तथा ।

सिद्धविद्या च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वरः ॥४३॥

उसमे भ्रमरो से अश्वित राज भार्ग अत्यन्त सुविस्तीर्ण दिललाई दिया करता है । हे द्विजो ! वहाँ पर भगवान् नरसिंह का स्मरण करता हुआ पाताल में प्रवेश किया करता है ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक तारु का जाप करना चाहिए । इसके उपरान्त वीणा के वादन करने वालों की सहस्रों स्त्रियों आगे निकलती हैं और हे विप्रो ! वे स्वागत कहा करती हैं । ये स्त्रियाँ उस साधक का स्वागत करती हुई उसको हाथ से पकड़ कर अन्दर प्रवेश कराया करती हैं ॥३७-३८॥ हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर वे उस साधना करने वाले पुष्प को परम दिव्य रसायन का पान करती हैं । उसके पान करते ही वह साधक दिव्यदेह वाला महान् बलवान् होता है ॥३९॥ वहाँ पर वह जब तक भूतों का संभव होता है जब तक कन्याओं के साथ क्रीड़ा किया करता है । फिर मित्रदेह वाला वह वामुदेव में लीन हो जाता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥४०॥ जब इसको वहाँ पर निवास पसन्द नहीं होता है तो यह वहाँ से पुनः निवृत्त कर चला जाता है । पट्ट-शल खड्ग-रोचना-मणि-रस-रसायन-पादुकाञ्जन-कृष्णाजिन और हे मुनिध्वेष्टो ! मनोहरगुटिका, कमण्डलु, अक्षमूत्र, यष्टि, सङ्गीवनो, सिद्धविद्या और शास्त्रों को यह साधकेश्वर सबको ग्रहण कर लेता है ॥४१-४३॥

ज्वलद्वह्निस्कुलिङ्गोमिवेष्टित त्रिशिख हृदि ।

सकृन्मस्त दहेत्सर्वं धृजिन जन्मकोटिजम् ॥४४॥

विपे न्यस्त विपं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनो स्थितम् ।

स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुष्यति ॥४५॥

महाग्रहग्रहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् ।
हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः ॥४६॥
बालानां कण्ठके बद्धं रक्षा भवति नित्यशः ।
गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं कुरते ध्रुवम् ॥४७॥
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् ।
त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ॥४८॥
असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यां या कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४९॥

जलती हुई बाल के स्फुलिङ्गों की ऊँचियों से वेष्टित त्रिशूल को हृदय में एक बार विन्यस्त करके करोड़ों जन्मों में समुत्पन्न सम्पूर्ण पापों को दग्ध कर देना चाहिए ॥४६॥ विष में न्यस्त विष का हनन कर देवे और शरीर में स्थित कुष्ठ का हनन कर देना चाहिए । अपने देह में भ्रूण हत्यादि करके दिव्यतेज से शुद्ध होता है ॥४५॥ महाग्रही में गृहीतो में ज्वलमान का विचिन्तन करना चाहिए । इसके अनन्तर हृदन्त में शीघ्र ही दारुणग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ छोटे बालको के कण्ठ में बद्ध होकर निश्चय ही रक्षा होती है । गण्ड-पिण्डक और कलूतानों का विनाश मिश्रित रूप से कर देता है ॥४७॥ व्याधि के समुत्पन्न होने पर घृत और क्षीर के द्वारा समिधाओं से होम करना चाहिए । एक मास पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं के समय में करने से समस्त रोगों का विनाश कर देता है ॥४८॥ इस परापर त्रैलोक्य में कुछ भी ऐसा मैं नहीं देखता हूँ जो साध्य न हो । जिस-जिस सिद्धि की कामना किया करता है उनी-उसी सिद्धि की प्राप्ति निश्चित रूप से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४९॥

अष्टोत्तरशत त्वेके पूजित्वा मृगाधिपम् ।
गृत्तिकाः सप्त बल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ॥५०॥
रक्तचन्दनसमिश्रा गवां क्षीरेण लोडयेत् ।
सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन पटङ्गुलाम् ॥५१॥

लिम्पेत्तथा भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत् ।
 नरसिंहस्य कण्ठे तु वद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥५२॥
 जपेत्सख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये ।
 यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्सयमितेन्द्रियः ॥५३॥
 जलाकीर्णां मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी ।
 अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥५४॥
 जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं वर्षंस्तं विनिवारयेत् ।
 तमेव पिङ्गके वद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥५५॥
 महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नानं सशयः ।
 पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तसं(ज)प्नते वारिणा ॥५६॥

कुछ लोग एक सौ आठ भृगाधिप का पूजन सात मृत्तिका बरुभीक
 (बाँबी) में—इगडान में और चतुष्पथ में ग्रहण करके रक्त चन्दन से
 भलीभाँति मिश्रित करे और गी के खीर से लोडन करना चाहिए । फिर
 छँ अगुल प्रमाण वाली सिंह की प्रतिमा का निर्माण करे ॥५०-५१॥
 तथा भोजपत्र में लिम्पन करे और रोचनां से लेखन करना चाहिए ।
 मन्त्र के ज्ञाता पुरुष को उसे नरसिंह भगवान् के कण्ठ में वद्ध कर देना
 चाहिए ॥५२॥ जलाशय में पूजन करके बिना ही सख्या के उसका जाप
 करे । सब इन्द्रियो का सयम में रखने वाले साधक पुरुष को एक सप्ताह
 भर इसका जप करना चाहिए ॥५३॥ एक मुहूर्त मात्र समय में ही
 सम्पूर्ण मेदिनी जल से सगाकीर्ण हो जाती है । अथवा किसी सूखे हुए
 वृक्ष के अग्रभाग में नरसिंह देव का पूजन करना चाहिए ॥५४॥ आठ
 सौ तत्त्व का जाप करके वर्षोंतुए वा निवारण कर देवे । इस प्रकार
 से उसको एक पिङ्गक में बाँधकर उत्तम साधक को उसे घुमाना
 चाहिए ॥५५॥ एक मुहूर्त मात्र समय में ही महान् वात आ जाता
 करता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । और फिर इसको शीघ्र ही
 सात बार, जपे हुए जल से धारण करे ॥५६॥

अथ ता प्रतिमा द्वारि निखनेद्यस्य साधकः ।

गोक्षोत्सादो भवेत्तस्य उद्धूते चैव शान्तिद ॥५७॥

तस्मात्त मुनिशार्दूला भक्त्या सपूजयेत्तदा ।
 मृगराज महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८
 विमुक्तं सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
 ब्राह्मणा, क्षत्रिया वैश्या, स्त्रिय शूद्रान्त्यजादयः ॥५९
 सपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ।
 मुच्यन्ते चाशुभेर्द्वैर्लज्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०
 सपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्
 देवत्वममरेशत्व गन्धर्वत्व च भो द्विजाः ॥६१
 यदाविद्याधरत्वं च तथाऽन्यस्त्राभिवाञ्छितम् ।
 दृष्ट्वा स्तुत्वा नगस्कृत्वा सपूज्य नरकेसरीम् ॥६२
 प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम् ।
 नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३

साधक जिसके द्वार पर इस प्रतिमा को गाढ़ देवे तो उसका गोत्र
 का एकदम उस्ताह हो जाया करता है और उसके उद्धृत करने पर
 शान्ति देने वाला हुआ करता है अर्थात् वह प्रतिमा भूमि में रहेगी जब
 तक उसके धरा का नाश होता ही रहेगा और उसे निवाल लेने पर ही
 शान्ति हुआ करती है ॥५७॥ इस कारण से हे मुनि शार्दूलो ! उन
 महान् वीर्य वाले सब कामों के फल को प्रदान करने वाले मृगराज का
 सदा ही पूजन करना चाहिए ॥५८॥ वह पूजक पुरुष सब पापों से विमुक्त
 होकर सीधा विष्णु भगवान् के लोक को गमन किया करता है । ब्राह्मण,
 क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और स्त्रियाँ तथा अन्त्यज सभी भक्तिभाव से सिंह के
 शरीर का धारण करने वाले उन सुरों में श्रेष्ठ का भती भाँति पूजन
 करके करोड़ों जन्मों में समुदात्र होने वाले अशुभ दुःखों से छुटकारा पा
 जाया करते हैं ॥५९-६०॥ उन सुरों में परम श्रेष्ठ देव का अभ्यर्चन
 करके मनुष्य अपने अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति किया करते हैं । देवत्व-
 अमरत्व-अमरों का ईशत्व-गन्धर्वत्व-यदा तथा विद्याधरत्व और हे द्विज-
 गणो ! इनके अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य अभीष्ट मनोरथ होता है उसको
 भी भगवान् नरकेसरी का दर्शन करके स्तवन करके-नगस्कार करके और

भली विधि से पूजन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करते हैं । राज्य-स्वर्गवाता और परम दुःख भोग को भी मनुष्य नरसिंह भगवान् का दर्शन करके अभिमत फल का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१-६२॥

निर्मुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।

राकृद्दृष्ट्वा तु तं देव भक्त्या सिंहवपुःपरम् ॥६४

मुच्यते चाशुभेर्दुर्लभं जन्मकोटिसमुद्भवं ।

सग्रामे सकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५

कान्तारे प्राणसन्निधौ विषवह्निजलेषु च ।

राजादिभ्यः समुद्रं भ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६

स्मृत्वा तं पुरुषं सर्वे राजग्रामे विमुच्यते ।

सूर्योदये यथा नाश तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७

तथा सदृशे तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः ।

गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८

नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्याश्च वाञ्छितान् ।

यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९

तास्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र सशयः ।

दृष्ट्वा तं देवदेवेश भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०

वह मनुष्य फिर सभी पापों से छूटकर विष्णुलोक में सिंह रूप धारी देव का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त कर लेता है वह करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुए अशुभ दुःखों से विमुक्त हो जाता है । सग्राम में-सकूट में-दुर्ग में चोर तथा व्याघ्रादि से पीडित होने के समय में गहन घन में प्राणी के सन्निधौ के अवसर पर-विष, वह्नि और जल में- राजा आदि से तथा समुद्रों से और ग्रह तथा रोग आदि से पीडित होने पर पुरुष उन भगवान् का स्मरण करके ही सभी राजग्रामों से विमुक्त हो जाया करता है । जिस प्रकार से सूर्य के उदय होने पर महान् से भी महान् अन्धकार विनष्ट हो जाता है ठीक उसी भाँति से उन प्रभु के दर्शन होने पर भी प्रकार के उपद्रव विनाश को प्राप्त होते हैं । गुटिका अञ्जन-

पातालाञ्जन-पादुकाएँ तथा रसायन ये सभी भगवान् नरसिंहदेव के प्रसन्न होने पर प्राप्त हो जाया करते हैं और धन्य भी वाञ्छितो को प्राप्त कर लेता है । नर केसरी का ध्यान करते हुए जिन-जिन मनोरथों को मनुष्य किया करता है उन्हीं-उन कामनाओं को मनुष्य प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उन देवेश्वर का दर्शन—भक्ति से अर्चन और प्रणाम करके बहुत अधिक फल प्राप्त किया करता है ॥६४-७०॥

दशानामश्रमेधानां फलं दशगुणं लभेत् ।

पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥

सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ।

सौवर्णेन विमानेन किकिणीजालमालिना ॥७२॥

सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।

तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥

दिव्यस्त्रीशतमुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।

कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥

स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकव्रजेक्षरः ।

भुक्त्वा तत्र घराभोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥

गन्धर्वैरप्सरैर्मुक्तः कृत्वा रूपचतुर्भुजम् ।

मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसप्लवम् ॥ ६॥

पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिना कुले ।

चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥

वैष्णवयोगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

दश अश्रमेष्ट यज्ञों के जो फल होते हैं उससे भी दश गुना फल भगवान् नरसिंह के दर्शन आदि से प्राप्त हुवा करता है । भगवान् नरसिंह का उपासक पुरुष सदा पापों से निर्मुक्त होता हुआ सभी सदगुणों से समलङ्कृत हो जाता है । सब कामनाओं से समृद्ध होकर जरा (वृद्धता) और मरण से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । वह फिर विद्विजियों के जालों की माला वाले, सुवर्ण निमित्त, सभी कामों से

सुसम्पन्न, वाग्ग, सुवचस, तर्हण आदित्य के समान वण जाने, मुक्ताओं के हारा से युक्त, दिव्य स्त्रियों के सबडों समूह से सयुत और दिव्य गन्धर्व आदि से समन्वित विमान के द्वारा अपने इक्षीस कुलों का उद्धार करके देवता के समान प्रसन्न एवं सुखी होकर विष्णुलीक को गमन किया करता है और अप्सराएँ उसकी स्तुति किया करती हैं ॥७१-७५॥ हे द्विजोत्तमो ! वह मनुष्य उस विष्णुलोक में परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके गन्धर्व तथा अप्सराओं से युक्त होकर चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया करता है और मन की आङ्गादित करने वाला सुख महाप्रलय के समान तक प्राप्त किया करता है ॥७६॥ जब पुण्य फलों का क्षय हो जाता है तो पुन वह यहा पर किसी योगियों के परम श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण किया करता है । वह विप्र चारों यदों और वेदाङ्गों का पारंगामी विद्वान हुआ करता है । फिर ब्रह्मण्य योग में समास्थित होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । नरसिंहदेव की उपासना से श्रेष्ठ भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो जाती है ॥७७॥

२२—श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं

अनन्तारय वासुदेव दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च ।
 सबपापविनिर्मुक्तो नरो याति पर पदम् ॥१॥
 मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्येण तदन्तरम् ।
 विभीषणेन रामेण कस्त नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२॥
 श्वेतगङ्गा नर स्नात्वा य पश्यच्छ्वेतमाधवम् ।
 मत्स्यास्य माधव चैव श्व तद्वीप स गच्छति ॥३॥
 श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमहस्यदोषत ।
 विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमा तस्य वै हर ॥४॥

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले ।

श्वेताख्य माधव देव कस्तन स्थापितवान्मुरा ॥१॥

अभूत्कृतयुगे विप्रा श्वेतो नाम नृपो बली ।

मतिमान्धर्मविच्छदर, सत्यसधो दृढव्रत ॥२॥

यस्य राज्ये तु वर्षाणा सहस्र दश मानवा, ।

भवन्त्यायुष्मन्तो लोका वालस्तस्मिन् सौदति ॥३॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अनन्त नाम वाले भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके मनुष्य सभी पाशों से विमुक्त हो जाया करता है और वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥१॥ मेरे द्वारा इनकी आराधना की गयी थी और इसको पश्चात् इन्द्रदेव ने उनकी आराधना की थी । विभीषण के द्वारा तथा राम के द्वारा भी उनकी आराधना की गयी थी । ऐसे उनकी कौन पुरुष आराधना न करेगा ॥२॥ जो पुरुष श्वेत गङ्गा में स्नान करके भगवान् श्वेत माधव का दर्शन किया करता है तथा मत्स्य नाम वाले माधव का दर्शन करता है वह श्वेत द्वीप को गमन किया करता है ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे जगन्नाथ ! आप कृपा करके श्वेत माधव का माहात्म्य पूर्ण रूप से और विस्तार पूर्वक वर्णन करने के योग्य हैं तथा हरि की प्रतिमा के विषय में भी वर्णन कीजिए ॥४॥ उस श्रेष्ठ एव पुण्यमय क्षेत्र में जोकि इस जगती तल में परम विख्यात है उसमें किसने पहिले श्वेत नामक माधवदेव को स्थापित किया था ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे विभी ! कृतयुग में बलवान् एक श्वेत नाम वाला नृप हुआ था जो बहुत ही बुद्धिमान, धर्म का वेत्ता, दूर, दृढ व्रत वाला और सत्य प्रतिज्ञा वाला हुआ था ॥६॥ जिसके राज्य में मनुष्य दस सहस्र वर्षों की आयु वाले होने थे तथा उसमें कोई भी बाल्यावस्था में विनष्ट नहीं हुआ करता था ॥७॥

वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजा, ।

कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिक ॥८॥

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः कालवशाद् द्विजा ।

तमादाय ऋषिर्धर्मान्नपस्यान्तिकमानयत् ॥९॥

दृष्ट्वा चैव नृपति सुप्त कुमार गतचेतसम् ।
 प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनाथं शिशोस्तदा ॥१०॥
 यावद्बालमह त्वेन यमस्य सदने गतम् ।
 नाऽऽनये सप्तरात्रेण चिता दीप्ता समाह्वे ॥११॥
 एवमुक्त्वाऽसितं पद्मं शतं दंशशतादिकं ।
 सपूज्य च महादेव राजा विद्या पुनर्जने ॥१२॥
 अतिभक्तिं तु सचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर ।
 सानिध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३॥
 श्रुत्वैव गिरमीशस्य विलास्य सहसा ह्रस्वम् ।
 भस्मदिग्ध विरूपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवचसम् ॥ ४॥
 शार्ङ्गलचमवसन शशाङ्काङ्कितमूधजम् ।
 मही निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५॥

हे द्विजगणो ! उसी समय में उस राजा के राज्य के वर्तमान होने पर तथा कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर एक कपाल गीतम नाम वाला ऋषि परम धार्मिक हुआ था । हे द्विजो ! काल के बश से उसका पुत्र जिसके दाँत भी नहीं निकले थे मृत हो गया था । उसको लेकर धीमान् ऋषि उस नृप के समीप में उपस्थित हुआ था । हे विप्रो ! उस समय में शिशु के जीवन के लिये राजा ने प्रतिज्ञा की थी ॥८-१०॥ राजा ने कहा—जब तक मैं यमराज के सदन में गये हुए इस बालक को सात रात्रि में नहीं ला सकूँगा तो मैं फिर दीप्त हुई चिता पर समारोहण कर जाऊँगा ॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार स कहकर राजा ने एक सहस्र सौ अक्षित पद्मों में महादेव का भलीभाँति पूजन करके पुन विद्या का जाप किया था ॥१२॥ जगदीश्वर ने नृप की अत्यधिक भक्ति का चिन्तन करके उमादेवी के सहित स्वयं उसका समीप में आगये और उनसे बोले—मैं तुझ पर बहुत प्रगल्भ हो गया हूँ ॥१३॥ इस प्रकार की ईश की कृपा की वरदान करने तथा सहसा भगवान् हर को देगन्धर्व जिनका धम्म से दिग्ध शरीर था और जो विरूप नेत्रा वाले थे और गरजनाल व चन्द्र के समान वचन वाले थे । निव शार्ङ्गस के धम का

वस्त्र धारण करने वाले और जो दशशङ्ख से अङ्कित वेशी वाले थे । ऐसे स्वरूप वाले शिव का दर्शन करके उसी समय में यह राजा सहसा शिव के चरणों में भूमि पर गिर गया था और दण्डवत् प्रणाम करके भगवान् महादेव से बोला— ॥१४-१५॥

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि ।

कालस्य वक्षामापन्नो बालको द्विजपुत्रकः ॥१६॥

जीवत्वेण पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम् ।

अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्त्वयम् ॥

यद्योक्तायुष्णसंयुक्तं क्षेमं कुरु महेश्वर ॥१७॥

इवेतस्पर्तद्वचः श्रुत्वा भुवं प्राप हरस्तदा ।

कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयकरम् ॥१८॥

नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः ।

बालं संजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः ॥१९॥

कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स त द्विजाः ।

देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीमत ॥२०॥

एव संजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तम ॥२१॥

राजा इवेत ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप मेरी वरणा पूर्ण रक्षा की ऐलकर मुझ पर परम प्रताप हैं तो यह बालक द्विज का पुत्र जो कि काल के वश में प्राप्त हो गया है । यह बालक पुन जीवित हो जावे—यही व्रत मैंने आहित किया है । हे भगवन् ! यह बालक अकस्मात् मृत हो गया है । हे महेश्वर ! आप स्वयं नियमन करके इसको मर्योक्त आयुष्य से संयुक्त करके इसका क्षेम करिये ॥१६-१७॥ उस समय में इवेत भूप ने इस वचन की सुनकर भगवान् हर बहुत अधिक आनन्दित हुए और सब प्राणियों को भय देने वाले काल को उन्होंने उसी समय में आज्ञा दे दी थी ॥१८॥ हे द्विजगणो ! यमराज की आज्ञा को बरने वाले काल का नियमन करके जो कि बहुत ही दुर्धर्ष होता है भगवान् हर ने मृत्यु के मुख में गये हुए बालक को पुनः संजीवित कर दिया था ॥१९॥ हे द्विजो ! उन देवेश्वर ने उस भूमि के पुत्र को जीवित करके सम्पूर्ण

जगत् यो दोष पूर्ण करके थे फिर उमा देवी के सहित वही पर अब तर्हित हो गये थे ॥२०॥ उस नृशोत्तम ने इस प्रकार से मुनि के पुत्र को सजीवित कर दिया था ॥२१॥

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवोऽयम् ।

ब्रूहि न परम तस्य श्वेतारयस्य च साप्रतम् ॥२२

शृणुध्व मुनिशादूला सर्वसत्त्वहितावहम् ।

प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छस्य ममानघा ॥२३

माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।

यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ब्रूव प्राप्नोति मानव ॥२४

शृणुध्व मुनिशादूला सर्वसत्त्वहितावहम् ।

शृणुध्व ता कथा दिव्या भयशोकार्तिनाशिनीम् ॥२५

स कृत्वा राज्यमेकाम् वर्षाणां च सहस्रशः ।

विचाय लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्धर्ममास्तथा ॥२६

केशवाराधने विप्रा निश्चितं व्रतमास्थितः ।

स गत्वा परमं क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम् ॥२७

तटे तस्मिच्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके ।

श्वेतोऽथ कारयामास प्रसादं शुभलक्षणम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—हे देवा के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य के जगन्नाता हैं । हे भगवन् ! अब आप कृपा करके इस श्वेत नाम वाले नृप का जो परम सत्य है उसको हमारे सामने वर्णित कीजिए । २२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशादून् ! आप लोग सभी जीवों के हित का आवहन करके उसका अब श्रवण करिए । हे अनघो ! आप लोग जो मुझ से पूछ रहे हैं उसको ठीक ठीक बतनाता हूँ ॥२३॥ भगवान् माधव का माहात्म्य समस्त पापों का विनाश करने वाले हैं । जिसका श्रवण करके मनुष्य अपने अभिमत कामनाओं को निश्चय ही प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे मुनिशादून् ! उस सब जीवों के हित करने वाले उस धरित को सुनिए और उस निश्चय तथा भय

शोक और आर्ति का नाश करने वाली कथा का श्रवण कीजिए ॥२५॥
उस राजा श्वेत ने सहस्रो वर्षों तक उस अपने उत्तम राज्य का शासन
करके तथा लौकिक और वैदिक धर्मों का एक नियमों का विचार करके
है विप्रो ! फिर उसने भगवान् श्री केशव के आराधन में निश्चित धन
की करने में अपना ध्यान लगाया था । वह दक्षिण सागर के आश्रय
वाले परम क्षेत्र की चला गया था ॥२६-२७॥ उस परम रम्य एक शुभ
देश में तथा तट पर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में उनका परम शुभ
लक्षण वाला प्रसाद राजा श्वेत ने कराया था ॥२८॥

धन्वन्तरशतं चैव देवदेवस्य दक्षिणे ।

ततः श्वेतेन विप्रेन्द्राः श्वेतशैलमयेन च ॥२९॥

कृतः स भगवान् श्वेतो माधवश्चन्द्रसन्निभः ।

प्रतिष्ठा विधिबच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयं तु सः ॥३०॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम् ।

अथानन्तरतो राजा माधवस्य च सन्निधौ ॥३१॥

मही निपत्य सहसा ओकारं द्वादशाक्षरम् ।

जपन्स मीनमास्याय मारामेकं समाधिना ॥३२॥

निराहारो महाभागः सम्यग्निष्पन्नपदे स्थितः ।

जपान्ते स तु देवेश सस्तोतुमुपचमे ॥३३॥

ओ नमो वामुदेवाय नमः सकर्षणाय च ।

प्रशुम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥

नमोऽम्बुवटुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ।

निगुणायप्रतर्क्यय शुचये शुक्लकर्मणः ॥३५॥

हे विप्रेन्द्रो ! देवदेव के दक्षिण में एक धन्वन्तर शत उस श्वेत ने
दत्त शैलमय के द्वारा चन्द्रमा के सदृश भगवान् श्वेत माधव का निर्माण
रिया था । फिर उमन विधि-विधान व साथ स्वयं ही यथोद्दिष्ट उनकी
प्रतिष्ठा भी की थी ॥२९-३०॥ दीनानाथ तपस्वियों को द्विजातियों को
दान देकर हमारे अनन्तर वह राजा भगवान् माधव की सन्निधि में गया
था ॥३१॥ उसने सहस्र भूमि में निपात कर दण्डवत् प्रणाम करते हुए

ओङ्कार के सहित द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते हुए एक मास पर्यन्त समाधि के साथ मौन घात में समास्थित हो गया था ॥२॥ वह महा-
भाग निराहार होकर भलोभाति भगवान् विष्णु के पद में स्थित हो गया
था । जब वे अन्त में उसने देवेश्वर का सस्तवन करने का समारम्भ
किया था ॥३०॥ राजा श्वेत ने कहा—भगवान् वासुदेव के लिये मेरा
नमस्कार है । सङ्कपण प्रभु के लिये मेरा नमस्कार है । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,
और नारायण भगवान् की सेवा में मेरा नमस्कार है ॥३४॥ बहुत से
रूप धारण करने वाले विश्व रूप वेद्या निर्गुण, शुचि शुक्लकर्मा, और
अप्रतर्क्य प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥३५॥

ओ नम पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च ।

नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नम ॥३६॥

ओ नम पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।

नम सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥

ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे ।

वरिष्ठाय वरेण्याय शरण्यायाच्युताय च ॥३८॥

ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च ।

बालकरोमनेनाय गुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥

केशवाय नमो नित्य नमो नारायणाय च ।

माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम ॥४०॥

ओ नमो विष्णवे नित्य देवाय वसुरतसे ।

मधुसूदनाय नम शुद्धायाशुधराय च ॥४१॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नम श्रीवत्सधारिणे ।

लिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च ॥४२॥

पद्मनाभ, पद्मगर्भोद्भव, पद्मवर्ण और पद्म हाथ में धारण करने वाले
प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार नमस्कार है ॥३६॥ पुष्कराक्ष,
सहस्राक्ष मीढु, सहस्रपाद, सहस्रभुज और मन्यु के लिये मेरा नमस्कार है
॥३७॥ श्री वराह वरद, सुमेधा, वरिष्ठ, वरेण्य, क्षरण्य और भगवान्
अच्युत के लिये मेरा नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप, बाल पद्मप्रभ, बाल-

सूर्य, और सोम के समान नेत्रों वाले, मुञ्जशेख तथा धीमान् के लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ भगवान् केशव के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है तथा नारायण के लिये मेरा नमस्कार है । भगवान् माधव, यद्विष्ट, और गोविन्द के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४०॥ भगवान् विष्णु देव और वसुदेव के लिये मेरा नित्य ही प्रणाम है । मधुसूदन-शुद्ध और अशुद्ध के लिये मेरा नमस्कार है ॥४१॥ अनन्त के लिये-सूक्ष्म के और श्री नन्द का चित्त धारण करने वाले के लिये नमस्कार है । भगवान् त्रिविक्रम के लिये और दिव्य पीताम्बर धारी प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है ॥४२॥

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्य गोप्त्रे धात्रे नमो नमः ।

नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः ॥४३॥

नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे ।

नमो वामननेत्राय नमो वामनबाहिने ॥४४॥

नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वद्यत्तरूपिणे ।

अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५॥

रासारार्णवगोताय प्रक्षान्ताय स्वरूपिणे ।

शिवाय सौम्यरूपाय रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६॥

भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च ।

भवसघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः ॥४७॥

ओ नमो दिव्यरूपाय सौगान्धर्वसिताय च ।

सोमसूर्याशुकेशाय गान्धाह्वणहिताय च ॥४८॥

ओ नम ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे ।

ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्य नम ऋक्साधनाय च ॥४९॥

इस सृष्टि की रचना करने वाले आपके लिये प्रणाम है तथा गोप्ता और धाता के लिये मेरा नमस्कार है । गुण स्वरूप आपके लिये तथा निर्गुण भगवान् की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४३॥ वागन का रूप धारण करने वाले, वामन का कर्म करने वाले, वामन नेत्र, वामन बाही के लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ परम रम्य, और पूजने

के योग्य के लिये नमस्कार है तथा अव्यक्त रूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भयो के हरण करने वाले प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४५॥ ससाररूप सागर के पोट अर्थात् ससार सागर से पार करने वाले, प्रशान्त स्वरूप, सुन्दर रूप वाले सौम्यरूप धारी शिव के लिये और उच्चारण करने वाले भगवान् रुद्रदेव के लिये प्रणाम है ॥४६॥ इस ससार के भङ्ग करने वाले और सासारिक भोगों के प्रदान करने वाले, भव (ससार) के सघात रूप वाले और भव ही सृष्टि करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥४७॥ दिव्य रूप वाले और रोम एव अग्नि के श्रसित वाले के लिये नमस्कार है । रोम सूर्याशुकेश और गौभो तथा ब्राह्मणों के हित करने वाले के लिये प्रणाम है ॥४८॥ ऋग्वेद के स्वरूप वाले तथा पद, क्रम के स्वरूप से स्थित के लिये और ऋग्वेद द्वारा स्तुति किये गये तथा ऋक् के साधन वाले आपके लिये मेरा अनेक प्रणाम है ॥४९॥

ओं नमो यजुषा धात्रे यजूरूपधराय च ।
 यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः ॥५०॥
 ओ नमः श्रोपते देव श्रीधराय वराय च ।
 श्रियः कान्ताय दान्ताय गोगिचिन्त्याय योगिने ॥५१॥
 ओ नमः सामरूपाय सामध्वनिवराय च ।
 ओ नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः ॥५२॥
 साम्ने च सामगीताय ओ नमः सामधारिणे ।
 सामयशविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३॥
 नमस्त्वथर्वशिपसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे ।
 नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४॥
 ओ नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभधातिने ।
 महोदधिजलस्थाय वेदाहरणकारिणे ॥५५॥
 नमो दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः ।
 नमो भगवते तुभ्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६॥

यजुर्वेद के धाता, यजुर्वेद के स्वरूप धारी, यजुर्वेद के द्वारा यजन करने के योग्य, जुष्ट और यजुर्वेद व मन्त्रों के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥५०॥ हे श्रीपतेदेव ! श्री के धारण करने वाले और वरदान स्वरूप, श्री के कान्त एव दान्त, योगियों के द्वारा चिन्तन करने के योग्य आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५१॥ सामवेद के रूप वाले और साम की श्रेष्ठ ध्वनि वाले, साव सौम्य तथा साम योग के वेत्ता आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५२॥ सामवेद, सामवेद के गीत और साम के धारण करने वाले, सामयज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५३॥ अथर्ववेद के शिर वाले और अथर्ववेद के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है । अथर्व के पाद वाले के लिये और अथर्ववेद के करने वाले के लिये प्रणाम है ॥५४॥ भगवान् यज्ञ दीर्घ और मधु तथा कँठभ के घात करने वाले और गह्वोदधि के जल में स्थित एव वेदों के आहरणकारी भगवान् के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥५५॥ दीप्त स्वरूप वाले हृषीकेश के लिये मेरा नमस्कार है । भगवान् वासुदेव आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५६॥

नारायण नमस्तुभ्य नमो लोकहिताय च ।
 ओ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७॥
 गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च ।
 नैलोक्यतेजसा कर्त्रे नमस्तेजस्वरूपिणे ॥५८॥
 योगीश्वराय शुद्धाय रामयोत्तरणाय च ।
 सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतवारिणे ॥५९॥
 वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय च नमः ।
 देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०॥
 देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमालिने ।
 नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१॥
 ओ नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय च ।
 नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२॥

यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे ।

सकर्पणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३॥

हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । लोको के हित करने वाले, मोह के नाशक तथा इम ससार के आवागमन के विनाश करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥६३॥ सद्गति के प्रदान करने वाले, बन्धन का हरण करने वाले अपनी सेवा मे मेरा धारम्भार नमस्कार है । इस त्रिलोकी के तेजो के करने वाले तथा तेज के स्वरूप वाले, योगेश्वर, शुद्ध स्वरूप, रामा (महालक्ष्मी) की अपनी बाँई और विराजमान रखने वाले, सुख स्वरूप, नेशो के सुख प्रदान करने वाले और सुकृण को धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥६४॥ ५६॥ वन्दना करने के योग्य वामुदेव भगवान् के लिये तथा वामुदेव प्रभु के लिये नमस्कार । समस्त देहधारियों के देह के करने वाले और भेद के भङ्ग करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६५॥ देवो के द्वारा विवृत दह वाले, दिव्य माला धारण करने वाले, वास निवास, वास व्यवहार, वसु के कर्ता, वसु और वास के प्रदान करने वाले, यज्ञ के स्वरूप वाले, यज्ञो के स्वामी और योगी के लिये नमस्कार है ॥६६॥ यति और योग करने वालो के ईश, यज्ञाङ्ग धारी, सङ्कर्षण और प्रलम्ब के मथन करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६७॥

मेघघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे ।

नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४॥

न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो ।

अतस्त्वा सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५॥

भल यत्कायज वाऽपि मानस चैव केशव ।

न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽञ्ज्युत ॥६६॥

ससर्गाणि समस्तानि विहाय त्वामुपस्यितः ।

सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव ॥६७॥

यष्टमापत्सुदुष्पार ससार चेदमि वेशव ।

सापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वा शरण गतः ॥६८॥

एषणाभिर्जंगत्सर्वं मोहित मायया तव ।
 आकर्षित च लोभाद्यै रतस्त्वामहमाश्रितः ॥६६॥
 नास्ति किञ्चित्सुख विष्णो ससारस्यस्य देहिनः ।
 यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥६७॥
 तथा फलविहीन तु सुखमात्यन्तिक लभेत् ।
 नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥६८॥

मेघों के घोष की ध्वनि को पार करने वाले वेग युक्त लाङ्गल के धारण करने वाले के लिए मेरा नमस्कार है । हे जानियों के भी ज्ञान ! हे नारायण परायण ! हे विप्रों ! आप के बिना नरकों से पार करने वाला कोई भी बन्धु नहीं है । हे प्रणतो पर प्यार करने वाले ! अतएव मैं आपके चरणों में प्रणम हो रहा हूँ ॥६४-६५॥ हे केशव ! हे अच्युत ! जो इस काया से समुत्पन्न मल है अथवा मन में जमा हुआ मल है उसका प्रसादन करने वाला हे देवेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है ॥६६॥ मैं सभी ससर्गों का त्याग करके अर्थात् अन्य सासारिक समस्त सम्बन्धों को छोड़कर अब आपकी सेवा में समुपस्थित हो गया हूँ । हे केशव ! अब तो आत्म लाभ प्राप्त करने के निचे केवल आपके ही साथ मेरा सग है ॥६७॥ हे केशव ! आपत्तियों में महान् कष्ट होता है और मैं इस ससार को परम दुश्वार समझता हूँ । मैं इस समय में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापो से परिक्लिष्ट हो रहा हूँ । इसीलिये इनमें कुछकारा पाने के निचे आपके चरणों की शरण में प्राप्त हुआ हूँ ॥६८॥ आपकी भाया बड़ी प्रबल है और एषणाओं से ग्रह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है । मैं लोभ आदि से अत्यन्त आकर्षित हो रहा हूँ । इसीलिये अब से आपकी शरण में प्राप्त हो गया हूँ ॥६९॥ हे विष्णो ! इस ससार में स्थित देहधारी को कुछ भी सुख नहीं होता है । जैसे २ हे यज्ञेश ! यह नित्त आपकी शरणगति में प्रवृत्त होता है तथा फल से विहीन यह आत्यन्तिक सुख को प्राप्त किया करता है । मैं विनष्ट और विवेक से शून्य हूँ और सम्पूर्ण जगत् आतुर दिखलाई दिया करता है ॥७०-७१॥

गोविन्द नाहि ससारान्मामुद्धतुं त्वमर्हसि ।
 मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे ॥७२॥
 उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७३॥
 इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राजा श्वेतेन भो द्विजा ।
 तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७४॥
 भक्तिं तस्य तु सचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरु ।
 आजगाम नृपस्याग्रे सर्वदेववृत्तो हरिः ॥७५॥
 नीलजीमूतसकाश पद्मपत्रायतेक्षण ।
 दधत्सुदशन धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७६॥
 क्षीरोदजलसकाशो विमलश्चन्द्रसनिभ ।
 रराज वामहस्तेऽस्य पार्श्वजन्यो महाद्युतिः ॥७७॥
 पक्षिराजवज्र श्रीमान्गदाशार्ङ्गसिधृक्प्रभु ।
 उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा ॥
 यदिष्ट वर भद्र ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७८॥

हे गोविन्द ! आप मेरा परित्राण करिए । आप इस ससार से मेरा
 उद्धार करने के योग्य हैं । इस मोहपूर्ण जल में मग्न हो रहा हूँ । इस
 महान् ससार सागर में जिसका कहीं भी कोई पार होना नहीं दिखलाई
 देता है मैं विमग्न हो रहा हूँ । हे पुण्डरीकाक्ष ! इससे उद्धार करने
 वाला मुझे आपके बिना अन्य कोई भी विद्यमान नहीं दिखलाई देता
 है ॥७३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! उस राजा श्वेत के द्वारा
 जब वह इस प्रकार से स्तुति किये गये तो उस परम दिव्य क्षेत्र में उस
 विख्यात पुरुषोत्तम में उसकी भक्ति का अपनी भाँति चिन्तन करने देवों
 के भी देव जगत के गुरु समस्त देवा से परिकृत होत हुए भगवान् श्री
 हरि स्वयं उस राजा के सामने समागत हो गये थे ॥७४-७५॥ जिस
 समय में श्री हरि स्वयं उस अपने परम भक्त नृप के समक्ष में पधारें थे
 उस समय के प्रभु ने स्वरूप का वर्णन किया जाता है—नीले वर्ण वाले
 सपन में के समान उज्ज्वल वर्ण था, पलके दोनों के सट्ट सट्टीय
 लोचन थे, परम धीमान् प्रभु ने हाथ व अग्रभाग में प्रदीप्त मण्डल धारण

गुदर्शन चक्र धारण कर रखता था ॥७५॥ क्षीर सागर के स्वच्छ जल के समान तथा चन्द्रमा के सदृश विमल उनका स्वरूप था । इनके धारि हाथ में गहान् द्युति से युक्त पाञ्चजन्य शूल क्षोभित ही रहा था ॥७६॥ गरुड़ की ध्वजा से युक्त, श्री सम्पन्न, गदा, शार्ङ्ग धनुष, खड्ग को धारण किये हुए ये ऐरो प्रभु ने वहाँ पर ममागत होकर कहा—हे गृप ! बहुत अच्छा है, तुझ क्षत्रिय की मति अत्यन्त उत्तम है । हे निष्पाप ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब तुझे जो भी अभीष्ट वरदान प्राप्त करना हो करले । तेरा पर्याण ही होया ॥७७॥

श्रुत्वैवं देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम् ।

प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः ॥७८॥

यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम् ।

आब्रह्मभवनादूर्ध्वं वैष्णव पदमव्ययम् ॥७९॥

विमल विरज शुद्ध ससारासङ्गवर्जितम् ।

तत्पदं गन्तुमिच्छामि स्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥

यत्पदं विबुधाः सर्वे भुजयः सिद्धयोगिनः ।

नाभिगच्छन्ति यद्रम्य परं पदमनामयम् ॥८१॥

यास्यसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च ।

सर्वल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२॥

कोतिस्तवात्र राजेन्द्र श्रील्लोकाश्च गमिष्यति ।

सान्निध्यं मम र्धवात्र सर्वदैव भविष्यति ॥८३॥

श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।

कुशाग्रैर्नापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उम समय ये देवों के भी आराध्यदेव के उक्त परम अमृतमय वचन का श्रवण करके उस गृप ने उनके श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया था और उस श्वेत राजा ने उनके चरणों में अपना मनपूर्ण तप रसते हुए उनसे निवेदन किया था—॥७८॥ राजा श्वेत ने कहा—हे भगवन् ! यदि मैं आपका परम भक्त हूँ तो अब आप कृपया

मुझे उतम वरदान प्रदान कीजिए । हे जगत् के स्वामिन् । मैं आपके प्रसाद से ब्रह्मभवन से श्री ऊपर-अव्यय विमल विरज शुद्ध सत्सार के आसङ्ग से रहित जो घण्टणव पद (स्थान) है उसमें मैं गमन करना चाहता हूँ ॥७६-५०॥ श्री भगवान् ने कहा—जिम पद को समस्त देवगण-मुनिमण्डल और सिद्ध तथा योगी जन नहीं जाया करते हैं वह ऐसा ही परम रम्य और अनामय पद है ॥८१॥ तुम प्रथम अपन राज्य के अमृतमय सुखों को भोग कर फिर अग्त में उसी परम पद को प्राप्त करोगे और समस्त लोको का अतिक्रमण करने मेरे लोक में ही गमन करोगे ॥८२॥ हे राजेन्द्र । तेरा यश तीनों लोकों में फैल जायेगा और तेरा वहाँ पर मेरी सन्निधि में निवास सर्वदा ही रहेगा ॥८३॥ समस्त देव दानव उसे “श्वेत गङ्गा” कहकर गान किया करेंगे । हे राजेन्द्र । कुशा के अग्रभाग के टांग भी इस श्वेत गङ्गा के जल का स्पर्श करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करेंगे ॥८४॥

स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मदभक्ता ये समाहिता ।
 यस्त्विमा प्रतिमा गच्छेन्माधवाख्या शशिप्रभाम् ॥८५॥
 शङ्खगोक्षीरसकाशमशेषाघविनाशिनीम् ।
 ता प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६॥
 विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीगते ।
 मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृत ॥८७॥
 गीयमानश्च मधुर सिद्धगन्धर्वसेवित ।
 भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्ट भामकै सह ॥८८॥
 ष्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।
 वेदवेदाङ्गच्छिन्नीमान्भोग्याश्चिरजीवित ॥८९॥
 गजाश्वरसयानाढ्यो घनधान्यावृत शुचि ।
 रूपचान्द्रभास्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वित ॥९०॥
 पुरघोरात् पुन प्राप्य वटभूतेऽथ सागरे ।
 त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ता शान्तपद व्रजेत् ॥९१॥

जो मेरे परम समाहित भक्त है वे ही इसका कुशाग्रभाग से स्पर्श करके स्वर्ग को गमन किया करेंगे । जो चन्द्र के समान प्रभा वाली मेरी माधव नामधारिणी प्रतिमा है उसके समीप में जो भी कोई गमन करेगा जिराका स्वरूप ब्रह्म, गो दुग्ध के समान है और जो समस्त अधो वा विनाश करने वाली है एवं पुण्डरीक के समान जिसके परम सुन्दर नेत्र हैं उस मेरी प्रतिमा को भक्तिभाव से जो कोई एक बार भी प्रणाम किया करता है वह सभी लोकों का त्याग करके मेरे ही लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । वहाँ पर वह देव कन्याओं से समावृत रहता हुआ बहुत से भक्तान्तरो तक निवास किया करता है । उसको स्तुति का वहाँ गान किया जाता है जो परम मधुर होता है और सिद्ध तथा गन्धर्वगण उसकी सेवा किया करते हैं । वहाँ पर वह मेरे अनेक भक्तों के साथ यथेष्ट रूप से बहुत से भोगों का उपभोग किया करता है ॥८५८॥ वहाँ से च्युत होकर वह अधिक काल के पश्चात् पुण्यो का शय हो जाने पर वहाँ पुनः आता है और मनुष्यों में ग्राहण हुआ करता है जो वेदों और वेदाङ्ग शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता भोगों वाला और बिरकाल तक जीवित रहने वाला होता है ॥८६॥ वह विप्र होकर भी हाथी घोड़े-रथ और धन से सुसम्पन्न होता है । धन धान्य से परिपूर्ण शुचिरूप लावण्य से युक्त बहुत ही भाग्यशाली तथा पुत्र पौत्रादि से समन्वित हुआ करता है । पुनः वह पुरुषोत्तम को बट के मूल में अथवा सागर में प्राप्त किया करता है । फिर वह इस देह का परित्याग करके भगवान् श्री हरि का स्मरण करने परम ज्ञान पद को गमन किया करता है ॥८७-८९॥

२७—समुद्रस्नानविधिवर्णन

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे वत्स्यमाधवम् ।
 एकार्णवजले पूर्वं रोहित रूपमास्थितम् ॥१॥
 वेदानां हरणार्थाय रसातलतले स्थितम् ।
 चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
 आधावतरण रूप माधव मत्स्यरूपिणम् ।
 प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सचटु स्वाद्विमुच्यते ॥३॥
 प्रयाति परम स्थानं यत्र देवो हरि स्वयम् ।
 काले पुनरिहाऽऽशतो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
 वत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः ।
 दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वंष्णवः सत्यसगरः ॥५॥
 योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
 मत्स्यमाधवमाहात्म्यं मया सपरिकीर्तितम् ॥
 महद्वा मुनिशार्दूला सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् श्वेत माधव का दर्शन करके उनके समीप में ही मत्स्य माधव विराजमान हैं उनका अवलोकन करना चाहिए । पहिले यह मत्स्य माधव प्रभु उस एकार्णव जल में रोहित के रूप में समास्थित हो गये थे ॥१॥ वेदों के आहरण करने के लिये रसातल में स्थित हुए । क्षिति का चिन्तन करके उसी स्थान में यह भली भाँति प्रतिष्ठित हो गये थे ॥२॥ मत्स्य के स्वरूप वाले माधव का स्वरूप आदि में होने वाला अवतार है । इनकी प्रणाम करके और इनके समक्ष में प्रणत होने वाला प्राणी सभी दुःखा से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ अन्त समय में वह परम पद को गमन किया करता है जहाँ पर स्वयं श्री हरि विराजमान रहा करते हैं । पुण्य के क्षीण होने पर चिरकाल के पश्चात् वह पुनः इस वर्मभूमि भारत में वैष्णव ग्रहण करके पृथिवी तल में राजा होता है ॥४॥ भद्रपूज्य वत्स माधव

को प्राप्त करने दुराधर्ष हो जाया करता है । वह दाता-भोक्ता-यज्या-सत्यसङ्कुर और वैष्णव होता है ॥५॥ फिर यहाँ पर भगवान् श्री हरि के योग को प्राप्ति करके मोक्ष को प्राप्त किया करता है । मैंने यह भगवान् मत्स्य माधव के माहात्म्य का परम सङ्क्षेप से वर्णन कर दिया है । हे मुनिगणों ! जिन मत्स्य माधव भगवान् का दर्शन करके मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥

भगवच्छ्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये ।

क्रियते स्नानदानादि तस्याक्षेपफलं वद ॥७॥

शृणुष्व मुनिशादूला मार्जनस्य यथाविधि ।

भक्त्या तु तन्मना भूत्वा संप्राप्य पुण्यपुत्रवम् ॥८॥

मार्कण्डेयहृदे स्नान पूर्वकाले प्रशस्यते ।

चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥

तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकलं प्रशस्यते ।

पौर्णमास्या विशेषेण ह्यमेघफलं लभेत् ॥१०॥

मार्कण्डेय वटं कृष्णं रौहिणेयं महोदधिम् ।

इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधिं स्मृतं (?) ॥११॥

पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत् ।

तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थं राजं परं शुभम् ॥१२॥

कायवाङ्मानसं द्युस्तदभावो नान्यमानसः ।

सयंद्व द्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सरः ॥१३॥

कल्पवृक्षवटं रम्यं तत्र स्नात्वा जनादनम् ।

प्रदक्षिणं प्रयुज्यते निवारं सुममाहिनं ॥१४॥

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब हम लोग वरुणालय (सागर) में मार्जन (स्नान) करने के विधान का श्रवण करने की अत्यन्त उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं । वही पर जो स्नान-आदि किया जाता है उस सब पत्र का वर्णन कीजिए ॥७॥ हे मुनिगणों ! अब आप संक्षेप मार्जन का विधान सुनिए । जो निष्कल भाव के साथ तन्मनस्व होकर यथाविधि मार्जन करने उत्तम पुण्य की प्राप्ति मनुष्य किया करता है

॥८॥ इसके भी पूर्व समय में मार्गण्डेय हृद में स्नान करना परम प्रशस्त माना जाता है । विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि में यहाँ स्नान करना सभी पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥९॥ उसी भाँति समुद्र के स्नान को भी सभी कालों में प्रशस्त माना गया है । पूर्णिमा तिथि में विशेष रूप से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्गण्डेय-वटकृष्ण-रौहिणेय-महोदधि और इन्द्रद्युम्न सरोवर—यह पाँच तीर्थों की विधि बतायी गयी है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र होवे उसी समय में विशेष रूप से यह तीर्थराज परम शुभ होता है ॥१२॥ शरीर-मन यत्नो से शुद्ध होकर तीर्थराज में ही भावना रखने वाला अथ किसी ने भी अपना मन न लगाने वाला सभी सासारिक दुन्दुओं से विमुक्त रहकर राग से रहित एवं मात्सर्य दोष से शून्य होने वाला पृथ्व परम रम्य स्नान करके कल्प वृक्ष वट श्री जनार्दन प्रभु की प्रदक्षिणा करे और परम सावधान होकर तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए ॥१३-१४॥

य दृष्ट्वा मुच्यते पापास्तप्तजन्मसमुद्भवान् ।

पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टा च भो द्विजा ॥१५॥

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाण च युगे युगे ।

यथासह्य च भो विप्रा कृतादिषु यथाक्रमम् ॥१६॥

वट वटेश्वर कृष्ण पुराणपुरुष द्विजा ।

वटस्यंतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु ॥१७॥

योजन पादहीन च योजनार्धं तदधकम् ।

प्रमाण कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम् ॥१८॥

यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु त वटम् ।

दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम् ॥१९॥

यत्रारौ दृश्यते विष्णु स्वगङ्गार मनारमम् ।

सागराम्भ समाकृष्ट काष्ठ सर्वगुणान्वितम् ॥२०॥

प्रणिपत्य ततस्त भो परिपूज्य तत पुन ।

मुच्यते सर्वरोगार्चं स्तथा पापैर्ग्रहादिभि ॥२१॥

हे द्विजगण ! उन प्रभु का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य सात जन्मों में सञ्चित किये हुए पापों से मुक्त हो जाया करता है और बहुत अधिक पुण्य की प्राप्ति किया करता है तथा अभीष्ट गति का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ उनके शुभ नाम और युग-युग में जो प्रमाण है उनको मैं बतलाता हूँ । हे विप्रो ! श्रुतयुग आदि में मैं उन नामों को सख्य नुसार तथा क्रम के अनुसार बतलाता हूँ ॥१६॥ हे द्विजो ! कृतयुग आदि में इस वर के बट वटेश्वर-कृष्ण और पुराण पुरुष-ये नाम कीर्तित किये गये हैं ॥१७॥ कृतयुग आदि में एक योजन (जो चार कोश का माना जाता है)—पौन योजन अर्थात् तीन कोश आधा योजन और एक पाव योजन इस बटन वृक्ष का प्रमाण कहा गया है ॥१८॥ यथोक्त मन्त्र के द्वारा उस बट को प्रणाम करके दक्षिण की ओर मुखा करके तीन सौ भस्मन्तर तक गमन करना चाहिए ॥१९॥ जहाँ पर यह भगवान् विष्णु दिखलाई दिया करते हैं वह परम मनोरम स्वर्ग का द्वार है । सागर के जल के द्वारा समाकृत है जो सभी गुण-गण से युक्त होता है ॥२०॥ उसका प्रणिपात करके उसके उपरान्त उसका पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य सब रोग आदि से समस्त पापों से और दुष्ट ग्रह आदि के प्रकोप से मुक्त हो जाया करता है ॥२१॥

उग्रसेन पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम् ।

गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायण परम् ॥२२॥

न्यसेदष्टाक्षर मन्त्र पञ्चाङ्गस्तशरीरयो ।

ॐ नमो नारायणयेति य वदन्ति मनापिण ॥२३॥

किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रर्मनोविभ्रमकारकं ।

ॐ नमो नारायणयेति मन्त्र सर्वार्थसाधक ॥२४॥

आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिता ।

विष्णोस्तास्त्वयन पूर्वं तेन नारायण स्मृत ॥ ५

नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजा ।

नारायणपरा यज्ञा नारायणपरा क्रिया ॥२६॥

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपर जलम् ।

नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः ॥२७

नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः ।

अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥२८

पहिले उग्रसेन का दर्शन करके स्वर्ग द्वार से सागर को जाकर वहाँ आचमन करे । पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करना चाहिए ॥२२॥ इसके पीछे हाथ और शरीर में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए । वह मन्त्र—“ॐ नमो नारायणाय” यह है जिसको मनीषी लोग कहा करते हैं ॥२३॥ अन्य बहुत से मन के विभ्रम करने वाले मन्त्रों से फिर क्या प्रयोजन है ? ॐ नमो नारायणाय—यह मन्त्र ही सर्वाथों का साधक होता है ॥२४॥ नर के पुनर्हीन होने से ही जल “नारा”—इस नाम से भीतित किये गये हैं । वे ही जल भगवान् विष्णु के भजन हैं जो कि सबसे पूर्व में था । अतएव वह नारायण नाम वाले कहे गये हैं ॥२५॥ भगवान् नारायण ही में परायण रहने वाले समस्त वेद हैं अर्थात् सब वेद नारायण को ही मुख्यतया प्रतिपादित किया करते हैं । एव द्विजगण भी नारायण में ही तत्पर रहा करते हैं । सब यज्ञ भी नारायण के ही प्राप्त कराने वाले हैं । नारायण की प्राप्ति ही उनका मुख्य ध्येय होता है । समस्त शास्त्रोक्त धार्मिक क्रियाएँ भी नारायण-परामण हुआ करती हैं । यह सम्पूर्ण पृथ्वी भी नारायण में ही परायण होती है और जल भी नारायण पर है । नभ तथा वह्नि भी नारायण में तत्पर रहा करते हैं एव वायु और मन भी नारायण में ही परायण रहते हैं । अहङ्कार और बुद्धि ये दोनों भी नारायण स्वरूप ही होने हैं ॥२६-२८॥

भूत भव्य भविष्य च यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम् ।

स्थूल सूक्ष्म पर चैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥२९

क्षान्दाद्या विषया. सर्वे श्रोत्रादीनिन्द्रियाणि च ।

प्रकृति. पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मका. ॥३०

जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे ।

अवष्टभ्य इद सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः ॥ १

किं चात्र बहूनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम् ॥ ३२

नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः ।

तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥ ३३

आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः ।

तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमथापहम् ॥ ३४

स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः ।

स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते कामे च विन्यसेत् ॥ ३५

भूतकाल जो व्यतीत हो चुका है-भव्यकाल जो वर्तमान में है और भविष्य जो आगे आने वाला समय है तथा जो भी कोई जीव सजा से युक्त है-स्थूल स्वरूप से और सूक्ष्म स्वरूप वाले तथापर ये सभी नारायण के एक होते हैं ॥२६॥ शब्द आदि समस्त इन्द्रियो के विषय और श्रोत्रप्रभृति सब इन्द्रियो का समुदाय प्रकृति एवं पुरुष नाम से सम्बोधित किये जाने वाला-ये सभी भगवान् नारायण के ही स्वरूप होते हैं । तात्पर्य यह है कि इस विश्व में नारायण के सब विभिन्न स्वरूप हैं और उनसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥२७॥ जल में, स्थल में, पाताल में, स्वर्गलोक में, अम्बर में, पर्वत में भगवान् नारायण ही सबको अवष्टम्भ करके विद्यमान रहा करते हैं और निष्कर्षार्थ में सब नारायण का ही स्वरूप है जो कि सर्व साधारण को विभिन्न रूपों में दिखलाई दिया करते हैं ॥३१॥ विशेष कथन करने से क्या लाभ है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी नारायण का स्वरूप होता है ॥३२॥ हे द्विजो ! हम यहाँ पर नारायण से पर अन्य कुछ भी नहीं देखते हैं । उन्हीं से दृश्य तथा अदृश्य चराचर सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥३३॥ आप अर्थात् जल भगवान् विष्णु का आयतन अर्थात् निवास स्थान है और वही जलों का स्वामी है । इसी लिये आपको के अपहरण करने वाले भगवान् नारायण का स्मरण नित्य ही जल में करना चाहिए

॥३४॥ विशेष रूप से स्नान करने के समय में उपस्थान करके और घुंघुं होकर भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिए तथा हस्त में और शरीर में विन्यास करे ॥३५॥

ओंकार च नकार च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत् ।

शपेहं(पान्ह)स्ततल (ले)यावत्तर्जण्यादिषु विन्यसेत् ॥३६॥

ओंकार वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत् ।

मोकारं वामकट्या तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत् ॥३७॥

राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके ।

णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥३८॥

अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।

ध्यात्वा नारायण पञ्चदारभेत्कवचं बुधः ॥३९॥

पूर्वे मा पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः ।

पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे ॥४०॥

पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैऋते माधवोऽव्ययः ।

वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः ॥४१॥

भूतले पातु धाराहस्तयोर्ध्वं च त्रिविक्रमः ।

वृत्तं च कवकं पञ्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः ॥४२॥

ओंकार और नकार का दोनों हाथों में अङ्गुष्ठों में न्यास करे । शप-
हन्ते हस्ततल में तर्जनी आदि में विन्यास करना चाहिए ॥३६॥ ओंकार
को वामपाद में-नकार को दक्षिण पाद में न्यस्त करना चाहिए । मोंकार
को बायें पाद में तथा नांकार को दक्षिण पाद में विन्यस्त करे ॥३७॥
रांकार को नाभि देश में और मंकार को बाग बाहु में न्यस्त करे ।
णांकार को दक्षिण में विन्यस्त करे तथा यंकार का न्यास मूर्द्धा में करना
चाहिए ॥३८॥ हृदय में नीचे तथा ऊपर-पार्श्व भाग में और आगे की
और भगवान् नारायण का ध्यान करके बुध पुत्र को अनन्तर में
नारायण कवच का आरम्भ करना चाहिए ॥३९॥ श्री गोविन्द भगवान्
गुरुं दिना में भेरी रक्षा करें, मधुसूदन प्रभु दक्षिण में रक्षा करें ।
श्रीधरदेव पश्चिम में गुरुता करें तथा उत्तर में केशवदेव रक्षा करें ॥४०॥

आग्नेय कोण में विष्णु रक्षा करें, नैऋत्य कोण में अध्यय माधव रक्षा करें । वायव्य दिशा में भगवान् हृषीकेश और ईशान कोण में वामन भगवान् रक्षा करें ॥४१॥ बाराह भगवान् भूतल में मेरा यदि त्राण करें और ऊर्ध्वभाग में त्रिविक्रम प्रभु रक्षा करें । इस प्रकार से सम्पूर्ण कवच का पाठ करके पीछे आरगा का चिन्तन करना चाहिए ॥४२॥

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।

एव व्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥

त्वमग्निद्विपदा नाथ रेतोधाः कामदीपनः ।

प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४॥

अमृतस्फारणिस्त्व हि देवयोनिरपा पते ।

वृजिन हर मे सर्वं तीर्थं राज नमोऽस्तु ते ॥४५॥

एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत् ।

अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥

कृत्वा तु वैदिकमन्त्रैरभिषेका च मार्जनम् ।

अन्तर्जले जपेत्पञ्चान्निरावृत्त्याऽघमर्पणम् ॥४७॥

हयमेधो यथा विप्राः सर्वपापहरः क्रतुः ।

तथाऽघमर्पणं चात्र सूक्तं सर्वाधिनाशनम् ॥४८॥

उत्तीर्य वाससी धीते निर्मले परिधाय वै ।

प्राणानायम्य चाऽऽचम्य साव्या चोपास्य भास्करम् ॥४९॥

आत्म चिन्तन का विधान यह है कि मैं ही देव नारायण का स्वरूप हूँ और शङ्ख-चक्र तथा गदा व धारण करने वाला भी मैं हूँ । इस प्रकार से अपने आपके विषय में ध्यान करके फिर इस नीचे बताये हुए मन्त्र या उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ हे नाथ ! तू अप अद्विपदों की अग्नि हो, रेतोधा तपस्व पाम के दीपन करने वाले हो । आप समस्त भूतों में प्रधान हो और सब जीवों के प्रभु एवं आप अव्यय हो ॥४४॥ हे जलो के स्वामिन् ! आप अमृत के अरणि हैं और देवयोनि हैं । हे तीर्थराज ! मेरे सब वृजिन (पाप) का हरण करिए मेरा आपकी नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार से विधि पूर्वक उच्चारण करके इसके उपरान्त स्नान करना

चाहिए । हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! इस विद्यान के विपरीत वहाँ पर स्नान करना भी प्रशस्त नहीं होता है । कई वैदिक मन्त्रों के द्वारा अभियेक और मार्जन करके पीछे जल के अन्दर स्थित होकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्रगणो ! अश्वमेध यज्ञ जिस प्रकार से सभी पापों का हरण करने वाला है उसी भाँति यह अघमर्षण सूक्त समस्त अघों का विनाश करने वाला यहाँ पर हुआ करता है ॥४८॥ उतर कर शुद्ध निमज्ज घुले हुए वस्त्रों को धारण करना चाहिए । फिर प्राणायाम करके तथा आचमन करके सन्ध्या बन्धना करे और भगवान् भास्वर की उपासना करनी चाहिए ॥४९॥

उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाक्षलिम् ।
 उपम्यायोर्ध्वंवाहुश्च तल्लिङ्गं भस्करं ततः ॥५०॥
 गायत्री पावनी देवी जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
 अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः ॥५१॥
 कृत्वा प्रदक्षिण सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च ।
 स्वाध्यायं प्राङ्मुखं कृत्वा तर्पयेद्देवतान्पूषीन् ॥५२॥
 मनुष्याश्च पितृश्चान्याधामगोत्रेण मन्त्रवित् ।
 तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्समाहितः ॥५३॥
 तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः ।
 अधिकारी भवेत्पश्चात्पितृणां तर्पणं द्विजः ॥५४॥
 श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत् ।
 तर्पणे तूभयं कुप्यदिप एव विधिः सदा ॥५५॥
 अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
 तृप्यतामिति सिञ्चेत्तू नामगोत्रेण वाग्यतः ॥५६॥

इसके उपरान्त उपस्थान करे और ऊपर की ओर सूर्यदेव के लिये पुष्पाक्षलि का प्रक्षेप करना चाहिए । उपस्थान करके ऊपर की ओर बाहुओं वाला होते हुए उनके लिङ्गों के द्वारा भास्वर का उपस्थान करे और परम पावनी गायत्रीदेवी का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए

तथा परम समाहित होते हुए खड़ा रहकर अन्य जो मूर्त्यदेव के मन्त्र हो उनका भी जप करे । फिर प्रदक्षिणा करके मूर्त्यदेव को प्रणाम करे और धौ जावे । पूर्व की ओर मुख करके स्वाध्याय करना चाहिए और देवों का तथा ऋषियों का तर्पण करे ॥५०-५२॥ मन्त्रों के ज्ञाता पुरुष को नाम और गोत्रों के उच्चारण के सहित मनुष्यों का एवं पितृगणों का तिलो से मिश्रित जल के द्वारा परम सावधान होकर तर्पण करना चाहिए ॥५३॥ सबसे पूर्व सावधान रह कर देवों का तर्पण करे और इसके पीछे ही बिज पितृगणों के तर्पण करने का उचित अधिकारी हुआ करता है ॥५४॥ आद्य में और हवन के समय में एक हाथ से ही निर्वपण करना चाहिए । तथा तर्पण के समय में दोनों हाथों से ही करे-यह ही सदा इसका विधान होता है ॥५५॥ अम्बारब्ध सन्ध और दक्षिण हाथ से तृप्यताम् अथत् तृप्त होश्ये यह कहते हुए नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके मौन रहते हुए सिञ्चन करना चाहिए । यही तर्पण की विधि है ॥५६॥

कायस्येयंस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम् ।

तपितास्तेन पितरस्तद्मासर्धिरास्थिभिः ॥५७॥

अङ्गस्येनं तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम् ।

यधिर तद्भवेत्तोय प्रदाता काल्बपी भवेत् ॥५८॥

भूम्या यद्दीयते तोय दाता चैव जले स्थित ।

वृथा तन्मुनिशार्दूला नोपतिष्ठति कस्यचित् ॥५९॥

स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ।

पितृणां नोपतिष्ठेत सलिलं यन्निरयंकम् ॥६०॥

उदके नोदकः कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।

उत्तीर्य तु शुची देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥६१॥

नोदकेषु न पानेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना ।

नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्या न प्रदीयते ॥६२॥

काया में स्थित तिलों के द्वारा मोह से फिर तर्पण किया करता है उससे त्वचा-मांस-रधिर और अस्थियों के द्वारा पितर तपित होते हैं ॥

॥५७॥ अङ्गस्थ निलो से देवता पितृगणों का तर्पण नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वह जल रुधिर हो जाया करता है और जो जल का प्रदान करने वाला है वह पाप का भागी होता है ॥५८॥ दाना जल में स्थित होकर भूमि में जो जल इसवे द्वारा दिया जाता है हे मुनि-एगदूँलो ! वह व्यर्थ ही होता है और किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥५९॥ जो मनुष्य स्थल में स्वयं स्थित होकर जल को जल में ही दिया करता है वह जल भी पितृगणों को प्राप्त नहीं होना है और ऐसा जल देना सर्व या निरर्थक हुआ करता है ॥६०॥ पितृगणों को जल दान किया जाता है उस उदक को यभी भी उदक में नहीं करना चाहिए । किसी पवित्र भाग में उत्तर का ही उदक तर्पण करना चाहिए । उदको में नहीं-पात्रों में नहीं-क्रुद्ध होकर एक हाथ से नहीं जलदान करना चाहिए क्योंकि वह जल उनको प्राप्त नहीं हुआ करता है जो कि भूमि में प्रदान नहीं किया जाया करता है ॥६१-६२॥

पितृणामक्षय स्थान मही दत्ता मया द्विजाः ।

तस्मात्तत्रैव दातव्य पितृणा प्रीतिमिच्छता ॥६३

भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्या चैव च सस्थिता ।

भूम्या चैव लय याता भूमौ दद्यात्ततो जलम् ॥६४

आस्तीर्य च कुशान्ताग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रत ।

प्राचीनाग्रेषु च देवान्याम्याग्रेषु तथा पितृन् ॥६५

हे द्विजो ! मैंने पितृगणों को अक्षय स्थान मही दी है । इसलिये पितृगणों की प्रीति की अभिलाषा रखन वालों को भूमि में ही जलदान करना चाहिए ॥६३॥ ये सभी भूमि के ही पृष्ठ पर समुत्पन्न हुए हैं तथा भूमि पर ही सस्थित भी रहेंगे और इस भूमि में ही ये सब लय को प्राप्त हुए हैं अतएव भूमि में ही जल उनको देना चाहिए ॥६४॥ अग्रभाग के सहित कुशाओं को फैलाकर वहाँ पर अपने मन्त्र से उनका आवाहन करना चाहिए । प्राचीनाग्रों पर देवों का आवाहन करे तथा याम्याग्रों पर पितृगणों का आवाहन करे ॥६५॥

२—पूजाविधिकथन

देवान्पितृस्तथा चान्यान्सतप्याऽऽचम्य चाग्यतः ।

हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१॥

पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः ।

मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२॥

एव मण्डलमाग्न्यं पूजयेत्तत्र भो द्विजाः ।

अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम् ॥३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् ।

अकारं हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम् ॥४॥

उवलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम् ।

चन्द्रमण्डलमध्यस्थं राकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥

शुक्लवर्णं प्रवर्पन्तममृतं प्लावयन्महीम् ।

एव निर्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६॥

अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः ।

यामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवों को तथा पितृ गणों को एवं अन्य सबको भली भाँति तृप्त करके आचमन करे और मौन व्रत धारण करके एक हाथ भर के प्रमाण वाले चार कोनी वाले तथा चार द्वारी वाले परम शोभा से युक्त पुर का लेखन करे हे विप्रा ! इस पुर का विलेखन उस महोदधि के तट, पर ही करना चाहिए । उस पुर के मध्य में एक आठ दली वाले तथा कर्णिका से युक्त पद्म का विलेखन करना चाहिए ॥१-२॥ हे द्विजो ! इस प्रकार के मण्डल का विलेखन करके वहाँ पर पूजा करनी चाहिए । अष्टाक्षर के विधान के द्वारा विभु अजन्मा भगवान् नारायण का अर्चन करे ॥३॥ इससे आगे मैं उत्तम काया के शोधन के विषय में बतलाता हूँ । साधक को अपने हृदय में चक्ररेखा से युक्त अकार का ध्यान करना चाहिए ॥४॥ जाज्वल्यमान-तीन शिखाओं से सयुक्त-दहन करते हुए पापों का विनाश करने वाले तथा चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित राकार को मूर्ध्नि में चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ अमृत

की वर्षा करने वाले-शुक्ल वर्ण से युक्त-सम्पूर्ण मही को प्लावित करते हुए इस प्रकार से निष्कृत पापी वाला होकर फिर दिव्य देह वाला हो जाया करता है ॥६॥ फिर बुध पुरुष अपना अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए । वामपाद से समारम्भ करने क्रम से ही विन्यास करना चाहिए ॥७॥

पञ्चाङ्ग वेणव चैव चतुर्व्यूहं तथैव च ।
 करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८॥
 एवैव चैव वर्णं तु अङ्ग लीपु पृथक्पृथक् ।
 ओकारं पृथिवी शुक्ला वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
 सकारः शाभवः द्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः ।
 भोकारं कालमेवाऽऽहुवामिकट्यां निधापयेत् ॥१०॥
 नाकारः सर्वधीजं तु दक्षिणस्या व्यवस्थितः ।
 राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥११॥
 वायव्योऽयं यकारस्तु धामस्यन्धे समाश्रितः ।
 णाकारः सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणासे व्यवस्थितः ॥
 यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१२॥
 ममाग्रं व्यवस्थितो निष्णुः पृष्ठतश्चापि वेशवः ।
 गोविन्दो दक्षिणे पादौ वामे तु मधुगूदनः ॥१३-१४॥

है जहाँ पर सब लोक प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥१२॥ मेरे आगे वाले भाग में भगवान् विष्णु अवस्थित हैं और पृष्ठभाग में केशव स्थित रहते हैं । दक्षिण पार्श्व में गोविन्द और वाम पार्श्व में मधुसूदन प्रभु रहते हैं ॥१३-१४॥

उपरिष्ठात्तु बैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।

अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः ॥१५॥

गण्डतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।

नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥१६॥

एव विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत् ।

यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥

ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षणं प्रणवेन तु ।

फट्कारान्तं समुद्दिष्टं सर्वविघ्नहरं शुभम् ॥१८॥

तत्रार्कचन्द्रवह्नीना मण्डलानि विचिन्तयेत् ।

पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णुं पवनस्याम्बरस्य च ॥१९॥

ततो विचिन्त्य हृदय ओंकारं ज्योतीरूपिणम् ।

कर्णिकाया समासीनं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥२०॥

अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं विन्यसेच्च यथाक्रमम् ।

तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम् ॥२१॥

ऊपर के भाग में बैकुण्ठ हैं और पृथिवी तल में वाराह देव स्थित रहते हैं । जो अवान्तर दिशाएँ हैं उन सबमें माधव भगवान् विराजमान रहा करते हैं ॥१५॥ गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, जागते हुए, सोते हुए नरसिंह कृता गुप्ति है अर्थात् भगवान् नरसिंह के द्वारा की हुई रक्षा होती है । यह सब वासुदेवमय ही है ॥१॥ इस प्रकार से विष्णु-मय होकर ही इसके अनन्तर कर्म का आरम्भ करना चाहिए । जिस प्रकार से देह में है उसी भाँति समस्त तत्त्वों को देव में योजित करना चाहिए ॥१७॥ इसके उपरान्त प्रणव (ॐकार) के द्वारा प्रोक्षण करे । फट्कार जिसके अन्त में हो ऐसा समुद्दिष्ट किया गया है जो कि तब का हरण करने वाला एव शुभ होता है ॥१८॥ वहाँ पर चन्द्र-अर्क और

बह्मियो के मण्डलो का विचिन्तन करना चाहिए । पय के मध्य में भगवान् विष्णु का पवन का तथा अम्बर का न्यास करना चाहिए ॥१६॥ इसके अनन्तर ज्योति स्वरूप वान ओङ्कार का हृदय विचिन्तन करे जो कणिका में समासीन है और ज्योति स्वरूप वाले सनातन है ॥२०॥ इसके पश्चात् यथाक्रम आठ अक्षर वाले मन्त्र का ध्यान करना चाहिए । उस व्यस्त अर्थात् अलग २ और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण उसके द्वारा परम श्रेष्ठ पूजन बताया गया है ॥२१॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम् ।
 ततोऽवधार्य हृदये कणिकाया बहिन्यसेत् ॥२२॥
 चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
 चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनातनम् ॥
 ततश्चाऽऽवाहयेन्न ब्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥२३॥
 पूर्वं दले वासुदेव याम्ये सकर्षण न्यरोत् ।
 प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥२४॥
 वाराह च तथाऽग्नेये नरसिंह च नैऋते ।
 वायव्ये माधव चैव तर्पणाने त्रिविक्रमम् ॥२५॥
 तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुड पुरतो न्यसेत् ।
 वामपार्श्वे तथा चक्र शङ्ख दक्षिणतो न्यसेत् ॥२६॥
 तथा महागदा चैव न्यसेद्दक्षस्य दक्षिणे ।
 ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वानन्यसेद्देवस्य वामतः ॥२७॥

इस प्रकार से द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वासुदेवाय) अर्थात् बारह अक्षरों वाले इस उपर्युक्त मन्त्र से सनातन देव का यजन करना चाहिए । इसके उपरांत हृदय में कणिका में अर्थात् हृदयरूप कमल की कणिका में अवधारण करके फिर बाहिर न्यास करना चाहिए ॥२२॥ महान् सत्त्व वाले, करोडों सूर्यों के समान प्रभा से सयुक्त चार भुजाओं वाले, महा योग, ज्योति स्वरूप, सनातन का चिन्तन करना चाहिए । और इसके पश्चात् क्रम से मांस में चिन्तन करके मन्त्र के

द्वारा आवाहन करे आवाहन, स्थापन, अर्घ्य, पाद, मधुरार्क, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, विलेपन, उपवीत, अलङ्कार, धूप, दीप, नैवेद्य, आदि का मन्त्रों द्वारा विनि-
वेदन करना चाहिए फिर पूर्व दल में अर्घ्यार्क बाहिर विलिखित पद्म के पूर्व
दिशा की ओर वाले दल में यामुदेव का न्यास करे, दक्षिण दल में सङ्करण
का, पश्चिम की ओर वाले दल में प्रद्युम्न का तथा उत्तर में अनिरुद्ध न्यास
करना चाहिए ॥२३-२४॥ विदिशाओं में आनेय कोण में वाराह का,
नैऋत में नरसिंह का, वायव्य में माधव का और ईशान कोण में त्रिविक्रम
प्रभु का न्यास करना चाहिए ॥२५॥ तथा अष्टाक्षर देव के गरुड को आगे
विन्यस्त करे । वाम पार्श्व में सुदर्शन चक्र का और दक्षिण की ओर
राह (पाञ्चजन्य) का न्यास करना चाहिए ॥२६॥ इसके अनन्तर महा
शब्द कौमोदकी को देव के दक्षिण भाग में विन्यस्त करे और बाङ्ग धनुष
को देव के वाम भाग में विद्वान के द्वारा विन्यास करना चाहिए ॥२७॥

दक्षिणेतेषु धी दिव्ये खड्ग वामे च विन्यसेत् ।

श्रिय दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥२८॥

चनमाला च पुरतस्ततः श्रीवत्सकोस्तुभो ।

विन्यसेद्दधृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥२९॥

ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत् ।

इन्द्रमग्निं यमं चैव नैऋतं वरुणं तथा ॥३०॥

धाम् धनदमीशानमनन्तं ब्रह्माणां सह ।

पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥३१॥

एव संपूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम् ।

सभेदभिमतान्कामाक्षरो नास्त्यत्र सशयः ॥३२॥

अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम् ।

पूजितं यः सपश्येत् स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥३३॥

सकृदप्यर्चिता येन विधिनाऽनेन केशवः ।

जन्ममृत्युजरा तीर्त्वा स विष्णोः पद्मान्पुयात् ॥३४॥

दक्षिण की ओर दिव्य श्पुधियो को और वाम भाग में खड्ग का
न्यास करना चाहिए । श्री देवी को दक्षिण भाग में स्थापित करके उत्तर

मे पुष्टि का न्यास करे ॥२८॥ आगे वनमाला का और फिर श्री वत्स और वोस्तुभ का न्यास करना चाहिए । पूर्वादिक चारों दिशाओं में हृदयादि का न्यास करे ॥२९॥ फिर देवों के देव के अव्य को कोण में विन्यस्त करे । इन सब विन्यासों के करने के अनन्तर अधोभाग में और ऊर्ध्व भाग में तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा इन्द्रअग्नि-यम नैऋत वरुण वायु-धनद-ईशानब्रह्मा के सहित अनन्त का पूजन करना चाहिए ॥३०-३१॥ इस भाँति से मण्डल में स्थित देवेश्वर अनादग का भली भाँति से अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने समस्त अभिमत मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है इनमें तनिक भी संशय नहीं है ॥३२॥ इसी वर्णित विधान के द्वारा मण्डल में समवस्थित देवेश्वर अनादग प्रभु को समर्पित हुए जो भी भली-भाँति दर्शन कर लेता है वह अव्यय भगवान् विष्णु के पुर में प्रवेश किया करता है ॥३३॥ इस वर्णित किये हुए विधान के द्वारा जिस किसी ने जीवन में एक बार भी केशव भगवान् का अभ्यर्चन कर लिया है वह इस संसार के जन्म मरण और जरा को पार करके अन्त में विष्णु भगवान् के पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥३४॥

य स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमतन्द्रित ।

अन्वह तस्य वासाद्य श्वेतद्वीप प्रकल्पितः ॥३५॥

भीकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम् ।

तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥३६॥

अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत् ।

एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥३७॥

मुद्रास्ततो निघ्नन्तीयाद्यथोक्तं न चादिता ।

नप चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३८॥

अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तर तथा ।

यामपु च यथाशक्त यथाशक्ति गमाहित ॥३९॥

पद्मं शङ्खश्च श्रीचत्सो गदा गरुड एव च ।

चक्रं सङ्गश्च शङ्खश्च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥४०॥

विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम ।

यथ ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परम पदम् ॥४१॥

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथादितम् ।

ते तत्र भूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥४२॥

जो निरन्तर भक्ति की भावना से तन्द्रारहित होकर भगवान् नारायण का स्मरण किया करता है प्रति दिन उसके वास के लिये पर्वत द्वीप को बलिपत किया गया है ॥३५॥ ओंकार के आवि से युक्त ममःकार के द्वारा अन्त में दीपित और उनका गुप्त नाम सर्व तत्वों का मन्त्र है जो कि कहा जाया करता है ॥३६॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्पादि का समर्पण करना चाहिए । क्रम से जो अष्ट उद्दिष्ट किये गये हैं उनमें एक-एक को निवेदन करना चाहिए ॥३७॥ जैसा कि क्रम बताया गया है उसी के अनुसार फिर मुद्राओं का निबन्धन करे । मन्त्र के ज्ञाता पुरुषभूल मन्त्र के द्वारा जाप भी करना चाहिए ॥३८॥ आठ-अठ्ठाईस-अष्टोत्तर शत जाप जो जिस कामना में जैसा भी कहा गया है उसको क्या शक्ति समाहित होकर वैसा ही करना चाहिए ॥३९॥ पद्म शङ्ख-श्री वरस-गदा-गजङ्ग-चक्र-खड्ग-शाङ्ग-ये कूल भाठ मुद्राएँ कीर्तित की गयी हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर विसर्जन करे । इसका मन्त्र यही है—हे पुराण पुरुषोत्तम ! अब आप कृपा करके परम स्थान में पधारिये और गमन करिये जहाँ पर ब्रह्मादिक देवगण परम पद को जानते हैं ॥४१॥ जो लोग भगवान् के परम भक्त हैं किन्तु जिन-जिन मन्त्रों द्वारा हरिका अभ्यर्चन ऊपर में बताया गया है उसका पूर्ण ज्ञान उनको नहीं है तो वे ज्ञान के अभाव में कुछ भी न करे, ऐसा नहीं है प्रत्युत उनको सदा केवल भूल-मन्त्र के द्वारा ही अच्युत भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥४२॥

२६—समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णन

एव संपूज्य विधिवद्भक्त्या त पुरुषोत्तमम् ।
 प्रणम्य शरसापश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
 प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरिता पते ।
 तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥
 स्नात्वैव सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजा ।
 तीरे चाग्यर्घ्यं विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
 राम कृष्ण सुभद्रा च प्रणिपत्य च सागरम् ।
 शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानव ॥४॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तं सर्वदुःखविवर्जितम् ।
 मृन्दारक इव श्रीमान् पयोधनगर्भितम् ॥५॥
 विमानेनाकं वर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
 कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरं सह ।
 मन्वन्तरवत साग्रे जरामृत्युविवर्जितम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस पूर्व वर्णित विधि-विधान के द्वारा भक्तिभाव से उन पुरुषोत्तम भगवान का सम्यक् रीति से अभ्यर्चन करके और साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम उनको करके पीछे सागर का प्रसाद प्राप्त करना चाहिए ॥१॥ हे सरिताजी के स्वामिन् । आप ही समस्त भूतों के प्राण तथा उत्पत्ति स्थल हैं । हे अच्युत भगवान् के परम प्रिय तीर्थों के राजन् । आरक्षी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है । आप मेरा परित्राण करिए ॥२॥ हे द्विजो । उस परम श्रेष्ठ क्षेत्र में भली-भांति सागर में स्नान करके तट पर अनामय नारायण का विधि पूर्वक अर्चन करना चाहिए ॥३॥ श्रीराम मद्र, श्रीकृष्ण चन्द्र, सुभद्रा देवी तथा नदीश्वर सागर को प्रणिपात करके मनुष्य एकदात अश्वमेध यज्ञों के यजन करने

का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥४॥ वह मनुष्य सभी पापों से जो भी इस जन्म के तथा पूर्व जन्मों में सञ्चित हो गृहद्वारा पाकर समस्त सांसारिक दुखों से रहित हो जाता है । वह फिर देवता के समान श्री से सुसम्पन्न होकर रूप एवं योगों से गणित हो जाया करता है ॥५॥ फिर वह सूर्य के सहज वण वाले विमान के द्वारा जो कि परम दिव्य गणध्वं और अप्सरा आदि से ससेवित होता है अपने इच्छित कुला का उद्धार करके अन्त में सीधा विष्णुलोक में ही गमन किया करता है । वहाँ पर वह परमोत्तमोत्तम भोगों का मुख भोग करके तथा दिव्या-प्सरामों के साथ विलास क्रीडा करके डेढ़सी मन्वन्तरो के बहुत लम्बे समय तक जरा-जन्म और मृत्यु के क्लेशों से मुक्तकारा पा जाया करता है ॥६-७॥

पुण्यक्षयादिहाऽऽयात कुले सर्वगुणान्विते ।
रूपवान्सुभग श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रिय ॥८॥
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वंष्णव ।
योग च वंष्णव प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥
ग्रहोपराने सक्रान्त्यामयने विप्रवे तथा ।
युगादिषु पञ्चशीत्या व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥
आषाढ्या चैव कार्तिक्या माघ्या वाऽन्ये शुभे तिथौ ।
ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥
फल सहस्रगुणितमन्यतीथल्लभन्ति ते ।
पितृणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तस्य विधानतः ॥१२॥
अक्षया पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवन्ति वै ।
एव स्नानफलं सम्यक्सागरस्य मयीदितम् ॥१३॥
दानस्य च फलं विप्रा पिण्डदानस्य चैव हि ।
धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४॥

जब अपने किये हुए पुण्यों का उपभोग द्वारा सनें सनें सख होता है तो फिर वह पुन इस कमभूमि भारत में आकर सभी गुणगण से युक्त किसी उत्तम कुल में जन्म ग्रहण किया करता है । वह मानव जीवन में

भी उसी पूर्ववृत्त महान् पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, सुभग, श्रीमान्, सत्य-
पादी, जितेन्द्रिय, वेद्यो और समस्त दाहनों का ज्ञाता, यज्ञा और वैष्णव
जिघ्र हुआ करता है । फिर यहाँ पर वैष्णव योग को प्राप्त करके अन्त में
मोक्ष को प्राप्त किया करता है । तात्पर्य यह है कि पहिले अनुस-अनुपम
भोग और अन्त में मुक्ति दोनों ही उसे प्राप्त हो जाते हैं ॥८-९॥ कुछ
ऐसे विशिष्ट अवसर हैं जैसे—ग्रहोपराग (ग्रहण) सङ्क्रान्ति-विषुवद्वय-
युगादि-पङ्कतीति-व्यतीपात-दिनशय-आपाङ्की, कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा
एव अन्य शुभतिथि इन अवसरों पर जो सुन्दर मेघा वाले पुरुष वहाँ
पर विप्रों को दान दिया करते हैं वे अन्य तीर्थों से महान् गुण
पुण्य-फल प्राप्त किया करते हैं । जो वहाँ पर पितृगणों को विधि
पूर्वक पिण्ड दान किया करते हैं ॥१०-१२॥ उससे उनके पितृगण
अक्षय वृत्ति की प्राप्ति किया करते हैं । इस रीति से मैंने सागर के स्नान
करने का पुण्य-फल भलो-भाँति वर्णित कर दिया है । साथ ही वहाँ पर
दिये हुए दान का फल तथा पितरों के किये गये पिण्डदान का फल भी
बता दिया है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के फल देने वाला तथा आयु-
कीर्ति और यश के प्रदान करने वाला होता है ॥१३-१४॥

भुक्तिमुक्तिफल नृणां धन्य दुःस्वप्ननाशम् ।

सर्वपापहर पुण्य सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥

नास्तिकाय न वक्तव्य पुराण च द्विजोत्तमाः ।

तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक्पृथक् ॥१६॥

यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ।

पुष्करादीनि तीर्थानि प्रपद्यन्ति स्वक फलम् ॥१७॥

तीर्थराजस्तु रा पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः ।

भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥१८॥

विशन्ति सागरे तानि तेनासी श्रेष्ठता गतः ।

राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः ॥१९॥

त्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः ।

नाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०॥

यह मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति के फल को प्रदान करने वाला है तथा परम धन्य और दुःस्वप्नों का नाशक भी है । सब पापों के हरण करने वाला परम पुण्यमय और सब मनोरथों के फलों को देने वाला है ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण को भूलकर भी कभी ऐसे पुरुष को मत स्तुताना जो ईश्वर की सत्ता को ही न मानने वाला नास्तिक हो । तभी तक सब तीर्थ अपने अपने पृथक् २ माहात्म्यों की प्रशंसा लेकर गर्जना किया करते हैं जब तक कि हे द्विजो ! इस तीर्थराज की महिमा एवं माहात्म्य का वर्णन नहीं किया जाता है । तात्पर्य यह है कि तीर्थ-राज के माहात्म्य के आगे सब अन्य तीर्थों का माहात्म्य हैय ही रह जाया करता है । अन्य पुष्कर आदि तीर्थ केवल अपना ही फल दिया करते हैं ॥१६-१७॥ किन्तु यह तीर्थराज तो स्वयं अकेला ही समस्त तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला होता है । इस भूमण्डल में जो भी तीर्थ-सरिताएँ और सर है ॥१८॥ वे सभी अन्त में सागर में ही जाकर प्रवेश किया करते हैं । इसी कारण से इसको श्रेष्ठता सबसे अधिक है । समस्त तीर्थों का राजा सरिताओं का स्वामी सागर ही है ॥१९॥ इसी कारण से यह अग्य सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब कामनाओं का प्रदाता होता है । हे त्रिजगण ! जैसे भगवान् भास्कर के समुदित हो जाने पर तम का विनाश हो जाया करता है वैसे ही इस तीर्थराज के द्वारा पापों का नाश हो जाया करता है ॥२०॥

स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः ।

तीर्थराजसम तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२१॥

अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै ।

कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२॥

कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै ।

तस्मात्स्नानं च दानं च ह्येव जप्यं सुरार्चनम् ॥

यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः ॥२३॥

इस तीर्थराज सागर के स्नान से पापों का अच्छी तरह से क्षय हो जाता है । इस तीर्थराज के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक

हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥२१॥ जब जहाँ पर प्रभु नारायण का अविष्ट न होता है तो ऐसे दृग तीथराज मागर के गुणों को कौन वर्णन करन में समर्थ हो सकता है ? करोडा नवनवति तीर्थ जहाँ पर विद्यमान रहस है उसकी महिमा का क्या पारावार है । इसलिये वहाँ धान-स्नान होम तप और सुराचन जो भी कुछ शुभ कर्म किया जाता है वह सभी है द्विजगण ! अक्षय ही होता है ॥२२ २३॥

३०—पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपण

ततो गच्छेद्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसभयम् ।
 इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते पावनं शुभम् ॥१॥
 गत्वा तत्र शुचिर्धोमानाचम्य मनसा हरिम् ।
 व्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
 अश्वमेधाङ्गसभूत तीर्थं सर्वाघनाशन ।
 स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३॥
 एवमुच्चार्य विधाय तस्नात्वा देवानृषीन्पितॄन् ।
 तिलोदकेन चान्याश्च सतप्याऽऽचम्य वाग्यत ॥४॥
 दत्त्वा पितॄणां पिण्डाश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम् ।
 दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानव ॥५॥
 राप्तावरान्सप्त परान्वशानुद्धृत्य देववत् ।
 कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्यावन्नन्द्रावतारकम् ।
 च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो माक्ष च लभते ध्रुवम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इसके आगे यज्ञाङ्ग सम्भव तीर्थ पर गमन करना चाहिए जहाँ पर इन्द्रद्युम्न नाम वाला परम पावन एवं

शुभ सरोवर है ॥१॥ वहाँ पर पहुँच कर परम शुचि होकर बुद्धिमान् पुरुष को आचमन करके मन के द्वारा श्री हरि का ध्यान तथा उपस्थान करना चाहिए । उस जल पर उपस्थित होकर निम्न वर्णित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे तीर्थ ! आपकी उत्पत्ति अश्वमेध के अङ्ग से हुई है और आप समस्त अघो क विनाश करने की शक्ति रखते हैं । आज इस समय मे मैं आप में स्नान करता हूँ । आप मेरे सब पापों का हरण कीजिए । आपको मेरा परमाधिक आदर के साथ प्रणाम है ॥३॥ इस प्रकार से समुच्चारण करके फिर विधि विधान के साथ स्नान करे और तिलोदक से देवों का, ऋषियों का, पितृगण का तथा अन्यो का भली भाँति वहाँ पर स्पर्ण करना चाहिए । फिर आचमन करके मौन हो पितरों को पिण्ड दान करे और पुरुषोत्तम प्रभु का अभ्यर्चन करना चाहिए । इस सबके करने से मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है ॥४-५॥ वह मनुष्य अपने सात पहिले और सात आगे होने वाले वशों का उद्धार करके स्वेच्छागामी विमान के द्वारा सीधा बिष्णुलोक की गमन किया करता है ॥६॥ वहाँ पर जब तथा चन्द्र-सूर्य और तारागण नभ मण्डल में विद्यमान रहते हैं तब तक परमोत्तम दिव्य सुखी का उपभोग किया करता है । जब भोगों के करने से उस महान् पुण्य का दान शन क्षय होता है तथा कुछ स्वल्पांश शेष रहता है तब यह वहाँ से च्युत हो जाता है और यहाँ सर्पलोक में जन्म ग्रहण करके निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति करता है ॥७॥

एव कृत्वा पञ्चतीर्थमिहादश्यामुपोषितः ।

ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्या य पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८॥

स पूर्वोक्त फल प्राप्य क्रीडित्वा वाञ्छ्युतातये ।

प्रयाति परमं स्थान यस्माच्चाऽऽवर्तते पुनः ॥९॥

मासानन्यान्परित्यज्य माघादीन्प्रपितामहः ।

प्रदाससि कथं ज्येष्ठ ब्रूहि तत्कारणं प्रभो ॥१०॥

शृणुष्व मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि ममासतः ।
 ज्येष्ठ मास तथा तेभ्य प्रदशामि पुन पुन ॥११
 पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
 पुष्करिण्यस्तडागानि चाप्य नृपास्तथा हृदा ॥१२
 नानानद्य रामुद्राश्च सप्ताह पुरुषोत्तमे ।
 ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्ष यन्ति सर्वदा ॥१३
 स्नानदानादिक तस्माद्देवताप्रेक्षण द्विजा ।
 यत्किञ्चिद्विजयते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षय भवेत् ॥१४

इस प्रकार से पञ्चतीर्थों का क्रियाकलाप समाप्त करके एकादशी से उपवास करना चाहिए । जो ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन किया करता है वह पूव में वर्णित फल का लाभ लिया करता है अथवा अच्युत भगवान् के आलय में आनन्द की क्रीड़ा करके परमोत्तम पद को प्राप्त करता है जहाँ से पुन आर्वात्तित नहीं होता है ॥१०-१॥ मुनिगो ने कहा—हे प्रपितामह । हे प्रभो । माघ आदि अन्य सप्तशत श्रेष्ठ मासों का परित्याग करके इस ज्येष्ठ मास की ही इतनी अधिक प्रणसा क्या कर रहे हैं—इसका क्या कारण है—यह हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०॥ श्री परमेश्वरी पितामह ने कहा—हे मुनिगणो । आप इसका कारण सुनिए । मैं संक्षेप में इसे बतलाता हूँ । मैं इस ज्येष्ठ मास की उन अन्य मासों से जो बारम्बार प्रशंसा क्यों करता हूँ ॥११॥ इस पृथिवी में जितने भी तीर्थ हैं—सरिताएँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाव, बावड़ी, कूप, हृद—अनेक नदियाँ और समुद्र हैं वे पुरुषोत्तम में सप्ताह के लिये ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी हैं लेकर सर्वदा प्रत्यक्ष रूप को प्राप्त किया करते हैं ॥१२-१३॥ इसी कारण से हे द्विजो । उस अवसर पर जो वहाँ स्नान दान आदि तथा देव दर्शन जो कुछ भी किया जाता है उस समय में अक्षय हुआ करता है ॥१४॥

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमा ।

हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥

यस्तस्या हलिन कृष्ण पश्येद्भद्रा सुसयतः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोक व्रजेन्नरः ॥१६॥

उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम् ।

दृष्ट्वा राम सुभद्रा च विष्णुलोक व्रजेन्नरः ॥१७॥

नरा दोलागत दृष्ट्वा गोविन्द पुरुषोत्तमम् ।

फालगुन्या प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुर व्रजेत् ॥१८॥

विपुद्दिदवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थी विधानतः ।

कृत्वा सकपेण कृष्ण दृष्ट्वा भद्रा च भो द्विजाः ॥ ॥

नरः समस्तयज्ञाना फल प्राप्नोति दुर्लभम् ।

विमुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकां स गच्छति ॥२०॥

यः पश्यति तृतीयाया कृष्ण चन्दनरूपितम् ।

वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यनुत्तमन्दिरम् ॥२१॥

पुण्यं पृथ्वा ज्येष्ठक्षयुक्ताया यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।

गुलैर्विदामुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २ ॥

हे द्विजोत्तमो ! ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की जो दशमी तिथि है वह

दश प्रारंभ के पापों का अपहरण किया करता है इसीनिये वह दशहरा

कही गयी है ॥१५॥ जो नर उग्रतिथि के दिन में हनुमत् बजराम-धीकृष्ण

और सुभद्रा देवी का गुप्तगत होकर दर्शन करता है वह समस्त पापों से

विमुक्त होकर विष्णुलोक को गमन करता है । उत्तरायण और

दक्षिणायन में भगवान् पुरुषोत्तम-धी बजराम और सुभद्रा का जो पुण्य

दर्शन प्राप्त करता है वह विष्णुलोक को जाता जाता है ॥१६-१७॥

फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन प्रयत्न होकर जो मनुष्य शेषा में विराजमान

पुरुषोत्तम गोविन्द का दर्शन किया करता है वह सीधा गोविन्द के ही

पुर को जाता करता है ॥१८॥ विपुद्दिदवसे में प्राप्त होने पर पञ्च-

सोपों के विधान से हे द्विजगण ! भगवान् सद्गुण-धीकृष्ण और सुभद्रा

देवी के दर्शन करता है वह मनुष्य समस्त यज्ञों के यजन करने का दुर्लभ

फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक

को गया कर जाता है ॥१९-२०॥ जो वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में

तृतीया के दिन में चन्दन से स्नान श्रीवृष्ण का दर्शन किया करता है वह सीधा अच्युत भगवान् के मन्दिर को प्राप्त हुआ करता है ॥२१॥
ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में जो कि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो पुरुषोत्तम का दर्शन किया करता है वह स्वयं ही उत्तम पद दिग्गुलोक को प्राप्त किया ही करता है साथ में अपने कुल की इक्कीस पीढ़ियों का भी उद्धार किया करता है ॥२२॥

-:ॐ :-

३१—महाज्येष्ठीप्रशंसावर्णन

यदा भवेन्महाज्येष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः ।
प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्य पुरुषोत्तमम् ॥१॥
कृष्ण दृष्ट्वा महाज्येष्ठ्या राम भद्रा च भो द्विजाः ।
नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२॥
प्रयोगे च कुरुक्षेत्रे नमिषे पुष्करे गये ।
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसगमे ॥३॥
फाँकामुखे शूकरे च मथुराया मरुस्थले ।
शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४॥
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनकलले द्विजा ।
शङ्खोद्वारे द्वारकाया तथा बदरिनाथमे ॥५॥
लोहकण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने ।
कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकटण्ठके ॥६॥
लोहागले जम्बुमागे सोमतीर्थे पृथुदके ।
उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जिस समय में राशि और नक्षत्र के योग से महा ज्येष्ठी होवे उस समय में मनुष्य को परमाधिक प्रयत्नो के साथ

पुरुषोत्तम प्रभु के आर्यतेन पर जाकर उस महाज्यैष्ठी में हे द्विजगण ! श्री बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रादेवी का दर्शन करके मनुष्य द्वादश मात्रा के तथा उससे भी अधिक फल को प्राप्त करता है ॥२॥ प्रयण में, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, गङ्गासागर संगम, कोकामुल, दूकर (सोरो) मथुरा, मरुत्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर, पिण्डाश्क में, चित्रवूट, प्रभास, वनलल, शङ्खोद्वार, द्वारका, बदरिकाश्रम, लोहाकुण्ड, अश्वतीर्थ, सर्वपाप प्रमोचन, कामालय, कोटितीर्थ, अमर कण्ठक, लोहागंल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक उत्तरलावर्तक, पृथुतुङ्ग, सुकुब्जक ये सब भारत में महान् तीर्थ हैं ॥३-७॥

एकाम्रके च केदारं काश्या च विरजे द्विजाः ।

कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ॥८॥

महेन्द्र मलये विन्ध्यं पारियात्रे हिमालये ।

सह्ये च शुक्तिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा ॥९॥

गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः ।

सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तमु ॥१०॥

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा ।

तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ॥११॥

विस्तता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा ।

ऋषिकृत्या कुमारी च विषाशा च ह्यपट्वती ॥१२॥

सरयूनामिगङ्गा च गण्डकी च महानदी ।

कौशिकी करतोया च त्रिलोता मधुबाहिनी ॥१३॥

महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः ।

अथवा किं बहुक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः ॥१४॥

एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमान, गोमन्त, अर्बुद, गङ्गा, समस्त यमुना के तीर्थ, सरस्वती के तीर्थ, गोमती, सप्त, गङ्गापुत्र, ॥८-१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी, शिप्रा, चर्मण्वती, विस्तता, चन्द्रभागा, शतद्रु, बाहुदा,

ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, हृषीकेशी, ॥११-१२॥ सरयू, नाकगङ्गा, गण्डकी, महानदी, कोशिकी, करतोया, त्रिशोना, मधुवाहनी, महानदी, वैतरणी और जो अन्य नदियाँ तीर्थ हैं जिनका नाम निर्देश यहाँ पर नहीं किया गया है । हे द्विजोत्तमो ! अथवा बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है ॥१३-१४॥

पृथिव्या सर्वतीर्थेषु सर्वप्वायतनेषु च ।

सामरेषु च शैलेषु नदीषु च सरसु च ॥१५

यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्या लभेन्नरः ॥१६

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे ।

महाज्यैष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलैःसुभिः ॥१७

दृष्ट्वा राम महाज्येष्ठं कृष्ण सुभद्रया सह ।

विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य समं कुलम् ॥१८

भक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतमप्लवम् ।

पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९

स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः ।

वैष्णवयोगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०

इस पृथ्वी तल में सब तीर्थों में तथा समस्त आपननों में, सामर शैली में नदियों में और सरोवरों में जो भी पुण्य-फल राहु के द्वारा सूर्य के प्रसिद्ध होने के समय में स्नान करने तथा दान करने में होता है वह सम्पूर्ण फल महाज्यैष्ठ्य में श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन करने मनुष्य प्राप्त कर लिफा करता है ॥१५-१६॥ इस कारण से सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा हे मुनिज्येष्ठ ! महाज्यैष्ठ्य में पुरोत्तम प्रभु के समीप में सब कामनाओं के फल प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले पुरुषों को अवश्य जाना चाहिए ॥१७॥ यहाँ पर महा ज्येष्ठ श्री कृष्ण, श्री सुभद्रा और सुभद्रा का दर्शन करे । इससे मनुष्य अपने ही साथ अपने पूरे कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥१८॥

वहाँ पर परमोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग करके महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । पुण्यो के क्षीण होने पर वह चारों वेदों का शांता द्विज वहाँ पर होता है । अपने धर्म में रत, शान्त, कृष्णभक्त, जितेन्द्रिय होकर वैष्णव योग को प्राप्त कर फिर मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥१६-२०॥

—:ॐ:—

३२—कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव ।
विधिना केन तद्वद्ब्रूहि ततो विधिविदा वर ॥१॥
शृणुध्व मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम ।
रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाधिनाशनम् ॥२॥
मासि ज्येष्ठे च सप्तमि नक्षत्रे चन्द्रदैवते ।
पौर्णमास्या तदा स्नानं सर्वकालं हरेद्विजाः ॥३॥
सर्वतीर्थमयः रूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः ।
तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजाः ॥४॥
तस्माज्ज्येष्ठ्या समुद्धृत्य हैमाढ्यः कलशैर्जलम् ।
कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च भो द्विजा ॥५॥
कृत्वा सुशोभनं मन्त्रं पताकाभिरलंकृतम् ।
सुदृढं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम् ॥६॥
विस्तीर्णं घृषितं घृषैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः ।
सितवस्त्रपरिचन्दनं मुक्ताहारवलयम्बितम् ॥७॥

मुनिगण ने कहा—हे कमलोद्भव ! आप तो विधि-विधान के शांताओं में परम श्रेष्ठ हैं । अब आप कृपा करने यह बतलाइये कि श्रीकृष्ण

का स्नान किस समय में और किस विधि से होता है ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब मैं श्रीकृष्ण के स्नान के विषय में बालाता हूँ आप श्रवण कीजिए । इसी भाँति श्री दत्तराम का और सुभद्रा देवी का स्नान भी बतलाऊँगा जो कि परम पुण्यमय एवं सभस्त अर्थों का विनाश करनेवाला है ॥२॥ हे द्विगण ! ज्येष्ठ मास में चन्द्र दैवत नक्षत्र के सम्प्राप्त होने पर उसी समय में पूर्णिमा तिथि में श्री हरि का स्नान सर्वकाल में होता है । सर्वतीर्थों से परिपूर्ण कूप होता है और उसमें निर्मल एवं शुचि होता है । उस समय में वहाँ पर भोगवती प्रत्यक्ष होती है ॥३-४॥ उससे ज्येष्ठी में हेमाद्र्य अर्थात् सुवर्ण निर्मित कलशों से जल को निकाले और हे द्विजो ! वह श्री दत्तराम-कृष्ण और सुभद्रा के लिये अभिषेक में लिया जाता है ॥५॥ उस अभिषेक के लिये एक मच की रचना करना आवश्यक है जो कि परम शोभा से समन्वित हो और पताकाओं से भी विभूषित किया जावे । वह मच मुहब मुक्क का सचार करने वाला तथा वस्त्रों और पुष्पों से भण्डित होना चाहिए ॥६॥ यह मच श्री राम कृष्ण दोनों के अभिषेक के लिये विस्तार वाला तथा धूप से धूपित होना आवश्यक है । इस मच को श्वेतवस्त्र से ढक देवे और इसके चारों ओर मुक्ताओं के हार लटका देवे ॥७॥

तप्त मानाविधैर्वाद्यैः कृष्ण नीलाम्बर द्विजाः ।

मध्ये सुभद्रा चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनेः ॥८॥

ब्राह्मणे क्षत्रिय वैश्यः शूद्रश्चान्यश्च जातिभिः ।

अनेकशतसाहस्रं वृत्तं स्त्रीपुरुषेद्विजाः ॥९॥

गृहस्थाः स्नातकाश्च यतयो ब्रह्मचारिणः ।

स्नापयन्ति तदा कृष्ण मन्त्रस्य सहलायुधम् ॥१०॥

तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः ।

खोदकैः पूष्पमिश्रंश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११॥

पञ्चात्पटहस्तहस्तार्धं भेरीमुरजनिस्वने ।

काहलं स्तालशब्दं च मृदङ्गं शंखं रंस्तथा ॥१२॥

अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः ।

स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥

जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः ।

ध्रुयते सुमहाब्धब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥१४॥

उस मंच पर है द्विजगणो ! अनेक प्रकार के वाद्यों के द्वारा तथा जय मङ्गल शब्दों के द्वारा नीले मेघ के समान वर्ण धारें भगवान् श्रीकृष्ण को तथा मध्य भग में सुभद्रा जी को समास्थित करे ॥१३॥ फिर हे द्विजो ! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जाति वालों के द्वारा बहुत से सैकड़ों और सहस्रों सभी स्त्री और पुरुषों के से समावृत्त हलामुघ (बलराम) के सहित मंच पर स्थित श्रीकृष्ण को गृहस्थ-स्नातक-मतिगण और ब्रह्मचारीगण उस समय में स्नपन कराते हैं ॥१४-१०॥ हे उत्तम द्विजो ! उसी भाँति पूर्व में वर्णित समस्त तीर्थ पुरुषों से मिश्रित अपने २ जलों के द्वारा पृथक् २ स्नपन कराते हैं ॥११॥ इसके पश्चात् पटह-षष्ठादि-भेरी और मुरज की ध्वनियों से कोलाहल और ताल के शब्दों से नया मृदङ्ग और शर्शरो से एवं अन्य विविध वाद्यों के द्वारा-घण्टा के स्वर (ध्वनि) से विभूषित स्त्रियों के मङ्गल वाचक शब्दों से मनोहर स्तवन के शब्दों से, जय शब्दों से, स्तोत्रों से, वीणा और वेणु के शब्दों से, यज्ञना करते हुए सागर के समान महाब्ध शब्दों का घोष सुनाई विमा कराता है ॥१२-१४॥

मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दस्तथाऽपरैः ।

नानास्तोत्ररवैः पुण्यै सामशब्दोपवृ हितैः ॥१५॥

यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ।

स्नानकाले सुरथेष्ट स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥

श्यामं वैश्याजनैश्चैव कुचमारावनामिभिः ।

पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः ॥१७॥

सरत्नकुण्डलैर्दिव्यैः सुवर्णस्तवकान्वितैः ।

चामरै रत्नदण्डैश्च बीज्येते रामकेशवौ ॥१८॥

यक्षविद्याधरं सिद्धं किन्नरंश्चाप्सरोगणं ।

परिवार्याम्बरगतदेवगन्धवचारण ॥१६

आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।

लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्वि पुरुषोत्तमम् ॥२०

नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम ।

सगस्थित्यन्तकृद् व लोकनाथ जगत्पते ॥२१

उत्त स्नान व समय में मुनिगणा के द्वारा रामुच्चारित वेद मन्त्रों की श्रवण से, तथा दूसरे अनक प्रकार के स्तोत्रों के श्रवण से, पुण्यमय सामवेद के श्रवण से उपवृत्त हित यति स्नातक गृहस्थ और ब्रह्मचारियों के द्वारा हे सुरेश्वरो ! परमाधिक आनन्द से स्तुतियाँ की जाती हैं ॥१५-१६॥ अपने स्तनो के भार में अवनमन करने वाली श्याम वेश्या जनो के द्वारा मातुलो के भार से नीचे की ओर झुक जाने वाली तथा पीठ और रक्त वस्त्र धारिणी नारियों के द्वारा रत्न जटित कुण्डलो से और दिव्य सुवर्ण के स्तवकों से युक्त रत्नों के दण्ड वाले चामरो से वे दोनों राम और केशव कीज्यमान होते हैं ॥१७-१८॥ यक्ष, विद्याधर सिद्ध, किन्नर, अप्सराओं के गण देव, गन्धव चारण लोग आकाश में चारों ओर घिरे हुए होते हैं । इन सबसे परिवारित आदित्य वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण साध्य विदवेदेवा लोकपाल और अन्य सब उत्त समय में पुरुषोत्तम प्रभु का स्तवन किया करते हैं ॥१६-२०॥ उत्त समय में सभी यही स्तवन किया करते हैं—हे पुराण पुरुषोत्तम ! आप तो देवों के भी देवता हैं और आप विश्व की सृष्टि स्थिति तथा अन्त करने वाले हैं । हे देव ! हे लोको के स्वामिन् ! हे जगत्ताक पति ! आपकी हम नमस्कार करते हैं ॥२१॥

प्रलोक्यधारिण देव ब्रह्मण्य मोक्षवारणम् ।

त नमस्यामहे भवत्या सबकामफलप्रदम् ॥२२

स्तुत्यद्य दिव्युद्या नृण्य राम चन्द्र महाबलम् ।

मुभद्रा च मुनिप्रदास्त्वदाऽऽनास व्यवस्थिता ॥२३

गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ।
 देवतूर्याण्यवाद्यान्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
 पुष्पमिश्र तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः ।
 जयशब्द च कुर्वन्ति गुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
 शक्राद्या विबुधाः सर्व ऋषयः पितरस्तथा ।
 प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वावासिनः ॥२६॥
 ततो मङ्गलसभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
 अभिषेचनिक द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणा ॥२७॥
 इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यं सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
 धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८॥

उन प्रेक्षोद्भूत के धारण करने वाले ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले भोक्त के कारण स्वरूप सब कामनाओं के फल प्रदान करने वाले उन देव को हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥ इस रीति से देवगण महान् बल वाले श्री राम एवं कृष्ण का स्तवन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! तथा सुभद्रा देवी की स्तुति करके फिर सब आकाश में व्यवस्थित हो जाया करते हैं ॥२३॥ देव गन्धर्व गान किया करते हैं—अप्सरार्यो नृत्य करती हैं—देवों के सूर्य वज्राये जाते हैं और वायु परम शीतल होकर बहने किया करते हैं ॥२४॥ उस सुममय पर आकाश में दिखाई देने वाले मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि किया करते हैं । मुनिगण-सिद्ध और चारण जय-जयकार के शब्दों का उच्चारण किया करते हैं ॥ ५॥ इन्द्र आदि देवता सब ऋषिगण पितृगण प्रजापतियों के समुदाय नाग तथा अन्य स्वर्ग निवासी सभी जय-जयकार किया करते हैं ॥२६॥ इसके पश्चात् मङ्गल के सगारों से विधि मन्त्रों से पुरस्कृत अभिषेक के द्रव्य को देवगण ग्रहण करके वहाँ पर स्थित रहने हैं ॥२७॥ उनके वतिपय प्रमुख नामों को बतलाया जाता है—इन्द्र विष्णु जो महान् वीर्य से युक्त हैं—सूर्य चन्द्रमा-धाता-विधाता-अनिल-अनल ये सब देवता वहाँ पर उपस्थित रहते हैं ॥२८॥

पूषा भगोऽयं मा त्वष्टा अशुनैव विवस्वता ।
 पत्नीभ्या सहितो घीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९
 रुद्रं वंसुभिरादित्यं रश्मिभ्या च वृत प्रभु ।
 विश्वं देवं मरुद्भिश्च साध्यं च पितृभि सह ॥३०
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगै ।
 देवपिभिरसह्येयंस्तथा ब्रह्मपिभिरै ॥३१
 वैखानसर्वालिखित्यैर्वाय्याहारं मरीचिपं ।
 भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितं ॥३२
 सर्वविद्याधरं पुण्ययोगसिद्धिभिरावृत ।
 पितामहं पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपा ॥३३
 अङ्गिरा कश्यपोऽत्रिश्च मरुचिभृंगुरेव च ।
 क्रतुर्हरं प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४
 ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतीषि च द्विजोत्तमा ।
 मूर्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातना ॥३५

पूषा, भग, अयमा, त्वष्टा जो अशु और विवस्वाद् घीमाद् पत्नीयो के सहित हैं । मित्र, वरुण, रुद्र, बसु, आदित्य और अश्विनी कुमारो से प्रभु परिवृत रहते हैं । विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य, पितृगण गन्धर्व, अप्सरो, यक्ष, राक्षस और पन्नगो से पुरुषोत्तम प्रभु उस समय म धिरे हुए रहते हैं । असह्य देवपि गण तथा अष्ट ब्रह्मणियों से भी चारो ओर म आवृत रहते हैं ॥२९ ३१॥ वैखानस, बालखिल्य, आयु के आहार करने वाले, मरीचिम, सब विद्याओ मे परिनिष्ठित भृगु और अङ्गिरा, सब विद्याओं के धारण करने वाले पुण्यात्मा योग सिद्धियों के द्वारा वे आवृत रहते हैं । उस अभिषेक के समय पर पितामह, पुलस्त्य पुलह, महात्मा अङ्गिरा पद्मय, अत्रि, मरीचि, भृगु क्रतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष—ये सब उस अभिषेक के समय म उपस्थित थे ॥३२ ३४॥ सप्त ऋतुणें, समस्त ग्रह, ज्योतिगण, मूर्तिमती सब सरिताएँ और सनातन सप्त देवगण वहाँ पर थे ॥३५॥

समुद्राश्च हृदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
 पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमा ॥३६॥
 अदितिर्देवमाता च ह्री श्रीः स्वाहा सरस्वती ।
 उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः क्रुहः ॥३७॥
 राका च धिपणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवीकसाम् ।
 हिमवाश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८॥
 ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च ।
 मासार्धं मासशतवस्तथा रात्र्यहनी समाः ॥३९॥
 उच्चैः श्रवा ह्यथ्येष्ठो नागराजश्च वामनः ।
 अरुणो गरुडश्चैव वृक्षादूर्ध्वपद्भिः सह ॥४०॥
 धर्मश्च भगवान्देव समाजमुहि सगताः ।
 कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥४१॥
 बहुलवाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।
 ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः ॥४२॥

द्विजोत्तमो ! गद्य शमुद्र, हृद, विविध तीर्थ, पृथिवी, द्यौ, दिशाएँ
 समस्त पादप, देवमाता अदिनि, ह्री, श्री मगडा, सरस्वती, उमा शची,
 सिनी वाली, अनुमति, क्रुह, राका, धिपणा, देवगणों की अन्य पत्नियाँ
 ये सब वहाँ पर उस समय में विद्यमान थे । हिमवान्, विन्ध्य, मेरु,
 अनेक शृङ्गवान्, ऐरावत, अनुचरो के सहित, कला, काष्ठा, मास का
 अर्धभाग पक्ष, मास, मय शतुष्टे, रात्रि, दिन, समा, हनों में श्रेष्ठ
 उच्चैः श्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुण, सब दृष्ट, समस्त औपधिया,
 भगवान् देव धर्म में सभी सगन होकर वहाँ पर समागत हुए थे ।
 काल, यमराज, मृत्यु, और समस्त यम के अनुचर गण, देवगण अनेक
 ओर बहुत हैं वे सब नहीं बगलाय गये हैं । वे सभी जिनके नाम नहीं
 बगलाये गये हैं शहर-उधर से पुरातन देव के अभिषेक के लिए
 समागत होते हैं ॥३६-४२॥

गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवीकमः ।

आभिषेचनिक द्रव्य मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥

दिव्यसंभारमश्रुतैः कलशैः कञ्चनैर्द्विजाः ।
 नारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरैव च ॥४४
 तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्ण रामेण सगतम् ।
 सपुष्पैः काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः ॥ ५
 सचरन्ति विमानानि देयनामम्बरे तथा ।
 सञ्चायमानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६
 दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।
 गीतं वार्धैः पताकाभिः क्षोभितानि समन्ततः ॥४७
 एव तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्ण रामेण सगतम् ।
 स्नापयित्वा मृभद्रा च मस्तुवन्ति मृदाऽन्विताः ॥४८

देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर जय जय कूर्मरूप जय
जय यज्ञवर जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय
योगशायिष्ठय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर
जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिष्ठय
जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय
दहनयक्त्र जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय
श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय
धर्मनेत्रो जय जय महीनिवास जय जय गहनचरित्र जय जय
योगिगम्य जय जय मखानिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शाक्तिकर
जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय
जय कमलाकर जय जय भायपेश जय जय मुक्तिकर जय जय
विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय जय जय गुणसमृद्ध जय जय
यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूश-
रण्या जय जय कान्तिमुत्त जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मी-
युत जय जय पद्मजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत
जय जयातसीकुसुमश्यामदेह जय जय समुद्रविष्टदेह जय जय
लक्ष्मीपद्मजपट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय
जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय
भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्ष
कर जय जय कलुषहर ॥४६॥

अब गस्तावन जिता प्रवार से विद्या जाता है वह बतलाते हैं—
हे देवेश्वर ! आर तब लोको के पासन करन वाले हैं आपकी सदा जय
जय होवे । आप अपने भक्तों की रक्षा करन वाले हैं आपका जय-जय-
वार होवे । आप शरणार्थी में आने वाले प्रणतो पर ध्यान करने वाले
हैं आपकी सदा जयवार होवे । हे भूत चरण ! आपकी जय होवे ।
आप आदि देव हैं तथा बहुतों के कारण हैं आपका सदा जयवार
होवे । हे पागुदेश ! आपकी जय हो । हे अनुरो के महार करने वाले !

आपकी जय हो । हे दिव्यमीन ! आपका जय जयकार होवे । हे देवी मे परमश्रेष्ठ ! आपकी जय हो । आप जलधि मे समन करने वाले तथा योगियो मे परम श्रेष्ठ है आपकी जय होवे । हे सूर्य के नेत्र वाले ! आप देवी के राजा है और हे वृंढभ अमुर के हनन करने वाले ! आप देवी मे परमश्रेष्ठ पुकारे जाते हैं आपकी जयकार हो । हे कूर्म का स्वरूप धारण करने वाले ! आप यज्ञो मे श्रेष्ठ हैं तथा नाभि मे कमल रखने वाले हैं आपकी सर्वदा जय हो । हे शैलो पर चरण करने वाले ! आप योगावस्था मे दायन करने वाले तथा वेगो को धारण करने वाले हैं आपकी जय हो । हे विश्व की भूति वाले ! तथा हे चक्र को धारण करने वाले ! आप समस्त भूतो के नाथ हैं और इस धरणी को धारण करने वाले है आपका सदा जयकार होवे । हे शेष की शय्या पर दायन करने वाले ! आप पीताम्बर धारी हैं—चन्द्र के समान गुन्दर हैं तथा योग मे ही वास किया करते हैं आपकी जय हो । हे वहन के मुख वाले ! हे धर्म के निवास से युक्त आप गुणो की धान हैं—आप मे श्री का निवास रहता है और सदा अपने पाहून गच्छ पर बैठ कर गगन किया करते हैं आनकी सदा जयकार होवे । हे गुप्त के आश्रय ! आप धर्म के नेत्र हैं आपकी जय हो । हे भूमि पर त्रियाम करने वाले जयवा मही को आश्रय देने वाले ! आपका परित्र बहुत ही महान है—आप योगियो के द्वारा जानने के योग्य हैं—मग्नो मे आप विद्यमान रहा करते हैं—वेदो के द्वारा आपका ज्ञान होता है और आप शान्ति के करने वाले है आपका अनन्य बार जय-जयकार होवे । हे योगिजनों के द्वारा विग्नन करने के योग्य ! आप पुष्टि के करने वाले हैं—आप की भूति है—जलना के आधार है—आकाश के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य है और आप गारुड का सत्कार के जन्म मरण जय के बारम्बार वचन से पुटकारा देने वाले हैं—आकाश कमं पूगेत्या विमज है अर्थात् कमो का कीर्ति भी प्रभाव भावने देह पर नहीं होगा है । आपका जय हो । हे गारुड त्रिय ! आप गुण मग्नो मे समृद्धि प्राप्त करने वाले हैं—मग्नो के करार वाले—मोक्ष को प्रदाय करने वाले—भूमि को दारण

देने वाले और कान्ति से युक्त है अर्थात् पूर्ण कान्ति से सुसम्पन्न है । आपका सर्वदा जय जयकार हो । हे लोको को सुरक्षा प्रदान करने वाले ! आप लक्ष्मी से युक्त हैं—कमल के सदृश सुन्दर नेत्रो वाले हैं—सृष्टि के करने वाले हैं—योग से युक्त हैं—अलसी के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले हैं—समुद्र में विष्ट देह वाले हैं आपकी जय-जयकार होवे । हे महालक्ष्मी के स्वरूप रूप कमल के लिये भ्रगर के समान हैं । आप अपने भक्तों के वश में रहते हैं—लोकों के कान्त हैं—परम शान्त स्वरूप हैं—परमाधिक तार रूप हैं—सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले हैं भोगियों से युक्त हैं—हे नीले जम्बर वाले ! हे शान्ति के करने वाले ! मोक्ष के कर्ता और आप कलुषों के हरण करने वाले हैं—आपका सदा-सर्वदा जय-जयकार होवे ॥४६॥

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्षणानुज ।

जय पद्मपलाशाक्ष जय बाण्छाफलप्रद ॥५०॥

जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर ।

जय पद्ममालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१॥

एव स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्या हृष्टमानसाः ।

सिद्धचारणसघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥५२॥

मुनयो बालखिल्याश्च कृष्ण रामेण सगतम् ।

सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठाः प्रणिपत्याम्बरे स्थिताः ॥५३॥

दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिगीकसः ।

कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेशनम् ॥५४॥

सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा ।

उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५॥

दिव्यरत्नचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।

गीतैर्वार्धैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥५६॥

हे जगत् के नाथ कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सद्भर्पण भगवाद् के छोटे भाई ! आपका जयकार हो । हे पद्म के दलों के समान लोचनो वाले ! आप बाण्छा के अनुसार फल प्रदान करने वाले हैं । आपकी

जय-जयकार होये ॥२॥ हे माताओं ने मन्मथ का अग्रगण्य माने ! हे
 पति मन्मथ की ओर व प्रणम्य करने लगे ! हे महाशक्ति देवी के आदिपति !
 हे विष्णु देव ! माता का गर्वना जयकार होये और हमारा आनन्दी धरण
 मेधा में प्रणम्य मगनित है ॥३॥ श्री कृष्णाजी ने कहा—उम महाभि-
 दिष्ट व ममय में इन प्रकार में दन्त प्रभृति देवों में परम प्रणम्य होकर
 स्वर्ग विद्या या और मित्रा तथा धारणा के मन्त्रों में तपस्य अग्न्य स्वर्ग
 सोम में विद्या करने वालों ने भी अग्न्य व विष्णुदेव की स्तुति की थी
 ॥२॥ वागमिष्य मुनिषों ने राम के महिम्न स्तुति श्रीकृष्ण और मुमुक्षु
 की प्रणिवान विद्या या और विर व मन्त्रों आराधन में स्विता हो गये थे ॥३॥
 उम माय में उम मय निदिष्ट के विद्यामयों ने दर्शन करके रतपन
 परके श्रीकृष्ण-राम और मुमुक्षु जी की प्रणम्य विद्या या विर के मन्त्र
 अपने २ नवगण स्वर्गों की मन्त्र विद्या करते हैं ॥४॥ उम महाभिषेक
 के मुमुक्षु पर देवा के विमान अग्न्य में सज्जकर विद्या करते हैं जो
 वि की और मीचे है—वरम दिव्य-तामनागुणर रतन करने
 तथा विर है ॥५॥ ये देवी के विमान परम दिव्य रत्नों से
 अतीव अद्भुत है और अप्सराओं के गणों के द्वारा गुणवित है तथा
 भीत वाद्यों के द्वारा और पताशाओं से ने विमान गुणर सोमा में
 युक्त थे ॥६॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरपोत्तमम् ।

बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥७॥

सुगन्द्रारामसहित मन्त्रस्थ पुरपोत्तमम् ।

दृष्ट्वा निरामय स्थान यान्ति नास्त्यत्र सञ्चयः ॥८॥

वपिलाशतदानेन यत्फल पुष्करे स्मृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ सहलायुधम् ॥

सुभद्रा च मुनिर्धेष्टाः प्राप्नोति शुभटक्षरः ॥९॥

वन्याशतप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥१०॥

सुवर्णशतनिष्काणा दानेन यत्फलं स्मृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६१॥

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६२॥

भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६३॥

उस समय पर जो मनुष्य पुरुषोत्तम प्रभु धलभद्र और गुप्तदा का वर्णन किया करते हैं वे सीधे अवश्य पद को प्राप्त किया करते हैं ॥५७॥ गुप्तदा देवी और धलराम जी के सहित महामन्त्र पर विराजमान श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके परम निरामय स्थान को गमन किया करते हैं—इसमें किञ्चिन्मात्र भी सशय नहीं है ॥५८॥ एक सौ बपिला गौओं के दान का जो पुष्कर राज में पुण्य फल होता है वही फल इला-युध प्रभु के साथ मञ्जु पर स्थित श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करके तथा गुप्तदा देवी का अवलोकन करके है मुनिश्रेष्ठो ! शुभ कर्म करने वाला नर प्राप्त कर लिया करता है ॥५९॥ एक सौ बन्धाओं के दान करने से जो फल बताया गया है उसी फल की प्राप्ति भव पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य किया करता है ॥६०॥ एक सौ सुवर्ण के निष्क (एक प्राचीन सिक्का तथा परिमाण का नाम है) के दान से जो पुण्य-फल कहा गया है उसी फल को भव पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६१॥ एक सहस्र गौओं के दान करने का जो भी पुण्य फल कहा गया है उसी फल को भव पर समवस्थित श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा लेता है ॥६२॥ विधिपूर्वक भूमि के दान से जो फल बताया गया है उसी फल को भवस्थ कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

यत्फलं चाश्रदानेन अर्घातिथ्येनकीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६४॥

वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६५॥

यत्फल तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६६॥

तिलधेनुप्रदानेन यत्फल सप्रकीर्तितम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६७॥

गजाश्वरथदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फला कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६८॥

सुवर्णशृङ्गीदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फला कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥६९॥

जलधेनुप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फला कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥७०॥

जो फल अन्न के दान से तथा अर्घ्य के सहित आतिथ्य करने से कहा गया है वही फल मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण का दर्शन कर प्राप्त हो जाता है ॥६४॥ शास्त्रोक्त विधान के साथ जो एक वृष के उत्सर्ग करने का फल कहा गया है वही फल अभिवेक के मन्त्र पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ॥६५॥ ग्रीष्म के तपन काल में जो फल जल के दान का अन्य स्थल में बताया गया है वही पुण्य का फल मन्त्रपद पर विराजमान श्री कृष्ण के दर्शन से हो जाता है ॥६६॥ तिल और धेनु के दान का जो फल कहा गया है वह मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से मनुष्य पा जाता है ॥६७॥ गज-अश्व और रथ के दान का जो फल होता है वह मन्त्र पर स्थित श्रीकृष्ण के दर्शन से होता है ॥६८॥ सुवर्ण शृङ्गी के दान के फल के समान मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण-दर्शन से प्राप्त होता है ॥६९॥ जल धेनु के दान के फल के तुल्य ही मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण दर्शन से हुवा करता है ॥७०॥

दानेन घृतधेन्वाश्च फलयत् समुदाहृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥७१॥

चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥७२॥

मासोपवासेर्विधिवद्यत्फल समुदाहृतम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ लभते नरः ॥७३॥

अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।

तस्य देवस्य माहात्म्य मन्त्रस्थस्य द्विजोत्तमाः ॥७४॥

यत्फल सर्वतीर्थेषु यतैर्दानिश्च कीर्तितम् ।

तत्फल कृष्णमालोक्य मन्त्रस्थ सहलायुधम् ॥७५॥

सुभद्रा च गुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभकृन्नरः ।

तस्मान्नरोऽप्यथा नारी पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥७६॥

ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम् ।

स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते ॥७७॥

धृत धेनु के दान का जो फल कहा गया है वही पुण्य फल मन्त्र-स्थित कृष्ण दर्शन से होता है ॥७३॥ चान्द्रायण महाव्रत के पूर्ण करने से जो फल बताया गया है वही फल मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से वह प्राप्त कर लेता है ॥७४॥ एक मास के लम्बे उपवास से जो फल बताया गया है वही मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ इसके पीछे बारम्बार बहुत कथन से क्या लाभ है जो कि हे द्विजगणो ! उन देवेश्वर के मन्त्र पर विराजमान के दर्शन का माहात्म्य हुआ करता है क्योंकि सभी तरह के महान् पुण्यों का फल इससे प्राप्त हो जाता करता है ॥७४॥ जो फल समस्त तीर्थों में यतो धीर दानों के करने से हुआ करता है वह केवल एकमात्र मन्त्रस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से ही जाया करता है जो कि हलायुध के सहित विराजमान रहते हैं ॥७५॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! सुभद्रा देवी जी का दर्शन कोई परम शुभ वस्तु करने वाला ही पुरुष प्राप्त किया करता है । इस लिये नर हो अथवा नारी हो उन पुरुषोत्तम प्रभु का उनको दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥७६॥ इसके अनन्तर जो श्रीकृष्ण के स्नान से शेष जल है उसके द्वारा अपने आपका अभिषिचन किया जाता है वह समस्त तीर्थों के स्नान करने आदि के पुण्य फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७७॥

यन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता ।
 राक्षमाद्यं गृहीता वा तथा रोगैश्च सहता ॥७८॥
 सद्यस्ता स्नानशेषेण उदोनाभिपेचिता ।
 प्राप्नुवन्तीप्सितान् यामान्यान्धान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
 पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्यं च सुगार्थिनी ।
 रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धनं च धनवाङ्क्षिणी ॥८०॥
 पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति घरणीतले ।
 तानि स्नानावशेषस्य कला नाहन्ति पौडसीम् ॥८१॥
 तस्मात्स्नानावशेषं यत्कृष्णस्य सलिलं द्विजा ।
 तेनाभिपिञ्चेद्गन्धाणि सबकामप्रदं हि तत् ॥८२॥
 स्नात पश्यन्ति ये कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ।
 ब्रह्महत्यादिभिः पापमुच्यन्ते ते न सशय ॥८३॥
 शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणं ।
 दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४॥

जा नारी बन्धा है भयवा जिराकी सन्तान समुत्पन्न होकर मृत हो
 जाया करती हैं—जो दुर्भाग्य वागी-ग्रहो से सतायी हुई हैं—जो राक्षसादि
 के द्वारा गृहीत हैं—जो रोगा से मुक्त हैं वे सभी प्रकार से पीडित
 नारियाँ स्नान से बचे हुए जल से अभिषेचित होकर तुरन्त ही सब कष्टों
 से छूट जाया करती हैं तथा अपने अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेती हैं
 जो भी वे मन में इच्छा किया करती हैं ॥८८॥ ७९॥ जो पुत्र की अभि-
 लाषा रखती हैं व पुत्रा का प्राप्त कर लिया करती हैं—जो सुखों की चाह
 रखती हैं वे परम सौभाग्य का लाभ लिया करती हैं । रोगों से पीडित
 नारी रोग से मुक्त हो जाती हैं और धन की आकांक्षा रखने वाली
 धन लाभ करती हैं ॥८०॥ इस घरणी तल में जो भी पुण्यमय जल
 स्थित हैं वे सभी इन श्रीकृष्ण के अभिषेक से बचे हुए जल की सोलहवीं
 कला के योग्य नहीं हो सकते हैं ॥८१॥ इसलिये हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के
 स्नानावशेष जा परम पावन जल है उससे अपने समस्त अङ्गों का अभिषि-
 क्षण करना चाहिए क्योंकि वह सभी प्रकार की कामनाओं के फल प्रदान

करने वाला होता है ॥८२॥ दक्षिण की ओर अभिमुख स्नान करते हुए श्रीकृष्ण का जो दशन किया करते हैं वे ग्रहाहृत्या प्रभृति जो महान् पाप है उन सबको छूट जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥८३॥ श्वास्थो मे इस पृथिवी की तीन प्रदक्षिणाओं के करने का जो फल बताया गया है उसको दक्षिण की ओर मुख करके भजन करने वाले श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त कर लिया करता है ॥८४॥

तीर्थयात्राफल यत्तु पृथिव्या समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८५॥

वदर्या यत्फल प्रोक्त दृष्ट्वा नारायण नरम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८६॥

गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८७॥

प्रयागे च महामाध्या यत्फल समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८८॥

शालग्रामे महाचन्द्र्या स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८९॥

महाभिधानकार्तिकया पुष्करे यत्फल स्मृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९०॥

यत्फल स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९१॥

जो पृथिवी में तीर्थों की यात्रा का फल बताया गया है वही सम्पूर्ण फल दक्षिणा मुख कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥८५॥ वदरी आश्रम में नर नारायण का दर्शन प्राप्त करने से जो पुण्य का फल प्राप्त होता है उसको दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण का दशन करके मनुष्य पा जाता है ॥८६॥ गङ्गा द्वार में कुरुक्षेत्र में स्नान करने तथा दान देने से जो फल होता है वही पुण्य फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दशन से प्राप्त हो जाता है ॥८७॥ महामाघी में प्रयाग में जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणामुख श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से

हुआ करता है ॥८८॥ महा चैत्री मे शालग्राम मे स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य फल दक्षिणा की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन से हुआ करता है ॥८९॥ महाभिधान कार्तिकी मे पुष्कर मे जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण को अवलोकन करके प्राप्त कर लिया करता है ॥९०॥ गङ्गा सागर के संगम मे स्नान करने तथा दान करने से जो परम पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है वह फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥

ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९२॥

गङ्गाया सबतीर्थेषु यामुनेषु च भी द्विजा ।

सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सर सु च ॥९३॥

यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥

पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्ठके ।

नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥

यत्फल स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥

अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन ।

यत्किञ्चित्कथित चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥

वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा ।

धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनोविभि ॥९८॥

दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम् ।

सकल भद्रया सार्धं यजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

कुरुक्षेत्र में सूर्य के ग्रस्त हो जाने पर अर्थात् राय ग्रहण के समय मे स्नान एवं दान से जो फल मनुष्य को मिलता है टीका देता ही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के अवलोकन से हो जाता है ॥९९॥ हे

द्विजगणो ! गङ्गा में यमुना के सभी तीर्थों में सरस्वती के समस्त तीर्थों में तथा अन्य पुण्यमय सरोवरो में स्नान से तथा दान देने से जितना भी पुण्य का विधिवत् करने से फल प्राप्त हुआ करता है वही फल पेयल एक दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६३-६४॥ पुष्कर में-तीर्थों में-गया में-अमर वण्टक में-नैर्गिराण्य आदि में तथा अन्य तीर्थों में, क्षेत्रों में और देवायतनों में यद्र के द्वारा प्रस्त हुए दिवाकर के समय में स्नान एवं दान करने से जो फल मिलता है वही पूरा फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होता है ॥६५-६६॥ बारम्बार वचन से और उसी बात को दुबारा-तिबारा पुनः धोलने से क्या लाभ है निष्कर्ष में बात यह है कि यहाँ पर पुण्य कर्म का जितना भी कुछ कहा गया है और द्विजोत्तमो ! महामनीषियो ने धर्म शास्त्रों में-साध वेदों में-पुराणों में और भारत में जो भी बताया गया है वह सम्पूर्ण पुण्य कर्म का फल ज्येष्ठ भाई हज्जामुध के सहित एवं सुमद्राजी के साथ गमन करते हुए दक्षिण की ओर मुल वाले भी कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६७-६८॥

३३—तीर्थ संख्या के विषय में नारदजी का प्रश्न

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणा च द्विजोत्तमाः ।
 जपहोमव्रतानां च तपोदानकनानि च ॥१॥
 न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सहस्रं भुवि ।
 किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥२॥
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् ।
 पुरपास्यं सङ्गृह्यत्वा सागराम्भः समाप्नुतम् ॥३॥
 प्रह्मविद्यां सङ्गृह्णात्वा गर्भवासो न विद्यते ।
 हरेः सनिहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४॥

सवत्सरनुपासीत मासमात्रमथापि वा ।

तेन जप्त्वा हुतं तेन तेन तप्त तपो महत् ॥५॥

स याति परम स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।

भुक्त्वा भागान्विचित्राश्च देवयोपित्समन्वितः ॥६॥

कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः ।

जायते योगिना विप्रा ज्ञानज्ञे योद्यतो गृहे ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! समस्त तीर्थों के—सब क्षेत्रों के और जाप, होम और सब व्रतों के तपो दान के जो पुण्य फल होते हैं, हे विप्रो ! मैं इस भूमण्डल में वैसा इसके समान कुछ भी नहीं देखता हूँ । यहाँ इस विषय में बहुत अधिक बहने से तथा बारम्बार भाषण करने से क्या लाभ है ॥१-२॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्ण-तथा सत्य है एक परम सत्य है कि वह परमाधिक एव महाद् धैर्य है कि सागर के जल में समाप्सुत पुरुष नाम धारी प्रभु का वशीन करके और ब्रह्म विद्या का ज्ञान एक बार प्राप्त करके फिर गर्भ में वास नहीं हुआ करता है अर्थात् पुनर्जन्म की वेदना नहीं होती है । श्री हरि के सनिहित उत्तम पुरुषोत्तम स्थान में एक वर्ष तक अथवा केवल एक मास पर्यन्त ही उपासना करनी चाहिए । उस पुरुष ने सब जाप कर लिया समस्त तथा होम और महाद् तपस्या भी करली है—ऐसा ही मान लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उसको फिर किसी भी जप-तपादि एव होम करने की आवश्यकता अपने वत्साण के लिये नहीं होती है ॥३-५॥ वह पुरुष तो उतने ही करने से परम स्थान को प्राप्त हो जाता है जहाँ पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान रहा करते हैं । वहाँ पर देवाङ्गनाओं के साथ रह कर अतीव अद्भुत एव भोगा का उपभोग करके एव कल्पों के अवसान होने पर वह श्रेष्ठ नर पुनः इस मनुष्य लोका में आया करता है और योगियों के गृह में हे विप्रो ! ज्ञान द्वारा तप के प्राप्त करने के लिए अद्यत होने वाला दोन-जन्म ग्रहण किया करता है ॥६-७॥

संप्राप्य वैष्णव योग हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत् ।
 कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८॥
 मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च ।
 स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९॥
 मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम् ।
 सर्वमेतन्मया ख्यात यत्परं श्रोतुमिच्छथ ॥१०॥
 इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया ।
 सर्वाश्चर्यं संमाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥
 पुराणं परमं गुह्यं धन्यं ससारमोचनम् ॥११॥
 नहि नस्तुतिरस्तोह शृण्वतां तीर्थं विस्तरम् ।
 पुनरेव पुरं गुह्यं बक्तं महस्यशेषतः ॥
 परं तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमम् ॥१२॥
 इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमाः ।
 नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम् ॥१३॥
 तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावनं स्मृतम् ।
 सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ॥१४॥
 कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले ।
 सर्वेषामेव तीर्थानां सबदा किं विशिष्यते ॥१५॥

फिर वह यहाँ पर हरि के वैष्णव योग को प्राप्त करके परम स्वच्छन्दता को गमन किया करता है। मैंने कल्प वृक्ष का-सुमद्रा के साथ कृष्ण वा मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्न का-माधव का-तया स्वर्ग द्वार का माहात्म्य तथा क्रम से सागर के मार्जन का विधान और यथा काल मे भगवती भागीरथी का समागम-यह सभी वर्णित कर दिया है। अब इससे आगे आप लोग क्या श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं ? ॥८-१०॥ इन्द्र द्युम्न का यह माहात्म्य भी मैंने कह दिया है। मैंने सभी आश्चर्य कह दिये हैं और पुरुषोत्तम प्रभु वा जो परम रहस्य है वह भी आप लोगों को बतला दिया है। यह पुराण परमाधिक गोपनीय है तथा अतीव धन्य है और ससार के भय के डुडा देने वाला है ॥११॥

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! यहाँ पर तीर्थों के विस्तार का जो वर्णन किया है उसका श्रवण करते हुए हमारी मृत्ति नहीं हो रही है । हमारी श्रव आगे यही आपकी सेवा में प्रार्थना है कि पुनः उस परम गोपनीय विषय का पूर्ण रूप से वर्णन करने के लिये आप योग्य हैं । समस्त तीर्थों में उत्तम से भी उत्तम तीर्थ का परम माहात्म्य कहिए ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजसत्तमो ! पहिले भी इसी प्रश्न को देवर्षि नारद ने मुझ से पूछा था सो मैंने पूर्ण प्रयत्न के साथ उसको बतलाया था ॥१३॥ श्री नारदजी ने कहा था—तप कायश और तीर्थों का माहात्म्य मैंने हे जगत् के स्वामिन् ! और जगत् के कारण ! आप से सभी सुना है ॥१४॥ स्वर्ग में रसातल में और मनुष्यलोक में कितने तीर्थ हैं ? उन सब तीर्थों में सर्वदा क्या विशेषता होती है ? ॥१५॥

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।

दैवानि मुनिशाङ्खे ल आसुराण्यारूपाणि च ॥१६॥

मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः ।

मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षे तीर्थमनुत्तमम् ॥१७॥

आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुर बहुपुण्यदम् ।

आसुरेभ्यस्तथा पुण्य दैव तत्सावकामिकम् ॥१८॥

ब्रह्मविष्णु शिवश्चैव निर्मित दैवमुच्यते ।

त्रिम्यो यदेक जायते तस्मान्नात पर विदुः ॥१९॥

त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम् ।

तत्रापि जाम्बव द्वीप तीर्थं बहुगुणोदयम् ॥२०॥

जाम्बवे भारत वप तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

कर्मभूमिर्येत पुन तस्मात्तीर्थं तदुच्यते ॥२१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—स्वर्ग पाताल और मर्त्यलोक में चार प्रकार के तीर्थ होते हैं । हे मुनिशाङ्खे ! सुरादि के द्वारा त्रिलोक में देव-सुर आर्य और मानुष ये चार प्रकार परम विख्यात हैं । जो मानुष

तीर्थ हैं उनसे आर्यतीर्थ अधिक उत्तम होते हैं ॥१६-१७॥ आर्य तीर्थों से भी अधिक पुण्य प्रदान करने वाला असुर तीर्थ होता है। उसी भाँति आसुर तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद देव तीर्थ हुआ करता है जो कि सभी कामनाओं का देने वाला होता है ॥१८॥ जो तीर्थ ब्रह्मा विष्णु और शिव के द्वारा निर्मित होता है वही देव तीर्थ कहा जाता है। यह तीर्थ जो तीनों देवों से समुत्पन्न होता है इसी कारण से सर्वोत्तम होता है और इससे उत्तम अन्य कोई भी नहीं हुआ करता है ॥१९॥ तीनों लोकों में तीर्थ को परम पवित्र कहा गया है। उसमें भी जम्बूद्वीप में होने वाला तीर्थ बहुत गुणों के उदय वाला होता है ॥२०॥ इस जम्बू द्वीप में भारतवर्ष तीर्थ त्रैलोक्य में विद्यमान है। हे पुत्र! यह भारत-वर्ष कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से यह तीर्थ कहा जाया करता है ॥२१॥

तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव ।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पण्ड्या देवभवा ॥२२॥
तथैव देवजा ग्रहान्द क्षिणार्णवविन्ध्ययो ।
एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥२३॥
अभिमपूजित यस्माद्भारत बहुपुण्यदम् ।
कर्मभूमिरतो देववर्ष तस्मात्प्रकीर्तितम् ॥२४॥
आर्षाणि चैव तीर्थानि देवजानि कचित्कचित् ।
आसुरैरावृतान्यासस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते ॥२५॥
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः ।
देवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि ॥२६॥
आत्मन श्रेयसे मुक्तये पूजायै भूतयेऽयवा ।
आत्मन फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुन ॥२७॥
मानुषं कारित्तान्याहुर्मानुषाणीति नारद ।
एव चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमा ॥२८॥

इस भारत में जो जो भी तीर्थ होने हैं वे सब मैंने आपको बतला दिये हैं। हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल इन दोनों के मध्य भाग में

छे सरिताएं ऐसी हैं जो देवा से ही समुत्पन्न हुई हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से हे ब्रह्मन् ! दक्षिण सागर और विश्व्याचल के मध्य में देवों से समुत्पन्न नदियाँ हैं । ये वारुण नदियाँ प्रधान स्रष्टा बतलाई गयी हैं ॥२३॥ जिस कारण यह बृहत् पुण्य का प्रदान करने वाला यह भारत-वर्ष अभिसंपूर्ण होता है । यह नर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से देवों ने भी इसकी प्रशंसा का कीर्तन किया है ॥२४॥ आप और देव तीर्थ कही जाती पर ही हैं । जो आसुरा स आकृत हैं वे ही आहुर तीर्थ कह जाते हैं ॥२५॥ देव प्रदेशों में ही महर्षियों ने सपञ्चर्या की है । देव प्रमाय में और तप के प्रभाव से भी युक्त वे तीर्थ देव और आप दोनों ही हैं ॥२६॥ हे नारद ! आत्मा के श्रेय के लिये मुक्ति के लिये पूजा के नियम अथवा भूति के लिये आत्मा की फल भूति के लिये तथा पुनः यश की प्राप्ति के लिये मानुषों के द्वारा जो कराये गये हैं वे मानुष तीर्थ हैं । हे मुनियो ! इस तरह से तीर्थों के चार भेद हैं ॥२७ २८॥

भेद न कश्चिज्जानाति श्रोतुं युक्तोऽसि नारद ।

बहव पण्डितमन्या ल्पवन्ति कथयन्ति च ॥

सुकृति योऽपि जानाति वक्तुं श्रोतुं निजगुण ॥२९॥

तथा स्वरूप भेदं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३०॥

ब्रह्म कृतयुगादौ तु उपायौऽन्यो न विद्यते ।

तीर्थसेवा विना स्वत्पायासेनाभीष्टदायिनीम् ॥३१॥

न त्वया सदृशो घातवन्ता ज्ञाताऽयवा क्वचित् ।

त्वं नाभिकमले विष्णो सजातोऽखिलपूर्वज ॥३२॥

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।

तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिता ॥ ३३॥

भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती ।

विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिता ॥३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः ।

गयः कोल्लामुरो वृन्नास्रपुरो ह्यन्धकस्तथा ॥ ३५

हयमूर्धा च लवणो नमुचिः शृङ्गकस्तथा ।

यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च ॥ ६

इन तीर्थों के भेद को कोई भी नहीं जानता है हे नारद ! अतएव तुम श्रवण करने के योग्य हो । बहुत से अब मैं आपको महा यण्डित मानने । ले श्रवण किया करते हैं और बड़ा करते हैं । कोई ही सुदृढ करने वाला पुरुष ऐसा होता है जो निज के गुणों के द्वारा कहना और सुनना जाना कात है ॥२९॥ श्री नारदजी ने बह—हे ब्रह्मन् ! इन समस्त तीर्थों के स्वरूप को एव भेद को मैं सात्त्विक रूप से श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ । जिसका श्रवण करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥३०॥ हे ब्रह्मन् ! सत्य प्रणादि में अन्य कोई भी उपाय नहीं है । केवल तीर्थों की ही सेवा ऐसी है जो थोड़े से ही आयास से अभीष्टों के प्रदान कर देने वाली होती है ॥३॥ हे धाता ! आपके समान अन्य कहीं पर भी इन विषयों का ज्ञाता तथा वरता कोई नहीं है । आप तो सभी से पूर्व में समुत्पन्न हुए हैं और साक्षात् भगवान् विष्णु के नाभि में स्थित कमल से ही आपकी उत्पत्ति हुई है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में गोदावरी-भीमरथी तुङ्ग भद्रा-वेणिका-नापी-ओर पद्मेरणी ये छे छे नदियाँ बहती हैं ॥३३॥ हिमालय पर्वत में अरुण सेने वाली छे सरित ओ में भागीरथी-नर्मदा-यमुना-सरस्वती और यितस्ता तथा त्रिशोका है ॥३४॥ ये नदियाँ परम पुण्यतमा हैं और ये देव तीर्थ कही गयी हैं । गय, कोल्लामुर-वृन्नास्रपुर-अन्धक-हयमूर्धा-लवण-नमुचि-शृङ्गक-यम-पाताल केतु-मय और पुष्कर ये अमुरों के नाम हैं ॥३५-३६॥

एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च ।

प्रभासो भागवोऽगस्तिर्नरनारायणी तथा ॥३७

वमिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः ।
 इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥ ८
 अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च ।
 कुरु कनखलश्च भद्राश्वः सगरस्तथा ॥ ३८
 अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिदमः ।
 इत्यादिमानुषं विप्रं निर्मितानि शुभानि च ॥ ४०
 यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद ।
 स्वतोद्भूतानि देव नि यत्र कापि जगत्रये ॥
 पुण्यतीर्थानि सान्याहुस्तीर्थभेदा मयोदितः ॥ ४१

इन उपर्युक्त असुरो से समाकूल एव परम शुभ आसुर तीर्थ कहें
 जाते हैं । प्रभास-भागव-अर्गस्ति-नर-भारायण-वसिष्ठ-भरद्वाज-गौतम-
 कश्यप-मनु कुरु-कनखल-भद्राश्व-सागर-अश्वयूप-नाचिकेता वृषाकपि-अरि-
 दय-इत्यादि मानुषो के द्वारा निर्मित शुभ तीर्थ हैं ॥ ३७-४० ॥ हे
 नारद ! ये यहाँ पर यश की फल भूति के लिये ही निर्मित तीर्थ हैं जो
 परम शुभ हैं । स्वतः ही उत्पन्न देव तीर्थ तीनो लोकों में जहाँ कहीं पर
 ही होते हैं वे सब पुण्य तीर्थ हैं जो बड़े जाने हैं । इस प्रकार से तीर्थों
 का भेद मैंने बतला दिया है ॥ ४१ ॥

—:—:—

३४—गंगाजी के दो रूप कथन

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता ।
 श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥ १
 महेश्वरजटास्या या आपो देव्यो महामते ।
 तासा च द्विविधो भेद आहुतुं द्वयकारणात् ॥ २
 एकाशो ब्राह्मणेनात्र यतदानसमाधिना ।
 गौतमेन शिव पूज्य आहूतो लोकविश्रुतः ॥ ३

अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलीयसा ।
 आराध्य शंकरं देवं तपोभिर्नियमैस्तथा ॥४॥
 भगीरथेन भूपेन आहूतोऽशोऽपरस्तथा ।
 एवं द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५॥
 महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतमः ।
 आहार्ता क्षत्रियेणापि आहूता केन तद्वद ॥६॥
 यथाऽऽनीता पुरा वरस ब्राह्मणेनेतरेण वा ।
 तत्सर्वं विस्तरेणाहं वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

श्री नारद जी ने कहा—कमण्डलु में स्थित रहने वाली देवी (गङ्गा)
 फिर महेश्वर को मस्तक की जटा में प्राप्त हुई थी । हे देव ! जिस तरह
 से वह इस मनुष्य लोक में समागत हुई थी यह ध्वनि किया है अब आप
 उसी को पूर्ण रूप से बतलाइये ॥१॥ श्री परमेश्वरी ब्रह्माजी ने कहा—
 भगवान् महेश्वर देव की जटाओं में सन्स्थित रहने वाली जो जल स्वरूपा
 है विपार्थी हे महामते ! आहर्ता के दो कारणों से उनके भी दो भेद हैं
 ॥२॥ उसका एक भाग व्रत और दान की समाधि वाले गौतम ब्राह्मण
 के द्वारा यहाँ पर भगवान् शिव की पूजा करके साया गया है । हे महा-
 मति वाले ! यह लोक में विद्युत् है ॥३॥ हे महती प्रज्ञा वाले ! दूसरा
 अंग जो उस गङ्गा देवी का था वह महान् बलवान् क्षत्रिय राजा के
 द्वारा परम दुष्कर तपश्चर्या और निग्रहों के द्वारा देव शङ्कर की आरा-
 धना करके लाया गया था ॥४॥ इस प्रकार से भूप भगीरथ के द्वारा
 दूसरा भाग यहाँ पर समाहृत हुआ था । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से
 गङ्गा देवी के दो स्वरूप हुए थे ॥५॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा था—
 महेश्वर की जटा में स्थित जो गङ्गा देवी थी उसका आहरण करने वाला
 गौतम किस कारण से हुए थे । तथा क्षत्रिय के द्वारा भी किम कारण से
 वह कहीं पर लाई गयी थी यह मुझे बतलाइये ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने
 कहा—हे वरस ! जिस रीति से पहिले समय में एक ब्राह्मण के द्वारा
 तथा दूसरे क्षत्रिय के द्वारा यह यहाँ साया गयी थी उस सम्पूर्ण इतिहास
 को मैं नेबत् तुम्हारे ऊपर प्रीति होने के कारण बतलाता हूँ ॥७॥

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया ।
 तस्मिन्नेवामवद्गङ्गा प्रिया शमोर्महामते ॥८॥
 मम दोषापनोदाय चिन्तयान शिवस्तदा ।
 उमया सहित श्रीमान्देवी प्रेक्ष्ये विशेषम् ॥९॥
 रसवृत्तौ स्थितो यस्माद्भिर्ममे रसमुत्तमम् ।
 रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रेणत्वात्पादनत्वत्त ॥१०॥
 सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिगङ्गाऽभूद्विजसत्तम ।
 तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वर ॥११॥
 संबोद्धभूता जटामार्गात्कस्मिञ्चित्कारणान्तरे ।
 स तु सगोपयामास गङ्गा शशुजंटागताम् ॥१२॥
 शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा ।
 सोढुं ब्रह्मजटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३॥
 अमर्षेण भव गौरी प्रेमयस्वेत्यभाषत ।
 नैवासौ प्रैरयच्छभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥

जिस समय मे सुरेश की उमादेवी परग प्रिया पत्नी हुई थी और उसी समय मे हे महामते । भगवान् शम्भु की प्रिया गङ्गा देवी हुई थी ॥८॥ उस समय मे मेरे दोष के अपनयन करने के लिये भगवान् शिव चिन्ता करने वाले उस समय मे थे । उमा सहित श्रीमान् भगवान् शम्भु देवी को विशेष रूप से देखते थे । ॥९॥ १० की वृत्ति मे स्थित वे स्थित थे इस कारण से उन्होंने उत्तम रस का निर्माण किया था । रसिक होने से प्रिय होने से स्त्रेण होने से और पावन होने से ही उन्होंने ऐसा किया था ॥१०॥ हे द्विज श्रेष्ठ । सभी से अधिक प्रीति वाली गङ्गा हो गयी थी । यह महेश्वर देव सर्वदा उसी गङ्गा का चिन्तन करने वाले रहा करते थे ॥११॥ किसी अन्य कारण से वही गङ्गा देवी जटाओं के मार्ग से समुद्रगत हो गयी थी और वे भगवान् शम्भु अपनी जटाओं मे स्थित गङ्गा को छिपा रहे थे ॥१२॥ क्योंकि उस समय मे गङ्गा देवी शिर के द्वारा जटा में स्थित थी और धारण की हुई थी इसलिये उमादेवी जान

न सकी थी । हे ब्रह्मन् ! बारम्बार जटाजूट में स्थित गंगा को देखकर गौरी उसको सहन नहीं कर सकी थी और गौरी देवी अमर्ष से भगवान् भव (शिव) से यही कहा था कि उसको प्रकट कर प्रेम करिये । किन्तु भगवान् शम्भु परम रसिक थे और उस उत्तम रस को उन्होंने प्रवट नहीं किया था ॥१३-१४॥

जटास्वेव तदा देवी गोपायन्स विमृश्य सा ।

विनायक जयां स्कन्दं रहो वचनमश्रीत् ॥१५

नैवायं त्रिदेशेशानो गङ्गा त्यजति कामुकः ।

साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६

एय विमृश्य बहुषो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७

न देवर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च ।

न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभुः ॥१८

पुनस्तप्स्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् ।

अथवा ब्राह्मणोः पुण्यैस्तपोभिर्हृतकल्मषः ॥१९

तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०

एमच्छत्वा मातृवाक्य मातर प्राह विघ्नराट् ।

भ्रात्रा स्कन्देन जयया समन्वयेह च युज्यते ॥२१

उस समय में गौरी देवी ने जटाओं में ही गंगा देवी को छिपा कर सुरक्षित रखने वाले शम्भु को विचार कर उमा देवी ने एकान्त में विनायक-जया और स्कन्द से यह वचन कहा था ॥१५॥ यह देवी के लक्ष्मीश्वर कामुक होने के कारण गंगा का त्याग नहीं करते हैं । आज यह भी शिव की प्रिया है । उस प्रिया को कैसे त्याग करें । इस प्रकार से बहुत अधिक विचार करके गौरी देवी विनायक से बोली-॥१६-१७॥ पार्वती जी ने कहा—देवी के द्वारा-अमुर-यक्ष-तिड अन्य राजा तथा आपके द्वारा भी प्रभु गंगा का त्याग नहीं करते हैं ॥१८॥ अतएव मैं फिर पर्वतो में उत्तम हिमवान् में जाकर तपस्या करूँगी । अथवा परम पुण्यमय तपस्वी और निष्पाप ब्राह्मणों के द्वारा जटाजूट में स्थित गंगा से प्रार्थना की जावे कि यह भूलोक में प्राप्त हो जावे ॥१९-२०॥ श्री गंगाजी

ने कहा—अपनी माता के इस वाक्य को सुनकर विष्णु के राजा गणेश जी ने अपने भाई स्कन्द और जया के साथ गलोर्भाति मन्त्रणा करके फिर अपनी माता उमादेवी से कहा कि यहाँ पर रह युक्त हो सकता है ॥२॥

तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गा यथा त्यजति मे पिता ।
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नावृष्टिर जायत ॥२२॥
 द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वपाणिभयावहा ।
 ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थागरजङ्गमम् ॥२३॥
 विना तु गौतम पुण्यमाश्रम सर्वकामदम् ।
 खण्डुकाम परा पुत्र स्थावर जङ्गम तथा ॥२४॥
 कृतो यज्ञो मया पूर्व स देवयजनो गिरि ।
 मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरि सदा ॥२५॥
 तमाश्रित्य नगश्रेष्ठ सर्वदाऽऽस्ते स गौतम ।
 तस्याऽऽश्रमे ममापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरो शुभे ॥२६॥
 आद्ययो व्याधो वाऽपि दुर्भिक्ष वाऽप्यवर्षणम् ।
 भयशोकी न दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७॥
 तदाश्रम विनाऽन्यत्र हव्य वा कव्यमेव वा ।
 नास्ति पुत्र तथा दाता दोता यष्टा तथैव च ॥२८॥

हम वही कार्य करते हैं जिस प्रकार से पिताजी अपने मस्तक से गंगा का त्याग कर दबें । इसी बीच मे हे ब्रह्मा ! अनावृष्टि हो गयी थी ॥२२॥ वह अनावृष्टि भी मर्त्यलोक में चौबीस वर्ष तक रही थी जो कि समस्त प्राणियों के लिये बहुत ही अघिम भय देने वाली थी । इसके पश्चात् परापर सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो गया था ॥२३॥ सर मनोरथों को देने वाले पुण्य आश्रम गौतम क विना है पुत्र । पहिले स्थावर जगम की वृष्टि करने की इच्छा वाले मैंने पूव में यज्ञ किया था । वह देव यजन गिरि है । वहाँ पर वह मेरे नाम से ही विख्यात हो गया था और सदा ब्रह्मगिरि कहा जाता है ॥२४-२५॥ उस श्रेष्ठ पर्वत का आश्रम ग्रहण

करके गौतम सर्वदा रहा करते हैं । उसके आश्रम में जो महान् पुण्यमय श्रेष्ठ है और शुभ ब्रह्मागिरि में स्थित है ? उसकी ऐसी महिमा है कि वहाँ पर कोई भी आधियाँ (मानसिक व्यथाएँ) न्याधियाँ-दुर्भिक्ष और अकृष्टि-भय-शोक तथा दरिद्रता कभी भी नहीं सुनी जाया करती हैं ॥२६-॥२७॥ हे पुत्र ! उस आश्रम के बिना अन्य किसी भी स्थान में हव्य-कव्य का दाता, होता और यथा नहीं है ॥२८॥

यदेव गौतमो विप्रो ववाति च जुहोति च ।
 सर्वं वाप्ययन स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥
 देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः ।
 होता दाता च भोक्ता च स एवेति जनाः विदुः ॥३०॥
 तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः ।
 गौतमाश्रममागृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१॥
 तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां स गौतमः ।
 शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पुत्रोपकोऽभवत् ॥३२॥
 यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथा योग्यं यथाक्रमम् ।
 यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३॥
 आलया गौतमस्याऽऽसन्नोपध्व्यो लोकमातरः ।
 आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३४॥
 जायन्ते च तदीपध्व्यो लूयन्ते च तदेव हि ।
 सपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥

जिस समय में विप्र, गौतम देता है और हवन किया करता है तभी स्वर्ग में सुरों की वृत्ति हुआ करती है अन्य से नहीं होती है ॥२९॥ देव लोक में अथवा मर्त्यलोक में गौतम मुनि का नाम सुना जाता है । मनुष्य यह जानते हैं कि वह ही मुनि होता दाता और भोक्ता है ॥३०॥ यह श्रवण करके अनेक आश्रमों में निवास करने वाले मुनिगण सभी गौतम के आश्रम को पूछते थे और तपोधन मुनिगण सब ओर से वहाँ पर आ रहे थे ॥३१॥ वह गौतम श्रुति उन समागत समस्त मुनियों का भक्ति-

भाव से शिष्यवत् और पुत्रवत् तथा पिता की भाँति पोषक हो गये थे ॥३२॥ जिसका जो भी जिस प्रकार का काम था उसको मधोचित रूप से यथा क्षम स्वरूप के अनुरूप समझकर उस मुनि ने सत्तकी सेवा शुद्धता की थी ॥३३॥ उस समय में गौतम मुनि की आज्ञा से लोक की माताएँ ओषधियाँ हुई थीं । इसके अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की महेश्वर की आराधना की थी ॥३४॥ उस समय में ओषधियाँ उत्पन्न होती थी और उसी समय में छिन्न की जाती थी । गौतम के तपोव्रत से सब उगती थी और सम्पन्न होती थीं ॥३५॥

सर्वाः समृद्धयस्तस्य ससिद्ध्यन्ते मनोगताः ।

प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥

पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेक्ष्यवत्करवाणि किम् ।

पितृवत्पोषयामास सबत्सरगणान्बहून् ॥३७॥

एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात् ।

ततो विनायकः प्राहमातर आतर जयाम् ॥३८॥

देवानां सवने मातर्गीयते गौतमो द्विजः ।

यत्र साध्य सुरगणगौतमः कृतवानिति ॥३९॥

एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम् ।

स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥

तपसा वाङ्मयतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम् ।

स एव च्यावयेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१॥

तत्र नीतिविधातव्या ता विप्रो याचयेद्यथा ।

तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोज्ज्वतरत्यपि ॥४२॥

उसके मन में रहने वाली सभी समृद्धियाँ ससिद्ध होती थीं । जो मुनिगण वहाँ पर समागत हुए थे उनसे गौतम मुनि विनय पूर्वक प्रतिदिन निवेदन किया करते थे ॥३६॥ पुत्र की भाँति शिष्य के सदृश और प्रेक्ष्य (दूत) के समान मैं आपकी क्या सेवा करूँ । इस प्रकार से गौतम मुनि ने बहुत से वर्षों तक उन सबका पिता के समान पूर्णतया पोषण किया था ॥३७॥ इस तरह से वहाँ पर जिन मुनियों के निवास करने पर

उस आश्रय से तीनों लोकों में ख्याति हो गयी थी । इसके अनन्तर विनायक ने अपनी माता से, माई से और जया से कहा था ॥३८॥ विनायक ने कहा—हे माताजी ! देवों के भी सदन में गौतम द्विज, वी प्रकटर वर गान किया जाता है कि जो मुख्यगणे के द्वारों भी साध्य नहीं है वह गौतम ने कर दिया है ॥३९॥ हे देवि ! मैंने ब्राह्मण का इस प्रकार का तपोबल सुना है । हे माताजी ! वह विप्र इस जटाओं में सम-वस्थित गङ्गा को वहाँ से बहा देगा ॥४०॥ तप से अपना किसी अन्य साधन में भ्रष्टान् त्रिलोचन का पूजन करके वही मेरे पिताजी की प्रिया इस गङ्गा को जो कि जटाओं में स्थित है व्यापित कर देगा अर्थात् वहाँ अलग कर देगा ॥४१॥ उस विषय में कुछ भीनि (व्यावहारिक बात) करनी चाहिए जिससे उस गङ्गा से यह विप्र याचना करे और उससे प्रभाव से वह सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा पिताजी के शिर से नीचे उतर भी जायगी ॥४२॥

इत्युक्त्वा मातरं भ्रात्रा जयया सहः विघ्नराट् ।

जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रघटः कृशः ॥४३॥

सत्कृतिपयाह सु गौतमाश्रममण्डले ।

इवाच ब्राह्मणान्सर्वास्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥

पृच्छामः स्वमपिष्ठानमाश्रमाणि युचीनि च ।

पृष्टाः स्म गौतमाश्रमेन पृच्छामो गौतम मुनिम् ॥४५॥

इति समन्व्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ।

त तान्निवारयासास स्नेहबुद्ध्या मुनोन्मथक् ॥४६॥

कृताञ्जलिः सर्विनयमासाध्वमिह चैव हि ।

युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुंगवाः ॥४७॥

शुश्रूषां पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् ।

भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥

इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः ।

अतमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन विघ्नों के राजा श्री गणेश जी ने अपनी माताजी उमादेवी से इस प्रकार से कहकर फिर वह अपने भाई स्वन्द और जया के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर ब्रह्मसूत्र को धारण करने वाले तपस्वी गौतम थे ॥४३॥ उस गौतम ऋषि ने आश्रम में कुछ दिन पर्यन्त निवास करके वहाँ वहाँ पर विघ्नराट् ने सभी ब्राह्मणों से कहा था ॥४४॥ अब हम अपने परम पवित्र आश्रमों को गमन करते हैं और ये भी आश्रम पवित्र हैं तथा गौतम के अज्ञ से अत्यधिक पुष्ट हो गये हैं । अब हम गौतम मुनि से पूछकर गमन की आज्ञा प्राप्त करते हैं ॥४५॥ इस तरह से मन्त्रणा करके मुनियों में श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा था ॥४६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैं हाथ जोड़ने वाला हूँ और विनय पूर्वक निवेदन करता हूँ कि यह आपका यहाँ से गमन करना अनुचित है । हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं आप लोगों के चरणों की सेवा करता हूँ ॥४७॥ एक पुत्र की भांति सेवा करने की इच्छा वाले मेरे विद्यमान रहते हुए यह उचित नहीं है कि भूगिदेव आप सब मेरे इस आश्रम का त्याग कर किसी अन्य आश्रम में जाकर आश्रय ग्रहण करें ॥४८॥ मेरा ऐसा विचार है कि आप सब लोगों के लिये यही आश्रम परम पुण्यमय है । अतएव हे मुनिगणो ! अन्य आश्रम को यहाँ से आपको गमन नहीं करना चाहिए ॥४९॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्य विघ्नकृत्यमनुस्मरन् ।

उवाच प्राञ्जलिभूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

अन्नक्रीता वयं किं नो निवारयत गौतम ।

साम्ना नैव शक्ता गन्तु स्व स्व निवेशनम् ॥५१॥

नायमर्हति दण्ड वा उपकासी द्विजोत्तम ।

तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

तत सर्वं द्विजश्रेष्ठा क्रियतामित्यनुब्रूवन् ।

एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥

ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा नुरु ।

ब्राह्मणानां वचं श्रुत्वा मेने वाक्य गणाधिप ॥५४॥

क्रियते गुणरूप यद्गीतमस्य विशेषतः ॥५१॥
 अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुन पुनस्त्वारधी ।
 स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुन ॥
 मातुर्मते स्थितो विद्वान्प्राह गणेश्वर ॥५२॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वचन का श्रवण कर जो कि गौतम मुनि ने कहा था और बिष्णु ने कृत्य का स्मरण करते हुए गणाधिप ने हाथ जोड़ कर उन ब्राह्मणों से कहा था—॥५०॥ हम लोग अन्न के क्रय करने वाले हैं । यह गौतम यथो हम लोगों को निवारित करते हैं । हम साम के द्वारा ही अपने २ आश्रम को समन करने में समर्थ नहीं हैं ॥५१॥ यह परम उपकार करने वाले परम श्रेष्ठ द्विज गौतम दण्ड के योग्य नहीं हैं अतएव मैं अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करता हूँ अतएव आज सबको अनुमति दे देनी चाहिए ॥५२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर सभी द्विजश्रेष्ठों ने ‘करिषु’—यह कहा क्योंकि लोको के हित की कामना से यह इसके उपकार के लिये ही होगा ॥५३॥ जिस प्रकार से समस्त ब्राह्मणों का कल्याण होवे वैसे ही करिये । ब्राह्मणों के इस वचन का श्रवण करके गणाधिप ने इस वाक्य को मान लिया था ॥५४॥ विनायक ने कहा—गुणों के अनुरूप ही और विशेष रूप से गौतम के अनुरूप ही किया जाता है ॥५५॥ इस तरह से बारम्बार समस्त द्विजों की अनुमति ग्रहण करके उदार बुद्धि वाले गणेश्वर ने स्वयं ब्राह्मण बनकर तथा समस्त ब्राह्मणों को प्रणाम करके अपनी माताजी के मत में स्थित होकर विद्वान् गणेश जी ने जया शं कहा था ॥५६॥

ययानान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने ।
 गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
 शालीन्खाद विनाश्याथ विकार कुरु भामिनि ।
 कृते प्रहारे हुकारे प्रेक्षिते चापि किञ्चन ॥
 पत दीन कृत्वा न स्वप्न म्रियस्व न जीव च ॥५८॥

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता ।

यथाऽऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५६

जगाम शालीन्खादन्ती ता ददर्श स गौतमः ।

गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत् ॥५७

निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः ।

तस्यां तु पतित्तायां च हाहाकारो महानभूत् ॥५८

स्वनं श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् ।

व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः ॥५९

विनायक ने कहा—हे शुभ मुस्र वाली ! जिस तरह से अन्य कोई भी न जान सके वैसे ही करो । जिस स्थान पर गौतम विद्यमान हैं वहाँ पर तुम गो रूप के धारण करने वाली होकर गमन करो ॥५७॥ इसके अनन्तर हे भगिनि ! तुम बालियों को खाओ और विनास करके विकार उत्पन्न करो । कुछ भी प्रहार-हुच्छार और देखने पर तुम यही पर दीनता से पूर्ण ध्वनि करके गिर जाना और ऐसी अपनी अवस्था बना लेना कि न तो मरण ही हो और न जीवित रहो ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् विघ्नेश्वर के मत में स्थित रहने वाली विजया ने उसी भाँति से यह सभी कुछ किया था । जहाँ पर विप्र गौतम रहा करते थे वहीं पर विजया ने गमन किया था और बालियों को खाती हुई उस गौ का स्वरूप धारण करने वाली उसकी गौतम ने देखा था । उस विकृत रूप वाली गौ की देखकर उस विप्र गौतम ने उसकी तृण से निवारित किया था ॥५६-६०॥ उसके द्वारा निवारित होती हुई उस गौ के रूप धारण करने वाली ने वहीं पर ध्वनि करके पतन किया था अर्थात् वह गिर पड़ी थी । उस समय पर उसके मुँछित सी होकर गिर जाने पर महान् हाहाकार हो गया था ॥६१॥ उस गौ की उस ध्वनि का श्रवण कर तथा गौतम के उस विशेष वृत्त्य को देखकर विघ्नेश्वर को अपने आगे पड़ते हुए सब ब्राह्मण बहुत ही अधिक व्यथित हुए और बोले—॥६२॥

इतो गच्छामहे सर्वे न स्यात्तव्यं तवाऽऽश्रमे ।

पुत्रवत्सोपिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विप्राणां गच्छतां तदा ।
 ब्रज्याहृत इषाऽऽसोत्स विप्राणां पुरतोऽपतत् ॥६४॥
 तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्येमां पतितां भुवि ।
 रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनीं प्रियाम् ॥६५॥
 तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्वलात् ।
 पतितायां मुनिश्चेष्ट गन्तव्यमवशिष्यते ॥६६॥
 चीर्णं व्रतं दायं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे ।
 वयं नान्यथना ब्रह्मन्केवलं तु तपोधनाः ॥६७॥
 विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः ॥६८॥
 भवन्त एव क्षरणं पूतं मां कर्तुमर्हथ ॥६९॥
 सतः प्रोवाच भगवान्विष्णुराङ्वाहार्णवृत्तः ॥७०॥
 नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् ।
 चदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृति गतिमेव वा ॥७१॥

प्राह्मणो ने कहा—हे मुनिमो मे ध्येष्ट ! अब हम सब यहाँ से जाना चाहते हैं और आपके इस आश्रम मे हमको नहीं ठहरना चाहिए । अपने एक पुत्र की भाँति ही हम सबको पोषित किया है अतएव हम आपसे पूछते हैं ॥६४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस अवसर पर उस गौतम मुनि ने जब गमन करते हुए मुनियों का यह वचन सुना था तो वह वचन से आहत हुए के समान ही अत्यन्त दुःखित होकर उन सबके आगे गिर गया था ॥६४॥ उस समय मे सभी ब्राह्मण उस मुनि से बोले—इस रूद्रो की माता देवी और जगतो की पवित्र करने वाली प्रिया को भूमि मे पतित हुई देखो ॥६५॥ तीर्थ और देव स्वरूप वाली इस गो के विधि बल से पिर जाने पर हे मुनिश्चेष्ट ! अब तो हमारा गमन ही करना अवशेष रहा जाता है क्योंकि यहाँ रहना ठीक नहीं है ॥६६॥ हम लोगो ने जो कुछ भी व्रत चीर्ण किया है वह सभी क्षीणता को प्राप्त हो जाता है जब कि आपके इस आश्रम मे निवास करते हैं । हे ब्रह्मन् ! हम लोगो के समीप में अन्य तो कोई धन का वैभव है ही नहीं—हम तो केवल अपने सन्निहित किये हुए तप के ही वैभव वासे हैं ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—

उस समय में उन समस्त विप्रों के आगे परम विनयान्वित होकर गौतम ने प्रायना पूर्वक कहा था ॥६८॥ गौतम ने कहा—अब आप लोग ही मेरे रक्षक हैं और आप मुझको पवित्र करने के योग्य होते हैं ॥६९॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर जब कि गौतम ने ऐसी प्रायना की थी तो ब्राह्मणों से आवृत ब्राह्मण रूपधारी विघ्नराज ने कहा था—॥७०॥ श्री भगवान् विघ्नराज बोले—यह भी न तो मर रही है और न जीवित ही हो रही है तो इस प्रकार के सन्देह में युक्त इस विषय में हम लोग क्या इसकी निष्कृति और गति बतावायें अर्थात् ऐसी दशा में इसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं बताया जा सकता है ॥७१॥

कथमुत्थास्यतीय गौरथ चास्मिश्च निष्कृतिम् ।

वक्तुमर्ह्य तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम् ॥७२॥

सर्वेषां च मतेनाय यदिष्यति च बुद्धिमान् ।

एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३॥

ब्राह्मणं प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन वलीयसा ।

विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वच ॥७४॥

सर्वेषां च मतेनाह यदिष्यामि यथार्थवत् ।

अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च ॥७५॥

महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।

कमण्डलुस्थितवारि तिष्ठतीति हि श्रुत्वा ॥७६॥

तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च

तेनाभिपिञ्च गामेता भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥

ततो वत्स्यामहे सर्वे पूषवत्तव वेश्मनि ॥७७॥

गौतम मुनि ने कहा—अब यह भी किस प्रकार से उठ कर लड़ी होगी और जो कुछ भी बन पड़ा है उसका क्या प्रायश्चित्त होगा—इस सब को आप लोग बताइये—मैं निश्चय ही वह सभी करूँगा ॥७२॥ ब्राह्मणों ने कहा—हे गौतम ! हम सबकी राय से यह ब्राह्मण इस विषय में यतनायेगे नयोंकि यह बहुत ही अधिप बुद्धिमान् है। इनका यचन हम सबको प्रमाण स्वरूप ही होता है और आपकी भी होता

चाहिए । इस प्रकार का सकेत विप्र रूपधारी विष्णुराज की ओर उस समय मे रात्र ने किया था ॥७३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे समस्त ब्राह्मणों के द्वारा तया वसीमान् गौतम के द्वारा जब बहुत ही अधिक प्रेरित किया गया था तो यह ब्राह्मण वेपधारी विष्णुराज सब से यह वचन बोले थे ॥७४॥ विष्णुराज न कहा—आप सबकी सलाह से ही मैं बिल्कुल यथाथं बात बतलाता हूँ । आप सब मुनिगण और यह गौतम भी मेरे वचन को मान लें ॥७५॥ महेश्वर प्रभु के जटा-जूट मे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के कमण्डलु मे जो स्थित था वह इस समय मे स्थित है—ऐसा सुनने हैं ॥७६॥ उस जल को बड़ी शीघ्रता से तपीबल से और नियत से साइये । उस जल से इस गी पा अभिषिञ्चन करो जो कि हे भगवन् । इस समय मे भूमि मे एक सूर्योदय दशा मे पड़ी हुई है । सभी हम सब भी पूर्व के ही समान आपके इस आश्रम मे निवास करेंगे अन्यथा नहीं रहेंगे ॥७७॥

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च ससदि ।

तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत ॥

ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादतः ।

भवता च प्रसादेन मत्सकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिषु गवम् ।

स्वानि स्थानानि ते जग्मु समृद्धान्यन्नवारिभिः ॥८०॥

यातेषु तेषु विप्रेषु आया सह गणेश्वरः ।

जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥

गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा ।

गौतमोऽपि मुनिष्वेष्टस्तपसा हतकल्मषः ॥८२॥

ध्यापस्तदयं स मुनिः किमिदं मम सस्थितम् ।

इत्येव बहुशो ध्यायन्ज्ञानेन ज्ञातवान्निद्वज ॥८३॥

निश्चित्य देवकार्यार्यमात्मनः कित्वापां गतिम् ।

लोकानामुपकारं च क्षमो प्रीणनमेव च ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ब्राह्मणों की सभा में उस विप्रेन्द्र के द्वारा ऐसा कहने पर उसी समय मे आकाश से पुण्यो की वर्षा हुई थी और जयकार की ध्वनि भी हुई थी । इसके उपरान्त हाथ जोड़ते हुए गौतम मुनि ने अत्यन्त विनम्र होकर यह वाक्य कहा था ॥७८॥ गौतम ने कहा—तप से अग्नि देव के प्रसाद से-देवों तथा ब्रह्मा की कृपा से और आप सब लोगों के प्रसाद से मेरा यह सत्य सङ्कल्प सिद्ध हो जावे ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय मे उन समस्त ब्राह्मणों ने उस मुनियों मे श्रेष्ठ गौतम से कहा था—ऐसा ही होता अर्थात् आपका मनोरथ सफल हो जायगा । वे फिर सब विप्रगण अन्न जल में समुद्र होकर अपने आश्रमों को चले गये थे ॥८०॥ उन समस्त विप्रों के चले जाने पर गणेश्वर प्रभु अपने भाई के साथ तथा जया के सहित अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कृत कृत्य होकर वहाँ से वापिस लौट आये थे ॥८१॥ उन विप्र वृन्दों के और गणेश के वहाँ से चले जाने पर मुनियों मे परम श्रेष्ठ गौतम भी तप से क्षीण वरुणों वाले हुए ॥८२॥ उस गौतम मुनि ने उसके विषय मे ध्यान करते हुए विचार किया था कि यह मुझे क्या परिस्थिति प्राप्त हो गयी है और अब कैसे तथा क्या करना चाहिए । इस प्रकार से बहुत ही अधिक सोचने पर हे द्विज नारद ! ध्यान करते हुए ज्ञान के द्वारा उस गौतम ने यह जाना था ॥८३॥ यह देवों का काम है और अपनी भी परम पूर्ण गति का निवारण इसमे होता है तथा सभी लोगों का इससे महान् उपकार होता है, अतएव भगवान् शम्भु का प्रसन्न करना ही इमका एक मात्र समुचित साधन होता है ॥८४॥

उभाया प्रीणन चापि गङ्गानयनमेव च ।

सर्व श्रेयस्कर मन्ये मयि नैव च विल्विपम् ॥८५॥

इत्येव मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्विजात्तम ।

आराध्य जगतामीक्ष त्रिनेत्र वृषभध्वजम् ॥८६॥

आनयिष्ये सरिच्छ्रष्टा प्रीतास्तु गिरिजा मम ।

सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७॥

एव हि सवलप्य मुनिप्रवीरः,

स गौतमा ब्रह्मगिरेर्जंगम ।

कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना,

सुराचित प्रियया ब्रह्मवृन्दैः ॥८८

इससे उमादेवी को प्रसन्नता होगी तथा गङ्गा का आनयन भी हो जायगा । यह सभी परम कल्याण कारक कार्य होगा और इससे मुक्त में भी कोई पाप दोष न होगा—ऐसा मैं मानता हूँ ॥८५॥ इस तरह से वह द्विजों में उत्तम गौतम मन में ध्यान करते हुए बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे कि मैं भिलोचन वृषभ की ध्वजा वाले जगतों के स्वामी भगवान् शम्भु की समाराधना करके उस सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को यहाँ से आऊँगा तथा गिरिजा देवी भी मुक्त पर अत्यन्त प्रसन्न होगी क्योंकि यह गङ्गा महेश्वर प्रभु की जटाजूट में स्थित होकर उमादेवी की सपत्नी बनी हुई हैं ॥८६-८७॥ इस प्रकार से उस मुनियों में प्रकृष्ट और गौतम ने अपने मन में दृढ सकल्प किया था और वह फिर उग्र धनुष वाले शम्भु के द्वारा जो कि अपनी प्रिया एव ब्राह्मणों के वृन्द से युक्त तथा सुरों के द्वारा समर्चित होते हुए ब्रह्मगिरि के कैलास पर समवस्थित थे वही पर वह गौतम भी चले गये थे ॥८८॥



३५—गीतमकृतमुमामहेश्वरस्तवन

कैलाशशिखरं गत्वा गौतमो भगवानृषिः ।

किं चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

गिरिं गत्वा ततो वत्स वाच सयम्य गौतमः ।

आस्तीर्य च कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥

उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्र चेद ततो जगौ ।

अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे ॥३॥

भोगार्थिना भोगमभीप्सितं च, दातु महान्त्यष्टवृषिं घत्ते ।

सोमो जनानां गुणवन्तिनित्य, देव महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥

फलं स्वकीयं विषयैः सुखानि, भवतु समस्त सचराचर च ।

सपत्तये ह्यस्य विवृद्धये च, महोमय रूपमितीश्वरस्य ॥५॥

सृष्टेः स्थितेः सहरणाय भूमेराधारमाधातुमपा स्वरूपम् ।

भेजे शिवः शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम् ॥६॥

कालव्यवस्थाममृतस्रव च, जीवस्यति सृष्टिमथो विनाशनम् ।

मुद प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रोऽकंचन्द्राग्निमय शरीरम् ॥७॥

श्री नारदजी ने कहा—भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास के शिखर पर पहुँच कर क्या किया था ? क्या कोई वहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी अथवा कौन सी उत्तम स्तुति की थी ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे वरुण ! फिर उस कैलास पर जाकर उस गौतम ने अपनी धाणी का सर्व प्रथम समय बियाँ बाँधी । फिर उस पर्यंतो मे परम श्रेष्ठ कैलास पर उस परम प्राज्ञ गौतम ने बुझाओ को फैला दिया था । उस स्थल पर वह उपविष्ट हो गये थे और वसिष्ठ होकर उन्होंने इन नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र का गान किया था । इस प्रकार ने महेश्वर प्रभु की स्तुति करने पर नभोमण्डल से पुष्पों की वृष्टि हुई थी ॥२-३॥ गौतम ने इस प्रकार से महेश्वर की स्तुति करते हुए कहा था—गौतम सोने—हे भगवान् ! आप भोगों के अभिलाषा रखने वाले अपने भतीजी को उनका अभीष्ट भोग प्रदान करने के लिये महान् आठ ऋषियों की पारण किया करते हैं । आप उमादेवी के सहित अपने जनो के लिये ही तप्य उन गुणों से युक्त आठ शरीरों की पारण करते हैं । सभी उनका देव-महान् देव हैं—ऐसा स्तव्य किया करते हैं ॥४॥ आप अपने विषयों के द्वारा गुणों का संवर्धन करने के लिये तथा इन सम्पूर्ण परापर विश्व का भरण करने के लिये और इन विश्व की सम्पत्ति

एव विशेष वृद्धि के लिये ईश्वर आपका यह महीमय ही स्वरूप है ॥५॥
 शिष्य प्रभु सृजन-स्थिति-और सहार के लिये तथा भूमि के आधार को
 रखने के वास्ते आप जल के स्वरूप को धारण किया करते हैं । तान्त्र-
 स्वरूप घाले भगवाण् शिव अपने भक्तजनों के सुख तथा धर्म के लिये
 ही इस जगत् में प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥६॥ इस बात की व्यवस्था
 को-अमृत के लक्षण को-जीवों की स्थिति-सृष्टि और विनाश-प्रजाओं
 का आनन्द-सुख और उन्नति को आपका चन्द्राग्निमय शरीर किया
 करता है ॥७॥

वृद्धि गति शक्तिमयाक्षराणि, जीवव्यवस्था मुदमप्यनेकाम् ।
 स्रष्टु कृत वायुरितीशरूप, त्व वेत्ति नून भगवन्भवन्तम् ॥८॥
 भेदं विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यद्विशोऽन्तरिक्षम् ।
 द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्नवेश ॥९॥
 धर्म व्यवस्थापयितु व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखाः ।
 लोके च गाथा स्मृतय पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति ॥१०॥
 यथा क्रतुर्यान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकालाः ।
 त्वमेव श भो परमार्थतत्त्व, वदन्ति यज्ञाङ्गमय धपुस्ते ॥११॥
 कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रदान, सर्वज्ञसाक्षी पुरुषः परश्च ।
 प्रत्यात्मभूत, परमार्थरूप, स्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासं ॥१२॥
 न वेदशास्त्रं गुं रुभि प्रदिष्टो, न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रघृष्यः ।
 भजोऽप्रमेय, शिवशब्दावाच्यस्त्वमस्ति सत्यं भगवन्नमस्ते ॥१३॥
 आत्मकता स्वप्रकृति कदाचिदंक्षच्छिव, सपदिय ममेति ।
 पृथक्तदं वाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविद्वमूर्ति ॥१४॥

वृद्धि-गति शक्ति-अक्षर और अनेक प्रकार का आनन्द तथा जीवों
 की व्यवस्था का सृजन करने के लिये ही ईश का वायु स्वरूप होना
 है । हे भगवन् ! आप निश्चय ही अपने आपको जानते हैं अर्थात् अपने
 आपका ज्ञान आपको ही होता है अन्य को नहीं है ॥८॥ भेदों के बिना
 न कोई वृत्ति (यत्न) है और न धर्म ही होता है । अन्य कोई आत्मीय

नहीं है—न दिखाएँ हैं और न अन्तरिख ही है । ये सावा पृथिवी भी नहीं है और न भुक्ति है तथा न मोक्ष है । इसीलिये हे ईश ! आपका यह व्योम रूपी वपु होता है ॥६॥ धर्म की व्यवस्था करने के ही लिये पृथक् ऋग्वेद-यजुर्वेद की शाखाएँ-सामवेद शास्त्र और लोक में गाथा-स्मृतियाँ पुराण इत्यादि शब्द शास्त्रों के समुदाय के स्वरूप को आप ही स्वयं प्राप्त हुआ करते हैं ॥१०॥ यजन करने वाला यज्ञ-यजन के समस्त साधन-ऋत्विक् जन-यजन का स्थल-फल देश और काल ये सभी कुछ हे शम्भो ! आप ही हैं अर्थात् आपके ही विभिन्न रूप हैं । परमार्थ तत्त्व आपको ही कहते हैं । यह यज्ञाङ्गमय आपका ही एक स्वरूप होता है ॥११॥ कर्म करने वाला-प्रदान करने वाला-प्रतिभू प्रदान-सब कुछ का ज्ञाता सबको देखने वाला पर पुरुष प्रत्येक आत्मा के रूप में रहने वाले और परमार्थ भूत सभी कुछ आप ही का रूप है जो भिन्नतया दिखाई दिया करता है । विशेष वाणी के विलासों से क्या लाभ है अर्थात् आपके विषय में कुछ अधिक कहना व्यर्थ है ॥१२॥ आप देवों और शास्त्रों के द्वारा तथा गुरुओं के द्वारा प्रविष्ट नहीं हो सकते हैं । बुद्धि आदि के द्वारा भी आप प्रघर्षण करने के योग्य नहीं हैं । आप अजन्मा हैं—प्रमा के द्वारा जानने के योग्य नहीं हैं । आप “शिव”—इस शब्द के द्वारा कहने के योग्य होते हैं । आप सत्य स्वरूप वाले हैं । हे भगवद् ! आपको मेरा साधर नमस्कार है ॥१३॥ अपनी आत्मा की स्वकीय प्रकृति को किसी समय में भगवान् शिव ने यह इच्छा की थी कि यह सब मेरी ही सम्पत्ति है उसी समय में तर्कना न करने के योग्य और अचिन्तनीय प्रभाव वाले बहुविश्वभूति पृथक् हो गये थे ॥१४॥

भावेऽभिवृद्धा च भवे भवे च,

स्वकारण कारणमास्थिता च ।

नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा वा,

विलक्षणा विदवकरस्य शक्ति ॥१५॥

उत्पादन सस्थितिरन्नवृद्धि-

लयासता यत्र सनातनास्ते ।

एकं व मूर्तिनं समस्ति किञ्चिद-
 साध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६
 यदर्थमन्नानि घनानि जीवा,
 यच्छन्ति कुर्वन्ति तपासि धर्मान् ।
 साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री,
 प्रिया तु सोमस्य महासुकीर्तिः ॥१७
 यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि,
 यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।
 या व्याप्य विश्व विमलीकरोति,
 सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८
 ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य,
 द्रुद्ध्यक्षि चेतन्यमनः सुखानि ।
 यस्याः प्रसादात्फलवन्नि नित्यं,
 वागीश्वरी लोकगुरोः सुरम्या ॥१९
 षतुर्मुखस्यापि मनो मलीन,
 किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
 गङ्गाऽवतारं विविधैरुपायैः,
 सर्वं जगत्पावयितुं चकार ॥२०
 श्रुतीः समालक्ष्य हरप्रभुत्वं,
 विश्वस्य लोकः सकलैः प्रमाणैः ।
 कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगान्-
 विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१

भाव मे अभिवृद्ध और भव-भव में अपने कारण स्वरूप कारण मे समास्थित-नित्या-समस्त मुलक्षणो वाली तथा विलक्षण विद्व के करने वाले की शक्ति ही शिवा है । अर्थात् शिव की शक्ति ही गौरी वा स्वरूप धारण करने वाली उमा है उनसे भिन्न नहीं है ॥१५॥ उत्पा-
 दन-संस्थिति-अन्न की वृद्धि-सय और सत्ता का जहाँ पर आपने सना-
 तन है वे सभी एक ही मूर्ति हैं और कुछ भी नहीं है जो इसकी व्याप्य

है । वह हर ही दयिता है ॥१६॥ जिसने लिये जीव अन और धनो को दिया करत हैं और धर्मों को तथा तपा को निया करत हैं वह भी यह जगदम्बा इस जगत् के जनन करने वाली है और यह भी सुवीरिणी वाली सोम की प्रिया है ॥१७॥ जिसकी कृपा दृष्टि की इन्द्र भी अभिलाषा रखता है और जिसके परम पावन नाम के स्मरण एव उच्चारण से मङ्गल की प्राप्ति किया करता है । जो इस सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके उसको विमल किया करती है वह सोम के ही सदा समान स्वरूप वाली सोमा है ॥१८॥ ब्रह्मा से आदि लेकर चराचर जीवों के बुद्धि-नेत्र-चैतन्य और मन के मुख जिसके प्रसाद से ही नित्य पल वाले हुआ करते हैं वह लोको के गुरु भगवान् शिव परम सुरम्य वागीश्वरी हैं ॥१९॥ षष्ठ्युर्ग (ब्रह्मा) का भी मन मलिन रहता है । दूसरे जन्तु की यात ही पया है यही विचार करके माता ने इस सब जगत् को पावन करने के लिये अनकउरायो के द्वारा गङ्गा का अवतरण दिया था ॥२०॥ यूनियों को विश्व के हर-प्रभुत्व का अवलोकन कर लोक समस्त प्रमाणों से धर्मों को करके भोगों का उपभोग दिया करता था— यह सदा शिव भगवान् की विभूति है ॥२१॥

कार्यक्रियाकारकसाधनाना,
वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं त्रियं च,
प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुं ॥२२॥
ध्यत्वा वरं ब्रह्म परं प्रधानं,
यत्सारभूतं यदुपासितव्यम् ।
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति,
सद्योगिनो मुक्तिरुमापति स ॥२३॥
यथा यथा शंभुरमेयमाया-
रूपाणि घटते जगतो हिताय ।
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से,
पतिव्रतात्वं त्वयि भातरेवम् ॥२४॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरास्ताद्वृषभध्वजः ।

उमया सहितः श्रीमान्गणेशदिगणवृत्तः ॥२५॥

साक्षादागत्य त श भुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

किं ते गौतम वास्यामि भक्तिस्तोत्रं व्रतैः शुभैः ।

परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

वेदों के द्वारा वर्णित तथा मौकिक कार्य-क्रिया-कारक और साधनों का जो सबसे उत्कृष्टतम और प्रियसाध्य है वह उसी अनादि कर्त्ता की ही सिद्धि बतायी गयी है ॥२२॥ परम थोड़ा और सब प्रमुख ब्रह्म का ध्यान करके जो भी सारभूत है और जो उपासना करने के योग्य है—जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाने वाले फिर प्राणी जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं और सद्योगियों की मुक्ति है वह उमा के ही पति वैव है ॥२३॥ जैसे-जैसे भगवान् शम्भु इस जगत् के हित के लिये अनेक माया के रूपों को धारण किया करते हैं उसी-उस योग के योग्य उसी प्रकार के जगदम्बा भी आपके विषय में पतिव्रतास्व की धारण किया करती हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से स्तवन करने वाले उस गौतम मुनि के सामने उमादेवी के सहित गणेश आदि से युक्त श्रीमान् वृषभध्वज भगवान् शम्भु साक्षात् उपस्थित होकर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उस गौतम से यह वाक्य बोले—॥२५-२६॥ भगवान् शिव ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारे भक्तिभाव से समन्वित परम शुभ स्तोत्रों से मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ । मैं तुमको क्या दूँ ? तुम जो देवगणों को प्राप्त होना बहुत कठिन हो उसको मुझ से प्राप्त कर लो ॥२७॥

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं शक्यविशारदः ।

हर्षवाष्पपरीताङ्गो गौतमः पर्यचिन्तयत् ॥२८॥

अहो दंभमहा घमो ह्यहो व द्रिप्रपूजनम् ।

अहो लोकगतिश्चित्रा अहो घातर्नमोऽस्तु ते ॥२९॥

जटास्थितां शुभा गङ्गा देहि मे त्रिदशार्चित ।

यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचित त्वया ।
 आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१॥
 स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वा च देवो स्तुवन्ति वं ।
 सर्वकामसमृद्धा स्युरेतद्धि वरयाम्यहम् ॥३२॥
 एवमस्त्विति देवेश परितुष्टोऽब्रवीद्वच ।
 अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३॥
 एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतम प्राह शकरम् ॥३४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन जगत्सृष्टि भगवान् शम्भु के इस परम सुरम्य वचन का श्रवण करके हृषातिरेक से निवृत्त हुए अशुभो स भीगे हुए अङ्गो बाले तथा पचना के कहने से बड़े पण्डित गौतम मुनि ने विचार किया था ॥३२॥ अहो ! देव अर्थात् देव के विषय में कौंसा आश्चर्य है । ओहो ! यह धर्म कितना अद्भुत है और विप्रा के पूजन का कौंसा विलक्षण प्रभाव होता है । ओहो ! यह लोका की गति कौंसी अद्भुत है । हे धाता ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम सादर समर्पित है ॥३६॥ गौतम मुनि ने कहा—हे देवो के द्वारा अभ्याचित ! हे देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में स्थित गङ्गा को जो शुभ है मुझे प्रदान कर दीजिए । हे त्रयोधाम ! अर्थात् वेदों के द्वारा प्राप्त होने वाले धाम ! आपने लिये भरा नमस्कार है ॥३०॥ ईश्वर ने कहा—यह जो गङ्गा की याचना तुमने की है यह तो तीनों लोकों के उपकार के ही नियम की है अब अपने आपकी भलाई के लिये भी सबथा निठर होंकर मुझ से कुछ याचना करो ॥३१॥ गौतम मुनि ने कहा—इस स्तोत्र से जिसने द्वारा मैं आपका स्तवन किया है उससे भक्त गण आपकी ओर देखी जगत्सृष्टा की स्तुति करत हैं वे अपनी सम्पूर्ण कामनाओं से समृद्ध हो जावे—यह मैं आप से वरदान चाहता हूँ ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम पण्डित देवेश्वर ने यह वचन कहा—एसा ही होगा अर्थात् जो तुमने वरदान माँगा है वह पूरा होगा । हे गौतम ! इन अतिरिक्त और जो वरदातों की तुम विना प्यर होकर याचना करा ॥३३॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु द्वारा

जब गीतम मुनि से कहा गया था तो वह बहुत प्रसन्नता से शकर भगवान् से बोले—॥३४॥

इमा देवी जटासस्या पावनी लोकपावनीम् ।
 तव प्रिया जगन्नाथ उत्तृज ब्रह्माणो गिरौ ॥३५॥
 सर्वासा तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् ।
 ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६॥
 स्नानमात्रेण सर्वाणि विलय यान्तु शकर ।
 चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विपुषे तथा ॥३७॥
 सक्रान्ती वैधृती पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् ।
 अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥३८॥
 श्लाघ्य वृत्ते तपः प्रोक्त नेताया यज्ञकर्म च ।
 द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ॥३९॥
 युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च ।
 देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र नश्यते ॥४०॥
 यदन्यत्र कृत पुण्य स्नानदानादिसयमे ।
 अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥४१॥
 यत्र यत्र त्वय याति यावत्सागरगामिनी ।
 तत्र तत्र त्वया भाव्यमेव चास्तु करो वर ॥४२॥

गीतम मुनि ने कहा—आपकी जटाओं में समवस्थित स्वयं परम पवित्र और सब लोको को पावन करने वाली आपकी परम प्रिया गङ्गा की है जगन्नाथ । ब्रह्माजी के गिरि पर छोड़ दीजिए ॥३५॥ यह समस्त सरिताओं की भी तीर्थभूता है और जब तक यह सागर में जायगी तब तक ब्रह्मा हत्या प्रभृति गहान् वायो को और मन वाणी तथा दारो से बिये जाने वाले सब पाप है शङ्कर ! इसके स्नान मात्र से ही बिलीन हो जाया करे । चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के समय में-अयन में-विपुष के अवसर पर- सक्रान्ति में-वैधृति में तथा अन्य पुण्य तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है दे हर ! इस गङ्गादेवी के वैयत स्मरण मात्र में ही यह पुण्य-फल प्राप्त हो जाना चाहिए ॥३६-३८॥ वृत्त युग

३६—स्वर्गादीपंचदशाकृत्यागङ्गायागमन

महेश्वरजटाजूटादगङ्गामादाय गौतमः ।

आगत्य ब्रह्माणः पुण्ये ततः किमकिरोद्गिरी ॥१॥

आदाय गौतमी गङ्गा शुचिः प्रयतमानसः ।

पूजितो देवगन्धर्वैस्तथा गिरिनिवासिभिः ॥२॥

गिरेर्मूर्ध्नि जटां स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम् ।

उवाच प्राञ्जलिभूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तमः ॥३॥

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकानप्रदायिनि ।

क्षमस्व मातः शान्ताऽसि सुखं याहि हितं कुरु ॥४॥

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् ।

दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्रगनुलेपना ॥५॥

गच्छेय देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् ।

रसातलं वा गच्छेय जातस्त्वं सत्यवागसि ॥६॥

ध्याणामुपकारार्थं लोकानां याचिता नया ।

शम्भुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवेत् ॥७॥

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—गौतम ने महेश्वर की जटा-जूट से गङ्गा को लाकर ब्रह्माजी के पुण्य गिरि में समागत होकर इसके उप-रान्त वही पर क्या किया था ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि गङ्गा को लाकर परम शुचि और प्रयत मन वाला हो गया था और वही पर उस पर्वत के निवासी देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह पूजित हुआ था ॥२॥ फिर उस गौतम ने उस पर्वत के शिखर पर जय को स्थापित करके त्रिलोचन देव का स्मरण करते हुए हाथ जोड़ कर वह द्विज श्री गङ्गा से बोला—॥३॥ गौतम मुनि ने कहा—हे माता ! आप तो भगवान् त्रिलोचन देव की जटा से समुद्भूत हुई हैं और सभी मनोरथों को प्रदान करने वाली हैं । आप तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं मुझे क्षमा करिए । अब आप सुख पूर्वक गमन करिए तथा सबका

हित करिए ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से गौतम मुनि के द्वारा कही गयी गङ्गा ने फिर गौतम से कहा था जो गङ्गा उस समय मे परमाधिक दिव्य रूप के धारण करने वाली तथा दिव्य माला एवं अनुलेपन से युक्त देवी थी ॥५॥ श्री गङ्गा देवी ने कहा—मैं भव देवों के सदन स्वर्ग में जाऊँगी अथवा परमेष्ठी के कमण्डलु में पुनः प्राप्त हो जाऊँगी या रसातल को चली जाऊँगी । तुम तो सत्य वाणी वाले हो ही गये हो । तात्पर्य यह है कि तुमने मेरे लाने की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई है ॥६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैंने जो भगवान् शम्भु से आपके प्राप्त करने की याचना की थी वह याचना तीनो लोकों की भलाई के ही लिये की थी । भगवान् शम्भु ने भी उसी मेरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपको मुझे दिया है । हे देवि ! वह वचन अन्यथा नहीं होना चाहिए ॥७॥

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम् ।

नेधाऽऽत्मान विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले ।

स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले ।

रसातले चतुर्धैव सैव पञ्चदशाकृतिः ॥६॥

सर्वं सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी ।

सर्वकामप्रदा नित्य सैव वेदे प्रगीयते ॥१०॥

मर्त्या मर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तल गताम् ।

नैव स्यर्गंगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥११॥

यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता ।

उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रायात्पूर्वाणिव प्रति ॥१२॥

ततो देवर्षिभिर्जुष्टा मातर जगत शुभाम् ।

गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१३॥

त्रिलोचन सुरेशान प्रथम पूज्य गौतमः ।

उभयोस्तीरयोः स्नान करोमीति दधे मतिम् ॥१४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस गौतम के विनम्र वचन को सुन कर उस द्विज के द्वारा वक्षित वचन को गङ्गा ने स्वीकार कर लिया था ।

इमने अनन्तर स्वर्ग-पाताल और मनुष्य लोक में अपने स्वरूप को तीन भागों में उस देवी ने विभाजित किया था । ८। स्वर्ग में भी उसने पुनः चार भाग किये थे । मर्त्यलोक में अपने स्वरूप को सात भागों में विभाजित किया था और रसानल में भी चार भागों में अपना स्वरूप विभक्त किया था । इस प्रकार से वह पद्मह आकृतियों वाली हो गई थी ॥६॥ यह सर्वत्र सर्व भूता और समस्त पापों के विनाश कर देने वाली है । सब कामनाओं का पूर्ण करने वाली नित्य ही वही वेदों में गायी जाया करती है ॥१०॥ अज्ञान से पूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य उसकी इस मनुष्य लोक ही में रहने वाली देखते हैं । वे उसकी रसातल में गमन करने वाली और स्वर्ग लोक में गई हुई नहीं देखते हैं ॥११॥ जब तब वह देवी सागर में गमन करने वाली थी तब तक वह देवमयी कही गयी है । गौतम मुनि के द्वारा उत्सृष्ट हुई वह पूर्वाण्व के प्रति गमन कर गयी थी ॥१२॥ इसके पश्चात् मुनियों ने शार्ङ्ग के समान गौतम ने उस जगत् की परम शुभा-वैष्णवियों के द्वारा सेवित माता की प्रदक्षिणा की थी ॥१३॥ मौक्तन मुनि ने सर्व प्रथम सुरेशान त्रिलोचन की पूजा की थी और फिर उसने मन में ऐसा विचार किया था कि मैं दोनों तटों पर स्नान करूँगा ॥१४॥

स्मृतमाग्रस्तदा तत्राऽऽबिरासीत्कर्णार्णवः ।

तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येव शर्वमवबोत् ॥१५॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनः त्रिलोचनम् ॥१६॥

देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम ।

ब्रूहि सम्पद्महेशान लोकानां हिकाम्यया ॥१७॥

महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम् ।

पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८॥

आहमण्यभोजयित्वा च तेषामार्ज्यां प्रगृह्य च ।

ग्रहमचयेण गच्छन्ति पतितालापवर्जिता ॥१९॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम् ।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमनुते ॥२०॥

भावदुष्टि परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः ।

श्रान्तसबाहन कुर्वन्दद्यादन्न यथोचितम् ॥२१॥

अकिञ्चनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान् ।

शृण्वन्हरिकथा दिव्या तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥

अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफल लभेत् ॥२२॥

उस अवसर पर वहाँ पर स्मरण भाव करने से बहणा के सागर भगवान् शिव तुरन्त प्रकट हो गये थे उस समय में वहाँ पर स्नान किस प्रकार से सिद्ध होगा—यह इस प्रकार से शम्भु से पूछा था ॥१५॥ अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भक्ति की भावना से अत्यन्त विनम्र होकर भगवान् त्रिलोचन से कहा था ॥१६॥ गौतम ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महेशान ! समस्त लोको के हित की कामना से मुझे तीर्थों के स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा— हे महर्षे ! अब गोदावरी में होने वाली सम्पूर्ण विधि का श्रुति से श्रवण करो । सर्व प्रथम नान्दोमुख श्राद्ध करना चाहिए और फिर देह की शुद्धि करे ॥१८॥ ब्राह्मणों को भोजन करा कर उनकी आज्ञा को ग्रहण करना चाहिए । पतित प्राणियों के साथ वार्त्तालाप न करने वाले होकर ब्रह्मचर्या व्रत के साथ गमन किया करते हैं ॥१९॥ जिसके हाथ पैर और मन सुसज्ज होते हैं तथा विद्या-तप एव जितनी कीर्ति होती है वही पुरुष तीर्थ के पुण्य-फल का भागी हुआ करता है ॥२०॥ भावों के दोषों का परित्याग करके अपने धर्म में परिनिष्ठित रहे और श्रान्तों का सेवाहन करने हुए यथोचित अन्न देना चाहिए ॥२१॥ जो अकिञ्चा हो अर्थात् जिनके पास कुछ भी वस्त्रादि के साधन न हो उन साधु पुरुषों को वस्त्र और कम्बल भी देने चाहिए । फिर गङ्गा से समुपपन्न होने वाली श्री हरि की दिव्य कथा का श्रवण करते तीर्थ में इस उपयुक्त विधि से गमन करें तो भली भाँति वह मनुष्य तीर्थ का पुण्य-फल प्राप्त कर सकेगा ॥२२॥

३७—गौतमीमहत्त्ववर्णन

अपम्बकश्च इति प्राह गौतम मुनिभिवृत्तम् ॥१॥

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि समविष्यन्ति गौतम ।

सर्वनाह सनिहित. सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसगमे ।

एतेषु पुण्यदा पुंसा मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥

नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्ठके ।

यमुना सगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥

कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद ।

तिसृणा सगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम् ॥५॥

पयोष्णी सगता यत्र तत्रया तच्च मुक्तिदम् ।

इयं तु गौतमी वत्स यत्र कापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥

सर्वेषां सद्यंदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ।

किञ्चित्काले पुण्यराम किञ्चित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उक्त समय में मुनियों से आवृत्त गौतम से भगवान् अपम्बकजी ने कहा ॥१॥ भगवान् शिव बोले—हे गौतम ! दो हाथ मात्र में तीर्थ होंगे । मैं वहा सर्वत्र सब कामों के प्रदान करने वाला मैं सनिहित रहा करता हूँ ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गंगा द्वार में प्रयाग में तथा सागर के सङ्गम में इन स्थलों में वह भागीरथी गङ्गा मनुष्यों को पुण्य फल प्रदान करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हुआ करती है ॥३॥ अगर कण्ठ पर्वत में सरिताओं में परम श्रेष्ठा नर्मदा है । वहाँ पर यमुना सगता होती है और प्रभास क्षेत्र में सरस्वती है ॥४॥ हे नारद ! कृष्णा-भीमरथी-तुङ्गभद्रा इन तीनों का जहाँ पर सङ्गम होगा ॥ वह तीर्थ मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५॥ जहाँ पर वहाँ पर होने वाली पयोष्णी सरिता सगता हुआ करती है वह स्थल मुक्ति प्रदान करने वाला होता है । हे वत्स ! यह तो गौतमी गङ्गा है । जहाँ वही पर मेरी आज्ञा से सगता होती है ॥६॥ सद्यंदा सभी मनुष्यों को यह स्नान करने से मुक्ति प्रदान करेगी ।

कुछ तीर्थ सूरों के आगमन होने पर किसी काल में विशेष पुण्य के प्रदाता होते हैं ॥७॥

• सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नान्न संशयः ।

तिष्ठः कोट्योऽधंकोटी च योजनानां द्वातद्वये ॥८॥

तीर्थानि मुनिशार्दूल संभविष्यन्ति गौतम ।

इय माहेश्वरी गङ्गा गौतमी घण्ट्योति च ॥९॥

ब्राह्मो गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी ।

भस्मतेजःसमानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥

स्मरणादेव पापीघहन्त्री मम सदा प्रिया ।

पञ्चानामपि भूतानामापः श्रेष्ठत्वमागताः ॥११॥

तत्रापि तीर्थं भूतास्तु तस्मादापः पराः स्मृताः ।

तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताम्र्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

धानीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् ।

स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३॥

इत्येतत्कथितं पुनः गौतमाय महात्मने ।

साक्षाद्वरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥

एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता ।

तत्स्वरूपं च कथितं गुताऽन्या श्रवणमृहा ॥१५॥

बिन्नु यह गौतमी गङ्गा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये तीर्थ है उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । दो मी योजनों में गाढ़े तीन करोड़ हैं मुनि शार्दूल गौतम । तीर्थ समुत्पन्न होंगे । यह माहेश्वरी गङ्गा है तथा गौतमी और घण्ट्योति है ॥८-९॥ ब्राह्मो गोदावरी नन्दा-सुनन्दा काम दायिनी हैं ब्रह्म तेज के द्वारा समानीता हैं और सब प्रकार के पापों का प्रणाश कर देने वाली है ॥१०॥ मेरी प्रिया मक्षा श्री वैष्णव स्मरण मान से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देती जाती होती है । पक्षियों पृथ्वी में जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है ॥११॥ उनमें भी जो जल तीर्थ पूज्य है । इसी कारण से जल सबसे प्रमुख रहे गये हैं । उन सबमें भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ है और उनमें भी गौतमी परम श्रेष्ठ है

॥१२॥ यह गौतमी जटाओं के सहित ही लई गयी थी । हे मुने ! इससे अन्य कोई भी गुभा वह तथा समस्त अर्थों के देने वाला तीर्थ स्वर्ग म तथा भूतल ने भी नहीं है ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! यह सब साक्षात् भगवान् हर ने परम तुष्ट होकर महात्मा गौतम से कहा था और वह सब मैंने तुमको बतला दिया है ॥१४॥ इस रीति से यह गौतमी गङ्गा समस्त अन्य तीर्थों से अधिक श्रेष्ठा बतायी गयी है । उसका स्वरूप मैंने पूरा रूप से आपको वर्णित करके बतला दिया है । अब आप को अन्य क्या ध्वषण करने की स्पृहा है सो मुझे बतलाइये जिसे मैं बतलाऊँ ॥१५॥

— ५ —

३ = — कपोततीर्थवर्णन

कुशावतस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमम् ।
 तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यं भवेन्नरः ॥१॥
 कुशावतमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम् ।
 कुशेनाऽऽवृतं यत्र गौतमेन महात्मना ॥२॥
 कुशेनाऽऽवृतमित्वा तु आनयामास ता मुनिः ।
 तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तृप्तिदायकम् ॥३॥
 नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नि वृता नीलपवताम् ।
 तत्र स्नानादि यन्विचित्करोति प्रयतो नरः ॥४॥
 सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणां तृप्तिदायकम् ।
 विश्रुतं त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥
 तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुन शृणु महावनम् ।
 सत्रं यद्दमगिरी वस्त्रिब्याघ परमदारुणम् ॥६॥
 हिनस्ति ग्राह्मणान्साधून्वृत्तोन्मोषक्षिणो मृगात् ।
 एषभूतः स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषणः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कुशावर्त का माहात्म्य बड़ा विशाल है । मैं । उसको तुम्हें बतला देने में समय नहीं है अर्थात् उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहिर है उसका तो केवल स्मरण ही कर लेने से मनुष्य कृत कृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥१॥ वह “कुशावर्त” इस नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है और मनुष्यों के सब मनोरथों के प्रदान करने वाला है । जहाँ पर महात्मा गौतम ने इसको कुशा से आवर्तित किया था ॥२॥ उस महा मुनि ने कृपा से आवर्तन करके उसका आनयन किया था । वहाँ पर स्नान करना तथा दान करना पितृगणों को बहुत ही अधिक तृप्ति देने वाला होता है ॥३॥ नील गङ्गा समस्त सरिताओं में बहुत ही श्रेष्ठ है और वह नील पर्वत से निकली है । वहाँ पर कोई मनुष्य प्रयत्न होकर जो स्नान आदि जो कुछ भी किया करता है वह सभी अक्षय्य समझना चाहिए क्योंकि यह पितृगण को भी बहुत तृप्ति का देने वाला होता है । यह उत्तम तीर्थ तीनों लोकों में कपोत नाम से विख्यात है ॥४-५॥ हे मुने । मैं उसका स्वरूप बतलाता हूँ । जिसका कि महान् फल हुआ करता है । उसका तुम श्रवण करो । उस ब्रह्मगिरि में एक व्याघ्र रहता था जो बहुत ही दारुण था ॥६॥ वह सर्वदा ब्राह्मणों को-साधुओं को-यतियों को गोओं को तथा पक्षियों को और मृगों को मारा करता था । वह पापात्मा इसी तरह का था जो अत्यन्त क्रोधी एवं मिथ्या भाषण करने वाला था ॥७॥

भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः ।

दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८॥

ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वनः ।

पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९॥

तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद ।

तथा तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहनं वनम् ॥१०॥

राजधानं मृगान्पापः पक्षिणो बहुरूपिणः ।

पञ्जरे प्राक्षिपत्काञ्चिज्जीवमानां स्तयेतरान् ॥११॥

क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृपया तथा ।

श्रान्तदेशो बहुतर न्यवतत गृह प्रति ॥१२॥

ततोऽपराह्णे सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे ।

दाणात्तडिद्गजित च साभ्रं चवाभवत्तदा ॥१३॥

बबो वायुः साधमवर्षो वारिधारातिभीषणः ।

स गच्छेत्तुलुब्धकः श्रान्तः पन्थान नावबुध्यतः ॥१४॥

वह बहुत ही भीषण आकृति वाला था । उसके नेत्र नीले वर्ण के थे और उसकी भुजाएँ बहुत छोटी थीं । बड़े दाँतो वाला विनष्ट तानक और आँखों वाला छोटे पैरों वाला तथा बड़ी कुँसियों वाला वह था ॥१२॥ उसका उदर छोटा था भुजाएँ भी छोटी थी तथा अत्यन्त विकृत स्वरूप वाला था । उसकी ध्वनि गधे के समान थी । वह सर्वदा अपने हाथों में पाश लेकर रहा करता था । चित्त में उसके पाप ही भरा रहता था और घनुष हाथ में लेकर वह महान् पापिष्ठ घूमा करता था ॥१३॥ हे मारद ! उसकी भार्या भी वैसे ही दारुण और विकृत आकृति वाली थी और उसकी सन्तान भी उसी प्रकार की थी । उस पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर गहन वन में प्रवेश किया करता था ॥१०॥ वन में प्रविष्ट होकर उस महान् पापी ने बहुत से स्वरूप वाले मृगों की ओर पक्षियों को मार डाला था । जो कुछ जीवित रह गये थे उन सबको उसने एक पिंजरे में डाल दिया था ॥११॥ भूख से परितप्त अङ्गों वाला वह प्यास से भी बहुत घमड़ाया हुआ था । बहुत से वन के भागों में भ्रमण करने वाला वह अपने घर की ओर वापिस लौटा था ॥१२॥ जब दुपहर के बाद का समय हुआ तो उस समय में मधु माधव के निवृत्त हो जाने पर क्षण मात्र में ही उस समय में मेघों के सहित बिजली की गर्जना हुई थी ॥१३॥ उस समय में जल की घोर धाराओं से अत्यन्त भीषण पत्थरों की अर्थात् ओलों की वर्षा के सहित बड़ी भयानक वायु चलने लगी थी । वह व्याध घर को जा ही रहा था कि मार्ग में ही ऐसी घटना घटने लगी थी । वह बहुत ही थका हुआ था और महान् भयानक समय में अपने घर का मार्ग भूल गया था ॥१४॥

जल स्थल गतमथो गन्यान्मथवा दिशः ।
 न बुबोध तदा पापः श्रान्तः शरणमप्यथ ॥१५॥
 क गच्छामि क तिष्ठेय किं करामोत्यचिन्तयत् ।
 सर्वेषा प्राणिना प्राणानाहर्ताऽह यथाऽन्तकः ॥१६॥
 ममाप्यन्तरं भूत संप्राप्त चाश्मवपणम् ।
 श्रातार नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके ॥१७॥
 एव बहुविध व्याघा विचिन्त्यापश्यदन्तिके ।
 घने वनस्पतिमिव नक्षत्राणा यथाऽग्निजम् ॥१८॥
 मृगाणा व यथा सिंहमाश्रमाणा गृहाधिपम् ।
 इन्द्रियाणा मन इव श्रातार प्राणिना नगम् ॥१९॥
 श्रेष्ठ विटपिन शुभ्रं शाखागल्नवमण्डितम् ।
 तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्कृष्णवासा स लुब्धकः ॥२०॥
 स्मरन्भार्पायपत्यानि जीवेयुरथवा न वा ।
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्त प्राप्तो दिवाकरः ॥२१॥

उस समय में वह पापी इतना बड़ा हुआ था कि उस अन्यद् और
 पूरान में उसे जल-स्थल-गड्ढा-मार्ग और दिशाएँ कुछ भी मूल नहीं
 पड़ता था । यह किसकी शरण ग्रहण करे—यह वह नहीं जान सका था
 ॥१५॥ उसने सोचा कि मैं अब क्या करूँ ? मैं सम्राज की भाँति ही
 समस्त प्राणियों में प्राणों का आहरण करने जाता हूँ । मेरा भी अन्त
 कर देने वाली अश्वों (ओलों) की वर्षा हो रही है । मैं इस समय में
 अपना पट्टिपाल करने जाता कोई भी नहीं देखा रहा हूँ । मैं इस समय में
 मेरे समीप में कोई शिला है और न कोई वृक्ष ही है जिसका आश्रय मैं
 करूँ ॥१६-१७॥ इस तरह से बहुत सीतों से उस व्याघ्र ने सोचा था
 हमसे उपरागत करने समीप में ही एक वृक्ष को देखा था जो उस उपवन में
 वनस्पति की भाँति तथा नक्षत्रों में अश्वों के समान था । जिस तरह से
 सब पशुओं में मिष्ट होता है और मनुष्य आश्रमों में गृह्य होता है
 तथा सब इन्द्रियों में मन होता है उसी प्रकार न प्राणियों के प्राण करने
 वाला उस वृक्ष को व्याघ्र ने देखा था ॥१८- १९॥ वह वृक्ष परम श्रेष्ठ शुभ्र

और शाखाओं तथा पल्लवों से विभूषित था । उसी वृक्ष का समाग्र्य लेकर भीगे हुए वस्त्रों वाला वह व्याध बैठ गया था ॥२०॥ वह व्याध अपनी भार्या और वृक्षों का स्मरण कर रहा था कि व इस भीषण समय में जीवित भी रहे होंगे या नहीं । इसी बीच में वही पर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये थे ॥२१॥

तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह ।

पुनर्पौत्रं परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगात्तमे ॥२२

सुखेन निभयो भूत्वा सुतृप्त प्रीन एव च ।

वहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिः ॥२३

पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन च व हि ।

कोटरे तद्गगे श्रेष्ठे जलवाट्श्वग्निर्जिते ॥२४

भार्यापुत्र परिवृत सर्वदाऽऽस्ते कपोतक ।

तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी ॥२५

भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमभ्यगात् ।

साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते ॥२६

गृहीता लुब्धकेनाय जीवमानेव वर्तते ।

कपोतकीऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च ॥२७

वर्षं च भीषण प्राप्तमस्त यातौ दिवःकरः ।

स्वकोटर तयाहीनमालोक्य विललाप सः ॥२८

उसी वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके एक कपोत (कबूतर) अपनी भार्या के सहित पुनःपौत्रों से परिवृत होता हुआ उस उत्तम वृक्ष पर ननास किया करता था ॥२२॥ वह सुख के साथ निभय होकर परम स पुष्ट और प्रसन्न होकर वहाँ रहा करता था । उसको वहाँ पर निवास करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥२३॥ उसकी भार्या पतिव्रता थी और उस अपने पति से भी वह परम प्रसन्न रहता करती थी । जल-अग्नि और वायु के भय से रहित उस श्रेष्ठ वृक्ष की छाँट में वह कबूतर २८ ॥ भार्या और पुत्रों से परिवृत होता हुआ सर्वदा निवास किया करता है । उसी दिन में दैव वश से वह कपोत और कबूतरी दोनों ही भक्ष्य के

लिये चले गये थे । हे पुत्र ! वह कपोती भी भाग्य के वश से पिंजरे में स्थित होकर व्याघ्र के बज्जे में फँस गयी थी और वह कबूतर अपने आश्रय वाले वृक्ष पर समाप्त हो गया था । वह कपोती जीवित रहते हुए ही बुद्धि के द्वारा पकड़ ली गई थी । उस कपोत ने अपने बच्चे को माता से हीन देखा था ॥२४-२७॥ वर्षा यद्गत ही भीषण हुई थी और सूर्यदेव भी अस्त हो गये थे । उस समय में उस कपोत ने अपनी आश्रय की खोतर को पत्नी से रहित देखा तो वह विलाप करने लग गया था ॥२८॥

ता वद्धा पञ्चरस्या वा न बुयोध कपोतराट् ।
 अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम् ॥२९॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षचिचिनी ।
 मम धमस्य जननो मम देहस्य चेश्वरी ॥३०॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्य सहायिनी ।
 तुष्टे हसन्ती रष्टे च मम दुःसप्तमार्जनी ॥३१॥
 सखी मन्त्रेषु सा नित्य मम वाक्सरता सदा ।
 नाद्याप्यायाति कल्याणी सप्रयातोऽपि भास्करे ॥३२॥
 न जानाति व्रत मन्त्र देव धर्मार्थमेव च ।
 पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया ॥३३॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क यामि वा ।
 किं मे गृह कानन च तथा हीन हि दृश्यते ॥३४॥
 तथा युक्त श्रिया युक्त भीषण वाऽपि क्षोभनम् ।
 नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदोरितम् ॥३५॥

यह कपोती का राजा यह नरो जानता था कि वह उगरी पत्नी पिंजरे में स्थित होकर बद्ध हो गयी है । तब तो अरनो पत्नी के वियोग में विलाप करत हुए उस कपोत ने अरनो प्रिया के गुणों का कीर्तन करता आरम्भ कर दिया था ॥२९॥ कपोत यह रहा था—वह कल्याणी मेरे रूप की बढ़ाने वाली स्वभी तब भी नहीं आ रही है । यह प्रिया मेरे धर्म की ज्ञानी है और मेरे शरीर की स्वामिनी है ॥३०॥ धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थों की निश्च ही सहायता करने वाली भी वह ही मेरी प्रियतमा होती है । जब मैं परम तुष्ट होता था तो वह हँसती रहा करती थी और किसी कारण वश रुष्ट हो जाता था तो वह मेरे हार्दिक दुःख का परिमार्जन किया करती थी ॥३१॥ कभी किसी विषय में मन्त्रणा करने का अवसर होता था तो वह हमेशा मेरी सखी बन जाया करती थी अर्थात् हितैषी मित्र के समान सलाह दिया करती थी । वह सर्वदा मेरे वचनों में रति रक्खा करती थी । भगवान् भास्कर भी अस्त हो गये हैं और इतना विलम्ब होने पर भी वह कल्याणी भार्य अब तक भी नहीं आयी है ॥३२॥ वह मेरी पत्नी परम पतिव्रता है—पति की ही प्राण के समान मानने वाली है—पति ही उसका एक मात्र मन्त्र है और पति की वह बहुत ही प्यारी है । वह न कोई धृत जानती है न मन्त्र का ही ज्ञान है—दैव को भी वह कुछ नहीं समझती और पति के सिवाय धर्मार्थ को भी नहीं जानती है ॥३३॥ वह मेरी परम कल्याणी प्रिया अभी तक भी नहीं आई है । मैं कहाँ जाऊँ और अब क्या करूँ ? अब यह मेरा घर क्या है—यह तो वन जैसा ही है । उसके बिना यह गृह बहुत बुरा दिखाई दे रहा है ॥३४॥ जब इस घर में वह रहती है तो यह गृह श्री से सुसम्पन्न दिखाई देता है और चाहे यह कैसा भी भीषण हो तो अच्छा दिखलाई दिया करता है । वह मेरी काम्ता अभी तक भी नहीं आयी है जिसके होने पर ही यह गृह कहा गया है ॥३५॥

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम् ।

किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वह पुन ॥३६॥

एव विलपस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा ।

पञ्चरस्यैव सा वाक्य भर्तारि मिदमब्रवीत् ॥३७॥

अत्राहमस्मि वद्धं व विवशाऽस्मि खगोत्तम ।

आनीताऽह लुब्धकेन वद्धा पार्श्वमहामते ॥३८॥

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वक्ति गुणान्मम ।

सतो वाऽप्यसतो वाऽपि वृत्तार्थाऽहं न सद्यः ॥३९॥

तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।

विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात् ॥४०॥

एव देव त्व प्रभुमंहा त्व सुहृत्त्व परायणम् ।

एव यत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१॥

मा चिन्ता कुरु कल्याण धर्मं बुद्धि स्थिरा कुरु ।

त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥

अल खेदेन मज्जेन धर्मं बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

उस कपोत ने उक्त प्रकार पत्नी के वियोग में क्रन्दन करते हुए कहा था कि अब मैं इसके बिना जीवन नहीं चूँगा अथवा इस प्रिय शरीर का ही परि त्याग कर दूँ । ये सब क्या करेगे ? मैं तो धर्म के लुप्त हो जाने वाला ही हो गया हूँ ॥३६॥ इस प्रकार से विचार करते हुए अपने स्वामी के सन्मुख पूर्ण इन वचनों को सुनकर पिंजड़े में स्थित होती हुई ही उस कपोती ने अपने भर्ता से यह कहा था ॥३७॥ उस कपोती ने कहा—हे खगोत्तम ! मैं हूँ तो यही पर, किन्तु पिंजड़े में बद्ध होने के कारण विवश हूँ । हे महती मति वाले ! पतिदेव ! इस सुबध्न के द्वारा गालों से बांध कर मुझे यहाँ लाया गया है ॥३८॥ मैं परम धन्य हूँ और अनुपम हो गई हूँ कि मेरा स्वामी स्वयं अपने मुख से मेरे गुणों का गीतन करते हैं । चाहे वे गुण हो अथवा न भी हो तो भी मैं परम शीतल हो गयी हूँ इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३९॥ नारियों का यदि भर्ता पूर्णतया सन्तुष्ट है तो उससे सभी देवता परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर रहते हैं । यदि नारियों का पति ही उनसे सन्तुष्ट नहीं है तो अवश्य ही नाश के विपर्यय होने पर प्राप्त हो जाया करती हैं क्योंकि नारियों का ही नाश पति ही सत्र कुछ हुआ करता है ॥४०॥ हे पति देव ! मेरे ही देव हैं—आप ही प्रभु हैं मेरे आप ही सुहृत् हैं और आप ही मेरे ही परम देवता हैं । आप ही मेरे यत हैं—आप ही परमोपाय देव हैं या यहा हैं और आप ही मेरे लिये स्वर्ग एवं मोक्ष हैं ॥४१॥ हे कल्याण रूप ! आप मेरे लिये चिन्तित होकर ऐसा वरुण क्रन्दन मत करिए और आप अपनी गर्म मन्त्राघनी बद्धि से ही सत्स्थिर रहिये । ३-८

देव । आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के भोगों का उभोग किया है । आप अब अत्यन्त खेद मेर लिये न करिए और नियोग की क्षिप्रता मे निमग्न न होइए । आप तो मेरी चिन्ता का पूर्णतया त्याग करके धर्म मे ही अपनी बुद्धि को सुस्थिर करिये ॥४२-४३॥

इति श्रुत्वा प्रिया वाक्यमुत्ततर नगोत्तमात् ।

यत्र सा पञ्जरस्या तु कपोति घर्तते त्वर(द्भुत)म् ॥४४

तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् ।

मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकाऽधुना ॥४५

मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सवन्धमस्थिरम् ।

लुब्धानां खेचरा ह्यथ जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६

नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु ।

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णनां ब्राह्मणानां गुरुः ॥४७

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।

अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनोस्तोषयन्ति ये ॥४८

तैषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम् ।

तस्याक्षस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९

पितरं पादशीलेन अग्राद्येन प्रजापतिः ।

तस्योपचाराद्धं लक्ष्मीर्विष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के अपनी प्रिया के वचनों का धमका करके वह कपोत उस अपने आश्रय वाले वृक्ष से नीचे उतर आया था और वह वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर पिंजरे में स्थित वह कपोती विद्यमान थी ॥४४॥ यह गुरुरन्त ही बहुत ही शीघ्रता से उसके समीप में पहुँच गया और उसने अपनी प्रिया को वहाँ पर देखा था तथा उस लुब्धक को भी देखा था जो मृतक व समान वही पर पड़ा हुआ था । उस कपोत ने अपनी प्रिया न बहा था कि मैं तुम्हारा मोचन करता हूँ क्योंकि यह व्याध तो इस समय में ऐतनाहीन मूर्छित था पड़ा हुआ है ॥४५॥ उस कपोती ने कहा—ह मृदाभ ग ! इस सवन्ध को स्थिरता से धूम्य समस्त कर मेरा मोचन मत करो । तात्पर्य यह है कि यह तात्पर्य

पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थायी नहीं है। व्याधों का घाव अन्न तो पक्षी ही हुआ करते हैं क्योंकि जीव ही जीवों का भोजन हुआ करता है ॥४६॥ अब मैं तो इस व्याध के अपराध के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं करती हूँ। आप भी धर्म की बुद्धि ही को स्थिर करिए। द्विजातियों का गुरु अग्निदेव होते हैं—वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं ॥४७॥ स्त्रियों का गुरु एक मात्र पति हुआ करता है और जो अभ्यागत होता है वह तो सभी का गुरु हुआ करता है। अभ्यागत अर्थात् अतिथि का सबसे अधिक महत्त्व शास्त्री में माना गया है। जो लोग प्राप्त हो जाने वाले अभ्यागत का परम मुमधुर वचनों के द्वारा तोष किया करते हैं उनके ऊपर यागी-श्वरी देवी निश्चित रूप से वृत्त हो जाती है। उस अभ्यागत को जो गुरु अन्न समर्पित किया जाता है तो उससे महेन्द्र देव परम संतुष्ट हो जाया करते हैं ॥४८-४९॥ अतिथि के चरणों को धोने से पितृगण प्रसन्न होते हैं और अन्नादि के समर्पित करने से प्रजापति संतुष्ट होते हैं। अभ्याग के अन्य उपचार करने से लक्ष्मी देवी वृत्त होती है और लक्ष्मी के साथ ही भगवान् विष्णु भी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५०॥

दायने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः ।

अभ्यागतमनुश्रान्त सूर्योद गृहमागतम् ॥

त विद्याद्ब्रह्मरूपेण सर्वक्रानुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अभ्यागत श्रान्तमनुव्रजन्ति,

देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च ।

तस्मिन्हि वृष्टे मुदमाप्नुवन्ति,

गते निराशोऽपि न ते निराशाः ॥५२॥

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःख त्यक्त्वा दामं यज ।

कुत्वा तित्त शुभां बुद्धिं यर्मकृत्य समाचार ॥५३॥

उपकारोऽपकारश्च प्रवराबिति नमतो ।

उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपवृत्तिं पुनः ॥५४॥

अपकारिषु यः साधु पुण्यभातम उदाहृतः ॥५५॥

स तु गत्वा वह्निदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत् ।

पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२॥

शृङ्गाकाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः ।

अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपातराट् ॥६३॥

कपोत ने कहा—हे प्रिये ! तुमने हम दोनों के ही अनुरूप कथन किया है और तुम्हारा ज्ञान परमोत्तम है तथा तुम समुचित ही मानती हो किन्तु हे बरानने ! इस विषय में मेरा कुछ वक्तव्य है उसका भी श्रवण कर लो ॥५६॥ इस ससार में बहुत प्रकार के जीव हैं—कोई तो एक सहस्र प्राणियों का भक्षण-पोषण किया करता है—दूसरा सौ प्राणियों का पालन करता है, अन्य ऐसा है जो दश ही जीवों का पोषण किया करता है—कोई ऐसा ही है जो सुखपूर्वक अपना ही उदर-पोषण कर लेता है किन्तु हम लोग तो ऐसे प्राणी हैं जो अपना ही उदर बड़े कष्ट के साथ भरा करते हैं ॥५७॥ कुछ प्राणी ऐसे इसी ससार में विद्यमान हैं जो अपने विशाल धन की भूमि के सहस्रानों में गाढ़ कर रखते हैं—दूसरे ऐसे हैं जो कुशल धनी हैं । कतिपय ऐसे भी प्राणी हैं जो घटों में भरकर धन को अर्थात् धान्य को रखते हैं किन्तु हम तो उन प्राणियों में से हैं जो केवल अपनी चोंच में ही धन अर्थात् धान्य को रखते हैं । कथन का अभिप्राय ऐसा ही है कि हमारे पास सग्रह तो होता ही नहीं है । हे शुभे ! भला फिर तुम ही बतलाओ मैं इस परम श्रान्त अभ्यागत का पूजन एवं सलाह किस तरह से करूँ क्योंकि हमारे पास में तो कुछ भी सृष्टीहीन नहीं है ॥५८-५९॥ उस कपोती ने कहा—हे प्राणनाथ ! इस समय में विचारा यह लुब्धक क्षीत से अत्यन्त उत्पीडित हो रहा है । अग्नि-जल-परम मधुर एवं शुभ वाणी और जो भी तृण-काष्ठ प्रभृति कुछ हो वही इसको देना चाहिए ॥६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी प्रिया के द्वारा वरित इस वचन को सुनकर वह पक्षियों का राजा अपने आश्रय वाले उस वृक्ष पर चढ़ा गया था और उस समय में उसने देखा था कि बहुत दूरी पर वही अग्नि विद्यमान है ॥६१॥ वह उसी समय में अग्नि के स्थल पर उड़ कर गया और अपनी चोंच से वह्नि का एक कण वही से

ले आया था । फिर उस लुब्धक ने सामने उस कपोत (कबूतर) ने भाग जलायी थी । उस आग में उसने सूखी हुई लकड़ियाँ-५३ तथा तृणों को धारम्बार डाल दिया था । वह उस समय में आधी रात का घोर शीत से पूरा समय था ॥६२-६३॥

तमग्नि ज्वलित दृष्ट्वा लुब्धक शीतदु खित ।
 अवशानि स्वकाङ्क्षानि प्रताप्य सुप्तमाप्तवान् ॥६४॥
 धुधाग्निना दह्यमान व्याध दृष्ट्वा कपोतकी ।
 मा मुञ्चस्व महाभाग इति मर्तारमब्रवीत् ॥६५॥
 स्वशरीरेण दु स्मार्तं लुब्धक प्रीणयामि तम् ।
 इष्टातिथीना ये लोकास्तास्त्व प्राप्नुहि सुव्रत ॥६६॥
 मयि सिष्ठितानैवायः तव धर्मो विधीयते ।
 इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मा शुभे ॥६७॥
 इत्युक्तवाग्निं निरावर्त्य स्मरन्देव चतुर्भुजम् ।
 विश्वात्मक महाविष्णु शरण्य भक्तवत्सलम् ॥६८॥
 यथासुख जुपस्वेति वदन्नग्निं तथाऽऽविशत् ।
 त दृष्ट्वाऽग्नौ लिप्तजीव लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥६९॥
 अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम ।
 यदिदं पक्षिराजेन मदर्थं साहसं कृतम् ॥७०॥

उस जली हुई अग्नि को देखकर वह व्याध जो शीत से भरपूर हुआ था कुछ चेष्टा युक्त हुआ और उसने अपने शीत की अधिकता से विवश अङ्गों को प्राप्त किया था और उससे उस बहुत ही सुख प्राप्त हुआ था ॥६४॥ अब तो धुधा की अग्नि से दग्ध हुए उस व्याध को कपोती ने देखा था और फिर उसने अपने स्वामी से निवेदन किया कि हे नाथ ! आग बड़े ही भाग्यशाली है अब मुझको इस पीछरे से मुक्त कर दीजिए अर्थात् पीछरे को खोलकर जाल में बद्ध मुझे खोलकर बाहिर निकाल दें जिससे मैं अपने शरीर के द्वारा जो कि एक दिन अवश्य ही विनाश को प्राप्त होने वाला है उस भूख से परम दुःखित व्याध को प्रसन्न करूँ । हे सुव्रत ! जो लोक आने इष्ट अतिथियों के हैं

कपोततीर्थवर्णन]

उनको आप प्राप्त करिए ॥६५-६६॥ कपोत ने अपनी प्रिया के उन वचनों का श्रवण करने कहा—कपोत बोला—मेरे जीवित एवं विद्यमान रहते हुए तुम्हारा यह धर्म नहीं किया जाता है । हे शुभे ! यहाँ पर दृष्टान्ति में ही होता है—ऐसा ही तुम समझ लो ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना भर कहकर उस अग्नि की तीन प्रदक्षिणा उस कपोत ने की और भगवान् चतुर्भुज का स्मरण किया था जो इस विशाल विश्व के स्वरूप वाले क्षरणागति में सम्प्राप्त प्राणी की रक्षा करने वाले—अपने भक्तों पर बहुत ही ध्यान करने वाले महाविष्णु है ॥६८॥ सुखपूर्वक प्रीति के साथ सेवन करो—इतना कहते हुए वह उस अग्नि में प्रवेश कर गया । अग्नि में अपने सजीव शरीर को प्रक्षिप्त करने बलि उस कपोत को देखकर वह लुब्धक यह वचन कहने लगा । उस व्याध ने कहा—ओहो ! मनुष्य का वह धारण करने वाले मेरे इस जीवन को धिक्कार है जब कि इस पक्षियों के राजा कपोत ने मेरे प्राणों की सुरक्षा के वास्ते इतना बड़ा साहस किया है अर्थात् अपने परम प्रिय प्राणों की आहुति दे दी है ॥६९-७०॥

एव द्रुवन्त त लुब्ध पक्षिणी वाक्यमन्नवीत् ॥७१॥
 मा त्व मुञ्च महाभाग दूर यात्येष मे पतिः ॥७२॥
 तस्यातद्वचन श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम् ।
 लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥
 साऽपि प्रदक्षिण कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४॥
 स्त्रीणामायं परो धर्मो यद्भर्तु रनुवेशनम् ।
 वेदे च विहितो मार्गः सवलोक्यु पूजितः ॥७५॥
 व्यालग्राही यथा व्याल विलादुद्धरते वलात् ।
 एव त्वनुगता नारो सह भर्त्रा दिव व्रजेत् ॥७६॥
 तिलः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणो मानुषे ।
 तावत्काल वसेत्स्वर्गे भर्तार याऽनुगच्छति ॥७७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के वचनों को कहने वाले उस व्याध से वह कपोती यह वचन कहने लगी थी ॥७१॥ कपोती ने —

मुक्तपाप पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने ।
 अश्वमेधफल पुण्य प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥
 सरिद्धगया गीतम्या ब्रह्मविष्ण्वीशसभुवि ।
 पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देह मलीमसम् ॥८८॥
 विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यवश्यम् ॥८९॥
 तच्छ्रुत्वा वचनं ताम्या तथा चक्रे स सुबुधक ।
 विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥
 दिव्यमात्म्याम्बरधर पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।
 कपोतश्च कपोती च तृतीयो सुबुधकस्तथा ॥
 गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे व दिवमाक्रमन् ॥९१॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम् ।
 तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥
 जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

सुबुधक ने कहा—हे महाभाग वालो ! आपकी मेरा त्याग नहीं करना चाहिए । मैं तो बहुत ही अज्ञानी हूँ । मुझे भी आप लोगों को कुछ देना चाहिए । मैं यहाँ पर माया अतिथि हूँ । आप मेरे पापों को कोई निष्कृति बतलाने के योग्य हैं ॥८५॥ दम्पती ने कहा—आप गीतमी गङ्गा के समीप में जाइये । आपका कल्याण वही पर होगा । गीतमी से अपने पापों के विषय में निवेदन करो । एक पक्ष पर्यन्त वहाँ पर आपलवण करने से आप समस्त पापों से मुक्तवारा पाजायेंगे ॥८६॥ जहाँ आप अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जावे तो फिर विशुद्ध होकर उस गीतमी गङ्गा में अवगाहन करने पर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त कर परम पुण्यवान् हो जायेंगे ॥८७॥ ब्रह्मा विष्णु और शम्भु से समुत्पन्न हुई उस समस्त सरिताया में थोड़ा गीतमी गङ्गा में फिर स्नान करने से ही इस महामन्त्र देह को त्याग कर आप पाप श्रेष्ठ विमान पर समावृद्ध होकर निश्चित रूप से स्वर्गलोक को गमन करे गे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों से बड़े हुए उस वचन को सुनकर उस सुबुधक ने बीता ही

किया था और फिर उस पुण्य के प्रभाव से एक परम दिव्य विमान पर समावृद्ध होकर वह दिव्य रूप के धारण करने वाला हो गया था ॥६०॥ वह दिव्य भालाओं के धारण करने वाला तथा दिव्य घस्त्रधारी और अप्सराओं के द्वारा पूज्यमान हो गया था । वे वपोत वपोती दोनों और तीसरा सुव्यक्त गौतमी गङ्गा के प्रभाव से राव के मध्य स्वर्गलोक को चले गये थे ॥६१॥ तभी से लेकर वह तीर्थ "वपोत तीर्थ"—इस शुभ नाम से विख्यात हो गया है । वहाँ पर किया हुआ स्नान-दान तथा पितृगण का अर्चन और आप-यज्ञ प्रभृति सब अनन्त एव अक्षय माने जाते हैं ॥६२-६३॥

—:~:—

३६—दशाश्वमेधतीर्थवर्णन

दशाश्वमेधिक तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने ।
यस्य श्रवणमात्रेण ह्यश्वमेधकल लभेत् ॥८॥
विश्वकर्मसुतः श्रोमान्विश्वरूपो महाबलः ।
तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भोवनो विभुः ॥९॥
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः ।
तमपृच्छन्महाबाहुभोवनः सार्वभौवनः ॥१०॥
यक्ष्येऽहं ह्यश्वमेधं युगपद्दशभिर्मुने ।
इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं क यक्ष्यामि सुरानिति ॥११॥
सोऽवदद्देवयजन तत्र तत्र नृपोत्तम ।
यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महानतून् ॥१२॥
तत्राभवन्पिगणा आत्विज्ये गक्षमण्डले ।
युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा ॥१३॥
पूर्णं ता नाऽऽयुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः ।
बिहाय देवयजन पुनरन्यत्र तान्नतून् ॥१४॥

उपक्रामत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययु ।

दृष्ट्वाऽपूर्णास्ततो यज्ञावाजा गुरुमभाषत ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महामुने ! एक दशमश्वमेधिक तीर्थ है उसके विषय मैं श्रवण करिए जिसके केवल सुनने से ही अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त हो जाता है ॥१॥ विश्वरूपा का पुत्र महान् बलवान् श्री सम्पन्न विश्वरूप था । उसका भी जो प्रथम पुत्र था उसका पुत्र विभु भीषण हुआ था ॥२॥ उसका पुरोहित कश्यप ऋषि थे जो कि सब प्रकार के ज्ञान के महान् पण्डित थे । महाबाहु साव भीषण ने उन अपने पुरोहित जी से पूछा था ॥३॥ हे महामुने ! मैं अब ही घार में एक साथ दश अश्वमेधों के द्वारा यजन करूँगा । उसने अपने गुरु उन विप्रवर से यही पूछा था कि सब सूरों का यजन मैं कहाँ पर कर सकूँगा ॥४॥ उस पुरोहित कश्यप ने कहा—हे मूर्खोत्तम ! वहाँ वहाँ पर ही देवा की यजन होता है जहाँ-जहाँ पर श्रेष्ठ ऋषिजी ने महान् कृत्यों को पहिले किया था ॥५॥ वहाँ पर आतिथ्य मध्यमण्डल में ऋषियों का समुदाय एकत्रित हुआ और पुरोहित कश्यप मुनि के द्वारा एक साथ दश अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया गया था ॥६॥ किन्तु वे पूरा नहीं हुए थे—उन यज्ञों की अपूर्णता को देखकर मृग बहुत ही चिन्ता युक्त हो गया था । उस राजा ने वहाँ पर देवों का यजन करना त्याग कर फिर किसी अन्य स्थान पर उही अनुष्ठा को करने का उपक्रम किया था किन्तु वहाँ पर भी उसको बिना किसी दोषों का समुदाय आगया । उस राजा ने अपने समारम्भ यज्ञों की अपूर्ण देखकर मुन्गी से कहा ॥७॥

देशदोषात्कालदोषामम दोषात्तवापि वा ।

पूर्णता नऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिन ॥८॥

ततश्च दुःस्तिनो राजा वश्यपो पुरोधसा ।

भीष्म तश्चातिरज्यच्छ गत्वा सवत्समूचतु ॥९॥

भगवन्नुत्तरकर्याप्यश्वमेधानि मानद ।

दश सपूर्णता यान्ति त देश त गुरु वद ॥१०॥

ततो ध्यात्वा ऋषिभ्यः सवर्तों जीवनं तदा ।

अन्नवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति ॥१२

भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना ।

आगत्य मामन्नवीच्च गुरुं देशादिकं य यत् ॥१३

ततोऽहमद्रव पुत्र भौवनं कश्यप तया ।

गौतमी गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान् ॥१४

राजा ने कहा—हे भगवन् ! यह कोई देश का दोष है अथवा काल का दोष है ? मेरा ही कोई दोष या कमी है या कोई आपका दोष है ? क्या कारण है कि मेरे ये दश अश्वमेध यज्ञ एक साथ करने का जो मेरा सङ्कल्प था वह पूर्ण नहीं होता है ? ॥१॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त यह राजा अत्यन्त दुःखित होकर अपने पुरोहित कश्यप जी के साथ भगवान् बृहस्पति जी के जो ज्येष्ठ शार्दूल संवत् के उनके समीप में जाकर उनसे उन दोनों ने कहा—कश्यप और भौवन ने कहा—हे मानद ! भगवन् ! दश अश्वमेध यज्ञ मुझे एक ही साथ करने हैं । वे दशो अश्वमेध यज्ञ पूर्णता को प्राप्त हो जायें—वह स्थल कौन सा है उमी देश को मेरे गुरुजी को बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०-११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उसी समय में ऋषियो में परम श्रेष्ठ रामवर्त्त जी ने योगाभ्यास की रीति से ध्यान किया था और फिर उन्होंने कहा था कि ब्रह्माजी के समीप में चले जाओ । वे आपके गुरुजी को यह वेश बतला देंगे ॥१२॥ इसके अनन्तर महाद् पण्डित राजा भौवन महाद् आत्मा वाले कश्यप ऋषि के साथ मेरे समीप में समागत हुए थे और वह गुरु तथा देशादि के सम्बन्ध में बोला था ॥१३॥ हे पुत्र ! इसके पश्चात् मैंने भौवन नृप और कश्यप मुनि से कहा था कि हे राजेन्द्र ! गौतमी गङ्गा के समीप में चले जाओ । वही देश क्रतुओं के लिये पुण्य बाला है ॥१४॥

अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपी वेदपारगः ।

गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५

एवेन हयमेधेन तत्र स्नानं वा पुनः ।

सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः ॥१६

यच्छ्रुत्वा भीवनो राजा गीतमीतीरमभ्यगाम् ।
 कश्यपेन सहायेन हयमेघाय दीक्षित ॥१७॥
 तत् प्रनुत्त यज्ञशे हयमेघे महाकतो ।
 सपूर्णे तु तदा राजा पृथिवी दातुमद्यत् ॥१८॥
 ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम् ।
 पूजयित्वा स्थित विप्रानृत्विजोऽय मइस्पतीन् ॥१९॥
 पुरोधसे कश्यपाय मक्षलवनवाननाम् ।
 पृथिवी दातुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृप ॥२०॥
 भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अत्र देहि महाफनम् ।
 नात्रदानसम पुण्य त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१॥

हे राजन् ! आपने गुरु तो यह ही कश्यप मुनि परम श्रेष्ठ हैं वयो
 नि यह वेदा के पारगामी महान् मनीषी हैं । इन्हीं गुरुद्वय के प्रसाद
 से भीर भगवती गीतमी गंगा की कृपा से वहाँ पर एक अश्वमेध यज्ञ
 से अथवा पुनः स्नान से वही पर दण्ड अश्वमेध यज्ञ एक साथ पूरा हो
 जायेंगे ॥१५-१६॥ यह यज्ञ करने राजा भीवा हयमेघ यज्ञ का यजन
 करने के लिये ही दीक्षित होकर कश्यप ऋषि को सहायक बनाकर
 गीतमी गंगा के तट पर पहुँच गया था ॥१७॥ इससे अनन्तर महान्
 ऋषि अश्वमेध का प्रवृत्त हो जान पर जो कि सभी यज्ञ का ईश्वर है
 यह सम्पूर्ण हो गया था और उससे साक्ष सम्पूर्ण हो जान पर राजा
 समस्त भूमि का दान करने का सिय उत्पन्न हो गया था ॥१८॥ तब ही
 तपोमण्डल में आवागमन वाली न उस राजा का श्रेष्ठ से कहा था जो
 विप्रा को ऋत्विजा को और सद्गतिमो को पूजकर वहाँ पर स्थित
 था ॥१९॥ आवागमन वाली ने कहा था—हे पुत्र ! आपने अपने पुरोहित
 मुनि का सिय पयना और यहाँ से मुक्त पृथिवी को दान करने की कामना
 माना तब कुछ दातु कर दिया है ॥२०॥ अब आप भूमि का दातु
 की स्था का दान करके अब महान् यज्ञ यात्रा आना का दातु
 क्या नि अत्र के दातु का समाप्त पुनः लीला लोको में अथ निरी भा
 दातु का पुनः वहीं स्थित है ॥२१॥

विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने ।
 स्वया तु ह्यमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः ॥
 कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥२२
 तथाऽपि दालुकामं तं मही प्रोवाच भोवनम् ॥२३
 विश्वकर्मज सार्वभौम मा मां देहि पुनः पुनः ।
 निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मात्त दीयताम् ॥२४
 ततश्च भोवनो भीतः किं देयमिति चाब्रवीत् ।
 पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भोवन ग्राह्णवृत्तम् ॥२५
 तिला गावो घन धान्यं यत्किञ्चिद्गौतमीतटे ।
 सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भोवन दास्यसि ॥२६
 गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः ।
 तेनाहं सकला दत्ता किं मां भोवन दास्यसि ॥२७
 तद्भुवो वचनं श्रुत्वा भोवनः सार्वभौवनः ।
 तथैतं मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः ।
 दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९

हे मुने ! विशेष रूप से श्रद्धा के साथ गङ्गा के पुलिन पर आपने बहुत दक्षिणा वाला यह अश्वमेध यज्ञ किया है । अब आप पूर्णतया पूत कृत्य (सफल) हो गये हैं । आपका कल्याण होगा । इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी दान करने की कामना वाले उस राजा भोवन से मही ने कहा था ॥२३॥ पृथिवी योनी—हे विश्वकर्मा से समुत्पन्न होने वाले ! हे सार्वभौम ! मुझको आप बारम्बार मत दीजिए । मैं समुद्र के मध्य में निमग्न हो जाती हूँ अतएव मेरा दान मत करिए ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह राजा भोवन भय से डरा हुआ हो गया था और उसने कहा था कि मुझे क्या दान करना चाहिये । इसके अनन्तर फिर वह पृथ्वी ग्राह्णो से समावृत्त भोवन से बोली ॥२५॥ भूमि ने कहा—हे भोवन ! इस गौतमी के तट पर तिल-गौँ, घन-धान्य जो कुछ भी दान किया

जाता है वह अक्षय होता है फिर आप मुझको क्यों देते हैं ॥२६॥ इस भोतमी गङ्गा के तीर पर समाध्य करके जो कोई एक भी घास का दान किया करता है उसने समस्त भूमि का दान ही कर दिया है ऐसा समझना चाहिए फिर हे भोवन ! मुझको क्यों दे रहे हैं ? ॥२७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस सावं भोवन सत्राद् भोवन ने भूमि के इस वचन का श्रवण करके उसे उसी तरह से मान लिया था और फिर उसने बहुत अधिक अन्न का दान विप्रों को दिया था ॥२८॥ उसी दिन से आरम्भ करके वह तीर्थ दशअश्वमेधिव विश्रुत हो गया है । वही पर उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥२९॥



४०—पैशाचतीर्थवर्णन

पैशाच तीर्थमपर पूजित ब्रह्मवादिभिः ।
 तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गीतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
 गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अङ्गुली नाम नारद ।
 तस्मिञ्छैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२॥
 अजना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी ।
 'केसरी' नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३॥
 साऽपि केसरिणी भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा ।
 उत्तमाङ्गेन मार्जरी साऽप्यगस्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥
 दक्षिणार्णवमग्रागते सरी लोकविश्रुत ।
 एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जन पर्वतमभ्यगात् ॥५॥
 अजना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृपिसत्तमम् ।
 पूजयामासतु रभे यथान्याय यथासुखम् ॥६॥

ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे व्रियतां वरः ।

ते आहवुरुभेऽगस्त्य पुत्री देहि मुनीश्वर ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर गौतमी गङ्गा के दक्षिण तट पर एक दूसरा पैशाच तीर्थ है जो ब्रह्म वादियों के द्वारा समर्पित होता है । अब मैं उसका पूर्ण स्वरूप को बतलाता हूँ ॥१॥ हे नारद ! ब्रह्म गिरि के पार्श्व में एक अञ्जन नाम का गिरि है । हे मुनिवर ! उस पर्वत पर एक परम श्रेष्ठ अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गई थी ॥२॥ वहाँ पर उत्तम अङ्गो से युक्त अञ्जना नाम वाली नारी थी । केसरी नाम वाला उसका स्वामी था । और दूसरी अद्रिका नाम वाली थी ॥३॥ वह भी केसरी की ही भार्या थी जो कि परा अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गयी थी उत्तमाङ्ग से वह मारजारी भी उस अञ्जन पर्वत पर रहती थी ॥४॥ वह लोको में परम प्रख्यात केसरी दक्षिण सागर को चला गया था । इसी अन्तर में अगस्त्य उस अञ्जन पर्वत पर समागत हो गये थे ॥५॥ उस समय में अञ्जना और अद्रिका इन दोनों ने ऋषिगणों में श्रेष्ठ अगस्त्य का न्यास पूर्वक यथा मुक्त पूजन किया था ॥६॥ तब ही भगवान् अगस्त्य उन दोनों पर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले कि तुम से तुम दोनों वरदान माँग लो । हे मुनीश्वर ! उन दोनों ने अगस्त्य मुनि से कहा था कि हम दोनों को पुत्र होने का वरदान प्रदान करिये ॥७॥

सर्वेभ्यो बलिनी श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ ।

दयेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगमाऽऽप्ता स दक्षिणाम् ॥८॥

ततः मदाचित्ते काले अजना चाद्रिका तथा ।

गौतमं नृत्य च हास्य च पुर्वंत्योगिरिगूर्धनि ॥९॥

यागुर्ध्वं निष्टंतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ ।

कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्यरमोयनुः ॥१०॥

भार्ये भवेतानुभयोरायां देवौ वरप्रदौ ।

ते अप्सूपतुरस्त्वेतद्रेमाते गिरिगूर्धनि ॥११॥

अजनाया तथा वायोहं नुमान्सजायत ।

अद्रिकाया च निऋतेरद्रिर्नाम पिशाचराट् ॥१२॥

पुनस्ते आहतुरुभे पुनौ जातौ मुनेवरात् ।

आवयोर्विकृत रूपमुत्तमाङ्गेन दूषितम् ॥१३॥

शापाच्छचीपतेस्तन युवामाज्ञातुमर्हथ ।

तत प्रोवाच भगवान्वायुश्च निऋतिस्तथा ॥१४॥

वे पुत्र भी ऐसे होने चाहिए कि सबसे अधिक बलवान् श्रेष्ठ और सभी लोकों की भलाई करने वाले होवे । उस मुनि श्रेष्ठ ने ऐसा ही होगा । यह कह दिया था और फिर वे वक्षिण दिशा की वहाँ से चले गये थे ॥८॥ इसके अनन्तर वे दोनों अञ्जना और अद्रिका किसी समय में उस पर्वत की शिखर पर गीत श्रवण और हास्य कर रही थी । उसी समय में वायु और निऋति इन दोनों ने उन दोनों को देखा था और वे दोनों सुरस्मित युक्त हो गये थे । वे दोनों ही देव काम धासना से आक्रान्त बुद्धि धासे होकर बहुत ही शीघ्र वहाँ पर उसी समय में समागत होगये थे ॥९॥ उन्हीं ने वहाँ पर उनसे कहा था कि दोनों हम दोनों की भाँखी हो जाओ । हम दोनों वरदान देने वाले देव हैं । उन दोनों ने भी उनके कथन को स्वीकार कर लिया था और उन दोनों ने उस पर्वत की चाटी पर रमण किया था ॥१०॥ उस अञ्जना नाम वाली धानरी के उदर से वायुदेव ने द्वारा हनुमान ने जन्म ग्रहण किया था और अद्रिका के उदर से निऋति के द्वारा अद्रि नाम वाला पिशाचराट् समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ फिर उन दोनों ने कहा था कि दोनों पुत्र मुनि वर से समुत्पन्न हुए हैं । उन दोनों का रूप उत्तमाङ्ग ने विवृत एवं दूषित कर दिया है ॥१२॥ वहाँ पर शची ने पति महेंद्र के साथ से ऐसा हुआ है तो आप दोनों आज्ञा प्रदान करने के योग्य होने हैं । इसके अनन्तर भगवान् वायु देव तथा निऋति ने वहाँ पर ॥१३॥

गीतम्या स्नानदानाम्या शापमोक्षो भविष्यति ।

इत्युक्त्वा तानुभौ प्रीतो तत्रवान्तरधीयताम् ॥१४॥

संतोऽङ्गनां समादाय अद्रिः पैशाचमूर्तिमान् ।
 भ्रातुर्हनुमतः प्रीत्यै स्नापयामास मातरम् ॥१६॥
 तथैव हनुमान्गङ्गामादायाद्रिमतित्वरन् ।
 मार्जाररूपिणीं नीत्वा गीतम्यास्तीरमाप्तवान् ॥१७॥
 ततः प्रभृति सत्तोर्थं पैशाचं चाऽऽञ्जनं तथा ।
 ब्रह्मणो गिरिमासाद्य सर्वकामप्रदं शुभम् ॥१८॥
 योजनानां त्रिपञ्चाशन्मार्जारं पूर्यतो भवेत् ।
 मार्जारसंशितात्तस्माद्धनूमन्तं वृषाकपिम् (?) ॥१९॥
 पैशासंगममाख्यात सर्वकामप्रदं शुभम् ।
 तस्य स्वरूपं व्युद्दिश्य तत्रैव प्रोच्यते शुभा ॥२०॥

गौतमी बह्ना में स्नान और धान करने से उस घाव से छुटकारा
 हो जायगा । इतना कह कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए थे और वहीं
 पर वे अस्तर्पान हो गये थे ॥१६॥ इनके पश्चात् पैशाच मूर्ति वाले
 अद्रि ने अञ्जना को लेकर भाई हनुमान् की प्रीति के लिये माता का
 स्नपन कराया था ॥१६॥ उसी प्रकार से हनुमान भी बहुत ही क्षीप्रता
 करने हुए मार्जार रूपिणी अद्रि को लेकर गौतमी के तट पर प्राप्त हो
 गये थे ॥१७॥ जहाँ ममम ने लेकर वह तीर्थ पैशाच तथा अञ्जन प्रसिद्ध
 हो गया था । बह्ना के गिरि पर प्राप्त होकर वह परम शुभ तथा सब
 मनोरथों का पूर्ण करने वाला हो गया था ॥१८॥ निरेखन दोत्रके पूर्व
 मार्जार होता है और उस मार्जार तथा जाने से गृधराक्षि हनुमन्त पैशा-
 चदम नाम धारता है जो शुभ और सब मनोरथप्राप्तियों को पूर्ण करने
 वाला है । उसका स्वरूप और व्युद्दिष्ट परम शुभ वहीं पर कही जाय
 करती है ॥१९-२०॥

- ४१ — क्षुधातीर्थवर्णन

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं शृणु नारद तन्मनाः ।
 कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१॥
 शृष्टिरासितपुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः ।
 परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२॥
 गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चाग्नवारिणा ।
 आत्मनं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३॥
 वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा ।
 गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥
 समेन याच्न्नाश्रयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेद्मनि ।
 न भोक्ष्येऽहं क्षुधातोऽपि पीडितोऽपि कलेवरे ॥५॥
 गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेयं च सपदम् ।
 इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम् ॥६॥
 स्नात्वा क्षुधिर्यतमना उपविश्य कुशासने ।
 तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधां च परमापदम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—है नारद ! एक क्षुधा तीर्थ नाम वाला परम विख्यात है । अब तुम तन्मस्क होकर उसका श्रवण करो । उसके विषय मैं कथन करना मनुष्यों के लिये महान् पुण्य का प्रदान करने वाला तथा सब अभीप्सित मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है ॥१॥ बहुत प्राचीन काल में एक कण्व नाम धारी परम तपस्वी और वेदों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ ऋषि हुए थे । वह आश्रमों में इधर-उधर भ्रमण करते हुए भूख से अत्यन्त पीडित हो गये थे ॥२॥ अन्न और जल से समृद्ध एक परम पुण्य-गम गौतम मुनि का आश्रम था । अपने आपको क्षुधा से युक्त और गौतम को पूर्णतया सभी प्रकार से समृद्ध देखा था । जब कण्व ने इतनी अपने आप में और गौतम में विषमता देखी तो उसी समय में नन्द मुनि को उत्कट वैराग्य हो गया था । उन्होंने अपने मन में विचार किया था कि गौतम भी द्विजों में परम श्रेष्ठ है और मैं भी सर्वदा तपश्चर्या में

निष्ठित रहने वाला है ॥३-४॥ एक अपने ही समान मुनि से याञ्चा करना भी उचित नहीं प्रतीत होती है । अतएव मैं गौतम के घर में यद्यपि मैं दुग्धा से अत्यन्त उत्पीडित होते हुए भी और शरीर के पीडित होने पर भी वहाँ भोजन नहीं करूँगा ॥५॥ मुझे अब गौतमी गङ्गा के सन्निधि में ही चलना चाहिए और वही सम्पदाओं का भर्जन करना चाहिए । ऐसा ही अपने मन में दृढ निश्चय करके मेधा से सम्पन्न कण्व मुनि ने परम पावनी गौतमी गङ्गा के समीप में गमन किया था । वहाँ पर पहुँच कर कण्व ने स्नान किया था और परम पवित्र एवं सयत्न भन वाला होकर एक कुशा के आसन पर उपवेशन किया था । वहाँ पर उस कण्व मुनि ने गौतमी गङ्गा का स्तवन किया था और परमापदा दुग्धा के विषय में भी प्रार्थना की थी ॥६-७॥

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि,

नमः क्षुधे सर्वजनातिकारिणि ।

नमो महेशानजटोदभवे शुभे,

नमो महामृत्युमुखाद्विनिरुते ॥८॥

पुण्यात्मना क्षान्तरूपे क्रोधरूपे दुरात्मनाम् ।

सरिद्रपेण सर्वपा तापपापाहारिणी ॥९॥

क्षुधारूपेण सर्वपा तापपाप्मप्रदे नमः ।

नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि ॥

नम क्षान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०॥

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्वयम् ।

एक गङ्गा मनोहारि ह्यपर भीषणाकृति ॥

नमः कृताञ्जलिभूर्त्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तमः ॥११॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे ।

शंष्णवि व्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥

व्यम्बकस्य जटोदभूते गौतमस्याघनाशिनि ।

सप्तधा सागर यान्ति गोदावरि नमोस्तु ते ॥१३॥

सर्वपापकृता पापे धर्मकामार्थनाशिनि।

दुःखलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्य नमो नम ॥१४॥

श्री कश्यप मुनि ने कहा—हे मने ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम समर्पित है । आप तो परम आपत्तियों के हरण करने वाली हैं । हे क्षुधे ! आपको भी मेरा नमस्कार है । आप तो समस्त जनों की आति (पीडा) दूर कर देने वाली हैं । हे शुभे ! आप तो भगवान् महेश्वर की जटाओं से समुत्पन्न होने वाली हैं । आपको मेरा नमस्कार है । आप महामृत के मुख से विनिमृत होने वाली हैं आपकी प्रणाम है ॥१५॥ आप पुण्यात्मा जनों के लिये तो परम दान्त स्वरूप वाली हैं और वा दुष्ट आत्मा वाले जन हैं उनके लिये आप क्रोध रूपिणी हैं । आप एक सतिता के स्वरूप के द्वारा सभी जनों के पापों और पापों का हरण करने वाली हैं ॥१६॥ आप ही क्षुधर का स्वरूप धारण करके सुकरी खापी और पापी की प्रदान किया करती हैं । आपको मेरा नमस्कार है । हे धैर्य करी देवि ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे पापों का प्रतदन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है । हे देवि ! आप शक्ति कर देने वाली हैं और हे देवि ! आप दण्डिता का विनाश करने वाली हैं । आपको नमस्कार है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से स्तुति करने वाले उन कश्यप मुनि के समक्ष में दो स्वस्व प्रपट होकर उपस्थित हो गये थे । एक तो उन की म गङ्गा का मनोहर स्वरूप था और दूसरा परम भीषण आकृति वाला था । वह द्विजोत्तम दोनों हाथों की जोड़ कर नमस्कार करते उनके सामने खड़ा हो गया था ॥१८॥ कश्यप मुनि ने कहा—हे समस्त मनुजों के भी मङ्गल रूप वाली ! हे ब्राह्मि ! हे शुभे ! मातृभरि ! हे वैष्णवि ! हे श्यम्बर ! हे दवि गोदावरि ! आपको सेवा में मेरा सादर प्रणाम है । हे भीतम मुनि के अपों का विनाश करने वाली ! आपका चक्र तो भगवान् श्यम्बर की जटाओं से ही हुआ था । आप सा स्वयं तो गामर में गमन किया करती हैं । हे गोदावरि ! आपको मेरा नमस्कार है ॥१९-२३॥ हे शुभे ! आप तो तप वाली के पाने वाली के पान कर वाली हैं तथा धर्म और काम तथा अर्थ इन तीनों का मा ।

विनाश कर देने वाली है । हे देवि ! आप परमाधिक दुःख और लोभ से परिपूर्ण हैं । आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

तत्कण्ववचनं श्रुत्वा सुप्रीते आहसुद्विजम् ॥१५॥

अभीष्टं वद कल्याण धरान्धरय सुव्रत ॥१६॥

प्रीयच प्रणतो गङ्गा कण्वः क्षुधा यथाक्रमम् ॥१७॥

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम ।

आयुर्वित्तं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८॥

इत्युक्त्वा गीतमो गङ्गा क्षुधां चाऽऽह द्विजोत्तमः ॥१९॥

मयि मद्वंशजे चापि क्षधे तृष्णे दरिद्रिणि ।

याहि पापतरे रुक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०॥

अनेन स्तवेन ये वै त्वा स्तुवन्ति क्षुधातुराः ।

तेषा दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः ॥२१॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि की इस स्तुति के बचनो की सुन-
कर वे दोनों देखियो बहुत प्रसन्न होकर उस द्विज कण्व से कहने लगी ।
गङ्गा और क्षुधा दोनों ने कहा—हे सुव्रत ! हे कल्याण ! अब तुम अपने
अभीष्ट वरदानो की याचना कर लो ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—
कण्व मुनि ने परम प्रणत होकर गङ्गा देवी और क्षुधा से यथाक्रम
निवेदन किया था ॥१७॥ कण्व ने कहा—हे देवि ! हे देवि ! मेरी मनोज्ञ
कामनाओ की विभव-आयु वित्त और भुक्ति तथा मुक्ति को हे गंगे ! मुझे
प्रदान कीजिए ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह उत्तम द्विज कण्व इस
प्रकार से गीतमी गङ्गा देवी से निवेदन करके फिर क्षुधा से कहने लगा
था ॥१९॥ कण्व ने कहा—हे युधे ! हे तृष्णे ! हे दरिद्रिणि ! हे पापतरे !
हे रुक्षे ! मुझ में और मेरे वन में समुत्पन्न मे फिर आप कभी भी मत
गमन करना, यही मैं आपसे वरदान चाहता हूँ । इस स्तव के द्वारा जो
लोग क्षुधा से आतुर होकर आपकी स्तुति किया करते हैं उनको कभी
भी दरिद्रता का दुःख न होवे—यही मेरा दूसरा वरदान है जिसको मैं
आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२०-२१॥

अस्मिंस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् ।
 ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२॥
 यस्त्विदं पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे ।
 तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भयं स्याद्वरोऽपरः ॥२३॥
 एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमासयम् ।
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्गा क्षुधाभिधम् ॥
 सर्वपापहरं वत्सा पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥२४-२५॥

इस महा पुण्यमय महान् तीर्थ में जो पुरुष स्नान-दान-होम और जप आदि किया करते हैं और भक्ति की भावना से युक्त होते हैं वे सभी लक्ष्मी के भाजन हो जायें ॥२२॥ जो पुरुष इस स्तोत्र का पाठ करता है चाहे किसी तीर्थ में इसका पाठ करे या घर में ही बैठकर करे उसको दरिद्रता के दुःखों से भय कभी भी न होवे—यह भी मुझे एक अन्य वरदान प्रदान कीजिए ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में “ऐसा ही होगा”—यह कण्व मुनि से कहकर वे दोनों गङ्गा और क्षुधा बेनियाँ अपने निवास गृह की पत्नी गयी थीं । तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ क्षुधा नाग वाला कण्व और गाङ्गा इन नामों से विख्यात हो गया था । हे वत्स ! यह तीर्थ समस्त पापों का हरण करने वाला है और पितृगणों की प्रीति के वर्धन करने वाला होता है ॥२४-२५॥

—*—

४२—जनस्थानतीर्थवर्णनं

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम् ।
 चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥१॥
 वंस्वतान्वये जातो राजाऽमृज्जनकः पुरा ।
 सोऽपापतेस्तु सनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२॥

धर्मार्थं काममोक्षाणां जनकां जनको नृपः ।
 अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥
 याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
 तमपृच्छन्नृपश्चेहो याज्ञवल्क्य पुरोहितम् ॥४॥
 भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णोति मुनिसत्तमैः ।
 दासीदासेभतुरगरयाद्यं भुक्तिरुत्तमा ॥५॥
 किं वन्तविरसा भुक्तिर्भुक्तिरेका निरत्यया ।
 भुक्तेर्भुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्ति कथं भवेत् ॥६॥
 सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः ।
 तद्ब्रूहि द्विजशार्ङ्ग ल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो "जन-स्थान"—इस शुभ नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ का विस्तार चार योजन का है और यह केवल स्मरण करने ही से मुक्ति मनुष्यों को प्रदान कर दिया करता है ॥१॥ बहुत प्राचीन समय में पहिले वैवस्वत मनु के वंश में एक जनक नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था। उस राजा ने जलो के स्वामी की गुण गणी की सागर पुत्री के साथ विवाह किया था ॥२॥ राजा जनक की वह भार्या धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की जगक थी। उस राजा के रूप और गुणों ने अनुरूप होने से ही उसकी भार्या भी गुणों की धान थी ॥३॥ विप्रों का स्वामी याज्ञवल्क्य उस राजा जनक का पुरोहित था। उस नृपों में परम श्रेष्ठ जनक ने अपने पुरोहित याज्ञवल्क्य जी से एक बार पूछा था ॥४॥ राजा जनक ने कहा—परम श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा भुक्ति (सासारिक गुणों का उपभोग) और मुक्ति ये दोनों ही श्रेष्ठ वस्तु हैं। दासी-दाम-हाथी-घोड़े-रथ आदि के द्वारा गुणों का उपभोग करना भुक्ति होनी है जो कि परमोत्तम है और प्रायः सभी इसकी अभिलाषा करते हैं ॥५॥ किन्तु विषयों के लालच का भोग करना अच्छा तो प्रतीत होता है अन्त में वह भुक्ति निरस्त हो जाया करती है अर्थात् उसका आनन्द नष्ट हो जाता है क्योंकि इसकी एक अवधि हुआ करती है। हाँ, मुक्ति एक ऐसी है जिसका सभी विनाश

नही होता है और उसमें नीरसता आती ही नहीं है । अतएव इस भुक्ति से मुक्ति परम श्रेष्ठतम होती है तो हे भगवन् ! यह बातलाइये इस भुक्ति से मुक्ति की प्राप्ति के लिये कैसे गमन किया जाता है ? ॥६॥ सभी के सङ्ग के परित्याग कर देने से जो मुक्ति की प्राप्ति बतलायी गयी है वह तो बहुत ही दुःखों के साथ हो सकती है क्योंकि सबके सङ्ग का परित्याग करना ही बहुत दुष्कर कार्य है । हे द्विज शार्ङ्ग ! अब आप कृपा कर यही बातलाइये कि सुख पूर्वक मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? ॥७॥

अपापतिस्तत्र गुह्यं श्वशुर प्रियकृत्तया ।

त गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥

याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुण तदा ।

गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

द्विधा तु सस्यिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि ।

येदे च निश्चिता मार्गं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण ॥१०॥

सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थं चतुष्टयम् ।

अकर्मणवाऽऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते ॥११॥

कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम ।

सत्समात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वदिक नृभिः ॥१२॥

तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह मानवा ।

अकर्मण कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३॥

जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धमवित् ।

आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४॥

याज्ञवल्क्य महागुनि ने कहा—जलो का स्वामी वरुण देव आपने गुह्यं श्वशुर तथा आपको प्रिय करने वाले हैं । हे नृप ! आप उही वरुण देव के समीप में गमन करिये । वे आपने हित की बात का उपदेश अवश्य ही करेंगे ॥८॥ तभी समय में याज्ञवल्क्य मुनि और राजा जनक राजा वरुण देव के समीप में पहुँचे थे । यहाँ आकर इन दोनों ने व्यग्रता से रहित होकर यथाक्रम मुक्ति के मार्ग को पूछा था ॥९॥ वरुण देव ने कहा—यह मुक्ति दो प्रकार की सस्यिता होती है । कर्मद्वार में और

धनर्म मे भी मुक्ति होती है अर्थात् कर्मों के करते हुए भी मुक्ति होती है तथा कर्मों का सर्वथा त्याग करके भी मुक्ति प्राप्त की जाया करती है । वेद मे इसका मार्ग निश्चित किया गया है । कर्म न करने से कर्मों का करना अधिक श्रेष्ठ होता है ॥१०॥ ये चारो प्रकार के पुरुषार्थ सभी कर्मों के द्वारा बख है और अन्तमे से भी है अतएव यह मुक्ति का मार्ग ही मृपा कहा जाता है ॥११॥ हे नृप श्रेष्ठ । सगस्त धान्य कर्म से ही हुआ करते है इसी लिये मनुष्यों को सर्वात्मभाव से वैदिक कर्म के द्वारा मानव भुक्ति एव मुक्ति दोनों को इस लोभ मे प्राप्त किया करते है । कर्म न करने से कर्मों का करना पुण्यमय होता है और वह कर्म भी आश्रमो मे रह कर ही करना चाहिए ॥१२-१३॥ हे राजेन्द्र । वह जाति के आश्रित है । उनमे भी धर्म के वेत्ता श्रवण करो । वे आश्रम चार होते है, जो हे मानद । कर्मों के द्वारा हुआ करने है ॥१४॥

चतुर्णामाश्रमाणा च गार्हस्थ्य पुण्यद स्मृतम् ।

तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान् ।

वरुण पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतु ॥१६॥

को देश किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।

तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सवज्जोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

पृथिव्या भारत धर्म दण्डक तत्र पुण्यदम् ।

तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥

तीर्थानां गीतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम् ।

तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

याज्ञवल्क्यश्च जनको वाच श्रुत्वा ह्यपापते ।

वरुणेन ह्यनुजाती स्वपुरी जग्मतुस्तदा ॥२०॥

अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृप ।

याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥

इन चारो आश्रमो मे गार्हस्थ्य आश्रम परम पुण्य के प्रदान करने वाला बताया गया है । इस गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने से भुक्ति और

मुक्ति ये दोनों ही हो जाती हैं—मेरा ऐसा ही विचार है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—राजा जनक और परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य मुनि ने वरुण देव के उन वचनों का ध्वज करके उन दोनों ने पुन वरुण देव का पूजन करके फिर उनसे पूछा था ॥१६॥ कौन सा वह देश है और कौन सा तीर्थ है जो मुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाला होता है ? हे गुरो मे परम श्रेष्ठ ! यही आप हमको बतलाने की कृपा कीजिए । आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं ॥१७॥ वरुण देव ने कहा—पृथिवी में भारत वर्ष है और उस भारत में भी एक दण्डक नामक क्षेत्र है जो परम पुण्य का प्रदान करने वाला है । उस क्षेत्र में किया हुआ कर्म मनुष्यों की मुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥१८॥ सब तीर्थों में गौतमी गङ्गा परम श्रेष्ठ है जो कि मानवों को भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाली होती है । वहाँ पर यज्ञ का यजन करने से और दान देने से योग से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपो (जलो) के स्वामी (वरुण) के इन वचना का ध्वज करके याज्ञवल्क्य मुनि और जनक दूध दोनों ही वरुण के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर उस समय में अपनी पुरी को चले गये थे ॥२०॥ फिर राजा जनक ने अश्वमेध आदि कर्म किये थे और विभ्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने उस दूध को यजन कराया था ॥२१॥

गङ्गातीर समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट् ।
 तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
 मुक्तिं प्राप्नुमहाभागा गौतम्याश्च प्रसादत ।
 तस्य प्रभृति तत्तीर्थं जरस्थानेति विश्रुतम् ॥२३॥
 जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् ।
 चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
 तत्र स्नानेन दानेन पितृणां नृपणोऽनु ।
 तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

उस राजा ने गौतमी गंगा के तट पर ममाश्रित होकर यज्ञ का यजन करने से मुक्ति प्राप्त की थी । तथा वहाँ पर कर्म के द्वारा जनक आदि राजाओं ने जो महान् भाग वाले थे, गौतमी गङ्गा के प्रसाद से मुक्ति को प्राप्त किया था । तभी से लेकर वह तीर्थ 'जनस्थान'—इस नाम से संसार में विख्यात हो गया है ॥२२-२३॥ जनको के जो यज्ञों के यजन करने के स्थल हैं वे ही जनस्थान नाम से प्रख्यात हैं । ये स्थल चार योजन के विस्तार वाले हैं और इनके केवल स्मरण करने ही से समस्त पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥२४॥ वहाँ पर पहुँच कर स्नान-दान और पितृगणों का तर्पण करने से अथवा केवल इस तीर्थ के स्मरण करने से भी एवं वहाँ गमन करके भक्ति भाव से सेवन करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और मुक्ति को भी निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥२५-२६॥

४३—गरुडतीर्थवर्णन

गरुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम् ।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१॥
मणिनाग इति त्वासीच्छेपपुत्रो महाबलः ।
गरुडस्य भयाद्भवत्या तोपयामास शकरम् ॥२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वरः ।
तमुवाच महानागं वरं वरय पन्नग ॥३॥
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम् ।
तथेत्याह च त शशुर्गरुडादभय भवेत् ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् ।
क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपतः ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ मुखशीतले ।
गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते तं देशमपि यात्यसौ ॥६॥

गरुडः पद्मं दृष्ट्वा चरन्त निर्भयेन तु ।

त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्यस्य वेश्मनि ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गरुड नाम वाला जो तीर्थ है वह सब विष्णो की प्रशान्ति के प्रदान करने वाला है । हे नारद ! उस तीर्थ के प्रभाव को मैं बतलाऊँगा । उसको आप श्रवण करो और यत्न के साथ ही भली-भाँति सुन लो ॥१॥ एक महान् बलवाली शैपनाग का पुत्र मणिनाग था । उसने गरुड के भय से डर कर बहुत ही भक्ति की प्रबल भावना से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया था ॥२॥ उसकी भक्ति से भगवान् गरुड भी महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे और उस महानाग से उन्होंने कहा था—हे पन्नग ! वरदान का वरण कर लो ॥३॥ उस नाग ने कहा था—हे प्रभो ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं तो मुझको गरुड से कोई भी भय न रहने का वरदान मुझे प्रदान कीजिए । तब तो भगवान् शम्भु ने उससे कहा था कि तुझे गरुड से अभय हो जायगा ॥४॥ फिर वह नाग गरुड के अनुज गरुड से सर्वथा निडर होकर निकल गया था और जहाँ पर क्षीर सागर के समीप से क्षीर सागर में स्नान करने वाले रहते थे ॥५॥ यह नाग सुख पीतल स्थल में इधर-उधर विचरण किया करता था । जहाँ पर गरुड भी रहा करता था उस भाग में भी यह जाया करता था क्योंकि इसको फिर उसको गरुड से तो कोई भय शेष नहीं रह गया था ॥६॥ निर्भयता पूर्वक सञ्चरण करने वाले उस पन्नग को देखकर गरुड ने उस महानाग को पकड़ कर अपने ही घर में डाल दिया था ॥७॥

त वदध्वा गारुडे. पार्श्वं गरुडो नागसत्तमम् ।

एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेश जगत्प्रभुम् ॥८॥

नूनं नागो न चाऽऽप्याति भक्षितो बद्ध एव वा ।

गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न स्रज्जेत् ॥९॥

नन्दिनो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा षाभुरयाग्रीत् ॥१०॥

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् ।

गत्या त जगतामीश विष्णुं स्तुहि जनादेनम् ॥११॥

वद्धं नागं काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम् ।

तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रियः पतिम् ॥१२

व्यज्ञापयत्स्वयं वाक्यं विष्णुं लोकपरायणम् ।

नारायणः प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीत् ॥१३

गरुड ने उस नागो में श्रुति को गरुड पाशो से बाँध कर पर में डाल रखवा था । इसी बीच में नन्दी ने जगत् के प्रभु ईश्वर से कहा था ॥१२॥ नन्दिकेश्वर ने निवेदन किया था—वह नाग यहाँ पर नहीं आता है मतः निश्चय ही या तो वह खा लिया गया है अथवा बाँधकर कहीं पर उसे डाल दिया है । हे सुरेश्वर ! गरुड के द्वारा ही ऐसा किया गया है कि यदि यह जीवित भी है तो वही पर गमन नहीं कर रहा है ॥१३॥ श्री महाजी ने कहा—नन्दी के इस वचन का ध्यान करके और जान करके भगवान् राम्यु ने कहा था ॥१४॥ शिवजी ने कहा—इस समय में वह नाग गरुड के घर में बाँधा हुआ पड़ा है । तुम सीधे जाओ और जगती के स्वामी भगवान् जनार्दन विष्णु का स्तवन करो ॥१५॥ काश्यप अर्थात् ऋषय भुनि के पुत्र गरुड के द्वारा वद्ध विषे गये नाग को मेरे वचन से स्वयं तुम बर्तू ले आओ । प्रभु शिव के उस आदेश वचन को सुन कर दुरन्त ही नन्दी श्री के स्वामी भगवान् विष्णु के समीप में पहुँच गया था और उस नन्दी ने लोक परायण विष्णु की सेवा में भगवान् शिव के आदेश से इतना दिया था तब तो प्रसन्न मन वाले नारायण ने गरुड से यह वचन कहा था ॥१२-१३॥

विनतात्मज मे वाक्याप्रन्दिने देहि पत्रगम् ।

कम्पमानस्तदाकण्य नेत्युवाच विहंगमः ॥

विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनीऽन्तिके ॥१४

यद्यत्प्रियतम किञ्चिद्भृत्येभ्यः प्रभविष्णवः ।

दास्यन्त्यन्ये भवान्नेव मयाऽऽनीतं हरिष्यते ॥१५

परम देव त्रिनयन नाग मोदयति नन्दिना ।

मयोपपादित नाग त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६

त्वा बहामि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया ।
 भयोपपादितं नाग प्रक्तुं देहीति नोचितम् ॥८७॥
 सता प्रभूणा नेय स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम् ।
 सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान् ॥८८॥
 दैत्यास्त्रयसि सप्राप्ते मद्वलेनेव केशव ।
 अहं महाव्रतीत्येव मुधैव श्लाघते भवान् ॥८९॥
 गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगदाधरः ।
 विहस्य नन्दिनः पाश्वर्कं पश्यद्भिर्लोकपासकैः ॥९०॥
 इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान् ।
 त्वद्वचनदसुरान्सर्वास्तेऽप्येह सगसत्तम ॥९१॥

भगवाद् विष्णु ने कहा—हे विनता के पुत्र ! मेरी आज्ञा से उस
 पक्षी को इसी समय मे नन्दी को दे दो । यह सुन कर कर्पिते हुए पक्षी
 गरुड ने 'नही दूँगा'—यह वचन कहा था । उस नन्दी के समीप में ही
 उस सुपर्ण (गरुड) ने कोप से भगवाद् विष्णु को भी ऐसा कह दिया
 था ॥८५॥ गरुड ने कहा—जो जो भी कुछ प्रियतम हुआ करता है
 समर्प्य रक्षामें अपने भृत्यों को दिया करते हैं यह तो अन्य स्वामियों की
 बात है । आप मेरे द्वारा लाये हुए इन नाग को वही हरण करेंगे ॥८५॥
 आप विनेत्र देव भगवान् शिव को ही देख भीजिए कि ये नन्दी के द्वारा
 नाग को छुड़वा रहे हैं । मेरे द्वारा लाये हुए नाग को मेरे स्वामी होकर
 भी जान इस नन्दी को दिला रहे हैं ॥८६॥ हे स्वामिन् ! मैं तो आपका
 बाहन सदा किया करता हूँ । मुझे तो सदा ही आपको देना चाहिए ।
 मेरे द्वारा प्राप्त किये गये नाग को आप कहते हैं 'दे दो'—यह तो सर्वथा
 अनुचित ही है ॥८७॥ सद्वृत्तिकारी सग प्रभुओं की वृत्ति ऐसी होती है
 कि प्राप्त पदार्थ चाहिए और मरुत्तुन तो अपने भृत्यों के लिये दिया ही
 करते हैं किन्तु आप तो मेरे द्वारा जो प्राप्त किया गया है उसका भी
 हरण करने काँते हो रहे हैं ॥८८॥ हे भगवन् ! सप्राप्त में आप मेरे ही
 वचन के द्वारा दर्शनों के ऊपर विजय प्राप्त किया करते हैं । आरही ओ
 यद इत्यादि कि मैं बड़ा भारी बलवान् हूँ वह तो दिखा ही है ॥८९॥

• श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त भोक्तृ पासकों के देखते हुए गरुड के इन वचनों को वक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु ने सुनकर नन्दी के समीप में उनको हँसी का गर्द थी ॥२०॥ भगवान् महा बुद्धिमान् विष्णु ने कहा था कि हे चणो मे परम श्रेष्ठ ! आह मेरा वहन करके कृपा हो । गये हैं यमोंकि मैं तुम्हारे ही वल से सब असुरों को जीतूँगा ॥२१॥

इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मज्ञान्तकोपोऽब्रवीदिदम् ।

वहाङ्गुलिं फरस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके ॥२२॥

गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत् ।

सत्प्रं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम ॥२३॥

न्यस्तायां च ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत् ।

कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूणितोऽभवत् ॥

ततः कृताक्षलिर्दीनो व्यथितो सज्जयाऽन्वितः ॥२४॥

आहि आहि-जगन्नाथ भृत्यं मामपराधिनम् ।

त्व प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५॥

अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः ।

कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६॥

वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् ।

रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्ममिम्बुजनिवासिनि ॥

कमले बालक दीनमार्तं तनयवत्सले ॥२७॥

हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर श्री पति ने अपने कोष को शान्त करके उससे यह कहा था कि इस नन्दी के समीप में बहुत ही शीघ्र मेरे हाथ की कनिष्ठा अंगुलि का वहन करो ॥२२॥ इसके पश्चात् गरुड के मस्तक पर उसको रखकर फिर यह कहा था—हे विहङ्गम ! यह सर्वथा सत्य है कि तुम नित्य ही मेरा वहन किया करते हो अर्थात् मुझे अपने ऊपर चढ़ाकर ले जाया करते हो । अब उसके धर्म को देखो ॥२३॥ इसके उपरान्त उस अंगुलि के रखने पर तब गरुड का शिर कुक्षि में घुस गया था और यह कुक्षि भी चरणों में अन्दर प्रविष्ट होकर चूणित हो गया था । तब तो यह हाथों को जोड़कर अत्यन्त दीन होता हुआ बहुत

ही पीडित हो गया था और लज्जा से भी युक्त हो गया था ॥२५॥
 गरुड ने कहा—हे जगन्नाथ ! मुझ परमाधिक अपराधी का परित्राण
 करिए, मैं आपका कृत्य हूँ मेरी रक्षा कीजिए । आप तो सभी लोको के
 प्रभु और उनके धारण करने वाले हैं क्या आप ही धारण करने के योग्य
 भी हैं ॥२६॥ प्रमाविष्णु सहस्रो अपराधो को भी क्षमा किया करते हैं ।
 जो अपना भक्तजन कोई अपराध भी कर देता है तो उत पर भी जिन
 दयालु प्रभु की बहुत बड़ी कृपा हुआ करती है आप ऐसे ही प्रभु हैं । सब
 मुनिजन परम कृपा करने वाले दया के सागर आप ही को कहा करते
 हैं । हे पमल मैं निवास करने वाली माता ! आप तो समस्त जगत् की
 अम्बा हैं । अधिक भास बेरी आप रक्षा करिए । हे कमले ! आप तो
 अपने पुत्रों पर कृपा एवं प्यार करने वाली हैं । इस परम दीन आर्त
 घातण की रक्षा कीजिए ॥२६-२७॥

ततः कृपान्विता देवी श्रीरप्याह जनादनम् ॥२८॥

रक्ष नाथ स्वक भृत्य गरुड विपदं यतम् ।

जनादन उवाचेद नन्दिन शम्भुबाहनम् ॥२९॥

नय नाग सगरुड शम्भोरन्तिकमेव च ।

तत्प्रयादात् गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥

आत्मीय च पुता रूप गरुडः समवाप्स्यति ॥३०॥

सयेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च ।

शर्तः स शकर मत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥

दाकरोऽपि गरुत्मन्त प्रोवाच शशिसेखरः ॥३१॥

याहि गङ्गा महाबाहो गीतमी लोकपावनीम् ।

सर्वकामप्रदा शान्ता तामाप्नुत्य पुनर्वपुः ॥३२॥

प्राप्स्यसे सर्वकामाश्च शतधाऽय महेश्रया ।

सर्वानोपतप्ता ये दुर्द्वान्मूलिनीधराः ॥

प्राणिनांऽभीष्टदा तेषां धरणं खग गीतमी ॥३३॥

तदावय प्रचनो भूत्वा ध्रुत्वा तु गरुडोऽन्यथा ॥

गङ्गामाप्नुत्य गरुः शिष्यं विष्णुं ननाम सः ॥३४॥

तत स्वर्णमय पक्षी यज्जदेहो महाबल ।
 वैगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधी ॥३५॥
 तत प्रभति तत्तीर्थं गरुड सर्वकामदम् ।
 तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नर ॥
 सर्वं तदक्षय वत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से प्रार्थना करने पर श्री देवी के हृदय में कृपा उभर आई और वे श्री जनावन से कहने लगी थी ॥२८॥ कमला देवी ने कहा—हे नाथ ! अब आप कृपा करके अपने भृत्य गरुड की रक्षा कीजिए क्योंकि वह इस समय में विपत्ति से ग्रस्त हो रहा है । तब तो जनार्दन प्रभु ने भगवान् शम्भु के वाहन नन्दी से यह कहा था ॥२९॥ श्री विष्णु देव ने कहा—जाओ गरुड के सहित इस नाग की भगवान् शम्भु के समीप में ले जाओ । आपके प्रसाद से यह गरुड भी महेश्वर प्रभु के द्वारा निरोक्षित होने का सुअवसर प्राप्त कर लेगा । तथा यह गरुड पुनः अपने आत्मीय रूप की भी प्राप्त कर लेगा ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर वह वृषभ 'नन्दी' उस नाम और गरुड के साथ धीरे २ भगवान् शङ्कर के समीप चला गया था और वहाँ पर पहुँच कर उनसे सम्पूर्ण हाल निवेदन कर दिया था । भगवान् शङ्कर भी उस समय में गरुड से कहने लगे ॥३१॥ श्री शिव ने कहा—हे महाबाहो ! सब शोको को पावन बना देने वाली गीतमी गङ्गा पर चले जाओ । सभी मनोरथों की पूर्ण करने वाली परम शान्तस्वरूप से युक्त उस गीतमी गङ्गा में निमज्जन करके पुनः शरीर प्राप्त करोगे और सभी कामनाओं को संकटों तथा सहस्रों रूप से पा लोगे । जो सभी तरह के पापों से सतृप्त होते हैं और जो दुर्भाग्य से उन्मूलित उद्यम करते हैं ऐसे प्राणियों के लिये वह अभीप्सित मनोरथों की पूर्ण कर देने वाली है । हे मय ! गीतमी उनकी शरण अर्थात् रजिका हुआ करती है ॥३२-३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम प्रणत होकर उनके वचन की सुनकर गरुड गीतमी पर चला गया था और वहाँ गीतमी गङ्गा में निमज्जन करके उस गरुड ने भगवान् शिव एवं विष्णु की

प्रणाम किया था ॥३४॥ उसके पश्चात् वह पक्षी वषट् देह धारण महान् बलवान् वेग से मुक्त हो गया था और ह मुनिथेष्ठ । फिर वह सुधी भगवान् विष्णु की सत्रिधि से प्राप्त हो गया था ॥३५॥ तभी से लेकर वह गारुड तीर्थ प्रख्यात हो गया है जो कि समस्त कामनाओं को पूरा कर देने वाला है । यहाँ पर जो कोई मनुष्य प्रणत होकर स्नान तथा दान आदि जो कुछ भी सरल किया करता है हे वरस । वह सभी शिव और विष्णु के प्रिय करने वाला तथा रुख्य हो जाता है ॥३६॥

— * —

४४—अग्नितीर्थवर्णन

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वव्रतुफलप्रदम् ।
 सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फल शृणु ॥१॥
 जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाद् ।
 हव्य वहन्त देवाना गौतम्यास्तीर एव तु ॥२॥
 ऋषीणां सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् ।
 भ्रातु प्रिय तथा दक्ष मधुदितिसुतो बली ॥३॥
 जघान ऋषिमुह्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि ।
 हव्य देवा नव चाऽऽपुमृते वै जातवदसि ॥४॥
 मृते भ्रातरि स त्वग्नि प्रिये व जातवदसि ।
 कोपेन महताऽऽविष्टो गङ्गाम्भे समाविशत् ॥५॥
 गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानृपा ।
 जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो भता ॥६॥
 यथाग्निजलमाविष्टस्त देश सर्वे एव ते ।
 आजग्मुर्विवृधा सव ऋषय पितरस्तथा ॥७॥
 विनाऽग्निना न जीवाम स्तुवन्तोऽग्नि विशेषत ।
 अग्नि जनयत दृष्ट्वा प्रिय चोचुदिवीक्षस ॥८॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब ऋतुओं के पुण्य फल को प्रदान करने वाला अग्नि तीर्थ—इस नाम से तीर्थ ससार में प्रसिद्ध है। यह तीर्थ समस्त विघ्नों का लपशमन करने वाला है। अब इस अग्नि तीर्थ का फल सुनो ॥१॥ वह अग्नि का भाई हर्यवाट् 'जातवेदा'—इस नाम से प्रख्यात है। गौतमी के तट पर ही वह देवों के लिये हव्य का वहन किया करता है ॥२॥ दिति के पुत्र मधु ने जो बहुत बलवान् था ऋषियों के सत्र सदन में भाई के परम प्रिय तथा अतीव दक्ष अग्नि के उत्तम भाई को सब ऋषियों के तथा सुरों के देखते हुए ही मार दिया था। उस जात वेदा के मृत हो जाने पर देवगण अपना हव्य नहीं प्राप्त किया करते थे ॥३-४॥ वह अग्नि परम प्रिय अपने भाई जात वेदा के मर जाने पर महान् क्रोध में आविष्ट होकर गङ्गा में जल में समाविष्ट हो गया था ॥५॥ अग्नि देव के गङ्गा के जल में समाविष्ट हो जाने पर सब देवगण और मनुष्यों ने अपने जीव का उत्सर्ग कर दिया था बयो कि ये सभी अग्नि जीव ही माने गये हैं ॥६॥ जिस स्थान पर अग्नि जल में प्रविष्ट हुआ था उसी स्थल पर वे सब देवगण-समस्त ऋषि लोग और सब पितृगण वहाँ पर आगये थे ॥७॥ सबने विशेष रूप अग्नि का स्तवन किया था और वह रहे थे कि हम बिना अग्नि के नहीं जीवित रहेंगे। अग्नि को जल के अन्दर गया हुआ देखकर देवों ने उसका प्रिय कहा था ॥८॥

देवाङ्गीवय हव्येन कव्येन च पितृ स्तथा ।

मानुषानन्नपाकेन बीजाना वत्तेदनेन च ॥९॥

अग्निरप्माह सान्देवाञ्छक्ती यो मे गतोऽनुजः ।

क्रियामाणो भवत्कार्यं या गतिर्जातिवेदसः ॥१०॥

सा वाऽपि स्यान्मम मुरा नीत्साहे कार्यसाधने ।

कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवता जातवेदसः ॥११॥

इमां स्यतिमनुप्राप्तो न जाने मे वय भवेत् ।

एह चामुत्र च व्याप्ती सत्तिरप्यथ नो भवेत् ॥१२॥

अथापि क्रियमाणो वै कार्ये सेव गतिर्मम ।

देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा ॥१३॥

आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्ती शक्तिश्च दीयते ।

प्रयाजाननुयाजोश्च दास्यामो हव्यवाहन ॥१४॥

देवो ने कहा था—हे अग्ने ! आप हव्य के द्वारा देवों को जीवन प्रदान करो—कर्म पहुँचा कर पितरों को जीवित रखो—अन्न के परिपाक के द्वारा मनुष्यों को जीवन हो तथा क्लेदन से वीजों को जीवन दो ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे अग्नि ने भी उन देवों से कहा था कि जो समय मेरा छोटा भाई था वह तो अब चला ही गया है अर्थात् मृत हो गया है । आप लोगों के कर्म के करने पर भी जात वेदा की जो यह गति हुई है वही मेरी भी गति हो सकती है अतएव हे सुरगणों ! मुझे आप लोगों के कार्य के साधन करने में कुछ भी उत्साह नहीं होता है । सब प्रकार से आप लोगों के कार्य को करने वाले उस जात वेदा की यह स्थिति हो गयी है तो मैं नहीं जानता हूँ कि मेरी किस प्रकार की गति हो जावे । यहाँ पर और परलोक में व्याप्ति में भी हमारी शक्ति है ॥१०-१२॥ तो भी कार्य के करने पर वही मेरी भी गति हो जायगी जो जात वेदा मेरे भाई की हुई है । तब तो देवों ने उससे कहा था तथा ऋषियों ने भी सर्व भाव से कहा था कि कर्म में आयु और व्याप्ति में प्रीति तथा शक्ति दी जाती है । ह हव्य वाहन ! प्रमान अनुयाजों को दोगे ॥१३-१४॥

देवाना त्व मुख श्रेष्ठमाहृत्य प्रथमास्तव ।

त्वया दत्त तु यदब्रवी भोदयाम सुरसत्तम ॥१५॥

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथाक्रमम् ।

इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा ॥१६॥

सर्वत्र वह्निरभय समयोऽभूत्सुराजया ।

जातवेदा बृहद्भानु सप्तारविनीलस्रोहित ॥१७॥

जलगर्भं शमीगर्भं यज्ञगर्भं स उच्यते ।

जलादाकृष्याविबुधा अभि(भ्य, पिच्यवि(श्चन्वि)भावसुम् ॥१८॥

उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत् ।
यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते ॥१६॥
तत्र सप्त शतान्यासस्तीर्थानि गुणवन्ति च ।
तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान् ॥२०॥
अश्वमेधफलं साग्रा प्राप्नोत्यविकलं शुभम् ।
देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम् ॥२१॥
अग्निप्रतिष्ठितं लिङ्गं तत्राऽऽस्तऽनेकवर्णवत् ।
तद्देवदर्शनादेव सर्वं क्रतुफलं लभेत् ॥२२॥

हे अग्ने ! आप देवों के परम श्रेष्ठ मुख हैं और प्रथम आहुतियाँ आपकी ही हैं । हे सुरों में श्रेष्ठ ! आप के द्वारा दिया हुआ द्रव्य ही हम ग्रहण कर भक्षण करेंगे ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर वह क्रमानुसार देवों के वाक्य से वह वह्नि सन्तुष्ट हुआ था । यहाँ पर-परलोक में- व्याप्ति में-हव्य में तथा लौकिक में सर्वत्र वह्नि अभय और समर्थ सुरों की आज्ञा से हो गया था । वह फिर जात वेदा-बृहद्भानु सप्ताचि-नील लोहित-जलगर्भ-क्षामी गर्भ और यज्ञ गर्भ कहा जाया करता है । देवों ने उसको जल से आच्छिद्य करके और विभावसु का अभिषेचन करके उभयत्र पद में वास वाला सर्वत्र गमन करने वाला तन से अग्नि हो गया था । सुरगण जिस मार्ग से वहाँ समागत हुए थे उसी से वे फिर चले गये थे और वह वह्नि तीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१६-१६॥ वहाँ पर सात सौ तीर्थ हैं जो गुणों वाले हैं । उन तीर्थों में जो कोई जितात्मा मुख्य स्नान और दान किया करता है वह साग्रा अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का सम्पूर्ण एव परम शुभ पुण्य फल का साम किया करता है । वहाँ पर ही देव तीर्थ है और वहाँ पर ही जात-वेदस आग्नेय है ॥२०-२१॥ वहाँ पर अनेक चणों वाला अग्नि प्रतिष्ठित लिङ्ग है । उस देव के दर्शन मात्र से ही सब ऋतुओं के करने का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२२॥

४५—ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णन

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः ।
 तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१॥
 आसीत्पृथुश्च या नाम प्रियः कक्षीवतः सुतः ।
 न दारसग्रहं लेभे वैराग्याग्निपूजनम् ॥२॥
 कनीयास्तु समर्थोऽपि परिवृत्तिभयान्मुने ।
 नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नीनामुपासनम् ॥३॥
 ततः प्रोचुः पितृगणा, पुनः कक्षीवतः शुभम् ।
 ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वच ॥४॥
 ऋणनयापनोदाय क्रियता दारसग्रहः ॥५॥
 नेत्युवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन युज्यते ।
 कनीयास्तु पितृन्प्राह न योग्यो दारसग्रहः ॥६॥
 ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवृत्तिभयादिति ।
 तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वं पितामहाः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऋण प्रमोचन नाम वासा एक तीर्थ है जिसको वेदों के ज्ञाता लोग भली भाँति जानते हैं । हे नारद ! अब हम उस तीर्थ के स्वरूप का वर्णन करेगे । तुम तन्मनस्क होकर उसका श्रवण करो ॥१॥ एक पृथुधवा नामधारी कक्षीवान् का परम प्रिय पुत्र था । उसने वैराग्य से दारा का सग्रह नहीं किया था और अग्नि पूजन भी नहीं किया था ॥२॥ हे मुने ! कनीयान् वह समर्थ भी था किन्तु परिवृत्ति के भय से दार कर्मादि को नहीं किया था और अग्नियों की भी उपासना नहीं की थी ॥३॥ इसके अनन्तर पितृगणों ने उस कक्षीवान् के शुभ पुत्र से पूछा था । पित्रो ने ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ दोनों ही से पृथक् पृथक् वचनों द्वारा कहा था ॥४॥ पितृगणों ने कहा—तीन प्रकार के ऋणों के अपमोदन करने के लिये दाराओं का सग्रह करो । देव ऋण-ऋषि ऋण और पितृऋण ये तीन ऋण सभी के ऊपर हुआ करते हैं जिनका बुकाना सबको परमावश्यक है और गृहस्थ होकर उन

शृणों को चुकाया जाता है ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पितरों के ऐसा पहने पर उनमें जो ज्येष्ठ था उसने निवेद्य कर दिया था और बड़ा भया भ्रूण होता है और बिस के द्वारा मुक्त किया जाता है । जो धनी-यान् छोटा था उसने भी पितरों से कहा था कि दाराओ या सग्रह करना योग्य नहीं है ॥६॥ क्योंकि ज्येष्ठ के हाँसे पर मुझे दार सग्रह मयो करना है । उस महा प्राज्ञ ने यह भी कहा था परिवर्त्ति का भय भी दार-सग्रह में रहता है अतएव मैं नहीं करता हूँ । सब तो पितमहों ने उन दोनों से पुनः इस प्रकार से कहा था ॥७॥

यातामुभौ गौतमी तु पुण्या कक्षीवतः सुतो ।
 कुरता गौतमीस्नात स्याभीष्टप्रदायकम् ॥८॥
 गच्छतां गौतमी गङ्गां लोकत्रितयपावनीम् ।
 स्नानं च तपणं तस्या कुरता श्रद्धयाऽन्वितो ॥९॥
 दृष्ट्वाऽवनमिता व्याता गौतमी सर्वकामदा ।
 न देहालजात्यादिनियमोऽप्रायगाहने ॥
 ज्येष्ठोऽनुणस्ततो भूयात्परिवर्त्तिनं चैतत् ॥१०॥
 ततः पृथुश्रया ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतपेणम् ।
 त्रयाणामपि लोकानां काक्षीवतोऽनुणोऽभवत् ॥११॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोषनमुच्यते ।
 श्रीतस्मात्संश्रुतं इतरेभ्यश्च नारद ॥
 तत्र स्नानेन दानेन उषी नृत्तः संगो भवेत् ॥१२॥

तुममें जो ज्येष्ठ है वह ऋण रहित हो जायगा और जो छोटा दूसरा भाई है उसकी परिवृत्ति नहीं होगी ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्येष्ठ भाई ने वहाँ पर स्नान और तर्पण किया था वह कक्षीयात् का पुन तीनों लोकों में ऋण रहित हो गया था ॥११॥ सभी से आरम्भ करके वह तीसरे ऋण मोचन नाम से पुकारा जाया करता है । हे नारद ! श्रौत-स्मार्त्त ऋणों से और अन्य ऋणों से भी वहाँ पर स्नान तथा दान से ऋणी मुक्त हो जाता है और सुखी होता है ॥१२॥



४६ —पिप्पलतीर्थवर्णन

पिप्पल तीर्थमाख्यात चक्रतीर्थादिनन्तरम् ।
 यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
 यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रायं शरर विभुम् ।
 पूजयामास वत्तीयं चक्रतीर्थं मुदाहृतम् ॥२॥
 यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शम्भुस्त्वपिप्पलं विदुः ।
 महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायक ॥३॥
 चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम् ।
 शृणु नारद तद्वचनं साक्षाद्देवोदितं मया ॥४॥
 दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीदगुणान्वितः ।
 तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५॥
 तापामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनो ।
 इति नाम्ना च विख्याता यद्वेति प्रकीर्तिता ॥६॥
 दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेषु तथा महत् ।
 दधीचिरग्निमान्नित्यं गृहधर्मपरायणः ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चक्रतीर्थ के अनन्तर पिप्पल तीर्थ कहा गया है वहाँ पर चक्रेश्वर देव हैं जिनसे श्री हरि ने चक्र की प्राप्ति किया था

॥१॥ जहाँ पर भगवान् विष्णु ने स्वयं स्थित होकर सुदर्शन चक्र को प्राप्त करने के लिये विष्णु शङ्कर का अभ्यर्चन किया था। वही तीर्थ "चक्र तीर्थ"—कीर्तित हुआ है ॥२॥ जिस स्थल पर भगवान् शंकर विष्णु पर परम प्रसन्न हुए थे वह शम्भुस्थपिप्पल जाने गये हैं। जिसकी महिमा को शेष नाम भी वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥३॥ पिप्पलेश चक्रेश्वर नाम का भी एक विशेष कारण है। हे नारद ! भक्ति की भावना से उस कारण को जो वेदों के द्वारा बताया गया है आप इस समय में भुक्त से श्रवण करो ॥४॥ एक दधीचि नामधारी मुनि परम विख्यात थे जो अनेक गुणगणी से युक्त हुए हैं। उन महामुनि की भार्या महापण्डिता एव कुलीना और परमाधिक पतिव्रता थी ॥५॥ वह लोपा मुद्रा—इस नाम से विख्यात थी और उसकी बहिन गभस्तिनी हुई थी। वह इसी नाम से प्रसिद्ध थी और बड़वा इस नाम से कही गयी थी ॥६॥ वह मुनिवर दधीचि की परम प्रिया थी। और उसके साथ वह नित्य ही तपश्चर्या का तपन किया करते थे। दधीचि नित्य ही अग्निमान् थे तथा धर्म के कर्मों में परम तत्पर रहा करते थे ॥७॥

भागीरथी समाश्रित्य देवातिथिपरायणः ।

स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८॥

तस्य प्रभावात् देश नारयो दैत्यदानवाः ।

आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९॥

तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽऽश्विनौ ।

इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०॥

जयेन जातसहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः ।

दधीचि मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११॥

दधीचिर्जातिसहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक् ।

गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२॥

पृष्टाश्च कुशल तेन कथाश्रक्तुः सुरा अपि ।

दधीचिं वन्दुवन्देवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३॥

आसीन् हृष्टमनस ऋषिः तत्त्वा पुनः पुनः ॥१४॥

भगवती भागीरथी गङ्गा का समाधाय ग्रहण करके देवगण तथा अतिथियों की सेवा में वे परायण रहा करते थे । अपनी ही पत्नी में रति रखने वाले थे और परम शान्त स्वरूप से सम्पन्न एक दूसरे वृम्भ योनि के ही समान थे ॥५॥ उनके तप के प्रभाव से उस देश में अरि वंश तथा दामव नहीं आये थे । हे मुनिशार्ङ्ग ! 'वहाँ पर अगस्त्य महामुनि का भी आश्रम था ॥६॥ यहाँ पर रुद्र, आदित्य, अश्विनी कुमार, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, उपागत देवों की जीव वर अपनी विजय होने के कारण अधिक हर्ष वाले एवं मरुद्गणों के द्वारा स्तुत होते हुए समागत हुए थे । मुनिशार्ङ्ग दधीचि का दर्शन करके वे सब सुरेश्वर उनकी प्रणिपात करने वाले हुए थे ॥१०-११॥ दधीचि भी परम हर्षित हुए और उन्होंने उन देवों की पृथक्-पृथक् पूजा की थी । इसके उपरान्त अपनी भार्या के साथ उन्होंने सुरों के लिये गृह - कृत्य - किया था ॥१२॥ उन मुनिवर ने उन समस्त देवों से लेम-दुःखल पूछा था और मुरगण कथाएँ करने लगे थे । फिर अपनी भार्या के साथ परम सुखी दधीचि से देवों ने कहना आरम्भ किया था । सभी देव अत्यधिक - प्रसन्न मन वाले थे और वहाँ समवस्थित मुनि को बारम्बार उन सबने प्रणाम किया था ॥१३-१४॥

किमद्य दुर्लभ लोके शृण्वेऽस्माकं भविष्यति ।

त्वाहदाः सशृणो येषु मुनिभूँक्तनपादयः ॥१५॥

एतदेव फल पुंसा जीवता मुनिसत्तम ।

तीर्याप्लविभूतदया दर्शनं च भवाहताम् ॥१६॥

यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने ।

जित्वा दं त्यानिह प्राप्ता हत्वा रादसपगवान् ॥१७॥

ययं च मुनिनो ब्रह्म स्त्वयि दृष्टे विनेपतः ।

नाऽऽपुंयः फलमस्माकं बोधुं नैव क्षमा गमम् ॥१८॥

स्याप्यदेन न वदयाम आमुघानां मुनीश्वर ।

स्वर्गे मुरद्विषो ज्ञात्वा स्यापितानि हरन्ति च ॥१९॥

नदेपुरामुघानोति तथैव च रमातले ।

उत्तमात्तयाधने पुण्यं स्याप्यन्तेऽस्यानि मानद ॥२०॥

नैवात्र किञ्चिद्भयमस्तिविप्र,
न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यशो,
न विद्यते तपसा ते समानः ॥२॥

देवगण ने कहा—हे ऋषिवर ! लोक में अब हम लोगों के लिये क्या वस्तु दुर्लभ हो सकती है जिन हम सब पर आप परमाधिक कृपा करने वाले आप विद्यमान हैं जिनको कि इस भूमण्डल का कल्प वृक्ष ही कहना चाहिए जो हृदय में समुत्थित सभी मनोरथों को तुरन्त पूर्ण कर दिया करता है ॥१५॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! जीवनधारी पुरुषों का यही सबसे बड़ा फल होता है कि तीर्थों में अभिषेकन करना प्राणियों पर परमाधिक दया का भाव रखना और आप सरीखे महामुनियों का दर्शन प्राप्त कर लेना—ये सब पुण्य-फल होते हैं ॥१६॥ जिनके अधिक स्नेह होने के कारण से ही हे मुनिवर ! हम लोगों के द्वारा निवेदन किया जाता है । आप उसका अवधारण कीजिए । हम लोग दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करके तथा बड़े २ महा राक्षसों को मारकर ही इस समय में आपकी सेवा में समुपस्थित हुए हैं ॥१७॥ हे ब्रह्मा ! हम इस समय में परम सुख से सम्पन्न हैं और आप का दर्शन करके अधिक सुखी हुए हैं । अब हमको आयुधों से कुछ भी फल नहीं है और न हम उनके बहाने करने में समर्थ ही हैं ॥१८॥ हे मुनीश्वर ! उन समस्त आयुधों के स्थापित करने के योग्य किसी भी स्थल को हम लोग नहीं पा रहे हैं । स्वर्ग में उनको स्थापित करे तो वहाँ पर सुगों के द्वेषीगण जान लेते हैं और उनका हरण कर लिया करते हैं ॥१९॥ यदि हमने उन सब आयुधों को जान लेते हैं तो सबको लेकर वे रसातल को ले जायेंगे । हे मानव ! इसी कारण से आपके ही इस पुण्यमय आश्रम में उन अस्त्रों को स्थापित दिया जाना है ॥२०॥ हे विप्र ! यहाँ पर कुछ भी भय नहीं है । न तो दानवों के आने का डर है और न राक्षसों से ही घोर भय यहाँ पर है । यदि आपकी आज्ञा ऐसी हो जाये तो बहुत

ही अच्छा हो । यह तो परम सुरक्षित एवं पवित्र स्थल है क्यों कि तप-
स्या में आपके सहस्र अन्य कोई भी विद्यमान नहीं है ॥२१॥

जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ,

वयं च पूर्व निहता दैत्यसघा ।

अस्त्रंरत्नं भारभूतं कृतार्थः,

स्थाप्य स्थानं ते समीपे मुनीश ॥२२॥

दिव्यान्भोगान्कामिनीभिः समेता-

न्वेवोद्याने नन्दने सभजामः ।

ततो यामः कृतकार्या सहेन्द्रा,

स्व स्व स्थानं चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥

स्वया कृता जायता तत्प्रशाधि ।

समर्थंस्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेव,

वाक्यं जगौ विबुधानेवमस्तु ।

निवार्यमाणः प्रियशीलया स्त्रिया,

किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्रा परमार्यनिष्ठा,

ससारचेष्टासु गतानुरागाः ।

तेषां पराथ व्यसनेन किं मुने,

येनात्र वाऽपुत्र सुखं न किञ्चित् ॥२६॥

देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति,

दत्ते स्थाने विप्रवयं शृणुष्व ।

नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश,

कृप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७॥

तस्मान्नेदं वेदविदा वरिष्ठ,

शुक्लं द्रव्यं परकीये ममत्वम् ।

तावच्च मैत्री द्रव्यमायश्च ताव-

न्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८॥

आप तो ब्रह्मा के ज्ञाताओं में परम वरिष्ठ हैं। और हम लोग अपने अरियो के जीत लेने वाले हैं। और हमने सब देवियों के सघों को पूर्व में ही मार दिया है। अब ये सब अस्त्र व्यर्थ ही हैं क्योंकि हम सफल हो चुके हैं अतएव केवल ये सब एक भार के ही समान प्रतीत हों रहे हैं। हे मुनीश्वर ! अब आपके ही समीप में इस स्थान में इनको स्थापित कर देना चाहिए ॥२२॥ अब तो आप लोग देवों के उद्यान मन्दन वन में कामिनियों से युक्त होकर दिव्यभोगों के सुख का भोग करें। इसलिये कृतकार्य हम सब इन्द्रदेव के सहित वापिस गमन करते हैं और अपने २ आश्रमों को जाते हैं क्योंकि आयुधों की तो सुरक्षा है यहाँ पर आयुधों की रक्षा आपके द्वारा हो ही गयी है। अब आप हमको आत्मा दीजिए। आप इनके घाण्ण एवं सरक्षण करने में पूर्णतया समर्थ हैं ॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन देवों के इस वचन को सुन कर दधीचि मुनि ने उन देवों से ऐसा ही भोगा—यह वायव्य गृह दिया था। उस समय में प्रिय दीप्त स्वभाव वाली पत्नी के द्वारा निवारण भी किया गया था कि विरुद्ध कार्य करने वाले इस देवों के इस कार्य से हमको क्या प्रयोजन है ॥२५॥ जिन्होंने पास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो परमार्थ में ही निष्ठा रखते हैं तथा जिनका सात्त्विक चेष्टाओं में अनुराग सर्वथा गत हो गया है हे मुने ! उनको दूसरों के अर्थ के व्यसन से क्या प्रयोजन है जिससे न तो इस लोक में और न परलोक में ही कुछ सुख है वे दूसरों के हाथों में क्यों पड़ें क्यों बि उनके लिये सब व्यर्थ ही हैं ॥२६॥ हे विप्रवर्य ! देवों से द्रव्य करने वाले द्रव्य बढ़ने में जब बि आप इन देवों से लिये आयुधों के रखने का स्थान देदेंगे। आप यह मुनिये बि यदि किसी कारण से नष्ट होगये या हे मुनिवर ! हरण कर लिये गये तो ऐसा हो जाने पर ये ही देवगण आप पर प्रीतिपत हो जायेंगे और फिर आपके ही में सब लक्षु वन जायेंगे जोकि इस समय आपकी बड़ी बन्दना अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२७॥ हे वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! इस कारण से दूसरों के द्रव्य में ममता रखना मुक्त नहीं है। ये सब सभी तक आपसे

मंदी का भाव रखते हैं और द्रव्य भाव भी इनका सभी तक है । नष्ट हो जाने का अपहृत हो जाने पर ये सब आपने दात्रु हो जाएंगे ॥२८॥

चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते,

दातव्यमेवाधिने किं विचार्यम् ।

नो चेत्सन्तः परकार्याणि कुर्मु-

र्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तैर्यैव ॥२९॥

परस्यसधारणमेतदेव,

सद्विनिर्निरस्त त्यज कान्त राद्यः ॥३०॥

एव प्रियाया वचन स विप्रो,

निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१॥

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे,

नेतीति वाणी न सुरा मर्मति ॥३२॥

श्रुत्येवित पत्युरिति प्रियाया,

दैव विनाऽन्यश्च नृणा समर्थम् ।

तूष्णीं स्थिताया सुरसत्तमास्ते,

सस्याप्य चास्याण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३॥

नत्वा मुनीन्द्रं यपुरेव लोका-

न्दत्यद्विपो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।

गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो

हृष्टोऽवसदभार्यया धर्मयुक्तः ॥३४॥

गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते,

दैवे वर्धे सख्यया वै सहस्रे ।

न ते सुरा आयुधाना मुनीश,

वाच मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५॥

यदि माणकी द्रव्य क दान मे शक्ति है तो याचना करने वाले को दे ही देना चाहिए-इसमे विचार ही क्या करना है । यदि कुछ देना नहीं है तो सन्त पुरुष दूसरो के कार्यों को कर दिया करते हैं और कर भी देना चाहिए । अपनी वाणी स-मन से और प्रयत्नो के द्वारा परकार्य

कर देने चाहिए और सन्त पुरुष ऐसा ही किया भी करते हैं ॥२६॥
किन्तु हे कान्त ! पराये धन का रखना ऐसा है कि सत्पुरुषों ने इसका
निषेध ही किया है सो हे स्वामिन् ! इसका आप तुरन्त ही त्याग कर
बीजिए ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए अपनी
प्रिय पत्नी के वचनों का श्रवण करके उस विप्र ने सुन्दर भृकुटियों वाली
भार्या से यह कहा था ॥३१॥ दधीचि मुनि ने कहा—हे भद्रे ! पहिले
सुरो का समादर पूर्वक कथन मान कर अब निषेध करना मुझे सुख-
कर प्रतीत नहीं होता है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी
के कथित वचन को सुन कर प्रिया के विषय में देव के बिना मनुष्यों के
लिये अन्य कोई भी समर्थ नहीं है । वह मुनि पत्नी चुप-चाप स्थित हो
गई तो वे सब सुरगण अपने वीरि से युक्त अस्त्रों को वहाँ पर सस्यापित
करके उन महामुनि को नमस्कार करके अपने-२ लोकों को वापिस चले
गये थे क्योंकि कि वे दैत्यों के शत्रु देवगण शस्त्रों को रखने में सफल हो
गये थे ! जब सब देवगण चले गये तो उनके जाने पर मुनियों में परम
श्रेष्ठ दधीचि प्रसन्न होकर अपनी भार्या के साथ धर्म से युक्त होते हुए
अपने आश्रम में निवास किया करते थे ॥३३-३४॥ फिर एक सहस्र
दैव वर्षों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी है मुनीश्वर ! उन देवों
ने अपने आयुधों के विषय में कुछ भी न कहा और न उगहोने मन में
आयुधों का स्मरण भी नहीं किया था ॥३५॥

दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा,

देवारयो मा द्विपतीह भद्रे ।

न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति,

सस्थापितान्यथ वदस्व युक्तम् ॥३६॥

सा चाऽऽह कान्त विनयादुक्तमेव,

त्व जानीषे नाय यदन युक्तम् ।

दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धा-

स्तपोयुक्ता वलिनः स्वायुधानि ॥३७॥

तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे,

मन्त्रंस्तु सक्षाल्य जलंश्च पुण्यं ।

तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्य,

तेजोयुक्तं तच्च पशौ दधीचिः ॥३८॥

निर्बोयरूपाणि तदामुष्मानि,

क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात् ।

सुराः समागत्य दधीचमुचु-

र्महाभयं ह्यागतं क्षात्रव नः ॥३९॥

ददस्व चास्त्राणि मुनिप्रवीर,

यानि त्वदन्ते निहितानि देवः ।

दधीचिरप्याह सुरारिभीत्या,

अनागत्या भवता चाचिरेण ॥४०॥

अस्त्राणि पीतानि क्षरीरसस्या-

न्मुक्तानि युक्तं मम तद्वदन्तु ।

श्रुत्वा तदुक्तं वचनं तु देवाः,

प्रोचुस्तमित्य विनयावनम्रा ॥४१॥

अस्त्राणि देहीति च वक्तुमेव-

च्छक्यं न वाऽन्यत्प्रतिवक्तुं मुनीन्द्र ।

विना च तं परिभूयेम नित्यं,

पुष्टारयं कं प्रयामो मुनीश ॥४२॥

दधीचि मुनि ने भी ओज कं साथ गमस्ति से कहा था कि हे भद्रे !
देवों के रिपुगण मुझ से द्वेष करते हैं । वे सुरमण तो इन अपने शस्त्रों
को ले जाने की इच्छा वाले ही नहीं हैं । ये उनके आयुध मर्हा पर
संस्थापित किये हुए हैं । अब क्या करना उचित है भृक्षे बतलाओ ॥३९॥
उसने विनय पूर्वक अपने स्वामी से जा पूछ कथित बात थी वही कह
दी । उसने कहा था कि हे नाथ ! यहाँ पर क्या उचित है इसे आप
स्वयं ही जानते हैं । दैत्य महान् प्रवृद्ध हैं । वे तप से भी युक्त हैं तथा
बहुत बल वाले हैं । वे अपने आयुधों का हरण कर भेंगे ॥४०॥ अब

तो उन महामुनि ने उनके अस्त्रों की सुरक्षा के लिये यह किया था कि मन्त्रों के द्वारा तथा पुण्यमय जलों के द्वारा उनका संक्षालन कर दिया और दधीचि ने सब अस्त्रों से परिपूर्ण पुण्य से युक्त उस जल का जो तेज से भी युक्त था स्वयं पान कर लिया था ॥३८॥ धीर्य से हीन स्वरूप वाले ने उनके आयुध काल के योग से क्रम से क्षय को प्राप्त हो गये थे । फिर सुरगण वहाँ पर समागत हो गये थे और दधीचि मुनि से कहने लगे थे कि हमको शत्रुओं का महान् भय समागत हो गया है ॥३९॥ हे मुनि प्रवीर ! देवों में जो आपके पास में निहित किये थे वे अस्त्र हमको दे दीजिए । दधीचि मुनि ने कहा था कि सुरों के शत्रुओं के भय के कारण से और शीघ्र आप लोगों के न आने के कारण से ये सब मैंने पा लिये हैं । अब जो भी युक्त हो वह आप लोग मुझको बतलायें । इस प्रकार से भृषि के द्वारा कथित वचन का श्रवण करके देवों न बिनय से अवगत होकर इस प्रकार से उन मुनि से कहा था ॥४०-४१॥ इस समय में तो हमारे अस्त्रों को आप दे देवे' यही कहा जा सकता है इससे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं कहा जा सकता है हे मुनीन्द्र ! बिना अपने उन आयुधों के तो हम नित्य ही महान् पराभव को प्राप्त करेंगे । हे मुनीश ! हमारे शत्रुगण तो बड़े ही परिपुष्ट हो गये हैं । आप ही बतलाइये कि हम कहाँ पर जायें ॥४२॥

न मरयंलीके न तले न ताके,

वासः सुराणा भविताऽद्य तात ।

त्व विप्रवर्यस्तपसा चैव युक्तो,

नान्यद्वक्तुं युज्यते ते पुरस्तात् ॥४३॥

विप्रस्तदोवाच मदस्थिसस्या-

न्यस्त्राणि गृह्णन्तु न सशयोऽयम् ।

देवास्तमप्याह्वरनेन किं नो,

ह्यस्त्रेहीनाः स्त्रीत्वमाप्ताः सुरेन्द्राः ॥४४॥

पुनस्तदा चाऽऽह मुनिप्रवीर-

स्त्यक्ष्ये जीवान्दैहिकान्योगयुक्तः ।

अस्याणि कुर्वन्तु मदस्थिभूता-

न्यनुत्तमान्युत्तमरूपवन्ति ॥४५॥

कुरुष्व चेत्याहुरदीनसत्त्व,

दधीचिमित्युत्तग्भग्निकल्पम् ।

तदा तु तस्य प्रियमीरयन्ती,

न सानिध्ये प्रातिथेयी मुनीश ॥ ६

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वं शीघ्र ,

तस्या भोता विप्रमूचुः कुरुष्व ।

तस्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो

यथामुस्त देहमिम जुपध्वम् ॥४७॥

मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु,

सुराः सर्वे किन्तु देहेन कार्यम् ॥४८॥

हे सात ! इस समय मैं तो ऐसी परिस्थिति बन गई है कि सुरों का मर्त्यलोक मे-पाताल मे और स्वर्ग में कहीं पर भी निवास नहीं हो सकेगा । हे भगवन् ! आप तो विप्रों मे परम भेष्ठ हैं और तपश्चर्मा से भी युक्त हैं । आपके सगण मे हम लोग अग्य कुछ भी कह नहीं सकते हैं ॥४३॥ तब तो विप्र दधीचि ने कहा था कि वे अस्त्र तो मेरी अस्थियों मे इस समय मे सन्धिगत हैं । आप मेरी अस्थियों को ही ग्रहण कर लें—इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है । देवों ने कहा था कि इससे हमारा क्या भला होगा ? अब तो हम लोग अस्त्रों से हीन होकर सब सुरेन्द्र सभी को ही प्राप्त होगये हैं अर्थात् स्थिया के समान ही बल विहीन बन गये हैं ॥४४॥ तब तो उसी समय मे वह मुनियों मे परम श्रेष्ठ दधीचि ने कहा—मैं योगाभ्यास से युक्त होकर अपने देह के अङ्गों मे रहने वाले प्राणों का त्याग कर दूँगा । आप लोग फिर अत्यन्त स्वरूप सम्पन्न और उत्तम मेरी अस्थियों से अपने अस्त्रों का निर्माण कर लीजिए ॥४५॥ उन देवों ने अदीन सत्त्व वाले अग्नि के सहस्र दधीचि को 'करो'—यही उत्तर में कहा था । हे मुनीश ! उस समय मे उसके प्रिय का वधन करने वाली प्रातिथेयी वहाँ समीप मे नहीं थी ॥४६॥ उन देवों ने भी

उसको न देख कर बहुत ही शीघ्र उसके भय से डरे हुए होकर विप्र दधीचि से कहा—‘करिये’ । बहुत ही प्रीति से युक्त होकर दधीचि ने परम दुस्त्यज जीवों का परित्याग कर दिया था । तथा उस समय मे देवों से गुनीन्द्र ने कहा था कि आप लोग सुख पूर्वक इस मेरे देह का सेवन करिए ॥४७॥ आप समस्त सुरगण मेरे देह से जो भी आपका करना हो उसे करिए और आप लोग मेरी अस्थियों से परम प्रीति वाले होइये ॥४८॥

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्यो,
 नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रराग्नः ।
 वायुं सर्वाङ्गि मध्यमोद्घाटयांगा-
 श्रित्वा शनैर्दहराकाशगर्भम् ॥४८॥
 यदप्रमेयं परम पद य-
 द्धृग्रह्यरूप यदुपासितव्यम् ।
 तत्रैव विन्यस्य धिय महात्मा,
 सायुज्यता ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥४९॥
 निर्जीवता प्राप्तमभीक्ष्य देवाः,
 कलेवर तस्य सुराश्च सम्यक् ।
 त्वष्टारमप्युत्तुरतित्वरन्तः,
 कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५०॥
 स चापि तानाह कथं नु कार्यं,
 कलेवर ब्राह्मणस्येह देवाः ।
 विभेमि कतुं दारुण चाक्षमोऽहं,
 विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५१॥
 तदस्थिभूतानि करोमि सद्य-
 स्ततोदेवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५२॥
 वज्रं मुखं वः क्रियते हितार्थं,
 गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।

दधीचिदेह तु विदाय यूय-

मस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताम् ॥१४॥

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः,

सलिह्य चास्थीनि ददु सुराणाम् ।

सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वाः,

स्वमालय चापि तथैव गावः ॥१५॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मुनीस्वर दधीचि ने इतना देवों से निवेदन करके पद्मासन को बांध कर स्थित होगये और अपनी नासिका के अग्र भाग में नेत्रों के प्रकाश को लयाकर परम प्रसन्न हो गये थे तथा मध्यमों द्वारा योग से शनैः बह्नि के सहित वायु को दहराकाश गर्भ में ले गये थे ॥१४॥ फिर जो प्रमान करने के योग्य परम पद है और जो उपासना करने के योग्य ब्रह्म का स्वरूप है । उस महात्मा आत्मा वाले ब्राह्मण ने वही पर अपनी बुद्धि का ग्यास करके सायुज्यता की प्राप्ति कर ली थी ॥१५॥ देवों ने जब देखा कि वह मुनीस्वर निर्जीवता को प्राप्त हो गये तो सुरगण ने उनके कलेवर को लेकर अत्यन्त शीघ्रता करते हुए त्वष्टा से भली भाँति कहा था कि इसकी अस्थियों से तुरन्त बहुत से अस्त्रों की रचना कर डालो ॥१६॥ उस त्वष्टा ने भी उन देवों से कहा था कि हे देवों ! यहाँ पर इस ब्राह्मण के शरीर से मैं कैसे क्या करूँ और क्या बनाऊँ ? मैं तो इस महात्मा दाह्य कर्म के करने में डरता हूँ । हे देवगण ! मैं तो इस कर्म करने की क्षमता नहीं रखता हूँ । उत्तम आपुष्प विदारित हो गये हैं ॥१७॥ मैं तो उनको तुरन्त अस्थि भूत कर देना हूँ । इसके अनन्तर देवगण शीघ्रता करते हुए गावों से बोले ॥१८॥ देवों ने कहा—क्षण मात्र में आपुष्पों के लिये हे गोओं ! आपका मुख देवों के द्वारा वज्र किया जाता है । आप दधीचि के देह को विदीर्ण करके इस समय विशुद्ध अस्थियों को हमको देवे ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन गावों ने देवों के वानय से उसी भाँति किया था । अस्थियों को भली-भाँति चाट कर मुरों को दे दिया था । अदीन

सत्त्व वाले सुरमण बड़ी धीघ्रता से अपने२ आश्रमों को चले गये थे और वे गौर भी जली गयी थी ॥१५॥

कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवतानां,

त्वष्टा जगमाथ सुराज्ञया तदा ।

ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा,

भर्तुः प्रिया बालगर्भा त्वरन्ती ॥१६॥

करे गृहीत्वा कलश चारिपूर्णं-

मुमानत्वा फलपुष्पैः समेत्य ।

अग्निं च भर्तारमयाऽऽश्रमं च,

सद्रन्डुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥१७॥

आगच्छन्तो ता प्रातिथेयी तदानीं,

निवारयामास तदोत्कृपातः ।

सा सध्रमादागता चाऽऽश्रमं स्व,

नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥१८॥

क या गतश्चेति सविस्मया सा,

पप्रच्छ चाग्निं प्रातिथेयी तदानीम् ।

अग्निस्तदोवाच सधिरतर ता,

देवागम याचन ये शरीरे ॥१९॥

अरघ्नामुपादानमथ प्रयाण,

श्रुत्वा सद्यः दुःखिता ना बभूव ।

दुःखोद्देगात्ता पपाताथ गृह्णन्,

मन्दं मन्दं पल्लिनाऽऽभ्यामिताः च ॥२०॥

नाप्यंश्मराणां तु नाहं गमयामि,

अग्निं प्राप्येति नु वाप्यं मयेभ्ये ॥२१॥

वाप्यं च दुर्गं च निजम्यमाप्स्ये,

तदाज्यादीदमदुर्गं च भर्तुः ॥२२॥

उत्पद्यते यत्त विनाशि सर्वं,
न शाच्यमस्तीति ममुष्यलोके ।

गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति,
प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्या ॥६१॥

उसी समय में सुरों की आज्ञा से देवों के अस्त्रों का निर्माण करके स्वर्ग चला गया था । इसके पश्चात् बहुत समय के अनन्तर शील वाली सुभद्रा अपने स्वामी की प्रिया बालक को गर्भ में धारण करती हुई बहुत ही सीधता करती हुई हाथ में जल से भरा हुआ बरतण्ड लेकर फलों और पुष्पों से उमादेवी को नमस्कार करके तथा अग्नि को नमन करके अपने भर्ता को देखने की इच्छा वाली माथय में बहुत शीघ्र ही आगयी थी ॥५६-५७॥ उस समय में आगमन करती हुई उस प्रातिथेयी को उल्का-पान ने निवारित किया था वह बहुत ही सभ्रम के साथ अपने आश्रम में समागत हो गयी और वहाँ पर उसने आगे अपने भर्ता को नहीं देखा था ॥५८॥ मेरे स्वामी कहाँ पर चले गये हैं इस विस्मय से बहुत सम-न्वित हो गई थी क्योंकि वह उनको वहीं पर छोड़ कर गयी थी । उस समय प्रातिथेयी ने अग्नि से पूछा था । उस समय में अग्नि ने विस्तार के साथ उससे वहाँ पर देवों का समागमन और शरीर की याचना करना बतला दिया था ॥५९॥ उनकी अस्थियों का उपाधान करना और इसके अन्तर सीधता से प्रयाण कर जाना सभी कुछ घटना को अग्नि ने बतला दिया था । इस दुर्यटित घटना का श्रवण कर वह बहुत ही दुःखित हुई थी । उस महात् दुःख के उद्देग के कारण वह भूमि पर गिर पड़ी थी फिर धीरे-धीरे वह ब्रह्म के द्वारा उसको समाश्वास नहीं दिया गया था ॥६०॥ प्रातिथेयी ने कहा—मैं देवों को क्षाप देने में जो समर्थ नहीं हूँ किन्तु अब मैं अग्नि में प्राप्त हो जाऊँगी क्योंकि मैं यहाँ पर रहने से क्या प्रयोजन होगा ॥६१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस परम साध्वी ने अपने हार्दिक दुःख और कोप का नियमन करके अपने भर्ता के उस धम से युक्त कार्य के विषय में कहा था ॥६२॥ प्रातिथेयी

ने कहा—जो इस जगत् में समुत्पन्न होता है वह सभी कुछ विनाश-शील होता है अनएव इस मनुष्य लोक में भी शोच करने के योग्य नहीं है । बहुत ही पुण्यशाली मनुष्य ही गो-विप्र और देवों के लिये अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग किया करते हैं ॥६३॥

ससारचक्रं परिवर्तमाने

देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य ।

प्रियान्प्राणान्देवविप्रायंहेतो-

स्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४॥

प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य,

यातारो वै नात्र सदेहलेशः ।

एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीना-

द्यर्थचैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया,

चकार देवास्त्रपरिग्रहं सः ।

मनोगत वेत्ययवा विधातुः,

को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६॥

इत्येवमुक्त्वाऽऽभूज्य चाग्नीन्मयाव-

द्भर्तुं स्त्वचालोभभिः सा विवेश ।

गर्भस्थितं बालकं प्रातिषेयी,

कुक्षिं विदार्याथ करे गृहीत्वा ॥६७॥

नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च,

वनस्पतीनोपधीराश्रमस्यान् ॥६८॥

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजेश्च,

मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।

रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघा-

स्तथीपद्मो बालकं लोकपालाः ॥६९॥

ये बालकं मातृपितृप्रहीण,
सनिविशेष स्वतनुप्रहृष्टः ।

पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून,
ब्रह्मादिकानामपि चन्दनीयाः ॥७०॥

इस परिवर्तनशील ससार रूप चक्र में इस परम सामर्थ्य से युक्त मानवीय-धर्म से युक्त शरीर को प्राप्त करके अपने परमाधिक प्रिय प्राणी को देवों और विप्रों के कार्य की सिद्धि के लिये जो प्राणी त्याग किया करते हैं वे वास्तव में बहुत ही घन्य हैं ॥६४॥ ये प्राण तो सब ही देह-धारी मनुष्य के गगन करने वाले हुआ करते हैं अर्थात् जो भी कोई देहधारी है वे सभी अवश्य ही एक न एक दिन अवश्य ही अपने प्राणी का त्याग किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस तरह से ज्ञान प्राप्त करके जो ब्राह्मण गौ और देवों के हित सम्पादन करने के लिये इनका उत्सर्ग कर दिया करते हैं वे परम समर्थ ईश्वर ही होते हैं ॥६५॥ मेव द्वारा बहुत कुछ निवारण करने पर जो कि मैं परम प्रपन्न अपने पतिदेव की थी मेरे स्वामी ने देवों के असुखों को अपने आश्रय में रख लेना स्वीकार कर लिया था। अथवा मनुष्य लोक के अतिगमन करने वाली चेष्टा से युक्त विधाना के मन में रहने वाली बात को कौन जानता है अर्थात् विधाता के हृदय की बात को कोई भी नहीं जान सकता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था। ब्रह्माजी बोले—इस तरह से उस दक्षीणि मुनि की पत्नी ने कहकर यथोचित रीति से अग्नियों का पूजन करके जो अपने भर्ता की त्वचा और ओमादि वहाँ पर शेष थे उनके साथ उराने अग्नि में प्रवेश कर लिया था उसके गर्भ में स्थित जो बालक था उसको उस प्रातियेयी ने कुक्षि को विदारित करके हाथ में ग्रहण कर लिया था। फिर गङ्गा का, भूदेवी का और अपने आश्रम का तथा उस आश्रम में स्थित वनस्पतियों का और ओषधियों का प्रणिपात किया था ॥६७-६८॥ प्रातियेयी ने कहा—यह बालक इस समय में पिता सब घुगण गोत्रज और माता से भी हीन है अर्थात् इसका इस समय में ई भी रक्षा करने वाला नहीं है। सर्वथा अनाथ ही है इसका संरक्षण

पिप्पलतीर्ध्वर्णन]

समस्त भूतसंघ, ओषधियाँ और सब लोकपाल करे ॥६६॥ इस माता-पिता से हीन बालक को अपने शरीर से प्रसूढ़ो व द्वारा विशेष रूप से अपना ही समझकर देखेंगे और इसकी सुरक्षा करेंगे ये निश्चय ही ब्रह्मादि देवों के भी बन्धनीय होंगे । अर्थात् ब्रह्मा प्रभृति देव भी उसकी बन्धना करेंगे ॥७०॥

इत्युक्त्वा चात्यजदवालं भर्तृचित्तपरायणा ।
पिप्पलाना समीपे तु न्यस्य वाल नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता ।
विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिव ययौ ॥७२॥
रुक्मुञ्चाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः ।
पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीचिना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तथा मात्रा विना तथा ।
मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥
स्वर्गमासेदुपोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम् ।
ये कुर्वन्त्यनिश स्नेहं त एव कृत्स्नो गराः ॥७५॥
दधीचिं प्रातिथेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा ।
तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् ।
वालो दधीचिं प्रातिथेयी वालो धर्मः सनातनः ॥७७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी से अपने चित्त की तत्पर रखने वाली प्रातिथेयी ने इतना निवेदन करके उस बालक को पिप्पलो के समीप में रखकर तथा नमस्कार करके उस बालक का स्पर्श कर दिया था फिर यज्ञ के पात्रों से समन्वित होकर अग्नि की प्रदक्षिणा की थी और तदनन्तर उस प्रातिथेयी ने अग्नि में प्रवेश कर लिया था और अपने स्वामी के साथ ही वह त्रियलोक की चली गयी थी ॥७१-७२॥ उस समय में वहाँ पर बहुत ही बरगणपूज दृश्य उपस्थित हो गया था जो भी आश्रम में स्थित वृक्ष एवं वन में निवास करने वाले ये ये सभी रदन करने लगे थे क्योंकि दधीचि ऋषि ने उन मन्त्रों को अपने ही पुत्र के समान

पोषित किया था । वहाँ के सभी पक्षी मृग और वृक्ष परस्पर मे कह रहे थे कि हम अब उस ऋषि के बिना तथा परम करुणामयी माता के बिना अब जीवित नहीं रहेंगे ॥७३-७४॥ वृक्षों ने कहा—स्वर्ग में गमन करने वाले माता-पिता के अपत्यों में जो अकृत्रिम स्नेह निरन्तर किया करते हैं वे ही मनुष्य परम पुण्यात्मा होते हैं ॥७५॥ पहिले महर्षि दधीचि और प्रातियेयी हम लोगों को जिस तरह से देखा करते थे अर्थात् हम सबकी पूर्णतया देखभाल रखते थे बँसों देखभाल माता-पिता भी नहीं किया करते हैं । हम बड़े ही पापी हैं हमको धिक्कार है ॥७६॥ इसी 'लिये हम सबका भी आज से लेकर यही निश्चय है कि यह बालक ही दधीचि ऋषि हैं और यह बालक ही प्रातियेयी माता के सट्टा है अब सनातन धर्म धर्म स्वरूप है । तात्पर्य यह है कि अब तो यह बालक ही उनका स्वरूप है ॥७७॥

एवमुक्त्वा तदीपघ्नो वनस्पतिसमन्विताः ।

सोम राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥

स चापि दत्तवास्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम् ।

ददुर्बलाय ते चापि अमृतं सुरवत्सलम् ॥७९॥

स तेन कृप्तो ववृध शुक्लपक्षे यथा शशी ।

पिप्पलं पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः ।

प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः ।

बीजेभ्यो वीरुघो लोके वैपम्यं नैव दृश्यते ॥

यार्क्षस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वगूर्चर्यथाक्रमम् ।

दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२॥

अस्थ्ना सहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम् ।

श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥

आश्रासितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसहितैः ।

आश्वस्तः स पुनः प्राद तदीपधिवनस्पतीन् ॥८४॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर उन सब ओषधियों ने और वृक्षों ने तथा वनस्पतियों ने राजा सोम के समीप में जाकर उत्तम अमृत की याचना की थी ॥७८॥ उस सोम राजा ने भी उनको परमोत्तम अमृत का प्रदान कर दिया था । उन्होंने फिर उस सुरो का परम प्रिय अमृत को लाकर उस शिशु को दे दिया था । वह बालक उस अमृत से सत्सुत होकर शुक्ल पक्ष में चन्द्र के ही समान बधमान हो गया था । पिप्पलो के द्वारा वह पालित किया गया था इसी कारण से वह बालक पिप्पलाद नाम वाला हो गया था । जब वह बड़ा हो गया था तो उसने अत्यन्त विस्मित होकर उन पिप्पलो से इस तरह कहा था । पिप्पलाद बोला—मनुष्यों से मनुष्य समुत्पन्न हुआ करते हैं—पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं तथा बीजों से लताएँ, और वृक्ष आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है—इस प्राकृतिक नियम में वही पर भी विपमता नहीं दिखलाई दिया करती है । मैं फिर वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला हाथ-पैर आदि से युक्त जीवधारी मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ हूँ ? यहाँ पर इस सार्वत्रिक नियम में विपमता कैसे होगयी है ? ॥७९-८१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस बालक के इस प्रकार के समुचित प्रश्न-वचनों का श्रवण करके उन आश्रम में रहने वाले वृक्षों ने सम्पूर्ण वृत्तान्त क्रम पूर्वक उस बालक को बतला दिया था जिस तरह से महर्षि दधीचि का मरण हुआ और जैसे साध्वी प्रातियेयी का अग्नि में प्रवेश हुआ था तथा जिस रीति से देवों के द्वारा दधीचि की अस्थियों का सहरण किया गया था यह सभी सुविस्तृत रूप से बह्वर उस दासक को श्रवण करा दिया गया था । यह समस्त वृत्तान्त सुनकर वह बालक दुःख से समाविष्ट हो गया था और उसी समय में भूमि पर गिर पड़ा था ॥८२-८३॥ फिर उन वृक्षों ने धर्मार्य समन्वित वाक्यों के द्वारा उसको समाश्रयित किया था । आश्रस्त होकर फिर उस बालक ने उन ओषधि और वास्पतियों से सहना आरम्भ कर दिया था ॥८४॥

पितृहन्तृहनिष्येऽह नान्यया जीवितुं क्षमः ।

पितुमित्राणि सन्तु ब्रूया पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥

स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः ।
 वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६॥
 दृक्षास्त बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः ।
 बालवाक्यं तु ते दृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ॥
 श्रुत्वा सोमोऽपि त बालं पिप्पलादमभाषत ॥८७॥
 गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रा,

तपःसमृद्धिं च शुभां च वाचम् ।

शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं,

संप्राप्स्यसे पुत्रं मदाज्ञया त्वम् ॥८८॥

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत् ॥८९॥

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम् ।

न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥९०॥

यस्मिन्देहो यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके ।

यत्र तीर्थे च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता पिताओं के हनन करने वालों को अवश्य ही मार डालूँगा जग्यया मैं जीवित रहने में समर्थ नहीं रहूँगा । पुत्र का कर्त्तव्य होता है कि वह माता-पिता के जो मित्र होते हैं अथवा शत्रु होते हैं उनके साथ वंसा ही व्यवहार किया करता है ॥८५॥ वही वास्तव में पुत्र है तथा इसके विपरीत आचरण करने वाला तो पुत्र नहीं होता है प्रसुत वह पुत्र के रूप में रिपु ही हुआ करता है ऐसा ही कहा गया है । पितृ मित्र कहते हैं और वे अहिर्नो को भी तार दिया करते हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे वृक्ष उस बालक को साथ लेकर राजा सोम के समीप में समागत हुए थे, और उन वृक्षों ने यह समस्त वृत्तान्त जो उस बालक ने कहा था सोम से निवेदन कर दिया था । यह श्रवण करके सोम ने भी उस पिप्पलाद बालक से कहा था ॥८७॥ राजा सोम कहने लगा—हे पुत्र ! पहिले तुम विधि पूर्वक समग्र विद्या को ग्रहण करो—तपश्चर्या की पूर्ण समृद्धि को सम्प्राप्त करो और परम शुभ घाणी या भी तुमको ग्रहण करना चाहिए । तथा शौर्य, रूप, बल, विद्वान् और

मुशाय बुद्धि को ग्रहण कर लो । फिर मेरी भी आज्ञा है कि तुम सब कुछ प्राप्त कर लागे ॥८८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उस पिप्पलाद ने परम विनम्र होकर ओपधियो के स्वामी उस सोम से कहा था । पिप्पलाद बोला—मैं तो इन सब विद्याओं तथा सिद्धियों को प्राप्त करता व्यय ही समझता हूँ जब तरु कि मैं पिता के हनन करने वाली की विनिवृत्ति नहीं करूँ अर्थात् पिता के मारने वाली से बदला न ले लूँ । अतएव आप कृपा करके सबसे प्रथम मुझे वही बबला लेने का उपाय बतलाइये ॥८९ ६०॥ हे सुरोत्तम ! जिस देश मे, जिस काल मे, जिस देव मे, जिस मन्त्र मे, और जिस तीर्थ मे मेरा मन का सत्य सङ्कल्प पूरा हो जावे वही मुझे आप पहिले बतलाइय ॥९१॥

चन्द्र प्राह चिर ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा ।

सर्व महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र सशय ॥ २

स सोम पुनरप्याह कथं ब्रूये महेश्वरम् ।

बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा ॥९१

गौतमी गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम् ।

प्रसन्नस्तु तद्देशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४

प्रीतो भवेन्महादेव साक्षात्कारुणिक शिव ।

आस्ते साक्षात्कृतं शत्रुविष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५

वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशाचिम् ।

गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमी नदीम् ॥९६

चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योपधयस्तु तत् ।

तं गत्वा स्तुहि देवेश सर्वभावेन शकरम् ॥

स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चन्द्र देव न बहुत अधिक समय तप ध्यान करके भुक्ति अथवा मुक्ति सभी कुछ महेश्वर देव की उपासना एवं यमाराधना से हुआ करती हैं—इसमें खेसमात्र भी सशय नहीं है ॥९२॥ उस बालक पिप्पलाद ने पुनः उस सोमदेव से पूछा था कि मैं भगवान् महेश्वर का दशन किस रीति से प्राप्त कर सकूँगा । मैं तो अत्यन्त

छोटा बालक है और मेरे अन्दर अभी बाल बुद्धि है । मुझ में न तो इतनी शक्ति ही है और न कोई तपोव्रत ही विद्यमान है ॥६३॥ चन्द्र देव ने कहा—हे भद्र ! तुम गौतमी गङ्गा पर चले जाओ और वहाँ पर पहुँच कर चक्रेश्वर हर का स्तवन करो । हे वररा ! वहाँ पर ओंसे ही परिधम के करने से भगवान् ईशान तुम पर परम प्रसन्न हो जायेंगे ॥६४॥ भगवान् शिव बहुत ही अधिक दयालु है और महादेव साक्षात् होकर तुझ पर प्रसन्न हो जायेंगे । वहाँ पर प्रभाविष्णु के द्वारा शिव का साक्षात्कार किया है ॥६५॥ भगवान् शम्भु ने वहाँ पर विष्णु को बरवान दिया था तथा देवों के द्वारा समर्चित सुदर्शन चक्र भी दिया था । शतएव हे तत्स ! तुम तो महान् बुद्धिमान बालक हो दण्डकारण्य में गौतमी नदी पर शीघ्र ही गमन करो ॥६६॥ वहाँ पर चक्रेश्वर नामक तीर्थ है और ये समस्त ओषधियाँ उस तीर्थ को जानती हैं । वहाँ पर पहुँच कर सर्वभाव से देवेश्वर भगवान् शङ्कर की स्तुति करो । वह प्रसन्न मन वाले होकर हे तात ! तुम्हारे समस्त मनोरथों को अवश्य ही पूर्ण कर देंगे ॥६७॥

तद्राज्यचनाद्ब्रह्मनिष्पन्नादो महामुनिः ।

आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥६८॥

त वालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः ।

गोदावर्या ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥

तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिव शुचिः ॥६९॥

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरा-

स्त्यक्तपणा निजितचित्तवाताः ।

यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्ना-

त्तमादिदेव प्रणमामि शभुम् ॥१००॥

यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा,

सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम् ।

विज्ञाय भवित्तगत समस्त,

स मे स्मरारिः करुणा करोतु ॥१०१॥

दिगीश्वरास्तित्य सुराचितस्य,

कंलासमान्दोलयत. पुरारेः ।

अङ्गुष्ठकृत्येव रसातलादधो-

गतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२॥

आलूनकायस्य गिर निशम्य,

विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।

तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्व-

दयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३॥

सौनामणीमृद्धिमधः स चक्रे,

योऽर्चा हरौ रे, नित्यमतीव कृत्वा ।

वाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजा,

रम्या मनोज्ञा शशिखण्डमौलेः ॥१०४॥

जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य,

गुरुं नमस्कृतुं मगाद्विशाखः ।

धुकोप दृष्ट्वा गणनायमूढ-

मङ्ग्रे तमारोप्य जहास सोमः ॥१०५॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मा ! उस राजा सोम देव के दबन से वह महामुनि पिप्पलाद वहाँ पर समावन हो गया था जहाँ पर इस जगत् के स्वामी चक्र प्रदान करने वाले रुद्रदेव विराजमान थे ॥६८॥ उस बालक को वहाँ पहुँचा कर दया से परिपूर्ण पिप्पल गृध्र अपने आग्रहों से चले गये थे । उस पिप्पलाद बालक ने गोदावरी में स्नान किया था । फिर उसने भगवान् त्रिमोश्वर को प्रणाम किया था । पिप्पलाद ने परम शुचि होकर सर्वभाव से भगवान् शिव का स्तवन किया था ॥६९॥ पिप्पलाद ने शिव का निवेदन किया था कि धीरे पुरुष सब एगणाओं का त्याग करके और अन्य सब कर्मों को छोड़कर अपनी चित्त की वृत्ति पर विजय पाकर जिस देवेश्वर की परपागति में प्रयत्न पूर्वक मुक्ति के लिये आया करते हैं उन्हीं आदि देव भगवान् राम्भु के चरणों में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१००॥ जो तबका शांति है और जो सबका अन्तर्दाता है

अर्थात् सबके अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान है । जो सबका ईश्वर तथा समस्त कलाओं की खान है वही प्रभु मेरे चित्त में स्थित मनोरथ को समझकर कामदेव को भस्म कर देन वाले भगवान् शम्भुदेव मुझ पर करुणा की दृष्टि करें ॥१०१॥ समस्त दिक्पालों को जीत कर गुरो के द्वारा समर्पित भगवान् पुरारि के आश्रय भूत कैलास पर्वत को हिला देने वाले अगुष्ठशक्ति से ही रसातल से भी नीचे गये हुए आद्यनकाय दशानन की वाणी को सुनकर देवी के साथ हँस कर जिसने अभीष्ट दिया था । क्रुपित होकर भी उस पर परम प्रसन्न हो गये थे उसी की भाँति हे महेश्वर ? आप अयुक्त दाता हैं ॥१०२-१०३॥ जिस बाण ने हर की नित्य अर्चा को करके सौम्यामणी श्रद्धा का भी तुच्छ कर दिया था उस प्रशस्त बाण ने शशि खण्ड को गरतक पर धारण करने वाले प्रभु की परम रम्य एवं मनोज्ञ समुच्च पूजा की थी ॥१०४॥ विशाख रिपुओं को जीतकर देवगणों की पूजा करके गुरु को प्रणाम करने के लिये गया और ऊँठ गणनाथ को देखकर क्रुपित हो गया था उसकी सोम ने अङ्गु मे समारोपित कर हास किया था ॥१०५॥

ईशाङ्कुरुडोऽपि शिशुस्वभावा-

न मातुरङ्ग प्रमुमोच बाल ।

क्रुद्ध सुत बोधिलुमप्यशक्त-

स्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोम ॥१०६॥

ततः स्वयभू सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत ॥१०७॥

वर वरय भद्र ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८॥

हतो देवमहादेवः पिता मम महायशा ।

अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥

देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम् ।

दुःखकोपसमाविष्टो नाह जीवितुमुत्सहे ॥११०॥

तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेय सुरान्यथा ।

अदध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

ईश के अङ्क (गोद) में समाखूँ होते हुए भी शिशु के स्वभाव के कारण बालक ने माता की गोद को नहीं छोड़ा था उस समय मे क्रुद्ध सुत को समझाने में असमर्थ होकर सभी से सोम अर्धनारित्य को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन का श्रवण करके स्वयम्भू प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उसी समय में पिप्पलाद से कहने लगे ॥१०७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! सुत से वरदान का वरण कर लो । जो भी कुछ तुमको अभीष्ट हो माँग लो ॥१०८॥ पिप्पलाद ने कहा—हे महादेव प्रभो ! महान् यशस्वी मेरे पिता दधीचि का देवों के द्वारा हनन किया गया था । मेरे पिता श्री दम्भ से सर्वथा रहित थे और सत्यवादी थे । मेरी माता पूर्ण पतिव्रता थी ॥१०९॥ हे नाथ ! देवों से उन दोनों का सविस्तृत विनाश सुनकर मैं अत्यन्त दुःख और क्रोध से समाविष्ट हो गया हूँ और अब मैं जीवित रहने का उत्साह नहीं करता हूँ । अतएव आप कृपा करके सुत में ऐसी शक्ति दीजिए कि मैं जिसके द्वारा सूरों का विनाश कर सकूँ । हे दाशिको मस्तक पर धारण करने वाले स्वामिन् ! आप ही ऐसे प्रभु त्रिलोकी में हैं जो अवध्य हैं और सेव्य हैं ॥११०-१११॥

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ ।

ततः समर्थो भविता देवाश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभोः ।

न दाशकं तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शकर्म ॥११३॥

किञ्चित्कुरु तपो बालं यदा द्रक्ष्यसि लोचनम् ।

तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४॥

एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कुतनिश्चयः ।

दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः सन्नाः ॥११५॥

शिवाध्यानेकनिरतो बाह्योऽपि बलवानिव ।

प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरुन्क्रमात् ॥११६॥

सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः ।

हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंभृतिः ॥११७॥

स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदव्यौ शाभव मह ।

ददश चक्षुर्देवस्य तृतीय पिप्पलाशन ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८॥

ईश्वर ने कहा—हे आप । यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सकते हो तो तुम निश्चय ही सब देवों का छेदन करने में समर्थ हो सकते हो ॥११२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस पिप्पलाद ने विष्णु के तीसरे नेत्र को देखने का मन में विचार किया था कि तुम्हें ऐसा न कर सका था । उसी समय में उसने भगवान् शङ्कर से कहा था—हे भगवन् । मैं तो आपका तृतीय नेत्र देखने की शक्ति नहीं रखता हूँ ॥११३॥ भगवान् ईश्वर ने कहा—हे बन्धे । अभी तुम कुछ तप करो तभी तुम मेरा तीसरा नेत्र देख लोगे । और जब मेरा तीसरा लौघन देख लोगे तो उसी समय से अपना अभीप्सित मनोरथ भी अवश्य ही प्राप्त कर लोगे इसमें शेषमात्र भी शङ्का नहीं है ॥११४॥ यह ईशान देव का वचन सुनकर उस बालक ने तपश्चर्या करने का निश्चय किया था और दधीचि महर्षि के पुत्र न वही पर परम धर्मात्मा दधीचि के पुत्र ने बहुत से वर्षों तक तप किया था ॥११५॥ यद्यपि वह बालक था, तो भी एक बलवान् पुरुष की ही भाँति शिवजी के ग्यास में निरत होकर तपश्चर्या कर रहा था । प्रतिदिन प्रातः काल में उठकर स्नान किया करता था और क्रम से अपने गुरुजनों को प्रणाम करता था ॥११६॥ कुछ पूर्वक फिर बैठकर अनन्य बुद्धि वाला होते हुए अपने गन की गुप्ताभा नाडी में करके हस्त स्वस्तिक का नाभि में आरोप करके एकदम सफाई की विस्मृत कर देता था ॥११७॥ गन घन एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना उत्कर्ष करके भगवान् शम्भु के तेज का चिन्तन किया करता था । उस पिप्पलाशन ने देवेश्वर के तीसरे नेत्र को देख लिया था । जैसे ही तृतीय नेत्र का उन्नत दशन प्राप्त किया था वैसे ही हाथ जोड़कर परम विनम्र होते हुए यह वचन बोला था ॥११८॥

शमुना देवेदेवन वरो दत्त पुरा मम ।

तार्तीयचक्षुषो ज्योतियदा पश्यसि तत्क्षणात् ॥११९॥

सर्वं ते प्रार्थितं सिद्ध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः ।
 तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे ॥१२०॥
 तदैव पिप्पलाः प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते ।
 माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येव दिव गता ॥१२१॥
 पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः ।
 इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे ॥१२२॥
 तस्मात्पृथक्चनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः ।
 अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थकः ॥१२३॥
 देहि देहीति त प्राह कृत्या नैत्रविनिर्गता ।
 वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः ॥१२४॥
 सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगभिणी ।
 गमस्तिनो बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः ॥१२५॥
 तद्दयानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगभिणी ।
 उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वैव भीषणा ॥१२६॥

पिप्पलाद ने कहा—भगवान् शम्भु ने पहिले मुझे वरदान दिया था कि जिस समय मे तृतीय नेत्र मे होने वाली ज्योति का दर्शन करेगा पुरण ही उसी क्षण मे तेरा सभी प्रार्थना किया हुआ मनोरथ सिद्ध हो जावेगा—यही मुझसे भगवान् त्रिदशेश्वर ने आदेश प्रदान किया । अतएव मेरे शत्रुओं के विनाश करने के लिये जो भी हेतुभूता हो उसका प्रदान कीजिए ॥११९-१२०॥ उसी समय मे पिप्पलों ने कहा था—हे महती द्युति वाले ! आपकी माता प्रातिथेयी और वडवा ने भी दिवलोक को गमन करने के समय मे यह कह रही थी ॥१२१॥ पराये द्रोह में अभिरति रखने वाले तथा आत्मा के हित को भुला देने वाले मनुष्य इधर-उधर भ्रान्त चित्त होकर भटकते हुए अन्त मे नरकावट में पतन किया करते हैं ॥१२२॥ जग माता के द्वारा कथित वचन का श्रवण करके पिप्पलाशन बहुत ही नुपित हो गया था और अभिमान में उसका अन्तःकरण जलने लग था । उसने कहा था कि यह साधुवाद निरर्थक ही है ॥१२३॥ उस अवसर पर भगवान् शम्भु के तृतीय नेत्र निकली हुई

श्रुत्या ने उससे 'दो-दो'—यह कहा था । विप्र ने बड़वा का स्मरण करते हुए देखा था कि वह श्रुत्या भी बड़वा के समान ही आकृति वाली थी ॥१२४॥ समस्त जीवों के विनाश करने के लिये वह अनलगभिणी समुत्पन्न हुई थी जो पप्पलाशी की बालक को गर्भ धारण करने वाली गमस्तिनी माता थी ॥१२५॥ उसके ध्यान योग से वह अनल गभिणी श्रुत्या होकर समुत्पन्न हुई थी । और अधिक भीषण मृत्यु की जिह्वा के ही समान वह रौद्र रूप वाली समुत्पन्न हुई थी । १२६॥

अवोचत्पिप्पलाद त किं कृत्य मे वदस्व तत् ।
 पिप्पलादोऽपि ता प्राह देवान्खाद रिपून्मम ॥१२७
 जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलाद पुरस्थितम् ।
 स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाभ्याह त्वयोदितम् ॥१२८
 देवंश्च निर्मितं देहं ततो भीत शिव ययौ ।
 तुष्टाव देव स मुनि कृत्या प्राह तदा शिव ॥१२९
 योजनान्तं स्थिताङ्गीवाघ्नं गृहाण मदज्ञया ।
 तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्य ततः क्रुह ॥१३०
 तीर्षात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया ।
 प्रातिष्ठद्बडवारुणा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता ॥१३१
 तस्या जातो महानग्निर्लोकसहरणक्षमः ।
 त दृष्ट्वा विवृषा सर्वे शस्ता शशुमुपागमन् ॥१३२
 चक्रे श्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम् ।
 स्तुवन्तो भीतमनसः शशुमूर्च्छादिवोकसः ॥१३३

उस श्रुत्या ने उसी समय मे पिप्पलाद से कहा था कि मुझे क्या करना है उसे भीष्ट बतला दो । इस वचन ने कहने पर पिप्पलाद ने भी उसको यही उत्तर दिया था कि मेरे शत्रु देवों का भक्षण करो ॥१२७॥ 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसने अपने समक्ष में स्थित पिप्पलाद की ही सर्वं प्रथम पकड़ लिया । तब तो उस पिप्पलाद ने उससे कहा—हे श्रुत्ये ! यह क्या कर रही हो ? उस श्रुत्या ने जगती

उत्तर देते हुए कहा था कि तुमने ही तो मुझे यह करने के लिये अभी-
कहा था ॥१२८॥ यह तुम्हारा देह भी तो देवों के ही द्वारा निर्मित
हुआ है । सब तो वह पिप्पलाद परमाधिक भयभीत होकर भगवान् शिव
की शरण में गया था और उस मुनि ने शिव का स्तवन किया था ।
उस समय में भगवान् शङ्कर ने कृत्या से कहा था । श्री शिवजी ने
कहा—हे कृत्ये ! मेरी आज्ञा है कि एक योजन के अन्दर जो भी जीव
हैं उनका तुम ग्रहण मत करो । इस कारण से हे कृत्ये ! तुम दूर चली
जाओ और फिर वहाँ जाकर अपना कार्य करो ॥१२९-१३०॥ श्री
ब्रह्माजी ने कहा—पिप्पल तीर्थ से पूर्व जहाँ तक योजन की संख्या होती
है वह बड़वा रूपा कृत्या जो ऋषि निर्मित है प्रतिष्ठित हो गयी थी
॥१३१॥ उस में महान् अग्नि समुत्पन्न हो गयी थी जो सम्पूर्ण लोक के
संहार कर देने में समर्थ थी उस महान् संहारक भीषण अग्नि को देख
कर सब वैवर्ण्य भयभीत हो गये थे और भाग कर भगवान् शङ्कर के
समीप में पहुँचे थे ॥१३२॥ भगवान् चक्रेश्वर पिप्पलेश को पिप्पलाद
मुनि ने प्रसन्न कर लिया है अतएव बहुत डरे हुए मन वाले देवों ने
स्तुति करते हुए भगवान् शम्भु से प्रार्थना की थी ॥१३३॥

रक्षस्व शभी कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भुवानलः ।

शरण भव सर्वेश भीतानामभयप्रद ॥१३४॥

सर्वतः परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् ।

सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरणं शिव ॥१३५॥

अपिणाऽभ्यथिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निर्निर्गता ।

सा जिघांसति लोकास्त्रोस्त्व नस्त्राता न चेतारः ॥१३६॥

तान्नवीज्जगन्नायो योजनान्तनिवासिनः ।

न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्युयमर्हनिशम् ॥१३७॥

इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भय भवेत् ॥१३८॥

पुनरुचुः सुरेशान त्वया दत्तं त्रिविष्टपम् ।

तत्पक्त्वाऽथ कथं नाथ धत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९॥

देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमयाव्रवीत् ॥१४०॥

देवो ने कहा—हे शम्भो ! हमारी रक्षा कीजिए । यह कृत्या हमको सता रही है उसके द्वारा अनल समुत्पन्न हो गया है । हे सर्वेश्वर ! आप हमारे रक्षक होइये । आप तो सर्वदा भय से भोतो को अमय प्रदान करने वाले हैं ॥१३४॥ हे शिव ! सब ओर से जो परिभव को प्राप्त करने वाले—परमाधिक आर्त्त ग्राम्त वित्त वाले समस्त जन्तुओं की रक्षा करने वाले आप ही हैं ॥१३५॥ विष्णुवाद ऋषि ने उससे प्रार्थना की है और वह कृत्या आपके तीसरे नेत्र से प्रकट होने वाली ही बह्नि है । वह तीनों लोकों का सहार करना चाहती है । अब आप ही हमारे रक्षक हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥१३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगत् के नाथ भगवान् कम्भु ने उन देवगणों से कहा था कि यह कृत्या जो एक योजन के अन्दर निवास करने वाले हैं उनको कोई बाधा नहीं पहुँचाती है । इस लिये आप सब लोग यहाँ पर ही बह्निमान रहिए । हे अमरों ! फिर यहाँ पर आपको उस कृत्या से कुछ भी भय नहीं होगा ॥१३७-१३८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनने पुनः सुरेशान से प्रार्थना की थी कि आपने ही हम सबको निवास करने के लिये स्वर्ग लोक प्रदान किया था । हे नाथ ! अब उसका स्वाग करके यहाँ पर कैसे निवास करेंगे । आप तो देवों के द्वारा अर्चित देव हैं ॥१३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव ने देवों के वचन को सुन कर फिर यह वाक्य कहा था ॥१४०॥

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख ।

यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मतः ॥१४१॥

स सूर्ये एक एवात्र साक्षाद्भूषेण सर्वदा ।

स्थितिं करोतु तन्मूर्तो भविष्यन्त्यखिलाः स्थिता ॥१४२॥

तथेति शशुवचनात्पारिजाततरोस्तदा ।

देवा दिवाकर चक्रस्त्वष्टा मास्करमग्रवीत् ॥१४३॥

इहैवाऽऽस्व जगत्स्वामिपक्षेमान्विवुधान्स्वयम् ।

स्वाशेश्च वयमप्यत्र तिष्ठामः शशुसनिधौ ॥१४४॥

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसंख्यया ।

गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमाः ॥१४५॥

अष्टगुल्यर्धार्धमात्रं तु गङ्गातीरं समाश्रिताः ।

तिस्रः कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ।

तीर्थानां सत्र व्युष्टिं च कः शृणोति त्रयीति वा ॥१४६॥

भगवान् शङ्कर गोलें—यह सूर्य देव सम्पूर्ण विश्व के नेत्र हैं और यह समस्त विश्व का मुख हैं । तथा जो अपनी किरणों के द्वारा मिल घमग किया करते हैं तथा जो सबके जन्मक माने गये हैं वे सूर्यदेव एव ही यहाँ पर सर्वदा साक्षात् रूप से विद्यमान रहा करते हैं । उन सूर्य देव की भूति में आप लोग अपनी स्थिति करिए । वहाँ पर आप सभी स्थिति हो जायेंगे ॥१४१-१४२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु के वचन से देवों ने ऐसा ही करे—यह कर उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया था और उसी समय में पारिजात तट के सभी देवगण ने भगवान् दिवाकर का दर्शन प्राप्त किया । उस समय में त्वष्टा ने भालक प्रभु से कहा था ॥१४३॥ त्वष्टा ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आ यहाँ पर ही ठहरिये और इन देवों की आप स्वयं रक्षा कीजिए । और अपने अश्वों के द्वारा हम भी यहाँ पर शम्भु की सन्निधि में ठहरेंगे ॥१४४॥ भगवान् चक्रेश्वर दोनों ओर जहाँ तक एक योजन के विस्तार में सद्यया समाप्त होती है गङ्गा के दोनों तटों की प्राप्त करके वे सुरोत्तरहते थे ॥१४५॥ अगुल के अर्ध-अर्ध मात्र तक वे गङ्गा के तीर पर समाश्रित हुए थे । हे मुनियों मे परमश्रेष्ठ ! वहाँ पर तीन करोड़ पचासी तीर्थों की व्युष्टि है । उन सबको कौन तो बतलाता है और को श्रवण करता है । तात्पर्य यह है कि तीर्थों की संख्या इतनी अधिक कि उन सबको न तो कोई बतला सकता है और न कोई श्रवण कर की ही शक्ति रखता है ॥१४६॥

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन् ॥१४७॥

पिप्पलादं सुरेशानं शमं नय जगन्मय ॥१४८॥

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ. पिप्पलादमवोचत् ॥१४६

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति ।

दत्ता. पिता तव प्राणा देवाना कार्यसिद्धये ॥१४७

दीनार्त्तकरुणावन्धु. को हि तादृग्भवे भवेत् ।

तथा याता दिव तात तव माता पतिव्रता ॥१४८

समा काऽप्यन मतया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती ।

यदस्थिभि. गुरा. सर्वे जयिन सुखिन सदा ॥१४९

तेनावाप्त यश स्फीत तव मानाऽक्षय कृतम् ।

त्वया पुत्रेण सबन नात. परत्तर कृतम् ॥१५०

त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गान्ज्युतास्त्व पातुमर्हसि ।

नाऽऽर्त्तनाणादभ्यधिक सुकृत कापि विद्यते ॥१५१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसने पश्चात् फिर सब देवों ने दिनभ्र होकर भगवाद् शिव से प्रार्थना की की ॥१४७॥ देवों ने कहा—हे जगन्मय ! आप तो सूरों के स्वामी हैं । अब आप उन पिप्पलाद की शान्त कीजिए ॥१४८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा ऐसा करे गे । इस तरह से देवों की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, और फिर वे पिप्पलाद से बोले । श्री शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! इन सब देवों के विनष्ट कर देने पर भी तेरे पिता दधीचि तो मृत्युग्न हो जाने के कारण पुन अब यहाँ पर आयेंगे नहीं । उन देवों ने ही तेरे प्राणों को देव कार्य की सिद्धि के लिये प्रदान किया है ॥१४९-१५०॥ तुम्हारे पिताजी तो दीनों आर्त्तों पर करुणा करने वाले और उनके बन्धु के समान थे । उन सरीखा इस सत्तार में अन्य कौन हो सकता है ? अर्थात् जैसा दयालु तो कोई हो ही नहीं सकता । हे तात ! तुम्हारी माता भी परम पुनीत पतिव्रता थी । वे दोनों ही स्वर्ग वासी हो गये हैं ॥१५१॥ लोपामुद्रा और अरुन्धती के द्वारा भी सम्मानित उस तुम्हारी माता के समान यहाँ पर कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं है । जिसकी अस्थियों ने सभी सुराण सदा विजयी और सुखी रहते हैं । उस तुम्हारे पिता ने अपना सुदश भ्रानोष मे दत्ता दिया है और तुम्हारी माता ने ता उस यश को अक्षय ही बना

दिया है । तुम पुत्र ने सर्वत्र ही उस यज्ञ को कर दिया है । इससे अधिक किसी ने भी ऐसा यज्ञ अब तक नहीं किया है ॥ १५२-१५३ ॥ तुम्हारे प्रदाय के भय से ये सब देवगण स्वर्ग से भी च्युत हो गये हैं अब इनकी रक्षा करने के लिये तुम योग्य होते हो । जो कोई भी आर्त हो उनके परित्राण से अधिक मुझ तक ही नहीं होता है ॥ १५४ ॥

यावद्यज्ञः स्फुरति चारु मनुष्यलोके,
अहानि तार्वन्ति दिव गतस्य ।

दिने दिने वर्षसख्या(रूप) परस्मिन्-
ल्लोके वासो जायते निर्विकारः ॥ १५५ ॥

मृतास्त एवात्र यज्ञो न यथा-
मन्वास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।

ये धानशीला न नपुंसकास्ते,
ये धमशीला न त एव दोष्याः ॥ १५६ ॥

भाषितं देवदेवस्य श्रुत्वा दान्तोऽभवन्मुनिः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नायमयाग्रवीत् ॥ १५७ ॥

याग्निर्मनोभिः कृतिभिः कदाचि-
न्ममोपजुर्वन्ति हिते रता ये ।

तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषा,
सोम नमस्यामि गुरादिपूज्यम् ॥ १५८ ॥

सरक्षितो मेराभयपिनाभ,
समानगोत्रश्च समानपर्मा ।

तेषामभीष्टानि निवः करोतु,
वातेन्दुमीनि प्रणयाऽस्मि नित्यम् ॥ १५९ ॥

मेरा, यज्ञितो निरर मायुष्यित्पुत्रप्रभो ।
तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव त्वन्मुखे ॥ १६० ॥

मयापु तेषां भविता मेभ्योऽस्मद्वन्द्याः ।
मानि दोषाणि नमानां मानि तीर्थाणि पूजये ॥ १६१ ॥

तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता- ।

तत क्षमेऽहं देवानामपराध निरक्षन' ॥१६०॥

जब तक यह तुम्हारा यश इस मनुष्य लोक में बहुत ही सुन्दरता के साथ फैला रहेगा उतने दिन तक स्वर्गलोक में गये हुए का, विकार से रहित निवास स्वर्ग में हुआ करता है ॥१५५॥ वे ही लोग वास्तव में मरे हुए हैं जिनका यश यहाँ पर कुछ भी नहीं होता है और वे ही लोग अन्धे हैं जो श्रुत से रहित होते हैं । जो दाम करने के शील स्वभाव वाले होते हैं वे नष्ट भक्त नहीं होते हैं और जो धर्मशील पुरुष होते हैं उनका तो कभी भी शोक करना ही नहीं चाहिए अर्थात् धार्मिक पुरुषों की मृत्यु ही जाने पर भी उनके विषय में चिन्ता या शोक कभी नहीं करना चाहिए ॥१५६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से देवेश्वर प्रभु के इस भाषित को सुन कर पिप्पलाद मुनि परम शान्त हो गया था । फिर उस मुनि ने दोनों अपने हाथों को जोड़ कर नमस्कार किया था और फिर अपने नाथ की सेवा में सविनय निवेदन किया ॥१५७॥ पिप्पलाद मुनि ने कहा—जो वचनी के द्वारा मनो के द्वारा और यत्नों के द्वारा मेरा उपकार किया करते हैं तथा मेरे हित करने में रति रखते हैं उनके हित के लिये और दूसरों की भलाई के लिये सुरगण आदि को द्वारा पूज्य सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५८॥ जिन्होंने मेरी सुरक्षा की थी और जिनके द्वारा मेरा अभिषेक हुआ था जो मेरे समान गोत्र वाले एवं समान धर्म वाले हैं उन सबसे अभीष्टों को भगवान् शिव पूज करें । मैं उन बालचन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले प्रभु को नित्य ही प्रणाम करता हूँ ॥१५९॥ हे प्रभो ! जिन्होंने नित्य ही माता पिता के समान मुखे सर्वांगन किया है हे देवो हे देव । प्रलोक्य मे उनके ही नाम से यह तीर्थ होना चाहिए ॥१६०॥ उनका यश होगा तो मैं उनसे फिर मैं अनृण हो जाऊँगा अर्थात् बिये हुए उमने उपकार ऋण का भार मेरे शिर से उतर जातगा । जो भी देवो के दोष हैं और जो भी भूल म छोड़ हैं उन सबसे यह तीर्थ अधिक माना जावे

और सत्र देवता भी इसको सबसे बड़ा मानें तभी निरञ्जन मैं देवों के अपराधों को क्षमा कर दूँगा ॥१६१-१६२॥

ततः समक्ष सुरसाक्षरां गिरं,

सहस्रचक्षुःप्रमुखांस्तथाऽग्रतः ।

उवाच देवा अपि मेनिरे वचो,

दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥

बालस्य बुद्धिं विनयं च विद्या,

शौर्यं बल साहसं सत्यवाचम् ।

पित्रोर्भक्तिं भावसुद्धिं विदित्वा,

तदाऽवादीच्छकरः पिप्पलादम् ॥१६४॥

वत्स मद्वै प्रियं काम यच्चापि सुरवत्सलम् ।

प्राप्त्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मनः कृपाः ॥१६५॥

ये गङ्गायामाप्नुता धर्मनिष्ठाः,

सपश्यन्ति त्वत्पदाब्जं महेश ।

सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य,

देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६॥

तातः प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे,

नाथ प्राप्ता पिप्पलश्रामराश्व ।

सुख प्राप्ता नाथनाथ विलोक्य,

त्वा पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रयान्तु ॥१६७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर महेंद्र आदि देवों के आगे उसने परम सुरस अक्षरो वाली वाणी को कहा था और उस दधीचि के पुत्र के द्वारा कथित वचन को देवों ने भी बहुत आदर के साथ मान लिया था ॥१६३॥ उस समय में उस बालक की बुद्धि-विनय-विद्या-शौर्य-बल-साहस-सत्य वचन माता-पिता की भक्ति और भावना की विशुद्धि को जानकर भगवान् शिव ने पिप्पलाद से कहा था ॥१६४॥ भगवान् शङ्कर ने कहा—हे वत्स ! जो भी तुम्हारा प्रिय हो और जो सुरों का प्रिय हो उसको तुम प्राप्त करोगे । हमेशा कल्याण का कथन करो और अन्यथा

अर्थात् कल्याण के विपरीत कभी भी अपने मन को मत करना ॥१६५॥
 पिप्पलाद ने कहा—जो धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गा में स्नान करने वाले हैं और
 हे महेश ! आपके चरण कमलों का दर्शन करते हैं वे अपने समस्त
 अभीप्सितों को वलात् प्राप्त कर लेवें और वेह के अन्त रामय में शीव पद
 को समन किया करें । मेरे पिताजी और मेरी माता आपके पद को
 प्राप्त हो गये हैं । हे नाथ ! पिप्पल तथा अमरगण भी नाथी के नाथ
 आपका अवलोकन करके पुख पूर्वक प्राप्त हो गये हैं । जो भी आपके
 चरण कमलों का दर्शन करें वे सभी आपके पद की प्राप्ति कर लिया
 करें ॥१६६-१६७॥

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः ।

अभिनन्द्य च तं देवैः साध वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८॥

देवा अपि मुदा युक्ता निर्मयास्तत्कृताद्भयात् ।

इदमूचुः सर्व एव दाधीच शिवसन्निधौ ॥१६९॥

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसशयम् ।

पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०॥

याचितं च त्वया पूर्वं परार्थनाऽऽमने द्विज ।

तस्मादन्यतम ब्रूहि किञ्चिदास्यामहे वयम् ॥१७१॥

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम् ।

कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शंभुसुरानिदम् ॥

उवाच पिप्पलादश्च उमा नत्वा च पिप्पलात् ॥१७२॥

पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ ।

ते धन्याः प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वंशे स्थिताः ॥१७३॥

शुश्रूषणपरा नित्य तत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः ।

इन्द्रियाणि शरीरं च कुल शक्तिं धियं वपुः ॥१७४॥

परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् ।

पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं साहृदर्शनम् ॥१७५॥

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् ।

दुर्लभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषां यस्य कस्यचित् ॥१७६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवी के देव महेश्वर ब्रह्म ने पिप्पलाद से ऐसा ही होगा—यह कह देवों के साथ ही उसका अभिनन्दन करके वाक्य कहा था । फिर तो सब देवगण भी आनन्द से युक्त तथा उसके किये हुए भय से निहट होकर भगवान् शिव की सन्निधि में ही सब उस दधीचि के पुत्र से इस वचन को बोले थे ॥१६८-१६९॥ देवों ने कहा—देवों का जो अभीप्सित मनोरथ था वह आपने विना किसी संशय के पूर्ण कर दिया है और आपने देवों के देव भगवान् शिव की त्रिलोक्य मण्डनी आज्ञा का भी पूर्णतया पालन किया है ॥१७०॥ हे द्विज ! आपने जो कुछ भी याचना की है वह भी पहिले दूसरों के ही हितार्थ की है अपने लिये आपने कुछ भी नहीं माँगा है । अतएव आप कुछ अन्य भी बोलिए हम लोग आपको प्रदान करेंगे ॥१७१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन सूरों के संधी ने उस उत्तम द्विज से बारम्बार यही वान कही थी । तब तो उस पिप्पलाद ने दोनों हाथों को जोड़कर पहिले भगवान् शम्भु तथा सूरों को एवं जगदम्बा उमा देवी को और पिप्पलो को प्रणाम करके यह वचन कहा था ॥१७२॥ पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता के दर्शन करने की कामना रखता हूँ वे सेवा मेरे शब्द गोचर होंगे । वे प्राणी इस जगत् में परम धन्य एवं महान् भाग्यशाली हैं जो सर्वदा अपने माता-पिता के वश में ही स्थित रहा करते हैं ॥१७३॥ जो नित्य ही माता-पिता की श्रद्धा में तत्पर रहते हैं और उन चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं । इन्द्रियों-शरीर-कुल-शक्ति धी वपु को प्राप्त कर माता-पिता के कृत्य में स्वयं कृतकृत्य होना ही चाहिए । पशुओं को और पक्षियों को भी माता का दर्शन सुलभ होता है किन्तु मुझे वह भी दुलभ हो गया था । मैं यही पूछना चाहता हूँ कि कौन से मेरे पाप का यह फल उदय हुआ था । यदि वह दुलभ ही होता है तो सभी में जिस किसी को ही होना चाहिए ॥१७४-१७६॥

नोपपद्ये तं सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् ।
तयोदशनमात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमां ॥१७७॥

मनोवाक्कायकर्मभ्यः फल प्राप्तं भविष्यति ।

पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससृता ॥

तेषां महापातकानां कं सख्या कर्तुं मोक्षर ॥१७८॥

तद्वपे वंचनं श्रुत्वा मियः समन्व्य ते सुरा ।

विमानवरमारुढौ पितरौ दपती शुभौ ॥१७९॥

तव सददर्शनाकाङ्क्षो द्रक्ष्यसे याऽद्य निश्चितम् ।

विपाद लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शमं नय ॥१८०॥

पश्य पश्येति तं प्राहुर्दाधीच सुरसत्तमाः ।

विमानवरमारुढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१॥

तव सददर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दपती शुभौ ।

वीज्यमानौ सुरस्त्रीभिः स्तूयमानौ च किन्नरैः ॥१८२॥

यदि यह सुलभ नहीं होता है तो मुझसे अन्य कोई भी पापों के कारण वाला नहीं है । सुरोत्तमो ! यदि मैं उनका केवल दर्शन भी प्राप्त कर लूँगा तो मेरे मन-वाणी और कर्मों का फल प्राप्त हो जायगा । जो अपने माता पिता का दर्शन नहीं करते हैं वे तो मानो इस ससार में उत्पन्न ही नहीं हुए हैं । वे वास्तव में महान् पातकी हैं और उनके महापातकों की राखी करने की किसमें शक्ति है अर्थात् कोई उनको गिन कर नहीं बता सकता है ॥१७७-१७८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि के इन वचनों का श्रवण कर उन सब सुरों ने परस्पर में मन्त्रणा की थी । वे शुभ दम्पती तुम्हारे माता पिता परम श्रेष्ठ विमान में समावृद्ध हुए हैं और तुम्हारे दर्शन की आकाङ्क्षा वाले हैं । आज तुम निश्चित रूप से उनको देख लोगे । विपाद तथा लोभ एव मोह का त्याग करके अपने चित्त को शान्त करो ॥१७९-१८०॥ फिर तुरन्त ही उन देव गणों ने दधीचि के पुत्र से कहा था—देखो, देखो वे परमाधिक श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, स्वर्ण में रहने वाले, स्वर्ण के भूषणों को धारण करने वाले तथा तुम्हारे देखने की आकाङ्क्षा रखने वाले शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता हैं जो देवाङ्गनाओं के द्वारा पक्षे जन्मे वाले हैं और किन्नरों के द्वारा

पिप्पलतीर्षवर्णन]

दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसंनिधौ ।
 हर्षवाण्याश्रुनयनौ स कथञ्चिदुवाच तौ ॥१८३॥
 तारयन्त्येष पितरावन्ये पुत्राः कुलोद्धृताः ।
 अहं तु मातुरुदरे केवलं भेदकारणम् ॥
 एवभूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मतिः ॥१८४॥
 तावालोक्य ततौ दुःखाद्वक्तुं नैव दादाक सः ।
 देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमयाव्रुवन् ॥१८५॥
 धन्यस्त्व पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिमता दिवम् ।
 साक्षात्कृस्त्वया व्यक्षो देवाभ्याऽऽवासितास्त्वया ॥
 त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥
 पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि ।
 जयदादः गुरुरक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७॥
 आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया ।
 दाशुं गङ्गा सुरमत्या पुत्र धान्यमयावबोत् ॥१८८॥
 प्राप्य भार्या शिवे भक्तिं कुङ्कुमा च सेवय ।
 पुत्रानुत्पाद्य विधियद्यज्ञानिष्ट्या मदक्षिणान् ॥
 कृतकृत्यस्तातो वत्स आक्रमस्य चिरं दिवम् ॥१८९॥

अथवा शिवजी की मूर्तिमें मैं उन श्रुति ने अपने माता-पिता का दर्शन करने उनको उसने प्रणाम किया था । वे दोनों ही हर्ष के अश्रुओं से भरे हुए लोचनों वाले थे । उन समय में वह श्रुति यही ही कठिनाता की उनसे बोला था ॥१८३॥ उन श्रुति पुत्र ने कहा—अपने कृत के उद्गहन करने वाले अन्य पुत्र अपने माता पिता की तार दिया करते हैं । मैं तो ऐसा अमाया हूँ कि माता के उदर में रह कर वेदात उनके भेदन करने का ही कारण बन दया था । इस प्रकार का होते हुए भी अत्यन्त दुर्बलता माता मैं उन दोनों की मोह ग देख रहा हूँ ॥१८४॥ यही वज्रायी ने कहा—उन दोनों माता-पिता का दर्शन करके उगे इतना अधिक दुःख हुआ था कि वह और कुछ बोलने से समर्थ न हो गया था । उनके माता-पिता देवदेव और उनके माता-पिता ने उस पिप्पलाद ने कहा था

॥१८५॥ देवों ने कहा—हे एत ! तुम परम धन्य हो, लोको में जिसकी कीर्ति विद्यमान है और दिवलोक में भी पहुँच गयी है । हे पुत्र ! तुमने भगवान् दिलोचन प्रभु का साक्षात्कार किया है और समस्त देवों को भी समाश्वासन दिया है । हे पुत्र ! तेरे द्वारा सत्रलोक कभी भी क्षीण नहीं किये जा रहे हैं अर्थात् तुमने अच्छे लोक मुदा अक्षय ही होने ॥१८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में उसके मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पो की वर्षा हुई थी । हे महामुने ! सूरों के द्वारा जयकार का शब्द प्रादुर्भूत हो गया था अर्थात् देवों ने जय जयकार किया था ॥१८७॥ भार्या के साथ ही दधीचि ने अपने पुत्र को आशीर्वाद किया था और भगवान् शम्भु गङ्गा और सूरों की सेवा में प्रणाम करके फिर अपने पुत्र से कहा था ॥१८८॥ दधीचि ने कहा—हे वत्स ! तुम भार्या को प्राप्त करो तथा शिव की भक्ति करो और गङ्गा का सेवन करो । गार्ह-स्थ्य आश्रम की विधि के साथ पुत्रों को उत्पन्न करने तथा दक्षिणा के सहित यज्ञों का यज्ञन करके तुम फिर कृतकृत्य हो जाओगे । इसके पश्चात् पिरकाल तक स्वर्ग में सन्निभ रहना ॥१८९॥

करोम्येवमिति प्राह दधीचि पिप्पलाशन ।

वर्षाचि पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुन पुन ॥१९०॥

अनुशात सुरगणे पुन स दिवामाक्रमत् ।

देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलाद ससन्नमा ॥१९१॥

कृत्या शमय भद्रं ते तदुत्पन्नं महानलम् ॥१९२॥

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तेऽहं निवारणे ।

असत्यं नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्या तु ब्रूत ताम् ॥१९३॥

मा दृष्ट्वा सां महारोद्रा विपरीतं करिष्याति ।

तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥

अनलं च यथाप्रीतिं ते उभे नेत्यबोद्धताम् ।

सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाह द्विजन्मना ॥१९५॥

तथाच मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् ।

महाभूतानि पश्चापि स्यावरं जङ्गमं तथा ॥१९६॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उस पिप्पलाशन ने मैं ऐसा ही कहूँगा—यह अपने पिता दधीचि से कहा था । दधीचि मुनि ने अपनी भार्या के सहित अपने पुत्र का दगरम्बार समाश्रासन किया और फिर गुरुगणों के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर दिव्यलोक में चला गया । फिर उन देवों ने स्वयं ने मिलकर बहुत ही सभ्रम के साथ पिप्पलाद से कहा था ॥१६०-१६१॥ देवों ने कहा—इस कुर्या का अब, शमन कर दो—तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि उसके मुख से महान् भयानक अनल उत्पन्न हो गया है ॥१६२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उन गुरों से पिप्पलाद ने कहा था कि मैं उसका निवारण करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं, कभी असत्य भाषण करने वाला नहीं हूँ । आप उस वृत्त्या से स्वयं पूछिय । मुक्तको देख कर तो वह महान् रौद्र रूप वाली विपरीत ही कर्म करेगी । तब वो देवों ने उसके समीप में उपस्थित होकर उसकी पण्ति का कारण पूछा था ॥१६३-१६४॥ देवों ने यही कहा था कि जैसा यह अनल शान्त हो और आप प्रसन्न होवें वह बतलाइये, हम ये दोनों का होता चाहते हैं । उम वृत्त्या ने कहा था कि विप्र के द्वारा मैं सभी के भक्षण करने के नियम समुत्पन्न की गयी हूँ ॥१६५॥ अतएव मेरे द्वारा उत्पादित की हुई यह अग्नि अन्यथा कैसे हो सकती है । पाँचों महाभूत तथा स्यावर एव जगम इन सब को मर मृत में सममना खादिष्ट ॥१६६॥

सर्वमस्मन्गुप्ते विद्याद्वत्तत्र्य नावतिष्यते ।
मया समन्व्य ते देवा पुनरुचूकमावपि ॥१६७॥
मक्षयेतामृभो सर्वं यषातुःप्रमत्तस्तथा ।
यदयार्जवि गुरानेवमुवाच ऋणु नारद ॥ ६८॥
भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे गुरगत्तमा ॥१६९॥
बहया धा मदी जाता गङ्गाया समता मुने ।
तदभयस्तु महान्निर्य आसीदतिभीषणः ॥
तमाद्वरपय वलि भूतासमादिता विदुः ॥२००॥

आपो ज्येष्ठतम ज्ञेयास्तथैव प्रथम भगवान् ।
 तत्राप्यपापति ज्येष्ठ समुद्र (तिज्यैष्ठस्तस्यात्व) मक्षान् कुप ॥
 यथैव तु वयं ब्रूमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथा सुखम् ॥२०१॥
 अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथं त्यहम् ।
 ब्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदकं महत् ॥२०२॥
 भवन्त एव तेष्याहुः कथं तेष्ये गतिर्भवेत् ।
 अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३॥
 हिरण्यकलशे स्याप्य नयेद्यत्र गतिर्मम ।
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कन्वाभूचुः सरस्वतीम् ॥२०४॥
 विशेष कुछ कहना अवगिष्ट ही नहीं रह जाता है । तब ।

जी ने कहा—मेरे साथ मे मन्त्रणा करके उन देवों ने पुनः उन पापों का
 कहा । आप अगुक्रम से दोनों सब का भक्षण कर लेंगे । हे नारद ! उस
 समय में वह बड़वा भी सुरों से इस भाँति कहने लगी जिसका आप
 श्रवण करिए ॥१८७-१८८॥ बड़वा ने कहा—हे सुरसत्तमो ! आप लोगों की
 इच्छा से मेरा सब ही भक्ष्य है । श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे मुने ! वह
 बड़वा नदी हो गयी थी और गङ्गा के साथ संगत हो गयी थी । उससे
 समुत्पन्न हुआ अग्नि महान् एव अत्यन्त भीषण था । अमरगणों ने उस
 बलि से कहा था कि भूतों को आदि से जान लो ॥१६६- ००॥ सुरों ने
 कहा—तमस्तु भूतों में जल ही सबसे बड़े हैं उसी क्रम से सब प्रथम
 आप उनका ही भक्षण करिए । उन जलो में भी अपापति समुद्र सबसे
 ज्येष्ठ है उस समुद्र का भक्षण करे । जिस प्रकार से हम लोग आपको
 बतलायें उसी रीति से सुख पूर्वक आप भक्षण करे ॥२०१॥ श्री ब्रह्माजी
 ने कहा—उस समय में उन अनल ने देवों से कहा था कि जल तो वहाँ
 पर हैं, मैं वहाँ क्यों गमन करूँ ? आप लोग यदि मुझको उस महान् जल
 तक प्राप्त करा दें तो ऐसा ही सबता है । तब तो उन देवों ने भी कहा
 दे कि हे अपने ! जहाँ सब अक्षय्य रूप से होते हैं सबता है ? तब तो
 उस अग्नि ने कहा कि यदि कोई गुण शालिनी कन्या मुझको सुवर्ण के
 वसत्र म स्थापित करके ले जावे तो मेरी गति वहाँ पर हो सवेगी ।

पिप्पलतीर्थवर्णन]

तब तो देवो ने उसका वचन सुन कर कन्या सरस्वती से प्रार्थना की थी ॥२०२-२०४॥

नयनमनल शीघ्र शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥
 सरस्वती सुरानाह नंका शक्ता च धारणे ।
 युक्ता चतसृभिः शीघ्रं वहेय वरुणालयम् ॥२०६॥
 सरस्वत्या वच. श्रुत्वा गङ्गा च यमुना तथा ।
 नर्मदा तपती चैव सुराः प्रोचुः पृथक्पृथक् ॥२०७॥
 ताभिः समन्वितोवाह हिरण्यकलशैः जलम् ।
 सस्थाप्य शिरसाऽऽधायं ता जमुर्वरुणालयम् ॥२०८॥
 सस्थाप्य यत्र देवेशः सोमनाथो जगत्पति ।
 अघ्यास्ते विबुधैः सार्धं प्रभासे शशिभूषणः ॥२०९॥
 प्रापयामासुरनल पञ्चनद्यः सरस्वति ।
 अघ्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि दाने. दानैः ॥२१०॥

देवो ने कहा—हे सरस्वति । इस अनल को अति शीघ्र शिर पर रख कर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सरस्वती देवी ने कहा था कि मैं अनेकी उसके धारण करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं चार अन्य कन्याएँ हूँ तो मैं शीघ्र इसका वहन कर समुद्र में पहुँचा दूँगी ॥२०६॥ सरस्वती ने इस वचन को सुन कर देवो ने अलग-अलग गङ्गा-यमुना-नर्मदा और तपती से यही प्रार्थना की थी ॥२०७॥ उन चारों के समन्वित होकर उस सरस्वती ने एक मुवर्ण के कलश में उस अनल को सस्थापित करके शिर पर धारण किया था और वे सय वरुणालय (सागर) में चली गयी थी ॥२०८॥ उसको मली मानि स्थापित करने के चली थी और जहाँ पर जगत् के पनि देवेश्वर सोमनाथ पति या भूषण धारण किये हुए प्रभास में देवो के साथ विराजमान थे यह सरस्वती और अन्य चारों के साथ पाँचो नदियों ने उस अनल को वही पर पहुँचा दिया था । वह महान् अग्नि दाने. दाने उस जल का पान करता हुआ वहाँ पर स्थिति हो गया था ॥२०९-२१०॥

आपृच्छ पृथुः पिप्पलादं त मुनिः स्व संदेने ययुः ।

पिप्पलाः कालपर्यायि स्वर्गं जग्मु रयाशयम् ॥२११॥

पादपाना पद विप्रः पिप्पलादः प्रतापयान् ।

क्षेत्रापिपत्तये मत्स्याप्य पूजयामास दावरम् ॥२१२॥

दधीचिमूतुमु निरप्रतेजा,

अवाप्य भार्यां गातमस्याऽऽत्मजां च ।

पुत्रानया साप्य श्रियं यशश्च,

मुहुर्जनं स्वर्गं यवाप धीरः ॥२१३॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेभ्यश्चरमुष्णने ।

सर्वं प्रतुषन् पुण्यं स्मरणादघनाशनम् ॥२१४॥